

३० चमो भगवते श्रीनृसिंहाय नमः

श्रीनरसिंहपुराण

पहला अध्याय

प्रथागमें ऋषियोंका समागम; सूलजीके प्रति भरद्वाजजीका प्रश्न;
सूलजीद्वारा कथारभ्य और मुष्टिकामका वर्णन

॥ श्रीनरसिंहाय नमः ॥ श्रीवेदव्यासाय नमः ॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १
तस्माट्केशान्तज्ज्वलत्पावकलोचनं ।
चजाधिकनखास्पर्शं दिव्यसिंहं नमोऽस्मृते ॥ २
पानुं यो नरसिंहस्य नखलाङ्गलकोटयः ।
हिरण्यकशिपोर्वक्षःक्षेत्रामृककदम्भारुपाः ॥ ३
हिमबद्धासिनः सर्वे मुनयो वेदपारणाः ।
श्रिकालज्ञा महात्मानो नैमित्यारण्यवासिनः ॥ ४
ये अर्द्धुदारण्यनिरताः पुष्करारण्यवासिनः ।
महेन्द्राद्विरता ये च ये च विन्ययनिवासिनः ॥ ५
धर्मारण्यरता ये च दण्डकारण्यवासिनः ।
श्रीशीलनिरता ये च कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ ६
कौमारपर्वते ये च ये च पम्पानिवासिनः ।
एते चान्ये च यहवः सशिष्या मुनयोऽप्यत्था ॥ ७
माघमासे प्रथागं तु स्नातुं तीर्थं समागताः ।
तत्र स्वात्मा यथान्यार्थं कृत्वा कर्म जपादिकम् ॥ ८

अन्तायांमी भगवान् नारायण (श्रीकृष्ण) उनके साथ
नरेण्ठ नर (अर्जुन) तथा इनकी लीला प्रकट करनेवाली
सातवाहनी देवीको नगरकार करनेके पश्चात् 'जय' (इतिहास-
पुराण)-का यात्र चाल करे ॥ १ ॥

दिव्य सिंह! उपर्युक्त सुखपालोंके समान भीले केशोंके
भीतर प्रज्वलित अधिको भीति आपके नेत्र देखोप्यथान हो
रहे हैं तथा आपके नखोंका स्वर्ण चत्रसे भी अधिक
जड़ोर है, इस प्रकार अनित प्रभावशाली आप परमेश्वरको
मेरा नमस्कार है। भगवान् नृसिंहके नखरात्री हल्के
अप्रभाग, जो हिरण्यकशिपु नामक दैत्यके वक्षःस्वयंका पी
खेतकी रक्तमयी कोशद्वारके लागतेसे लाल हो गये हैं,
आप लोगोंको रक्त करें ॥ २-३ ॥

एक समय हिमालयकी शाटियोंमें रहनेवाले, देवोंके
पारगमी एवं विकाशवेता समस्त महात्मा मुनिगण
नैमित्यारण्य, अर्द्धुदारण्य और पुष्करारण्यके निवासी मुनि,
महेन्द्र पर्वत और विन्ययगिरिके निवासी त्रुष्णि, धर्मारण्य,
दण्डकारण्य, क्षेत्रामृककदम्भारुपाः एवं पम्पासुरके निवासी त्रुष्णि—ये तथा
अन्य भी अहुत-से मुद्द हठयवाले महारिंगण अपने शिष्योंके
साथ माघके महोनेमें स्नान करनेके लिये प्रयाग-तीर्थमें
आये ॥ ४-५ ॥

बहौपर यथोचित रीतिसे स्नान और जप आदि करके

नत्या तु माधवं देवं कृत्वा च पितृतर्पणम्।
 दद्धा तत्र भरद्वाजं पुण्यतीर्थनिवासिनम्॥ ९
 तं पूजयित्वा विधिवत्तेनैव च सुपूजिताः।
 आसनेषु विधित्रेषु वृथ्यादिषु यथाक्रमम्॥ १०
 भरद्वाजेन दत्तेषु आसीनास्ते तपोधनाः।
 कृष्णाश्रिताः कथाः सर्वे परस्परमधाद्यवन्॥ ११
 कथानेषु तत्स्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
 आजगाम प्रहारेजास्तत्र सूतो महामतिः॥ १२
 व्यासशिष्यः पुराणज्ञो लोमहर्षणसंज्ञकः।
 तान् प्रणाम्य यथान्यायं स च तैज्ञाभिपूजितः॥ १३
 उपविष्टो यथायोर्य भरद्वाजमतेन सः।
 व्यासशिष्यं सुखासीनं तत्स्तं लोमहर्षणम्।
 स प्रपञ्च भरद्वाजो मुनीनामग्रतस्तदा॥ १४

भरद्वाज उक्तव्य

शीनकस्य महासत्रे बाराहाख्या तु संहिता।
 त्वत्तः भूता पुरा सूत एतैरस्माभिरेव च॥ १५
 साम्प्रतं नारसिंहाख्यां त्वत्तः पीराणसंहिताम्।
 श्रोतुभिच्छाप्यहं सूत श्रोतुकामा इमे स्थिताः॥ १६
 अतस्त्वां परिपुच्छामि प्रश्नयेते महामुने।
 प्राप्तीणामग्रतः सूत प्रातर्होषां महात्मनाम्॥ १७
 कुत एतत् समुत्पन्नं केन वा परिपाल्यते।
 कस्मिन् वा लघ्यमध्येति जगदेतत्त्वाच्चरम्॥ १८
 किं प्रमाणं च वै भूमेन्द्रिसिंहः केन तुष्टिः।
 कर्मणा तु महाभाग तन्मे चृहि महामते॥ १९
 कथं च सुष्टेरादिः स्वादवसानं कथं भवेत्।
 कथं युगस्य गणना किं वा स्यान् चतुर्दुर्गम्॥ २०
 को वा विशेषस्तेष्वत्र का वावस्या कल्पी युगे।
 कथमाराव्यते देवो नरसिंहोऽप्यमानुषः॥ २१
 क्षेत्राणि कानि पुण्यानि के च पुण्याः शिलोच्चराः।
 नद्यश्च काः पराः पुण्या नृणां पापहराः शुभाः॥ २२

उन्होंने भगवान् वैष्णोमाधवको नमस्कार किया; फिर पितरोंका तर्पण करके उस पावन तौरेंके निवासी भरद्वाज मुनिका दर्शन किया। वहाँ उन व्यापियोंने भरद्वाजजीका भलीभौति पूजन किया और त्वयं भी भरद्वाजजीके द्वारा पूजित हुए। तत्पश्यात् वे सभी तपोधन भरद्वाज मुनिके दिये हुए वृक्षों आदि विचित्र आसनोंपर बिठायामान हुए और परस्पर भगवान् श्रोकृष्णसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाएँ कहने लगे। उन शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंको कल्प हो ही रही थी कि व्यासजीके क्षित्य स्तोमहर्षण नामक सूतजी वहाँ आ पहुँचे। वे अल्पन्त तेजस्वी, परम चुदिमान् और पुण्योंके बिहान् थे। सूतजीने वहाँ बैठे हुए सभी व्युषियोंको यथोचित विधिसे प्रणाम किया और स्वयं भी उनके द्वारा सम्मानित हुए। फिर भरद्वाजजीको अनुमतिसे वे यथायोग्य आसनपर बैठे। इस प्रकार जब वे सुखुपूर्वक विहानमान हुए, तब उस समय उन व्यासशिष्य लोमहर्षणजीसे भरद्वाजजीने सभी मुनियोंकी समष्टि वह प्रसन्न किया॥ ८—१४॥

भरद्वाजजी बोले—मृत्वी! पूर्वकालमें शीनकजीके महान् यज्ञमें हम सभी लोगोंने आपसे 'बाराह-संहिता' सुनी थी। अब हम 'नरसिंहपूजा' की संहिता सुनना चाहते हैं तथा ये ज्ञापि लोग भी उसे ही सुननेके लिये यहाँ उपस्थित हैं। अहं महामुने सूतजी! आज प्रातःकाल इन महामुनोंके समझ हम आपसे ये प्रश्न पूछते हैं—'यह चतुर्वर जगत् कहाँसे उत्पन्न हुआ है? कौन इसकी रक्षा करता है? अथवा किसमें इसका लप होता है? महाभग! इस भूमिका प्रभाव क्या है तथा महामते! भगवान् नृसिंह किस कर्मसे संनुष्ट होते हैं—यह हमें अवश्यक है। सृष्टिका आत्म कैसे हुआ? उसका अवस्थान (अन्त) किस प्रकार होता है? युगोंकी गणना कैसे होती है? चतुर्दुर्गका रथरूप क्या है? उन चारों युगोंमें क्या अन्तर होता है? कलियुगमें लोगोंकी क्या अवस्था होती है? उच्च देवतालोग भगवान् नरसिंहकी किस प्रकार आग्रहना करते हैं? पुण्यदेवता कौन-कौन हैं? पावन पर्वत कौन-से है? और मनुष्योंके भासोंको हर लेनेवाली जगत् पावन एवं उत्तम नदियों कौन-कौन-सी हैं?

१. प्राप्तीणामग्रत युष्टिके लिये कुशका बना हुआ एवं विशेष प्रकारका आसन।

देवादीनां कथं सृष्टिर्नोर्मन्वन्तरस्य तु।
तथा विद्याधरादीनां सृष्टिरादी कथं भवेत्॥ २३
यज्ञानः के च राजानः के च सिद्धिं पाणं गताः।
एतत्सर्वं महाभाग कथयस्व यथाक्रमम्॥ २४

सूत उक्तव्य

व्यासप्रसादाजानामि पुराणानि तपोधनाः।
तं प्रणाम्य प्रवक्ष्यामि पुराणं नारसिंहकम्॥ २५
पाराशर्यं परमपुरुषं विशुद्देवैकयोनि
विद्यावनं विपुलमतिदं वेदवेदाङ्गवेद्यम्।
शशुच्छान्तं शमितविषयं शुद्धेत्तेजो विशालं
वेदव्यासं विगतशमलं सर्वदाहं नमामि॥ २६
नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे।
यस्य प्रसादाद्वक्ष्यामि वासुदेवकथामिमाम्॥ २७
सुनिणीतो महान् प्रश्नस्त्वया यः परिकीर्तिः।
विष्णुप्रसादेन विना वक्तुं केनापि शक्यते॥ २८
तथापि नरसिंहस्य प्रसादादेव तेऽप्युना।
प्रवक्ष्यामि महापुण्यं भारद्वाज भृण्युच्य मे॥ २९
भृण्यन्तु मुनयः सर्वे सशिव्यास्त्वयत् ये स्थिताः।
पुराणं नरसिंहस्य प्रवक्ष्यामि यथातथा॥ ३०
नारायणादिदं सर्वं समुत्पन्नं चराचरम्।
तेनैव पाल्यते सर्वं नरसिंहादिपूर्तिभिः॥ ३१
तथैव लीयते चान्ते हरी ज्योतिः स्वरूपिणि।
यथैव देवः सूजति तथा वक्ष्यामि तच्छृणु॥ ३२
पुराणानां हि सर्वेषामयं साधारणः स्मृतः।
श्लोको यस्तु मुने श्रुत्वा निःशोष्य त्वं ततः शृणु॥ ३३
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ ३४
आदिसर्गोऽनुसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव वक्ष्याम्यनुसमाप्तः॥ ३५

देवताओंको सृष्टि कैसे हुई? मतु, मन्वन्तर एवं विद्याधर आदिको सृष्टि किस प्रकार होती है? कौन-कौन राजा यज्ञ करनेवाले हुए हैं और किस-किसने परम उत्तम सिद्धि प्राप्त की है? महाभाग! ये सारी बातें आप क्रमशः बताइये॥ १५—२४॥

मृतजी बोले—तपोधनो! मैं जिन गुरुदेव व्यासजीके प्रसादमें पूराणोंका ज्ञान प्राप्त जार सका हूँ, उनकी भक्तिपूर्वक वन्दना करके आपलोगोंसे नरसिंहपुराणकी कथा कहना आगम्य करता हूँ। जो समस्त देवताओंके एकमात्र कारण और वेदों तथा उनके छहों अङ्गोंद्वारा जाननेयोग्य परम पुरुष विष्णुके स्वरूप हैं; जो विद्यावान्, विमल बुद्धिदाता, नित्य ज्ञान, विषयकामनाशूल्य और पापरहित हैं, उन विष्णु तेजोपय महात्मा पराशरनन्दन वेदव्यासजीको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। उन अभिल तेजस्वी भगवान् व्यासजी-जो नमस्कार है, जिनकी कृपासे मैं भगवान् वासुदेवकी इस कथाको कह सकूँगा। मुनिगण। आपलोगोंने भलीभीति विज्ञान करके मुझसे जो महान् प्रश्न पूछे हैं, उनका उत्तर भगवान् विष्णुको कृपा हुए विना कौन बतला सकता है? तथापि भरद्वाजजी। भगवान् नरसिंहकी कृपाके बलरूप ही आपके प्रश्नोंके उत्तरमें अत्यन्त पवित्र वारीसंहुपुराणकी कथा अगम्य करता है। आप ध्यानसे सुनें। अपने शिष्योंके साथ जो-जो मुनि यहाँ उपस्थित हैं, वे सब लोग भी सात्रभान होकर सुनें। मैं सभीको यथावत् रूपसे नरसिंह-पुराणकी कथा सुनाता हूँ॥ २५—३०॥

यह समस्त चराचर जगत् भगवान् नारायणसे ही उत्पन्न हुआ और वे ही नरसिंहादि रूपोंसे सबका पालन करते हैं। इसी प्रकार अन्तमें यह जगत् उन्हीं ज्योतिःस्वरूप भगवान् विष्णुमें लीन हो जाता है। भगवान् जिस प्रकार सृष्टि करते हैं, उसे मैं बतलाता हूँ, आप सुनें। सृष्टिको कथा पुराणोंमें ही विस्तारके साथ वर्णित है, अतः पुराणोंका संक्षेप बतानेके लिये यह एक श्लोक साधारणतया सभी पुराणोंमें कहा गया है। मुने! इस श्लोकको पहले सुनकर फिर सारी बातें सुनियेगा। यह श्लोक इस प्रकार है—सर्गं प्रतिसर्गं, वंशं, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन्हीं पाँच लक्षणोंसे युक्त 'पुराण' होता है। आदिसर्गं, अनुसर्गं, यंशं, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन सबका मैं क्रमशः संक्षिप्तरूपसे वर्णन करता हूँ॥ ३१—३५॥

आदिसर्गे महांसावन् कथयिष्यामि वै द्विजाः ।
यस्मादारभ्य देवानां राजां चरितमेव च ॥ ३६
ज्ञायते सरहस्यं च परमात्मा सनातनः ।
प्राक्सुषेः प्रलयादूर्ध्यं नासीत् किञ्चिद्दिजोत्तमः ॥ ३७
श्रद्धासंज्ञमभूदेकं ज्योतिष्यत्सवंकारणम् ।
नित्यं निरञ्जनं शाननं निर्गुणं नित्यनिर्गुणम् ॥ ३८
आनन्दसागरं स्वच्छं यं काङ्क्षन्ति पुमुक्षयः ।
सर्वज्ञं ज्ञानरूपत्वादनन्तमजग्मययम् ॥ ३९
सर्गकाले तु सप्त्यामे ज्ञात्वाऽसी ज्ञातुन्नयकः ।
अनन्तलीनं विकारं च तत्त्वाद्युपचक्रमे ॥ ४०
तस्मात् प्रधानमुद्भूतं तत्क्षण्यि महानभूत् ।
सात्त्विको राजसश्चैव तापसश्च किंवा महान् ॥ ४१
वैकारिकसौजन्यसश्च भूतादिश्चैव तामसः ।
त्रिविधोऽयमहंकारो महतत्त्वादजायत ॥ ४२
यथा प्रधानं हि महान् महता स तथाऽऽवृतः ।
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः ॥ ४३
सप्तर्जं शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दतन्मात्राम् ।
शब्दमात्रं तथाऽऽकाशं भूतादिः स समावृणोत् ॥ ४४
आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं सप्तर्जं ह ।
वलयानभवद्वायुसम्य स्पर्शो गुणो भृतः ॥ ४५
आकाशं शब्दतन्मात्रं स्पर्शमात्रं तथाऽऽवृणोत् ।
ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं सप्तर्जं ह ॥ ४६
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ।
स्पर्शमात्रं तु वै वायु रूपमात्रं समावृणोत् ॥ ४७
ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं सप्तर्जं ह ।
सम्भवन्ति ततोऽभ्यांसि रसाधारणि तानि तु ॥ ४८

द्विजगण ! आदिसर्ग महान् है, अतः पहले ये उसीका वर्णन करता है। वहाँसे सृष्टिका वर्णन आरम्भ करनेपर देवताओं और राजाओंके चरित्रोंका तथा सनातन परमात्माके तत्त्वका भी रहस्यसहित ज्ञान हो जाता है। द्वितीयम् ! सृष्टिके पहले महाप्रलय होनेके काल (परब्रह्मके मिशा) कुछ भी शेष नहीं था। उस समय एकमात्र 'ज्ञात्वा' नामक तत्त्व हो विद्यमान था, जो परम प्रकाशमय और समवक्ता कारण है। वह नित्य, निरञ्जन, शान्त, निर्गुण एवं ज्ञान हो दीपरहित है। मुमुक्षु पुरुष विशुद्ध आनन्द-महासागर परमेश्वरको अभिलाषा किया करते हैं। वह ज्ञानस्वरूप होनेके कारण सर्वज्ञ, अनन्त, अजन्मा और अज्ञय (अविकर्त्ता) है। सृष्टि-रचनाका समय आनेपर उसी ज्ञानोक्तर परब्रह्मने जगत्को अपनेमें हीन जानकर तुनः उसको मूर्छि आरम्भ की ॥ ३६—४८ ॥

उस द्वाहसे प्रधान (मूलप्रकृति) एव आविभाव तु भवा। प्रधानसे महतत्व प्रकट हुआ। सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे महतत्व तीन प्रकारका है। महतत्वसे वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिरूप (तामस)—इन तीन शेषोंसे युक्त अहंकार उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार प्रधानसे महतत्व अवृत है, उसी प्रकार महतत्वसे अहंकार भी व्याप्त है। तदनन्तर 'भूतादि' नामक तामस अहंकारने विकृत होकर शब्दतन्मात्राकी सृष्टि की और उससे 'शब्द' गुणवाला भाकारा उत्पन्न हुआ। तब उस भूतादिने शब्द गुणवाले आकाशको आवृत किया। आकाशने भी विकृत होकर स्पर्शतन्मात्राकी सृष्टि की। उससे वलयान् वायुको उत्पन्न हुई। वायुका गुण स्पर्श माना गया है। फिर शब्द गुणवाले अकाशने 'स्पर्श' गुणवाले वायुको आवृत किया। तत्पश्चात् वायुने विकृत होकर रूपतन्मात्राकी सृष्टि की। उससे ज्योतिर्मय अग्रिका प्रादुर्भाव हुआ। ज्योतिका गुण 'रूप' कहा गया है। फिर स्पर्शतन्मात्रारूप वायुने रूपतन्मात्रावाले तेजको आवृत किया। तब तेजने विकृत होकर रस-तन्मात्राकी सृष्टि की। उससे रस गुणवाला जल प्रकट हुआ।

रसमात्राणि चाभ्यांसि रूपमात्रं समावृणोत् ।
विकुर्वाणानि चाभ्यांसि गन्धमात्रं समर्जिरे ॥ ४१

तस्माज्ञाता मही चेदं सर्वभूतगुणाधिका ।
संघातो जायते तस्माज्ञस्य गन्धगुणो मतः ॥ ५०

तस्मिस्तस्मिस्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ।
तन्मात्राप्रथविशेषाणि विशेषाः क्रमशोपाः ॥ ५१

भूतन्मात्रसर्गोऽयमहंकारात् तापसात् ।
कीर्तिंतस्ते समासेन भरद्वाज भया ततः ॥ ५२

तैजसानीन्द्रियाणपाहृदेवा वैकारिका दश ।
एकादशौ मनस्तात्र कीर्तिं तत्र चिनत्वैः ॥ ५३

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चात्र पञ्च कर्मन्द्रियाणि च ।
तानि बक्ष्याधि तेषां च कर्माणि कुलपातन ॥ ५४

ध्रुवणे च दृशी जिह्वा नासिका त्वक् च पङ्खमी ।
शब्दादिज्ञानसिद्धपर्यं चुनिद्युक्तानि पञ्च चै ॥ ५५

पायूपस्थे हस्तपादी चाग् भरद्वाज पञ्चमी ।
विसर्गानन्दशिल्पी च गत्युक्ती कर्म तत्पृतम् ॥ ५६

आकाशायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा ।
शब्दादिभिर्गुणीर्विष्र संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः ॥ ५७

नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं चिना ।
नाशकनुवन् प्रजां स्वष्टप्रसमागम्य कुलत्रासः ॥ ५८

समेत्यान्योन्यसंयोगं परस्परसमाध्यात् ।
एकसंप्राप्तलक्ष्याश्च सम्पाप्त्यैक्यमशेषतः ॥ ५९

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च ।
महद्वादा विशेषान्तास्त्वप्तमुत्पादयनि ते ॥ ६०

इन गुणवाले तेजने इस गुणवाले जलको आश्रित किया ।
हच जलने विकारको प्राप्त होकर गन्ध-तन्मात्राको सृष्टि
हो । उससे यह पृथिवी उत्पन्न हुई जो आकाशादि सभी
भूतोंके गुणोंमें युक्त होनेके कारण उनसे अधिक
गुणवाली है । गन्धतन्मात्रारूप पार्थिवतत्वसे ही स्थूल
पिण्डको तत्पति होती है । पृथिवीका गुण 'गन्ध' है ।
उन-उन आकाशादि भूतोंमें तन्मात्राएँ हैं अर्थात् केवल
उनके गुण हाल आहट ही हैं । इसलिये ये तन्मात्रा
(गुण) सूक्ष्म ही कहे गये हैं । तन्मात्राएँ अविशेष कहो
गये हैं; क्योंकि उनमें 'अमुक तन्मात्रा अवकाशाकी है
और अमुक वायुकी' इसका ज्ञान करनेवाला कोई
विशेष भेद (अन्तर) नहीं होता । किंतु उन तन्मात्राओंसे
प्रकट हुए आकाशादि भूत क्रमशः विशेष (भेद)-युक्त
होते हैं । इसलिये उनकी 'विशेष' मत्ता है । भरद्वाजजी !
तन्मात्र अहंकारसे होनेवाली यह पञ्चभूतों और तन्मात्रओंको
मृष्टि देने आपसे धोक्हेमें कह दो ॥ ५१—५२ ॥

सृष्टि-तन्मात्र विचार करनेवाली विद्वानोंमें इन्द्रियोंको
तैजस अहंकारसे उत्पन्न जलसामा है और उनके अधिमात्री
इस देवताओं तथा गणराज्ये मनको तैकारिक अहंकारसे
उत्पन्न कहा है । युक्तको यात्रित करनेवाले भरद्वाजजी ! इन
इन्द्रियोंमें पौर्ण ज्ञानेन्द्रियों और पौर्ण कर्मन्द्रियों हैं । अप
में उन स्थूल इन्द्रियों तथा उनके कर्मोंका वर्णन कर रहा
है । काष, नैऋ, जिह्वा, नाक और पौर्यकी तथा—ये पौर्य
'ज्ञानेन्द्रियों' कही गयी हैं, जो शब्द आदि विषयोंका
ज्ञान करनेके लिये हैं । तथा पायु (गुडा), उपस्थ (लिङ्ग),
हाथ, पौर्य और जाहू-इन्द्रिय—ये 'कर्मन्द्रियों' कहलाती
हैं । विसर्ग (पात-लवण), आनन्द (मैनुषजनित सुख),
किण्य (हाथकी जलता), गमन और झोलना—ये ही प्रमाणः
इन कर्मन्द्रियोंके पौर्य कर्म कहे गये हैं ॥ ५३—५६ ॥

विष्र । आकाश, चापु, तेज, जल और पुरिषी—ये
पौर्य भूत क्रमसः उत्तम, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन
गुणोंमें उत्तरोत्तर युक्त हैं, अर्थात् आकाशमें पूर्णत्व शब्द
गुण है, चापुमें शब्द और स्पर्श ही दो गुण हैं, तेजमें रूप,
स्पर्श और रूप तीव्र गुण हैं, इसी प्रकार जलमें चार और
पृथिवीमें पौर्य गुण हैं । ये पञ्चभूत अलग-अलग भिन्न-
भिन्न प्रकारकी जीवितीसे युक्त हैं । अतः परस्पर पूर्णत्वया
मिले विना ये सृष्टि-रचना नहीं कर सके । तथा एक ही
संसारको उत्पन्न जलना जिनका साध्य है, उन महत्वसे
होकर पञ्चभूतपर्यन्त मध्यी विकारोंने पूर्णत्वे अधिष्ठित
होनेके कारण परस्पर मिलकर एक-दूसरेका आप्ना से

तत्कर्मेण विवृद्धं तु जलबुद्बुदवत् स्थितम्।
भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे वृहत्दुदकेशयम्॥ ६१

प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुजमम्।
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ विष्णुविंश्चेष्वरः प्रभुः॥ ६२

ब्रह्मस्वरूपमास्थाय स्वयमेव व्यवस्थितः।
मेरुरुल्ब्यमभूतस्य जरायुजा महीधराः।
गर्भोदकं सपुत्राश्च तस्याभूवन् महात्मनः॥ ६३

अद्विद्वीपममुद्गाश्च सञ्ज्योतिलोकसंग्रहः।
तस्मिन्नक्षेत्रभवत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ६४

रजोगुणयुतो देवः स्वयमेव हरिः परः।
ब्रह्मरूपं समास्थाय जगत्सृष्टी प्रवर्तते॥ ६५

सुईं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना।
नरसिंहादिरूपेण कृद्रुषेण संहरेत्॥ ६६

ब्रह्मोण रूपेण सुजत्यननो
जगत्समस्तं परिपातुभित्तुन्।

रामादिरूपे स तु गृह्ण पाति
भूत्याश कृष्णं प्रकरोति नाशम्॥ ६७

इति श्रीनरसिंहपुराणे 'सर्वांतरिक्षम्' नम्न प्रश्नोऽप्याकाः ६ १ ८
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणे 'सर्वांतरिक्षम्' विषयक इहात्मा अभ्यास तुष्टुत्तमः ६ १ ८

प्रश्नात् उत्तरात्

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा आदिको आयु और कालका स्वरूप

सूत उक्तः

ब्रह्मा भूत्या जगत्सृष्टी नरसिंहः प्रवर्तते।
यथा ते कद्यपिद्यापि भरद्वाजं नियोगमे॥ १

नारायणाख्यो भगवान् ब्रह्मलोकपितामहः।
उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वन् नित्योऽसाक्षुपचारतः॥ २

निजेन तस्य पानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम्।
तत्पराख्यं तदर्थं च परार्धमपिधीयते॥ ३

सर्वथा एकरूपताको प्रस छो, प्रधानतात्वके अनुप्राप्ते एक अण्डकी उत्पत्ति को। वह अण्ड क्रमशः बढ़ा होकर जलके ऊपर बुलबुलेके समान स्थित हुआ। महाबुद्धे समस्त भूमीसे प्रकट हो जलपर स्थित हुआ। वह महान् प्राकृत अण्ड ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ)-रूप भगवान् विष्णुका अस्त्वन उत्तम आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्तस्वरूप जगदीश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ही हिरण्यगर्भसे विराजमान हुए। उस समय शुमेह पवर्त तन महात्मा भगवान् हिरण्यगर्भका उत्तम (गर्भको ढैकनेवाली झिल्ली) था। अन्यान्य पर्वत जरायुज (गर्भाशय) से और संग्रह हो गर्भोन्नपके जल थे॥ ५७—६३॥

पर्वत, झाँप, समुद्र और यह-ताराओंसहित समस्त लोक तथा देवता, असूर और मनुष्यादि प्राणी यभी उस अण्डसे ही प्रकट हुए हैं। परमेश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ही रजोगुणसे पुष्ट ब्रह्माका स्वरूप धारणकर संसारको सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं। जबतक कल्पकी सृष्टि रहती है, तबतक वे ही नरसिंहादिरूपसे प्रत्येक युगमें अपने रूपे हुए इस जगत्की रक्षा करते हैं और कल्पानामें लद्धरूपसे इसका भोहर कर लेते हैं। भगवान् अनन्त स्वयं ही ब्रह्मरूपसे सम्पूर्ण जगत्की सुषिट करते हैं, फिर इसके पालनकाली इच्छासे रामादि अवतार भारणकर इसकी रक्षा करते हैं और अन्यमें लद्धरूप होकर समस्त जगत्का नाश कर देते हैं॥ ६४—६७॥

सूतजी कहते हैं—भरद्वाज ! भगवान् नरसिंह जिस प्रकार ब्रह्मा होकर जगत्की सुषिटेके कार्यमें प्रयत्न होते हैं, उसका मैं आपसे वर्णन करता हूँ, सुनिये। विद्वन् ! 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा निष्प—सनातन पुरुष है, तथापि वे 'उत्पन्न हुए हैं'—ऐसा उपचारसे कहा जाता है। उनके अपने परिमाणसे उनकी जायु सौ वर्षकी वर्तमानी जाती है। उस सौ वर्षका नाम 'पर' है। उसका आपा 'परार्ध' कहलाता है। निष्पाप

कालस्वरूपं विष्णोश्च यन्मयोक्तं तत्वाभ्यः।
तेन तस्य निबोध त्वं परिमाणोपपादनम्॥ ४
अन्वेषां चैव भूतानां चरणामचराङ्गु चे।
भूभूभृत्सागरादीनामशेषाणां च सत्तम्॥ ५
संख्याज्ञाने च ते वच्चि मनुष्याणां निबोध मे।
आष्टादश निमेषास्तु काहौंका परिकीर्तिम्॥ ६
काष्ठालिंशत्कला द्वेया कलालिंशम्भूर्तकम्।
त्रिंशत्संख्यैरहोरात्रे मुहूर्तप्रानुवं स्मृतम्॥ ७
अहोरात्राणि तावनि मासपक्षद्वयात्मकः।
तैः पद्मभिरयनं मासेत्तुऽयने दक्षिणोन्नरे॥ ८
अथनं दक्षिणां रात्रिदेवानामुत्तरं दिनम्।
अयनद्वितयं वर्षं मत्यानामिह कीर्तिम्॥ ९
नृणां मासः पितृणां तु अहोरात्रमुदाहतम्।
वस्त्रादीनामहोरात्रे मानुषो वत्त्वरः स्मृतः॥ १०
दिव्यवैर्यसहस्रैस्तु युगं ब्रेतादिसंज्ञितम्।
चतुर्दुर्गं द्वादशभिस्तद्विभागं नियोध मे॥ ११
चत्वारि प्रीणि ह्यैकं कृतादिपु यथाक्रमम्।
दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः॥ १२
तत्त्वमाणीः शतैः संध्या पूर्वा तत्र विधीयते।
संध्यांशकक्ष तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि सः॥ १३
संध्यासंध्यांशयोर्घ्ये यः कालो वर्तते द्विज।
युगार्घ्यः स तु विज्ञेयः कृतब्रेतादिसंज्ञकः॥ १४
कृतं ब्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्दुर्गम्।
प्रोच्यते तत्सहस्रं तु ब्रह्मणो दिवसं द्विज॥ १५
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् मनवस्तु चतुर्दश।
भवन्ति परिमाणं च तेषां कालकृतं शृणु॥ १६
समर्थयस्तु शकोऽथ मनुस्तत्सूनवोऽपि ये।
एककालं हि सृज्यन्ते संहित्यन्ते च पूर्ववत्॥ १७
चतुर्दुर्गानां संख्या च साधिका ह्येकसमतिः।
मन्वन्तरं मनोः कालः शकादीनामपि द्विज॥ १८

महर्ये। साधुशिरोमणे! मैंने तुमसे भगवान् विष्णुके जिस कालस्वरूपका वर्णन किया था, उसीके द्वारा उस ब्रह्माकी तथा दूसरे भी जो पृथ्वी, पर्वत और समुद्र आदि पदार्थ एवं चरणघर जीव हैं, उनकी आयुका परिमाण नियत किया जाता है। अब मैं आपसे मनुष्योंकी 'काल-गणना' का ज्ञान भरा रहा हूँ, सुनिये॥ १—५॥१॥

ब्रह्मारु निमेषोंकी एक 'काष्ठा' कही गयी है, तीस काष्ठाओंकी एक 'कला' समझनी चाहिये तथा तीस कलाओंका एक 'मुहूर्त' होता है। तीस मुहूर्तोंका एक मासव 'दिन-रात' माना गया है। उतने ही (तीस ही) दिन-रात मिलकर एक 'मास' होता है। इसमें दो पक्ष होते हैं। दो महीनोंका एक 'अयन' होता है। अयन दो हैं—'दक्षिणायन' और 'उत्तरायण'। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण दिन। दो अयन मिलकर मनुष्योंका एक 'वर्ष' कहा गया है। मनुष्योंका एक मास पितरोंका एक दिन-रात बताया गया है और मनुष्योंका एक वर्ष चम्पु आदि देवताओंका एक दिन-रात कहा गया है। देवताओंके बारह हजार वर्षोंका ब्रेता आदि नामक चतुर्दुर्ग होता है। उसका विभाग आपलोग मुझसे समझ रहे॥ ६—११॥

पुराण-तत्त्ववेदाओंने कृत आदि सुग्रीवोंका परिमाण क्रमाः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष चतुर्दशा है। ब्रह्मन्! प्रत्येक युगके पूर्व उतने ही सी वर्षोंकी 'संध्या' कही गयी है और युगके पीछे उतने ही परिमाणवाले 'संध्यांश' होते हैं। विष्र। संध्या और संध्यांशके बीचका जो काल है, उसे सत्ययुग और ब्रेता अंतरि नामोंसे प्रसिद्ध युग समझना चाहिये। 'सत्ययुग', 'ब्रेता', 'द्वापर' और 'कलि'—ये चार युग मिलकर 'चतुर्दुर्ग' कहलाते हैं। द्विज! एक हजार चतुर्दुर्ग मिलकर 'ब्रह्माका एक दिन' होता है। ब्रह्मन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। उनका कालकृत परिमाण सुनिये। सत्तरिं, इन् मनु और मनु-पुत्र—ये पूर्व काल्पानुसार एक ही समय उत्पन्न किये जाते हैं तथा इनका संहार भी एक ही साथ होता है। ब्रह्मन्! इकहतर चतुर्दुर्गसे कुछ अधिक काल एक 'मन्वन्तर' कहलाता है। वहाँ मनु तथा इन्द्रादि देवोंका काल है।

आष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतः ।
 द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यथिकानि तु ॥ १९
 प्रिंशत्कोट्यस्तु सम्पूर्णः संख्यातः संख्यया द्विज ।
 सप्तष्ठिस्तथान्यानि नियुतानि महामुने ॥ २०
 विंशतिष्ठ सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना ।
 मन्वन्तरस्य संख्येयं मानुपैर्वत्सर्द्विज ॥ २१
 चतुर्दशगुणो होष कालो ब्राह्मणः स्मृतम् ।
 विश्वस्यादौ सुपनसा सुष्टु देवास्तथा पितृन् ॥ २२
 गच्छवान् गक्षसान् यज्ञान् पिशाचान् गुह्यकंसतथा ।
 ग्रहीन् विद्याधरांश्चैव मनुष्यांश्च पश्चूस्तथा ॥ २३
 पश्चिणः स्थावरांश्चैव पिपीलिकभुजंगमान् ।
 चातुर्बण्यं तथा सुष्टु नियुज्याख्यरक्षणिः ॥ २४
 पुनर्दिनान्ते ब्रैलोक्यमुपर्संहृत्य स प्रभुः ।
 शेते चानन्तशयने तावन्तीं रात्रिमध्ययः ॥ २५
 तस्यान्ते भूम्भूम्भान्कल्पो ज्ञातु इत्यभिविष्टुतः ।
 यस्मिन् प्रत्यावतारोऽभूम्भूम्भान्ते च महोदधेः ॥ २६
 तद्वद्वाराहकल्पक्ष तृतीयः परिकल्पितः ।
 यत्र विष्णुः स्वयं प्रीत्या वाताह वपुराधितः ।
 उद्गतुं वसुधां देवीं स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ २७
 सुष्टु जगद्व्योमचराप्रभेयः ।
 प्रजाश्च सुष्टु सकलास्तथेषाः ।
 नैमित्तिकाख्ये प्रलये समस्ते
 संहृत्य शेते हरिरादिदेवः ॥ २८

इति श्रीनरसिंहगुरुणे नैमित्तिकाख्ये ॥ २८
 इस प्रकार श्रीनरसिंहगुरुणमें 'सुहिरनकाविदक' दृश्या अस्त्राय पृष्ठ हुआ ॥ २८

इस प्रकार दिव्य वर्ष-गणनाके अनुसार यह मन्वन्तर आठ लाख वर्षान् हजार वर्षोंका समय कहा गया है। महामुने! द्विजवर! मानवोंय वर्ष-गणनाके अनुसार पूरे तीस करोड़, सरसठ लाख, बीस हजार वर्षोंका काल एक मन्वन्तरका परिमाण है, इससे अधिक नहीं ॥ १२—२१ ॥

इस कालका चौदह गुना ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्माजीने विश्व-सृष्टिके आदिकालमें प्रसन्न मनसे देवताओं तथा पितरोंको सुहिं करके गन्धर्व, राजस, यक्ष, पिशाच, गुह्यक, ऋषि, विद्याधर, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर (वृक्ष, पर्वत आदि), पिंडलिका (चौंटी) और शांपोंकी रूपना को है। फिर वारों वर्षोंको सुहिं करके वे ढन्हे यज्ञकर्ममें विषुक करते हैं। तापश्चात् दिन ब्रीतनेपर वे अविनाशी प्रभु विभूतवका उपसंहार करके दिनके ही बराबर परिमाणकाली राशिमें देवतागकी शत्र्यापर सोते हैं। उस राशिके ब्रीतनेपर 'ब्राह्म' नामक विश्वात महाकल्प हुआ, जिसमें भगवान् का मत्प्रवाचनात और समुद्र-मन्दिर हुआ। इस ज्ञात्य कल्पके ही समान तीसरा 'ब्राह्म-कल्प' हुआ, जिसमें कि भगवती वसुंधरा (पृथ्वी)-का उद्घार करनेके लिये साक्षात् भगवान् विष्णुने प्रसन्नता-पूर्वक वाराहकल्प घारण किया। उस समय महर्षिण उनकी सूति करते हैं। स्वदलचर और वाकाशाचारी जीवोंके हारा जिसको इश्वराको जान लेना नितान्त असम्भव है, वे अदिवैत भगवान् विष्णु समस्त प्रजाओंको सृष्टि कर 'नैमित्तिक प्रलय' में सक्षमा नहार करके जन्मन करते हैं ॥ २२—२८ ॥

तीसरा अध्याय

ब्रह्माजीहारा लोकरचना और नी प्रकारकी सुष्टियोंका निरूपण

सूत उक्ताच
 तत्र सुप्रस्य देवस्य नाभीं पद्ममभूमहन् ।
 तस्मिन् पर्ये महाभाग वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १
 ब्रह्मोत्पन्नः स तेनोक्तः प्रजां सूज महामते ।
 एवमुक्त्वा तिरोभावं गतो नारायणः प्रभुः ॥ २

सूतजी बोले—महाभाग! नैमित्तिक प्रलयकालमें सोये हुए भगवान् नारायणकी नाभिमें एक महान् कमल उत्पन्न हुआ। उद्धोसे वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। तब उनसे भगवान् नारायणने कहा—‘महामते! तुम प्रजाकी सृष्टि करो’ और यह कहकर वे अन्तर्भाव

तथेत्युक्त्वा स तं देवं विष्णुं ब्रह्माथ चिन्नयन्।
आस्ते किंचिज्जगद्गृहीजं नाश्यगच्छत किंचन॥ ३

तावत्तस्य महान् रोधो ब्रह्मणोऽभून्महात्मनः।
ततो बालः समुत्पत्तस्तस्याङ्के रोषसम्भवः॥ ४

स रुदन्वारितस्तेन ब्रह्मणा व्यक्तमूर्तिना।
नाम मे देहि चेत्युक्तस्तस्य रुद्रेत्यसी ददी॥ ५

तेनासौ विसृजस्वेति ग्रोक्तो लोकमिमं पुनः।
अशक्तस्तत्र सलिले प्रमज्ज तपसाऽऽहतः॥ ६

तस्मिन् सलिलये तु पुनरन्यं प्रजापतिः।
ब्रह्मा समर्ज भूतेषो दक्षिणाङ्कुष्ठतोऽपरम्॥ ७

दक्षं वापि ततोऽङ्कुष्ठे तस्य पर्वी व्यजायत।
स तस्यां जनयामास मनुं स्वायम्भूवं प्रभुः॥ ८

तस्मात् सम्भाविता सुष्टि: प्रजानां ब्रह्मणा तदा।
इत्येवं कथिता सुष्टिर्पया ते मुनिसत्तम।
सुजतो जगतीं तस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ९

प्राणत्र उक्तव्य

संक्षेपेण तदाऽऽख्यातां त्वया मे लोमहर्षण।
विस्तरेण पुनर्दृष्टि आदिसर्गं महामते॥ १०

सूत उक्तव्य

तथैव कल्पावसाने निशासुसोत्थितः प्रभुः।
सत्त्वोद्दिक्षस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत॥ ११

नारायणः परोऽचिन्त्यः पूर्वेषामपि पूर्वजः।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्वसम्भवः॥ १२

इमं चोदाहरन्त्यत्र इलोकं नारायणं प्रति।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवात्मकम्॥ १३

आपो नारा इति ग्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अथनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ १४

हो गये। उन भगवान् विष्णुसे 'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी सोचने लगे—'क्या जगत्की सृष्टिका कोई बीज है?' परंतु वहुत सोचनेपर भी उन्हें किसी वीजका पता न लगा। तब महात्मा ब्रह्माजीको महान् रोष हुआ। रोष होते ही उनकी गोदमें एक बालक प्रकट हो गया, जो उनके रोषसे ही प्रादुर्भूत हुआ था। उस बालकको रोते देख स्वूल शरीरधारी ब्रह्माजीने उसे रोनेसे मना किया। फिर उसके यह कहनेपर कि 'मेरा नाम रुद्र दीजिये', उन्होंने उसका 'रुद्र' नाम रखा दिया॥ १—५॥

इसके बाद ब्रह्माजीने उससे कहा कि 'तुम इस लोकको सृष्टि करो—यह कहनेपर उस कार्यमें असमर्थ होनेके कारण वह सादर तपस्याके लिये जलमें निपान हो गया। उसके जलमें निपान हो जानेपर भूतनाथ प्रजापति ब्रह्माजीने फिर अपने दाहिने औंगूठसे 'दक्ष' नामक एक दूसरे पुत्रको डाप्त्रम किया, तत्प्रकाश आपें औंगूठसे उसको पक्षी प्रकट हुई। प्रभु दक्षने उस नक्षीसे स्वायम्भूव मनुको जन्म दिया। तब ब्रह्माजीने उसी मनुसे प्रजाओंको सृष्टि ब्रह्मणी। मुनिवर। वसुधारीकी सृष्टि करनेवाले उस विधाताकी सृष्टि-रचनाका यह ऊपर मैंने आपसे बार्णन किया। अब आप और क्या सुनना चाहते ही?॥ ६—९॥

भरद्वाजजी बोले—लोमहर्षणजी! आपने यह सब वृत्तान्त मुझसे पहले संक्षेपसे कहा है। महामते! अब आप विश्वतामें साथ आदिसर्गका वर्णन कीजिये॥ १०॥

सूतवी बोले—पिछले कल्पका अन्त होनेपर रात्रिमें सोकर उठनेके बाद सत्त्वगुणके ड्रेकसे युक्त (नारायणस्वरूप) भगवान् ब्रह्माजीने उस समय सम्पूर्ण लोकको शून्यमय देखा। वे ब्रह्मस्वरूपी भगवान् नारायण सबसे परे हैं, अचिन्त्य हैं, पूर्वजोंके भी पूर्वज हैं, अनादि हैं और सबकी उत्पत्तिके कारण हैं। इस जगत्की उत्पत्तिके कारणभूत उन ब्रह्मस्वरूप नारायणदेवके विषयमें पूरणवेत्ता विद्वान् यह स्तोक कहते हैं—'जल भगवान् नर—पुरुषोत्तमसे उत्पन्न है, इसलिये 'नार' कहलाता है। नार (जल) ही उनका प्रथम अयन (आदि शत्रन-स्थान) है, इसालिये वे भगवान् 'नारायण' कहे जाते हैं।'

सुहिं चिनयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा।
अबुद्धिपूर्वकं तस्य प्रादुर्भूतं तमसतदा ॥ १५

तमो योहो महामोहस्तामित्रो ह्रास्यसंज्ञितः।
अविद्या पञ्चपर्वेषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ १६

पञ्चधाधिष्ठितः सर्गो व्यायतोऽप्रतिबोध्यान्।
बहिरन्तोऽप्रकाशक्षं संवृतात्मा नग्रात्मकः।

मुख्यसर्गः स विज्ञेयः सर्गसिद्धिविवक्षणीः ॥ १७

यत्पुनर्व्यायितस्तस्य ब्रह्मणः समपदात्।
तिर्यक्स्त्रोतस्तस्तस्तम्पात् तिर्यग्योनिसतः स्मृतः ॥ १८

पश्चादयस्ते विष्ण्याता उत्पच्छाहिणश्च ये।
तमप्यसाधकं मत्वा तिर्यग्योनि चतुर्पुरुषः ॥ १९

ऊर्ध्वस्त्रोतास्तुतीयस्तु सात्त्विकः समवर्तते।
तदा तुष्टोऽन्यसर्गं च चिनयामास वै प्रभुः ॥ २०

ततश्चिनयतस्तस्य सर्गवृद्धिं प्रजापते।
अर्वाक्स्त्रोताः समुत्पन्ना मनुष्याः साधका मताः ॥ २१

ते च प्रकाशबहुलास्तमोयुक्ता रजोऽधिकाः।
तस्माते दुःखबहुला भूयो भूयक्षं कारिणः ॥ २२

एते ते कथिताः सर्गं बहवो मुनिसत्तम।
प्रथमो महतः सर्गस्तन्मात्राणां द्वितीयकः ॥ २३

वैकारिकस्तुतीयस्तु सर्गं ऐन्द्रियकः स्मृतः।
मुख्यसर्गं शतुर्थस्तु मुख्या वै स्थानरा: स्मृताः ॥ २४

तिर्यक्स्त्रोतश्च यः प्रोक्तस्तिर्यग्योनिः स उच्चते।
ततोऽर्धस्त्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ २५

ततोऽर्वाक्स्त्रोतसां सर्गः सप्तमो मानुषः स्मृतः।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विको च उदाहृतः ॥ २६

इति प्रकार कल्पके आदिमें पूर्ववत् सुहिंका चिनतन करते
तमप ब्रह्माजीके बिना जाने ही असावभावता हो जानेके
कारण तमोगुणी सुहिंका प्रादुर्भावं हुआ ॥ १५—१५ ॥

इस समय उन ब्रह्मामासे तम (अज्ञान), मोह, महामोह
(भोगेत्वा), तापित (त्रोष) और अन्यतामित्व (अधिनिवेद)
नामक पञ्चपर्वा (पाँच प्रकाशको) अविद्या उत्पत्त हुई । फिर
सुहिंके लिये व्याय करते हुए ब्रह्माजीसे वृक्ष, गुल्म, लता,
बीहड़ इत्यं लक्षणय चौंच प्रकाशक स्थावरात्मक सर्गं हुआ,
जो बाहर-भीतरसे प्रकाशर्त्तिह, अविद्यासे अवृत् एव
ज्ञानशून्य था । सर्गसिद्धिये जाता विद्वान् इसे 'मुख्य सर्गं'
समझो । (क्योंकि अचल वस्तुओंको मुख्य कहा गया है ।)
फिर सुहिंके लिये भ्रह्म उत्तरेष्व उन ब्रह्माजीसे तिर्यक्-स्त्रोत
नामक सहि हुई । तिर्यक् चलनेके कारण उसको 'तिर्यक्'
संक्षे है । उससे उत्पत्त हुआ सर्गं 'तिर्यग्योनि' कहा जाता है ।
ये विद्यात उन आदि जो कुमारोंसे चलनेवाले हैं, हिंस्याद्योनि
कहलाते हैं । उन्मुख्य ब्रह्माजीने उस तिर्यक्स्त्रोत सर्गको
पुरुषार्थका असाधक मानकर जब पुनः सुहिंके लिये चिनतन
किया, तब उसे तृतीय 'ऊर्ध्वस्त्रोता' नामक सर्गं हुआ । यह
सत्त्वगुणसे गुरु भा (यही 'देवसर्गं' है) । तब भ्रह्मानन्दे
प्रसन्न होकर पुनः अप्य सुहिंके लिये चिनतन किया । तदनन्दर
सर्गोंके वृद्धिके विषयमें चिनतन करते हुए उन प्रजापतिसे
'अर्वाक्स्त्रोता' नामक सर्गकी उत्पत्ति हुई । इसीके अन्तर्गत
भूयक है, जो युक्त्यार्थके साधक माने गये हैं । इनमें प्रकाश
(सत्त्वगुण), और रज—इन दो गुणोंकी अधिकता है और
तमोगुण भी है । इसलिये ये अधिकतर दुःखी और आत्माधिक
कियाजील होते हैं ॥ १६—२२ ॥

मुनिवेष्ट । इन द्वातु—से सर्गोंका यैने आपसे वर्णन किया
है । इनमें 'महसत्तम' को पहला सर्गं कहा गया है । दूसरा सर्गं
'तत्त्वात्मजों' का है । तीसरा वैकारिक सर्गं है, जो 'ऐन्द्रिय'
(ऐन्द्रियसम्बन्धी) कहलाता है । चौथा 'मुख्य' सर्गं है ।
स्थानर (वृक्ष, तृण, लता आदि) ही 'मुख्य' कहे गये हैं ।
तिर्यक्स्त्रोता नामक जो पौच्छां सर्गं कहा गया है, वह
'तिर्यग्योनि' कहलाता है । इसके बाद छठा 'उर्ध्वस्त्रोतभीं' का
सर्गं है । उसे 'देवसर्गं' कहा जाता है । फिर सातवीं
अर्वाक्स्त्रोतभीं सर्गं है, उसे 'मानव-सर्गं' कहते हैं ।
आठवीं 'अनुग्रह-सर्गं' है, जिसे 'सात्त्विक' कहा गया है ।

नवमो रुद्रसर्गस्तु नव सर्गः प्रजापतेः।
पञ्चांते वैकृता: सर्गः प्राकृतस्ते त्रयः स्मृताः।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः॥ २७

प्राकृता वैकृतश्चैव जगतो मूलहेतवः।
सुजतो द्वाहणः सुष्टिसुत्पत्रा ये मयेरिताः॥ २८
तं तं विकारं च परं परेष्ठो
मायाभिधिष्ठाय सुजत्यनन्तः।
अव्यक्तसंपी परमात्मसंज्ञः
सम्प्रेर्वमाणो निखिलात्मवेदः॥ २९

इति श्रीपरम्पराग्रन्थे सुहितरचन्द्रकाण्डेन्द्रप्रतिपोद्धायः ४ ३ ४
इति प्रकार ब्रह्मसंहितापुराणमें 'सुहितरचन्द्रका प्रकार' नामक हीनभाग पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

नवो 'कदम्बस्तु' है—ये ही नौ सर्ग प्रजापतिसे उत्पन्न हुए हैं।
इनमें पहलेके तीन 'प्राकृत सर्ग' कहे गये हैं। उसके बादवाले पाँच 'वैकृत सर्ग' हैं और नवाँ जो 'कौमार सर्ग' हैं, यह प्राकृत और वैकृत भी हैं। इस प्रकार सुष्टि-रघुनामें प्रवृत्त हुए द्वाहाजीसे उत्पन्न हुए, जो जगत्की उत्पत्तिके मूलकारण प्राकृत और वैकृत सर्ग हैं, उनका मैत्रे वर्णन किया। सबके आत्मसंपर्कसे जाननेयोग्य अव्यक्तस्त्वरूप परमात्मा परमेश्वर भगवान् अनन्तदेव अपनी मायाका आत्रय लेकर प्रेरित होते हुए—से उन-उन विकारोंकी सुष्टि करते हैं ॥ २८—२९॥

प्राप्ति के विषय

चौथा अध्याय

अनुसर्गके ऋषि

प्रथम उक्त

नवधा सुष्टिरुत्पत्रा द्वाहणोऽव्यक्तजन्मनः।
कथं सा वयुधे सून एतत्कथय मेऽधुना॥ १
गृह उक्तव

प्रथमं द्वाहणा सुष्टु मरीच्यादय एव च।
मरीचिरविश्व तथा अङ्गिराः पुलः कृतुः॥ २
पुलस्त्वश्च महातेजाः प्रचेता भृगुरेव च।
नारदो दशमश्चैव वसिष्ठश्च महामतिः॥ ३
सनकादयो नियुताख्ये ते च धर्मे नियोजिताः।
प्रवृत्ताख्ये मरीच्यादा मुख्त्वैकं नारदं मुनिम्॥ ४

योऽसी प्रजापतिस्त्वन्यो दक्षनामाहुस्मभ्यः।
तस्य दीहित्रयंशेन जगदेतत्त्वराचरम्॥ ५
देवाश्च दानवाश्चैव गच्छवोरगपक्षिणः।
सर्वे दक्षस्य कन्यासु जाताः परमधार्मिकाः॥ ६
चतुर्विधानि भूतानि हुचराणि चराणि च।
वृद्धिंगतानि तान्येवमनुसर्गोद्वानि तु॥ ७
अनुसर्गस्य कलारो मरीच्यादा महर्षयः।
वसिष्ठान्ता महाभाग द्वाहणो मानसोद्वाः॥ ८

प्रद्वाजी ओले—सूतजी! अव्यक्त जन्म द्वाहाजीसे जो नौ प्रकारकी सुष्टि हुई, उसका विस्तार किस प्रकार हुआ? यहाँ इस समय आप हमें बतलाइये ॥ १ ॥

सूतजी ओले—द्वाहाजीने पहले जिन मरीचि आदि अधिष्ठोंको उत्पन्न किया, उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि, अकि, अङ्गिरा, पुलह, कृतु, महातेजस्यो चुलस्य, प्रचेता, भृगु, नारद और दसवें महाबुद्धिमान् वरिष्ठ हैं। सनक आदि अधिष्ठितिपर्यामें तत्पर हुए और एकमात्र नारद मुनिको छोड़कर शेष सभी मरीचि आदि मुनि प्रवृत्तिपर्यामें निपुण हुए ॥ २—४ ॥

द्वाहाजीके दायें अङ्गसे उत्पन्न जो 'दक्ष' नामक दूसरे प्रजापति कहे गये हैं, उनके दीहित्रोंके बंशमें यह चराचर जगत् व्याप्त है। देव, दानव, गच्छव, डरग (सर्व) और पक्षे—ये सभी, जो सब-के-सब बड़े धर्मात्मा थे, दक्षकी कन्याओंसे उत्पन्न हुए। चार प्रकारके चराचर प्राणों अनुसर्गमें उत्पन्न होकर वृद्धिको प्राप्त हुए। महाभाग! पूर्वोक्त मरीचिसे लेकर वसिष्ठतक सभी श्रीऋग्वेदीको मानस संलग्न हैं। ये सब अनुसर्गके अनु हैं।

सर्गं तु भूतानि धियश्च खानि
ख्यातानि सर्वं सृजते महात्मा ।
स एव पश्चाच्चतुरास्यरूपी
मुनिस्वरूपी च सृजत्यनन्तः ॥ ९ ॥

इति क्रीतरसिंहपुण्यते चतुर्वोक्तव्यः ॥ ४८ ॥
इस प्रकार क्रीतरसिंहपुण्यते चौथा अध्याय पृष्ठा ४८ है ॥ ४८ ॥

पाँचवाँ अध्याय

रुद्र आदि सर्गों और अनुसर्गोंका वर्णन; दक्ष प्रजापतिकी कल्प्याओंकी संततिका विस्तार

भगवान् उक्तव्य

रुद्रसर्गं तु मे शृङ्खि विस्तरेण महाप्रते ।
पुनः सर्वं मरीच्याद्या: ममृजुस्ते कर्त्तं पुनः ॥ १ ॥
मित्रावरुणपुत्रत्वं वसिष्ठस्य कर्त्तं भवेत् ।
ब्रह्मणो मनसः पूर्वमृत्युन्नस्य महाप्रते ॥ २ ॥

तृतीय उक्तव्य

रुद्रसुष्टिं प्रवक्ष्यामि तत्सर्गाश्रीव सत्तम ।
प्रतिसर्गं मुनीनां तु विस्तराद्वदतः श्रणु ॥ ३ ॥
कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रव्यायतस्ततः ।
प्रादुरासीत् प्रधोरक्षे कुमारो नीललोहितः ॥ ४ ॥
अर्थनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान् ।
तेजसा भासयन् सर्वा दिशश्च प्रदिशश्च सः ॥ ५ ॥
तं दृष्ट्वा तेजसा दीर्घं प्रत्युथाच प्रजापतिः ।
विभजात्मानमद्य त्वं मम वाक्यान्महाप्रते ॥ ६ ॥
इत्युक्तो ब्रह्मणा विग्रह रुद्रसोने प्रतापवान् ।
स्त्रीभावं पुरुषत्वं च पुथक् पुथग्याकरोत् ॥ ७ ॥
ब्रिभेद पुरुषत्वं च दशधा चैकधा च सः ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि श्रणु मे द्विजसत्तम ॥ ८ ॥
अजैकपादद्विरुद्ध्यः कपाली रुद्र एव च ।
हरश बहुरूपश्च ऋष्यवक्ष्यापराजितः ॥ ९ ॥
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपटी रैवतस्तथा ।
एकादशीते कथिता रुद्रास्त्रभुवनेश्वरा ॥ १० ॥

सां अर्थात् आदिसुष्टिमें महात्मा भगवान् नारायण पौच्य महाभूत, त्रुद्धि तथा पूर्वोक्त इन्द्रियवर्ण—इन सबको उत्पत्ति करते हैं। इसके पश्चात् (अनुसर्गकालमें) वे अनन्दादेव स्वयं ही चतुर्मुख ब्रह्मा और मरीचि आदि मुनियोंके रूपसे प्रकट हो जगत्की सृष्टि करते हैं। ५—१॥

इति क्रीतरसिंहपुण्यते चतुर्वोक्तव्यः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार क्रीतरसिंहपुण्यते चौथा अध्याय पृष्ठा ४९ है ॥ ४९ ॥

श्रीभगद्वाजजी बोले—महाप्रते! अब मुझसे 'रुद्रसर्ग' का विस्तारपूर्वक वर्णन कोजिये तथा यह भी बताइये कि मरीचि आदि ऋषियोंने पहले किस प्रकार सृष्टि की? ब्रह्माद्विदग्मान् सूत! वसिष्ठजी तो पहले ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए थे; किर वे मित्रावरुणके पुत्र कैसे हो गये? ॥ १-२ ॥

मूलजी बोले—माधुशिरोमणे! आपके प्रसानुसार मैं अब रुद्र सुष्टिका तथा उसमें होनेवाले सर्गोंका वर्णन करूँगा, माथ ही मुनियोंद्वारा सम्पादित प्रतिसर्गं (अनुसर्गं) को भी मैं विस्तारके साथ बताऊँगा; आपलोग ध्यानमें मूर्ने। कल्पके आदिमें प्रभु ब्रह्माजी अपने ही समान वशिष्ठजी के पुत्र होनेका चिन्तन कर रहे थे। उस समय उनकी गोदमें एक नीललोहित ब्रह्मका चालक प्रकट हुआ। उसका आभा झरीर स्त्रीका और आधा पुरुषका था। वह प्रचण्ड एवं विशालकाय था और अपने तेजसे दिशाओं तथा अवान्तर दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। उसे तेजसे देवीप्रयामन देख प्रजापतिने कहा—'महाप्रते! इस समय मेरे कहनेसे तुम अपने जीरीके दो भाग कर लो।' विष्र! ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर प्रतापो रुद्धने अपने स्त्रीरूप और पुरुषरूपको अलग-अलग कर लिया। द्विजश्रेष्ठ! किर पुरुषरूपको उन्होंने ग्यारह स्वरूपोंमें विभक्त किया; मैं उन सबके नाम ब्रह्माजी हूं, सुनें। अजैकपाद, अद्विरुद्ध्य, कपाली, हर, चहुरूप, ऋष्यवक्ष, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपटी और रैवत—ये 'ग्यारह रुद्र' कहे गये हैं, जो तीनों भूतनामके स्वामी हैं। पुरुषकी भौति स्त्रीरूपके भी रुद्धने ग्यारह

स्वीकृत्य चैव तथा रुद्रो विभेद दशर्थकथा ।
 उपैव वहुरूपेण पल्ली संब व्यवस्थिता ॥ ११
 तपः कृत्वा जले योरमुनीर्णः स यदा पुरा ।
 तदा स सृष्टवान् देवो रुद्रस्त्रप्र प्रतापवान् ॥ १२
 तपोबलेन विप्रेन्द्र भूतानि विविधानि च ।
 पिशाचान् राक्षसांश्चैव सिंहोदृपकराननान् ॥ १३
 वेतालप्रमुखान् भूतानन्यांश्चैव सहस्रशः ।
 विनायकानामुग्राणां प्रिंशत्कोट्याप्यमेव च ॥ १४
 अन्यकार्ये समुद्दिश्य सृष्टवान् स्फन्दयेव च ।
 एवं प्रकारो रुद्रोऽसी मया ते कीर्तिंतः प्रभुः ॥ १५
 अनुसारी परीच्यादेः कथयामि निरोध मे ।
 देवादिस्थावरान्ताश्च प्रजाः सृष्टाः स्वयम्भूता ॥ १६
 यदास्य च प्रजाः सर्वा न व्यवर्धन्त धीमतः ।
 तदा मानसपुत्रान् स मदृशानामनोऽसुजत् ॥ १७
 परीचिमव्यहृतिरसं पुलस्त्वं पुलह करुप् ।
 प्रचेतसं वस्त्रिषु च भृगुं चैव महामतिम् ॥ १८
 नव ब्रह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
 अग्रिश्च पितरश्चैव ब्रह्मपुत्रौ तु मानसी ॥ १९
 सुष्ठिकाले महाभागी ब्रह्मन् स्वायम्भूतोदत्ती ।
 शतसूर्यां च सृष्टा तु कन्यां स मनवे ददी ॥ २०
 तस्माच्च पुरुषादेवी शतरूपा लघायत ।
 प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूतिं चैव कन्यकाम् ॥ २१
 ददी प्रसूतिं दक्षाय मनुः स्वायम्भूतः सुताम् ।
 प्रसूत्यां च तदा दक्षश्चतुर्विंशतिकं तथा ॥ २२
 सहस्री कन्यकास्तासां शृणु नामानि येऽथुना ।
 श्रद्धा लक्ष्मीधृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्घेया तथा किया ॥ २३
 शुद्धिर्लंजा वपुः शानिः सिद्धिः कौर्तिंवयोदशी ।
 अपत्यार्थं प्रजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ॥ २४
 श्रद्धादीनां तु पत्रीनां जाताः कामादयः सुताः ।
 धर्मस्य पुत्रपौत्रादीर्धर्मवंशो विवर्धितः ॥ २५

विभाग किये। भगवती उमा ही अनेक रूप धारण कर इन सबको पत्ती है ॥ ३—११ ॥

विप्रेन्द्र! पूर्वकलामें प्रकाशी रुद्रदेव जलमें घोर तपस्या करके जब बाहर निकाले, तब अपने तपोबलसे उन्होंने वहाँ जाना प्रकारके भूतोंकी सृष्टि की। सिंह, कैट और मगरके समान मूँहचाले पिशाचों, राक्षसों तथा वेताल आदि अन्य सहस्रों भूतोंको उत्पन्न किया। मादे सौंस करोड़ उष लक्ष्मीवाले विनायकगणोंकी सृष्टि की तथा दूसरे कार्योंके उद्देश्यसे सकन्दको उत्पन्न किया। इस प्रकार भगवान् रुद्र तथा उनके सर्वका मैत्री आपसे छलने किया ॥ ३२—३५ ॥

अब मरीचि आदि ऊषिगणोंके अनुसर्गका वर्णन करता हैं जब सूने। स्वयम्भूत ब्रह्माजीने देवताओंसे लेकर स्वतंत्रताके लारी प्रजाओंकी सृष्टि की। किंतु इन बृद्धिमान् ब्रह्माजीकी ये सब प्रजाएँ जब बृद्धिको प्राप्त नहों हुए, तब इन्होंने अपने ही समान मानस-पुत्रोंकी सृष्टि की। मरीचि, अंत्रि, अङ्गिरा, पुतलस्य, पुलह, कातु, प्रचेता, बभिष्ठ और महामुद्धिमान् भूगुणों उत्पन्न किया। ये लोग पुराणमें नी प्रजा निश्चित किये गये हैं। ब्रह्मान् अष्टि और पितर भी ब्रह्माके ही मानस-पुत्र हैं। इन दोनों महाभागोंको सृष्टिकालमें स्वयम्भूत ब्रह्माजीने उत्पन्न किया। फिर उन्होंने 'शतकापा' नामक कन्याकी सृष्टि करके उसे मनुको दे दिया ॥ ३६—३० ॥

उन स्वायम्भूत मनुसे देवी शतरूपाने 'प्रियव्रत' और 'उत्तानपाद' नामक ही पुत्र उत्पन्न किये और 'प्रसूति' नामवाली एक कन्याको जन्म दिया। स्वयम्भूत मनुने अक्षी कन्या प्रसूति दक्षको व्याह दी। दक्षने प्रसूतिसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं। अब मुक्षसे उन कन्याओंकी नाम सुनें—श्रद्धा, लक्ष्मी, भूति, सृष्टि, पुष्टि, वेष्टि, क्रिया, बुद्धि, लक्षा, वपु, शान्ति, मिदि और तेरहांसी जीति थीं। भगवान् धर्मसे संतानोत्पत्तिके लिये इन तेरह कन्याओंका पाणिश्वरण किया। धर्मकी इन ब्रह्मा आदि पवित्रोंके गर्भसे काम आदि पुत्र उत्पन्न हुए। अपने पुत्र और रीत्र आदिसे धर्मका बंश खड़ा ॥ २१—२५ ॥

तात्प्रयः शिष्टा व्यवीयस्यस्तासां नामानि कीर्तये ।
 सम्भूतिश्चानसूया च स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥ २६
 संनतिश्चाथ सत्या च ऊर्जा ख्यातिर्द्विजोत्तम ।
 तद्वृत्पुत्री पहाभागी मातरिश्चाथ सत्यवान् ॥ २७
 स्वाहाथ दशमी झेया स्वधा वैकादशी स्मृता ।
 एताक्षु दत्ता दक्षेण ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ २८
 मरीच्यादीनां तु ये पुत्रास्तानहं कथयामि ते ।
 पत्नीं परीचेः सम्भूतिर्ज्ञे सा कश्यपं मुनिम् ॥ २९
 स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नीं प्रभूता कन्यकास्तथा ।
 सिनीवालीं कुहृष्टीय गरका चानुभूतिस्तथा ॥ ३०
 अनसूया तथा चारेऽर्ज्ञे पुत्रानकल्पयान् ।
 सोमं दुखांसम् चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् ॥ ३१
 योऽसावग्रेरभीमानी ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः ।
 तस्मात् स्वाहा मूलीकेभे त्रीनुद्वारीजसो द्विजः ॥ ३२
 पात्रकं पवभानं च शुचिं चापि जलाशिनम् ।
 तेषां तु संततावन्ये चत्वारिंशत्त्वा यज्ञ च ॥ ३३
 कथ्यन्ते व्यहृत्यौरे पिता पुत्रत्रयं च यत् ।
 एवमेकोनपञ्चाशद्वहयः परिकीर्तिः ॥ ३४
 पितरो ब्रह्मणा सुष्टु व्याख्याता ये प्रया तव ।
 तेभ्यः स्वधा सुते चज्ञे भेनां वै धारिणीं तथा ॥ ३५
 प्रजा: सुजेति व्यादिषः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
 यथा सप्तर्ज भूतानि तथा मे श्रुणु सत्तम ॥ ३६
 प्रनर्सेव हि भूतानि पूर्वं दक्षोऽसुजन्मुनिः ।
 देवानूर्धीशु गन्धवानिसुगान् पत्रणांस्तथा ॥ ३७
 यदास्य मनसा जाता नाभ्यवर्धन्ते ते द्विजः ।
 तदा संचिन्त्य स मुनिः सुष्ठिहेतोः प्रजापतिः ॥ ३८
 मैथुनेनैव धर्मेण सिमृक्षुर्विविधः प्रजाः ।
 असिक्तीमुद्वहन् कन्यां वीरणस्य प्रजापतेः ॥ ३९

द्विजश्रेष्ठ ! उद्दा आदिसे छोटी अवस्थावाली जो उनको शेष बहने थी, उनके नाम बता रहा है—सम्भूति, अनसूया, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, सत्या, ऊर्जा, ख्याति, दसवीं स्वाहा और ग्यारहवीं स्वधा हैं। दक्षके 'मात्रिका' और 'स्त्रियान्' नामक दो महाभाग पुत्र भी हुए। उपर्युक्त न्याय हजन्याओंको दसने पुण्यात्मा प्रह्लियोंको दिया । २६—२८ ॥

मरीचिं आदि मुनियोंके जो पुत्र हुए, उन्हें मैं आपसे जलायता हैं। मरीचियोंकी पढ़ी सम्भूति थी। उसने कश्यप मुनियों जन्म दिया। ओङ्काराकी भार्या स्मृति थी। उसने मिनीवाली, कुहृ, राजा और उत्तमति—इन चार कन्याओंको उत्पन्न किया। इसी प्रकार अत्रि मुनियोंकी पढ़ी अनसूयाने सोम, दुर्योस्ता और योगी दत्तात्रेय—इन तीन पापरहित पुत्रोंको जन्म दिया। द्विज ! ब्रह्माजीका ज्येष्ठ पुत्र, जो अतिथिका अभिमानी देवता है, उससे उसकी पढ़ी स्वाहाने पश्चक, पश्चमन और जलका भक्षण करनेवाले शुष्ठि—इन अत्यन्त तेजस्वी पुत्रोंको उत्पन्न किया। इन तीनोंका (प्राप्तेकके यद्वाप-यद्वापके क्रमसे) अन्य पैतालीस भ्रातृनव्यक्तम भलावें हुई। पिता अपि, उसके तीनों पुत्र उन्होंने उनके भी ये पूर्णतः पैतालीस पुत्र सब मिलकर 'अपि' ही बहलावे हैं। इस प्रकार उनपात्र अपि कहे गये हैं। ब्रह्माजीके हारा ऐसे गये जिन पितरोंका मैंने आपके समझ वर्णन किया था, उनसे उनकी पढ़ी स्वधाने मेना और धारिणो—इन दो कन्याओंको जन्म दिया ॥ २९—३५ ॥

सामुजितोमणे ! पूर्वकालमें स्वयम्भू ब्रह्माजीके हारा 'तुम प्रजाकी मृष्टि करो' यह आज्ञा पाकर दक्षने जिस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि की थी, उसे सुनिये। विष्वकर ! दक्षमुनिने पहले देवता, ज्येष्ठ, गन्धवीं, असुर और सर्व—इन सभी भूतोंको भनसे हो उत्पन्न किया। परंतु जब मनसे उत्पन्न किये हुए ये देवादि सर्ग वृद्धिको प्राप्त नहीं हुए, तब उन दक्ष प्रजापति श्वरिने सुष्ठिके लिये पूर्णतः विचार करके मैथुनधर्मके हारा ही नाना प्रकारको सुहृद रचनेकी इच्छा भनवें लिये और एवं प्रजापतिकी कन्या असिक्तीमें लाभ विद्याह किया।

घट्ठि दक्षोऽसुजत् कन्या वीरपयाभिति नःश्रुतम् ।
 ददी स दश धर्माय कश्यपाय ब्रयोदश ॥ ४०
 सप्तविंशति सोमाय चतुर्स्रोऽरिष्टेभिने ।
 द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ॥ ४१
 द्वे कृशाश्चाय विदुये तदपत्यानि मे शृणु ।
 विश्वेदेवांस्तु विश्वा या साध्या साध्यानसूयत ॥ ४२
 मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो बसोस्तु वसवः स्मृताः ।
 भानोस्तु भानवो देवा मुहूर्तार्थां मुहूर्तज्ञाः ॥ ४३
 लम्बायाश्च घोषारुद्धो नागवीथिश्च जामिजा ।
 पृथिवीविषयं सर्वमरुत्वत्यामजायत ॥ ४४
 संकल्पायाश्च संकल्पः पुत्रो जड़े महापते ।
 ये त्वनेकबसुप्राणा देवा ज्योतिःपुरोगमाः ॥ ४५
 वसवोऽस्तु समाख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु ।
 आपो धूवश्च सोमश्च धर्मश्चैवानिलोऽनलः ॥ ४६
 प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽस्तु प्रकार्तिताः ।
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४७
 साध्याश्च बहवः प्रोक्तास्तत्पुत्राश्च सहस्रशः ।
 कश्यपस्य तु भार्या यास्तासां नामानि मे शृणु ।
 अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥ ४८
 सुरभिर्विनता चैव ताप्ता क्रोधवशा इता ।
 कद्मुनिश्च धर्मज्ञ तदपत्यानि मे शृणु ॥ ४९

हमने सुना है कि दक्ष प्रजापतिने वौरण-कन्या आसियकीके गर्भसे माट कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे दस कन्याएँ उन्होंने धर्मको और तेह कश्यप मूर्तिको व्याह दीं । फिर सतार्हस कन्याएँ चत्रमाको, चार अस्तिनेमिको, दो बहुपुत्रको, दो आङ्गिराको और दो कन्याएँ विद्वान् कृशाश्चको समर्पित कर दीं। अब इन सबको संतानोंका वर्णन सुनिये ॥ ३६—४१ ½ ॥

जो विश्वा नामको कन्या थीं, उनने विश्वेदेवोंको और साध्याने साध्योंको जन्म दिया। मरुत्वतोंके मरुत्वान् (वायु), वसुके वसुगण, भानुके भानुदेवता और मुहूर्तके मुहूर्ताभिमानों देवताएँ हुए। सम्बासे थोण नामक पुत्र हुआ, जापिसे नागवीथि नामवाली कन्या हुई और अलक्ष्मीसे । पृथिवीके समस्त प्राणी उत्पन्न हुए। महाबुद्धे ! संकल्पा नामक जन्यासे संकल्पयत जन्म हुआ, अनेक प्रकारके वसु (तैज अश्वा धन) ही जिनके प्राण हैं, ऐसे जो आठ ज्योतिर्मय वसु देवता कहे गये हैं, उनके नाम सुनिये—आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अमृत, प्रत्यूष और प्रभास—ये 'आठ वसु' कहलाते हैं। इनके पुत्रों और पौत्रोंकी संख्या सिकड़ी और हजारोंतक पहुंच गयी है ॥ ४२—४३ ॥

इसी प्रकार साध्यगणोंकी भी संख्या बहुत है और उनके भी हजारों पुत्र हैं। जो (दक्ष-कन्याएँ) कश्यप मूर्तिको पवित्री हुई, उनके नाम सुनिये—ये अदिति, दिति, इनु, अदिति, सुरसा, खसा, मुराभि, विनता, ताप्रा, क्रोधवशा, इता, कद्मु और मुनि थीं। धर्मज्ञ ! अब आप मुहसे उनकी संतानोंका विवरण सुनिये।

* दीप्तवें अथ्यायके इतोक बाईसमें यह चर्चा इती है कि स्वायम्भूत मनुने प्रजापतिको अपनी पुत्री प्रसीति व्याह दी थी। उसके गप्ते इक्षने चौलेस कन्याएँ उत्पन्न कीं, जिनमेंसे तेह कन्याज्ञोंका विवह उन्होंने धर्मके साथ कर दिया था। फिर उसी अथ्यायके उत्तरालीस-चालीस इतोकमें यह जात आती है कि इक्षने चौरु प्रजापतिको पुत्री अस्तिनेके साथ विवह किया, जिसके गप्तें उन्होंने साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं, जिनमेंसे दसका विवह उन्होंने धर्मके साथ किया था। एक ही इक्षके विवरणमें ये दो प्रकारको वार्ता आश्रित है उत्पन्न करती है। विश्वपुत्रार्थे भी यह प्रसंग आया है। अथ्याय सतके उत्तरालीस चौलोक्तक तथा अथ्याय पंद्रहके उत्तर दोनों प्रसङ्गोंका मध्य उत्तरेष्व मिलता है। एक दो लीलार्थ इतोकमें उन प्रसङ्गोंके पर्यालोकनमें यह प्रसीति होता है कि उत्तर दोनों दल दो अर्थों से और दोनों दो कलामें उत्पन्न हुए थे। पहले दक्ष इहाज्ञोंके भानम-पुत्र ये शीर दूसरे प्रवेशाभ्योंके पुत्र। इनमेंपर भी दीप्तवेंमें वह प्रब्रह्म उत्पन्न है कि 'प्रवेशाभ्योंके पुत्र क्ये ये ?' वहाँ प्रवेशाभ्योंमें यह समाधान किया है कि 'युगे युगे पवनन्येते दक्षाश्च मुग्नसत्यम् ।' इस उक्ताप्राप्तेदेसे दोनों प्रसङ्गोंकी संगति यैठायी गयी है। छहीं समाधान यहाँ भी समझ होना चाहिये।

+ यहाँ 'अलक्ष्मी' की जाह 'मरुत्वतो' पठ भी मिलता है, परंतु वह असंगत है। 'मरुत्वतो मरुत्वतः' कहकर मरुत्वतोकी संतानिका वर्णन आ चुका है। अतः यहाँ 'अलक्ष्मी' चढ़ ही रुक्त है; अन्यत्र धर्मज्ञों नज़ों वालीको नाम नहीं मिलेगा। विश्वपुत्रार्थ १५। १०९२५ इतोकमें भी 'अस्तिनेमिम्' ही पठत है।

अदित्यां कश्यपाज्ञाताः पुत्रा द्वादश शोभनः ।
 तानहं नामतो वह्ये भृणुच्च गदतो मम ॥ ५०
 भर्गोऽशुश्रार्यम् चैव मित्रोऽथ वरणस्तथा ।
 सखिता चैव धाता च विवस्यांशु महामते ॥ ५१
 त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुकच्चते ।
 दित्याः पुत्रहृयं जडे कश्यपादिति नः भ्रुतम् ॥ ५२
 हिरण्याक्षो महाकायो वाराहेण तु यो हतः ।
 हिरण्यकशिपुर्णीव नरसिंहेन यो हतः ॥ ५३
 अन्ये च बहवो दैत्या दनुपुत्राक्ष दानवाः ।
 अरिष्टायां तु गच्छर्वा जग्निरे कश्यपाज्ञात्या ॥ ५४
 सुरसायामधोत्पत्ता विद्याधरगणा वहु ।
 गा वै स जनयामास सुरभ्यां कश्यपो मूर्तिः ॥ ५५
 विनतायां तु द्वी पुत्री प्रस्त्राती गरुडारुणी ।
 गरुडो देवदेवस्य विष्णोरपिततेजसः ॥ ५६
 वाहनत्वमिद्यान्तीत्या अरुणः सूर्यसाराधिः ।
 ताप्तायां कश्यपाज्ञाताः पटपुत्रास्तात्रिक्षोप मे ॥ ५७
 अश्वा उष्टा गर्दभाक्षु हस्तिनो गवया मृगः ।
 क्रोधायां जग्निरे तद्वह्ये भूम्यां दुष्टजातयः ॥ ५८
 उरा युक्तलतावदीशणजातीक्ष्ण जग्निरे ।
 खसा तु यक्षरक्षसांसि मुनिरप्सरसस्तथा ॥ ५९
 कद्गुप्ता महानागा दंदशुका विषोत्पणाः ।
 समविंशति याः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुद्रताः ॥ ६०
 तासां पुत्रा महामन्त्या बुधाद्यास्त्यभवत् द्विज ।
 अरिष्टनेपिपलीनामपत्यानीह पोद्दशा ॥ ६१
 यहुपुत्रस्य विदुषक्षुतस्तो विद्युतः स्मृताः ।
 प्रत्यक्षितस्तुताः श्रेष्ठा प्रणयश्चर्थिमत्कृताः ॥ ६२
 कृशाभ्यस्य तु देवर्घेदेवाक्षु ऋषयः सुताः ।
 एते युगासहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥ ६३
 एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुंगमाः ।
 स्थिती स्थितस्य देवस्य नरसिंहस्य धर्मतः ॥ ६४
 एता विभूतयो विप्र मया ते परिकीर्तिताः ।
 कथिता दक्षकन्यानां मया तेऽपत्यसंततिः ॥ ६५
 श्रद्धावान् संस्मरेदेतां स मुसंतानवान् भवेत् ॥ ६६

महामते ! अटितिके कश्यपजीसे वारह सुन्दर पुत्र उत्पत्त हुए । उनके नाम बता रहा हैं सुनिदे—महामते ! भग, अंशु, अर्यमा, विष्ण, बरुण, सविता, धाता, विवस्यान्, लक्ष्मा, पूषा, इन्द्र और बारहवें विष्णु कहे जाते हैं । दितिके कश्यपजीसे दो पुत्र हुए थे, पैसा हमने सुना है । पहला महाकाय हिरण्याक्ष हुआ, जिसे भगवान् वाराहने भारा और दूसरा हिरण्यकशिपु हुआ, जो नृसिंहजीके द्वारा भारा गया । इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से देवता दितिसे उत्पत्त हुए । उनके पुत्र दानव हुए और अरिष्टांके कश्यपजीसे गन्धर्वगण उत्पत्त हुए । सुरसामे अनेक विद्याधराण हुए और सुरुभिसे कश्यप सुनिने गीजोंको जन्म दिया ॥ ४८—५५ ॥

विनताके 'गरुड' और 'अरुण' नामक हो विद्युत पुत्र हुए । गरुडजी प्रेमवल अमित-तेजस्तो देवदेव भगवान् विष्णुके याहन हो गये और अरुण सूर्यके सारांश थे । दानवों कश्यपजीसे छः पुत्र हुए, उन्हें आप मुझसे सुनिदे—घोड़ा, ऊँट, गदहा, हाथी, गवय और मृग । पुत्रोंपर किंतु तुष्ट जीव है, जो क्रोधासे उत्पत्त हुए है । इसने वृक्ष, लता, छल्ली और 'मन' जातिके तुणवर्गको जन्म दिया । खसाने यक्ष और राक्षसों तथा मुनिने अपारात्मोंको प्रकट किया । कदम्बे पुत्र प्रणयद्वयिष्वाले 'दंदनुर' नामक महामर्प हुए । विप्रवर । चन्द्रमाकी सुन्दर छलवाली जित रक्षाईम विषयोंकी चतुर्ं की गयी है, उनसे चुध आदि महान् पराक्रमी पुत्र हुए । अरिष्टनेपिपलीकी विषयोंके गर्भसे सोलह संताने हुई ॥ ५६—६१ ॥

विद्यान् बहुपुत्रकी संतानें कपिला, अतिलीहिता, पोता और मिता—इन चार वर्णोंवाली चार जिजिलियों कही गयी हैं । प्रत्यक्षितराके पुत्रगण ज्ञापियोद्वारा सम्मानित उत्तम प्राप्ति हुए । देवर्घिर्वाक्योंके पुत्र देवर्घिर्वाक्य ही हुए । ये एक-एक हजार मृग (अर्धांशु एक जल्प) -के चीतनेपर पुनः -पुनः उत्पत्त होते रहते हैं । इस प्रकार कश्यपके लक्ष्मये उत्पत्त हुए चर-अचर प्राणियोंका वर्णन किया गया । विप्रवर । भर्मपूर्वक पहलनकर्ममें लगे हुए भगवान् नरसिंहजी इन विभूतियोंका यहाँ भैने आपके समस्त वर्णन किया है । साथ ही दक्षकन्याओंकी वंश-परम्परा भी बतलायी है । जो क्रद्धापूर्वक इन मयका स्पर्श करता है, वह सुन्दर संतानसे युक्त होता है ।

सर्गानुसारी कथितीं पद्या ते
समासतः सृष्टिविवृद्धिहेतोः।
पठन्ति ये विष्णुपराः सदा नरा
इदं द्विजास्ते विमला भवन्ति ॥ ६७

इति श्रीनरसिंहपुण्ये लक्ष्मिकृष्णने वड्डलोऽन्वयः ॥ ५ ८
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुण्यके लक्ष्मिकृष्णने दौषिण्यं अव्याप्त पुण्य कुमा ॥ ५ ८

प्रसङ्ग ॥ अन्वय

छठा अध्याय

अगस्त्य तथा वसिष्ठजीके मित्रावरुणके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेका प्रसङ्ग

सूत उच्चार

सृष्टिस्ते कथिता विष्ण्योर्मयास्य जगतो द्विज ।
देवदानवयक्षाद्या यथोत्पन्ना महात्मनः ॥ १
यमुद्दिश्य त्वया पृष्ठः पुराहमृषिसंनिधी ।
मित्रावरुणपुत्रत्वं वसिष्ठस्य कथं त्विति ॥ २
तदिदं कथयिष्यामि पुण्याख्यानं पुरातनम् ।
शृणुष्वैकाग्रापनसा भरद्वाज विशेषतः ॥ ३
सर्वधर्मार्थितत्त्वज्ञः सर्ववेदविदां वरः ।
पारायः सर्वविद्यानां दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ ४
तेन दन्तः शुभाः कन्याः सर्वाः कमलानोचनाः ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णाः कश्यपाय त्रयोदश ॥ ५
तासां नामानि वक्ष्यामि निवोधत ममाधुना ।
अदितिर्दितिर्दिनुः काला मुहूर्तां सिंहिका मुनिः ॥ ६
इरा क्रोधा च सुरपिर्विनता सुरसा खसा ।
कदू सरमा चैव या तु देवशूनी स्मृता ॥ ७
दक्षस्यैता दुहितरस्ताः प्रादात् कश्यपाय सः ।
तासां ज्येष्ठा वरिष्ठा च अदितिर्नामितो द्विज ॥ ८
अदितिः सुषुप्ते पुत्रान् द्वादशाग्निसमप्रभान् ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥ ९

ब्रह्मन् ! सृष्टि-विस्तारके लिये आहा तथा अन्य प्रजापतियोंद्वारा जो सर्ग और अनुसारी सम्पादित हुए, तन सबको मैंने संक्षेपमें आपको यता दिया । जो द्विजाति मानव भगवान् विश्वमें मन लगाकर इन प्रसङ्गोंको सदा पढ़ेंगे वे निर्मल हो जायेंगे ॥ ६२—६३ ॥

इति श्रीनरसिंहपुण्ये लक्ष्मिकृष्णने वड्डलोऽन्वयः ॥ ५ ८

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुण्यके लक्ष्मिकृष्णने दौषिण्यं अव्याप्त पुण्य कुमा ॥ ५ ८

सूतजी शोले—ब्रह्मन् ! परमात्मा भगवान् विष्णुसे जिस प्रकार देव, दानव और यक्ष आदि उत्पन्न हुए, वह जगत्की सृष्टिका वृत्तान्त मैंने आपसे कह दिया । अब प्रतिष्ठितोंके निकट जिस दृष्टेयको लेकर पहले आपने मुझसे प्रश्न किया था कि 'वसिष्ठजी मित्रावरुणके पुत्र कौनसे ही गये ?' तसी पुण्यतन पश्चित् जगताको लहौंगा । भारद्वाजजी । आप एकाग्राचित हो, विशेष साक्षात्कारीके साथ उसे सुनिये ॥ १—३ ॥

सम्पूर्ण धर्म और अन्योंके तत्त्वको जाननेवाले, समस्त वेदवेदाओंमें श्रेष्ठ तथा समग्र विद्याभ्रोक्ते धारदर्शी 'दक्ष' नामक प्रजापतिने अपनी तेज़ सुन्दरी कन्याओंको, जो सभी कमलके समान नेत्रोंवाली और समस्त शुभ लक्षणोंमें सम्पूर्ण थीं, कश्यप मूर्तिको दिया था । उनके नाम बतलाता हैं, आप लोग इस समग्र मुझसे उनके नाम जान लें—अदिति, दिति, दनु, काला, मुहूर्ता, सिंहिका, मुनि, इरा, क्रोधा, सुराध, विनता, सुरसा, खसा, कदू और सरमा, जो देवताओंकी कुतियां कही गयी हैं—ये सभी दक्ष-प्रजापतिकी कन्याएँ हैं । इनको दक्षने कश्यपजीको समर्पित किया था । विप्रवर ! अदिति नामकी जो कन्या थी, वही इन सभामें श्रेष्ठ और बड़ी थी ॥ ४—८ ॥

अदितिने बारह पुत्रोंको उत्पन्न किया । जो अग्निके समान कानितमान् एवं तेजस्वी थे । उन सबके नाम बतला रहा है, आप मुझसे उन्हें सुनें ।

* अध्याय पौचते ४८-४९, स्तोकोंमें कर्तव्यको तेज़ परिवर्तिका नाम आये हैं । यहीं पौचते नाम आये हैं; इनमें 'मुहूर्ता' और 'सरमा'—ये ही नाम अधिक हैं । 'मुहूर्ता' तो धमाकी पत्त्वे थीं, 'सरमा' कश्यपकी धमाकी होनेवाले भी दक्षकन्या नहीं थीं । हस्तके अदितिर्नामियां एवं ताप्राके स्त्रानपर यहीं काला और सिंहिका नाम आये हैं । ये नाम अन्य उपायोंमें भी आये हैं ।

† यद्यपि पौचते अप्याप्तके ५१-५२, स्तोकोंमें अदितिकी सन्तानोंका सर्वन ज्ञा गया है; अतः यहीं इस प्रसङ्गकी पुनर्संकेत ज्ञा गया है; अतः यहीं इस प्रसङ्गकी पुनर्संकेत ज्ञा गया है; तथापि इसका समाधान यह है कि वहीं सृष्टिकृष्णने प्रसङ्गमें यह ज्ञा गयी रही है और यहीं 'वसिष्ठ तथा अगस्त्यजीको मित्रावरुणके पुत्ररूपमें पुनरुत्पत्ति कैसे हुई ?' इस प्रकार तत्त्वावधानके प्रसङ्गमें विच और वस्त्र देवताका परिचय देना आवश्यक दृष्टा । ये दोनों यात्र ह अदितियोंमें परिगणित हैं; अतः अदितिके उन बास्तवीं पुत्रोंका पूनः वर्णन प्रसङ्गात्मक ज्ञा गया है; अतः पुकारति-दोष नहीं सानन् चाहिये ।

येरिदं वासरं नक्तं वत्तेते क्रमशः सदा ।
 भग्नोऽशुस्त्वर्यमा चैव पित्रोऽथ वरुणस्तथा ॥ १०
 सविता चैव धाता च विवस्वांशु महापते ।
 त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो विष्णुद्गुर्दिशमः स्मृतः ॥ ११
 एते च द्वादशादित्यास्तपते वर्षयन्ति च ।
 तस्याशु मध्यमः पुत्रो वरुणो नाम नामतः ॥ १२
 लोकपाल इति ख्यातो वारुणयां दिशि शब्दाते ।
 पश्चिमस्य समुद्रस्य प्रतीच्यां दिशि राजते ॥ १३
 जातरूपमयः श्रीमानास्ते नाम शिलोच्चयः ।
 सर्वरत्नपते: श्रुत्तैर्धातुप्रस्तवणान्वितैः ॥ १४
 संयुक्तो भाति शैलेशो नानास्त्रमयः शुभः ।
 महादरीगुहाभिश्च सिंहशादूलनादितः ॥ १५
 नानाविविक्तभूमीषु सिद्धगन्धर्वसेवितः ।
 यस्मिन् गते दिनकरे तपसाऽप्यूर्ते जगत् ॥ १६
 तस्य श्रुते महादिव्या जाम्बुदमयी शुभा ।
 रथ्या मणिपते: स्तम्भविंहिता विश्वकर्मणा ॥ १७
 पुरी विश्वावती नाम समृद्धा भोगसाधनैः ।
 तस्यां वरुण आदित्यो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ १८
 पाति सर्वानिपात्क्रोकान् नियुक्तो द्राहाणा स्वयम् ।
 उपास्यमानो गन्धर्वस्तथैवाक्षरसां गणीः ॥ १९
 दिव्यगन्धानुलिमाङ्गो दिव्याभरणभूषितः ।
 कदाचिद्गुरुणो यातो मित्रेण सहितो वनम् ॥ २०
 कुरुक्षेत्रे शुभे रथ्ये सदा द्वृह्यर्थिसेविते ।
 नानापुष्पफलोपेते नानातीर्थसमाकुले ॥ २१
 आश्रमा चत्र हृथयने मुनीनामृथ्यैतत्साम् ।
 तस्मिस्तीर्थे समाश्रित्य वहुपुष्पफलोदके ॥ २२
 चीरकृष्णाजिनधरी चरन्ती तप उत्तमम् ।
 तत्रैकस्मिन् वनोद्देशे विमलोदो हृदः शुभः ॥ २३

उन्हींके द्वारा सर्वदा क्रमशः दिन और रात होते रहते हैं ।
 भग्न, अंशु, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान,
 त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और वारहवें विष्णु हैं । ये वारह आदित्य
 तपते और वर्षा करते हैं ॥ १—११ ॥

आदित्यके मध्यम पुत्र वरुण 'लोकपाल' कहे गये
 हैं, इनकी स्थिति वरुण-दिशा (पश्चिम)-में बतलायी
 जाती है । वे पश्चिम दिशामें पश्चिम समुद्रके तटपर सुशोभित
 होते हैं । वहाँ एक सुन्दर सुखर्णमय पर्वत है । उसके
 शिखर सब रक्षमय हैं । उनपर नाना प्रकारकी धातुएँ और
 जारे हैं । इनसे युक्त और नाना प्रकारके रसोंसे परिपूर्ण
 वह सुन्दर पर्वत बड़ी झोभा पाता है । उसमें बड़े-बड़े दर्ते
 और गुहाएँ हैं, जहाँ चाष और सिंह दहाड़ते रहते हैं ।
 वहाँके अनेकानेक एकान्त स्थलोंपर रिठ और गन्धर्व
 वास करते हैं । जब सूर्य वहाँ पहुँचते हैं, तब समस्त संसार
 अन्धकारमें पूर्ण हो जाता है । उसी पर्वतपे के शिखरपर
 विश्वावती जनती हुई एक 'विश्वावती' नामकी शोभनपुरी
 है, जो बड़ो, दिल्य तथा सुखर्णसे बनी हुई है और उसमें
 पर्णियोंके गुंबे लगे हैं । इस प्रकार वह युरी रमणीय एवं
 समूले भोग-साधनोंसे सम्पन्न है । उसीमें अक्षे तेजसे प्रकाशित
 होते हुए 'वरुण' नामक आदित्य ऋष्णालीकी त्रेणासे इन
 समूले लोकोंका पालन करते हैं । वहाँ उनकी सेवामें
 गन्धर्व और अप्सराएँ रहा करती हैं ॥ १२—१९ ॥

एक दिन वरुण अपने अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप
 लगाये, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो 'मित्र' के साथ वनको
 गये । द्वादशिंशत सदा जिसका सेवन करते हैं, जो नाना
 प्रकारके फल और फूलोंसे युक्त तथा अनेक तीर्थोंसे व्याप्त
 है, जहाँ ऊर्ध्वरेता मुनियोंके आश्रम दृष्टिगोचर होते हैं तथा
 जो प्रचुर फल-फूल और जलसे पूर्ण है, उस सुन्दर सुरम्य
 कुस्तोत्रतीर्थोंमें पहुँचकर वे दोनों देवता चौर और कृष्णमृगचर्म
 शरण करके तपस्या करने लगे । वहाँपर वनके एक
 भलमें निर्मल झलसे भरा हुआ एक सुन्दर सरोवर है,

बहुगुल्मलताकीणों नानापक्षिनिपेवितः ।
नानातरुयनच्छश्चो नलिन्या चोपशोभितः ॥ २४
पीषड्डीक इति ख्यातो मीनकच्छपसेवितः ।
ततस्तु मित्राद्यरुणी भातरी बनचारिणी ।
तं तु देशं गती देवी विचरनी यदुच्छया ॥ २५
ताभ्यां तत्र तदा दृष्टु उर्वशी तु चराप्सरा ।
स्नायनी सहितान्यापि सखीभिः सा चरानना ।
गायनी च हृसनी च विश्वस्ता विज्ञेव वने ॥ २६
गीरी कमलगर्भाभा दिनाध्रुवाशिरोरुहा ।
पश्चपत्रविशालाक्षी रक्तोरुषी मृदुभाषिणी ॥ २७
शङ्कुकुन्देनुपर्वतेऽन्तरविरलैः सम्ये ।
सुभः सुनासा सुपुष्पी सुललाटा मनस्तिनी ॥ २८
सिंहवत् सूक्ष्मपथ्याङ्गी पीनोरुजयनस्तनी ।
मधुरालापचतुरा सुमध्या चारुहासिनी ॥ २९
रक्तोत्पलकरा तन्वी सुपटी विनयानिता ।
पूर्णचन्द्रनिभा बाला मत्तद्विरदगामिनी ॥ ३०
दृष्ट्या तस्यास्तु तदूर्धं ती देवी विस्मयं गती ।
तस्या हास्येन लास्येन स्पितेन स्तितेन च ॥ ३१
मृदुना यायुना चैव शीतागिलसुगच्छिना ।
मत्तद्विरगीतेन पुस्कोकिलरुतेन च ॥ ३२
सुस्वरेण हि गीतेन उर्वश्या मधुरेण च ।
इङ्कितो च कटाक्षेण स्कन्दतुस्तावुभावपि ।
निमेः शापादधीत्कम्य स्वदेहाम्बुनिसत्तम ॥ ३३
वसिष्ठ प्रियवर्णात्पर्वती-
त्वधोच्चुरागत्य हि विश्वदेवा ।
रेतस्त्रिभागं कमलेऽचरतद्
वसिष्ठ एवं तु पितामहोत्तेः ॥ ३४

जो यहुत्-सो झाड़ियों और दोनोंसे आनन्द है; अनेकानेक पक्षीठसका मैथन करते हैं। वह भौति-भौतिके वृक्षसमूहोंमें आचक्षण और कमलोंमें सुशोभित है। उसमें यहुत्-सो मछलियाँ और कहुए, निवास करते हैं। तप आरम्भ करनेके पश्चात् ये दोनों गार्द—मित्र और बहुपदेवता एक दिन बनमें विदरण करते और स्वेच्छानुसार घूमते हुए उस सरोवरको ओर जाये ॥ २०—३५ ॥

जहाँ उन दोनोंने उस समय जेठ एवं मून्दो अप्सरा उर्वशीको देखा, जो अपनी अन्न सहेलियोंके साथ स्नान कर रही थी। वह मूमूली अप्सरा उस विज्ञेन वनमें विश्वस्त होकर हँसती और गाती थी। उसका वर्ण गोरा था। कमलके भीतरी भागके समान उसको जाना थी। उसकी अलाके काली काली और चिकनी थीं, और उन्हें कमल-दलके समान बही-बही थीं, होठ लाल थे, उसका भाषण बहुत ही मधुर था। उसके दोनों शङ्कु, कुन्द और चन्द्रमाके समान श्वेत, पाल्पट गिरे हुए और चराचर थे। उस मनस्तिनीकी भीहं, नासिका, चूल्हा और ललाट—सभी मून्दर थे। कठिभाग सिंहोंके काटिप्रदेशको भीति पतला था। डोरीज, ऊरु और जघन—ऐ मोटे और लम्बे थे। वह मधुर भाषण करनेमें चाहुर थी। उसका मध्यभाग मून्दर और मूरकान मनोहर थी। दोनों हाथ लाल कमलके समान मून्दर एवं कोमल थे। हारी चालता और पैर तुन्द्र थे। वह बाला दहो ही धिनोत्त थी। उसका मूरुष पूर्णचन्द्रके समान आहुन्दत्रवक और गीत यस गजहाजोंके समान मन्द थी। उर्वशीके उस दिव्य करको देखकर वे दोनों देवता विस्मयमें पढ़ गये। उसके लाल्य (नुच्छ), दाढ़, लकितभाव-मिथित मन्द मुसकान और यमुर सुरीले गानसे तथा शोतल-मन्द-मृगान्मत गत्यानिलके स्पर्शमें एवं मतवाले भौतिके संगीत और कोकिलोंके कलरवसे उन दोनोंका मन और भी मृग्य हो गया। साथ ही उर्वशीकी तिरही नितवनके लिकार होकर वे दोनों ही वहाँ स्थानित हो गये (उसके बोर्डक पड़न हो गया)। मुनिसत्तम! इसके बाद निमिकं शापागम “वसिष्ठलीका जीवात्मा अपने शरीरसे पृथक् होकर (मित्रवर्णके और्हिमें आविष्ट हुआ) ॥ २६—३३ ॥

“वसिष्ठ! तुम मित्रवर्णके पुत्र होओगे”—इस प्रकार विदेशोंने (निमिकों शुक्रमें) आकर कहा था तथा ब्रह्मवर्णोंका भी यहाँ कृपन था; अतएव मित्रवर्णके लीन स्वानोंपर

* एक बार गता निर्विने यह करनेके दृष्टान्ते अपने त्रूटिहित वसिष्ठलीकी पात्रता किया। चम्पालोने कहा—“वे देवनोंके एक पृथु आरम्भ करा तुम हैं। उसके साथ होनेवाला भ्राता जारा वह तो नहीं रहे। वहाँसे भ्राता हम आवश्यक नहीं आरम्भ करते थे।” निमिके उनकी प्राप्तेष्व गती की: वसिष्ठलीने भौतिकेप सब सोन देख नजाकी जाए दिला कि “तुम विदेश हो जाओ।” तब गते भौतिक दिला कि “आपका भी यह हारी न रहे।”

त्रिधा सम्भवद्रेतः कमलेऽथ स्थले जले ।
अरविन्दे वसिष्ठस्तु जातः स मूनिसत्तमः ।
स्थले त्वगस्त्वः सम्भूतो जले मत्यो महाशुतिः ॥ ३५ ॥

स तत्र जातो प्रतिमान् वसिष्ठः
कुम्भे त्वगस्त्वः सलिलेऽथ मत्यः ।
स्थानवृये तत्पतितं समानं
पित्रस्य यस्माद्गुणास्य रेतः ॥ ३६ ॥

एतस्मिन्द्रेव काले तु गता सा उर्वशी दिवम् ।
उपेत्य तानुर्धीन् देवी गती भूयः स्वप्नाप्रभम् ।
यमाद्यपि तु तप्यते पुनरुद्यु परं तपः ॥ ३७ ॥

तपसा प्राप्तुकामी ती परं न्योतिः सनातनम् ।
तपस्यन्तीं सुरब्रह्मी द्वाहाऽऽगत्येदप्यवैतीन् ॥ ३८ ॥

पित्रावरुणकौ देवी पुत्रवन्ती महाशुती ।
सिद्धिर्भविष्यति यथा युवयोर्विष्णाकी पुनः ॥ ३९ ॥

स्वाधिकारेण स्थीयेताप्यधुना लोकसाक्षिकौ ।
इत्युक्त्वानर्थे द्वाहा ती सिद्धती स्वाधिकारकौ ॥ ४० ॥

एवं ते कथिते विप्र वसिष्ठस्य महात्म्यः ।
पित्रावरुणपुत्रत्वमगस्त्यस्य च श्रीमतः ॥ ४१ ॥

इदं पुंसीयमाख्यानं वारुणं पापनाशनम् ।
पुत्रकामास्तु ये केचिच्छृण्वन्तोर्द शुचिष्वतः ।

अचिरादेव पुत्रांस्ते लभन्ते नात्र संशयः ॥ ४२ ॥

यद्युत्तत्पठते नित्यं हृष्यकल्ये द्विजोत्तमः ।
देवाश्च पितरास्तस्य तुमा यानि परं सुखम् ॥ ४३ ॥

यद्युत्तत्पृण्याग्रित्यं प्रातरुत्त्वाय प्राप्तवः ।
नन्दते म सुखं भूमी विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ४४ ॥

इत्येतदाख्यानमिदं प्रयोगितं
पुरातनं वेदविद्दिरुदीरितम् ।

पठिष्यते यस्तु श्रूणोति सर्वदा
म याति शुद्धो हरिलोकमधुमा ॥ ४५ ॥

निरे हुए वीर्यमें जो भाग कमलपर गिरा था, उसीमें
वसिष्ठजो हुए। उन दोनों देवताओंका वीर्य तीन भागोंमें
विभक्त होकर कमल, जल और स्थलपर (घड़ीमें) गिरा।
कमलपर गिरे हुए वीर्यमें मूनिवर वसिष्ठ उत्पन्न हुए,
स्थलपर गिरे हुए तेसमें आगस्त्य और जलमें गिरे हुए
सूक्ष्मसे अर्थन कानिमान मत्स्यको उत्पाति हुई। इस
तरह उस कमलपर चुदिमान् वसिष्ठ, कुम्भमें आगस्त्य
और जलमें मत्स्यका अविर्भव दृश्या; क्योंकि भित्रावरुणका
वीर्य तीनों स्थलोंपर वरामपर गिरा था। इसी समय उर्वशी
स्वर्णतोकमें चली गयी। वसिष्ठ और आगस्त्य—इन दोनों
ज्ञातियोंको साथ लेकर, वे दोनों देवता पुनः अपने आश्रममें
लौट आये और पुनः उन दोनोंने अर्थन उत्तराप आरम्भ
किया ॥ ३४—३५ ॥

तपस्याके हाता मनातन परम ज्योति (चक्राधाम) -को
प्राप्त करनेकी इच्छाकरते उन दोनों तपस्यी देवोऽप्तोंसे
चक्राधीने आकर यह कहा—‘महाम् कानिमान् और
यूजवन् यित्र तथा यहाँ देवताओं। तुम दोनोंको पुनः
दीप्तात्रे चिद्दिव्य प्राप्त होगी। इस समय संसारके साक्षीकरणमें
तुम लोग अपने अधिकतरपर स्थित हो जाओ।’ ये
कहकर चक्राधी अनुर्धीन ही गये और वे दोनों देवता
अपने अधिकृत पदपर स्थित हुए ॥ ३६—३० ॥

आत्मनः । इस प्रकार महामा वसिष्ठकी और चुदिमान्
आगस्त्यकी जिस तरह पित्रावरुणके पुत्र हुए थे, वह सब
प्रसाद देने आपसे कह दिया। यह चहातोदेवता-सम्बन्धी
पुत्रावरुणवन् पाप नष्ट करनेवाला है। जो लोग पुत्रकी
कामनाएं तुम जलका आपरण करते हुए इसका श्रवण
करते हैं, वे शोष ही अपेक्ष पुत्र पाप करते हैं—इसमें
संदेह नहीं है। जो उत्तम ज्ञात्वा हृष्य (देवतायां) और
जल्य (पितृयां) -में इसका पाठ करता है, उसके देवता
तथा यित्र तुम हीकर अनन्त मुख्य प्राप्त करते हैं। जो
मनुष्य नित्य प्राप्तःकाल उठकर इसका श्रवण करता है,
वह पूज्योपम सुशुभूतिक प्रसन्नताके साथ रहता है और
यित्र विष्णुलोकको प्राप्त करता है। येदेवताओंके द्वारा
प्रतिपादित इस पुरातन उपाख्यानको, जिसे मैंने कहा है,
जो लोग सादर पढ़ेंगे और सुनेंगे, वे तुम हीकर अनायास
हो विष्णुलोकको प्राप्त कर लेंगे ॥ ४१—४५ ॥

इति भैरवसिंहपुराणे इति वारुदास्त्रं च च यज्ञोऽन्तः ॥ ४६ ॥

इति ऋषिर्विष्णुपुराणे ‘पुराणे’ कर्त्ता तत्त्वज्ञ यज्ञोऽन्तः ॥ ४६ ॥

सातवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीके द्वारा तपस्यापूर्वक श्रीहरिकी आराधना; 'मृत्युद्धय-स्तोत्र' का पाठ और मृत्युपर विजय प्राप्त करना

श्रीभरद्वाजजी उक्ताच

मार्कण्डेयेन मुनिना कथं मृत्युः पराजितः।
एतदाख्याहि मे सूत त्वयैतत् सूचितं पुरा॥ १

सूत उक्ताच

इदं तु महदाख्यानं भरद्वाज शृणुत्वं मे।
शृण्वन्तु ऋषयक्षेभ्ये पुरावृतं वर्तीम्यहम्॥ २
कुरुक्षेष्वे महापुण्ये व्यासपीठे वराङ्गमे।
तत्रासीनं मुनिवरं कृष्णद्वायानं मुनिम्॥ ३
कृतस्नानं कृतजपं मुनिशिष्यैः समावृतम्।
सेष्टवेदार्थतत्त्वान् सर्वशास्त्रविशारदम्॥ ४
प्रणिपत्य यथात्यार्थं शुक्रः परमधार्मिकः।
इममेवार्थमुद्दिश्य तं प्रग्राह यज्ञानुभिः॥ ५
यमुद्दिश्य वर्ये पृष्ठास्त्वयाऽपि मुनिसंनिधी।
नरसिंहस्य भक्तेन कृततीर्थनिवासिना॥ ६

श्रीगुरुक उक्ताच

मार्कण्डेयेन मुनिना कथं मृत्युः पराजितः।
एतदाख्याहि मे तात श्रोतुमिच्छापि तेऽध्युना॥ ७

ब्रह्म उक्ताच

मार्कण्डेयेन मुनिना यथा मृत्युः पराजितः।
तथा ते कथयिष्यामि शृणु बत्स महामते॥ ८
शृण्वन्तु मुनयक्षेभ्ये कथ्यमानं प्रयाधुना।
मच्छिव्याक्षेव शृण्वन्तु महदाख्यानमुत्तमम्॥ ९

* वहापि नरसिंहपुराणके गत अध्यानोंमें मार्कण्डेयजीका नाम कही नहीं आया है। अतः 'अहमने बहले यह मृत्युहि किया था—(लक्ष्मीन् सूतांत्रं पुरा)' इत्यादि कथाको कोई संबंध नहीं लगता होता, तब्बीं प्रथम अध्यानके वैद्यवेष्य मनोकम्भे इस वार्ताकी शून्यता निलंबिती है कि भरद्वाजजीने मूलजीके मूलसे पहले 'वाराहोमस्तेत्' सूती थे, उभके बाद कहोने 'नरसिंहसंहिता' मुनेको उच्छा प्रकट को। एव शूलभोगे 'नरसिंहसंहिता' शूलाना आवश्य किया था। अतः यह अनुभव संरक्षण जा सकता है कि वाराहोमसंहिता-व्रतके प्रशंसनमें भरद्वाजजीको शूलजीके मूलसे मार्कण्डेयजीके मूलम विजय करते हुए इतिहासको जोड़े मूलना प्राप्त हुई हो, विसका स्मरण इसीपर यही दिलासा है।

श्रीभरद्वाजजी बोले—सूतजी! मार्कण्डेयमुनिने मृत्युको कैसे पराजित किया? वह मुझे बताइये। आपने पहले यह सूचित किया था कि वे मृत्युपर विजयी हुए थे॥ १॥

सूतजी बोले—भरद्वाजजी! इस महान् पुराण इतिहासको आप और ये सभी ऋषि सुनें, मैं कह रहा हूँ। अथवा पर्वत कुरुक्षेत्रमें व्यासपोतपर, एक गुन्दर आश्रममें रात्र तथा जप आदि समाप्त करके व्यासासनपर बैठे हुए और हित्यभूत चुनियोंसे पिरे हुए मुनिवर महर्षि कृष्णद्वायामनसे, जो बेद और वेदार्थकि तत्त्वदेवता तथा सम्पूर्ण शास्त्रकि विशेषहि थे, परम धर्मात्मा शुक्रदेवजीने हाथ जोड़ उन्हें यथोचितहस्तसे प्रणाम कर इसी विषयको जाननेके लिये प्रश्न किया था, जिसके लिये कि इन पुनियोंके निकट आप पुण्यतीर्थनिवासों नृसिंहधरने मूड़ासे पूछा है॥ २—६॥

श्रीशुकदेवजी बोले—पिताजी! मार्कण्डेय मुनिने मृत्युपर कैसे विजय पायी? वह कथा कहिये। इस समय मैं आपसे यही मुनिना चाहता हूँ॥ ७॥

व्यासजी बोले—महामते पुत्र! मार्कण्डेय शुभिने विस उक्तार मृत्युपर विजय पायी, वह तुमसे कहता हूँ, सुनो। मूलसे छहे नामेवाले इस महान् एवं उत्तम उपायज्ञानको ये सभी मुनि और मेरे शिष्यगण भी सुनें।

* वहापि नरसिंहपुराणके गत अध्यानोंमें मार्कण्डेयजीका नाम कही नहीं आया है। अतः 'अहमने बहले यह मृत्युहि किया था—(लक्ष्मीन् सूतांत्रं पुरा)' इत्यादि कथाको कोई संबंध नहीं लगता होता, तब्बीं प्रथम अध्यानके वैद्यवेष्य मनोकम्भे इस वार्ताकी शून्यता निलंबिती है कि भरद्वाजजीने मूलजीके मूलसे पहले 'वाराहोमस्तेत्' सूती थे, उभके बाद कहोने 'नरसिंहसंहिता' मुनेको उच्छा प्रकट को। एव शूलभोगे 'नरसिंहसंहिता' शूलाना आवश्य किया था। अतः यह अनुभव संरक्षण जा सकता है कि वाराहोमसंहिता-व्रतके प्रशंसनमें भरद्वाजजीको शूलजीके मूलसे मार्कण्डेयजीके मूलम विजय करते हुए इतिहासको जोड़े मूलना प्राप्त हुई हो, विसका स्मरण इसीपर यही दिलासा है।

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्नो मृकण्डुर्नाम वै सुतः ।
 सुमित्रा नाम वै पल्ली मृकण्डोस्तु महात्मनः ॥ १०
 धर्मज्ञा धर्मनिरता पतिशुश्रूषणे रता ।
 तस्यां तस्य सुतो जातो माकंण्डेयो महामतिः ॥ ११
 भृगुपौत्रो महाभागो बालत्वेऽपि महामतिः ।
 ववृथे वाङ्मनो वालः पित्रा तत्र कृतक्रियः ॥ १२
 तस्मिन् वै जातमात्रे तु आगमी कद्धिदद्वर्षीत् ।
 वर्णे द्वादशमे पूर्णे मृत्युरस्य भविष्यति ॥ १३
 श्रुत्वा तन्मातृपितरी दुःखितौ तौ व्यभूत्वतुः ।
 विद्युत्यमानहदयौ तं निरीक्ष्य महामते ॥ १४
 तथापि तस्मिता तस्य यत्नात् काले क्रियां ततः ।
 चकार सर्वा मेधावी उपर्नीतो गुरोगुहे ॥ १५
 वेदानेवाभ्यसन्नास्ते गुरुशुश्रूषणोद्यतः ।
 स्वीकृत्य वेदशास्त्राणि स पुनर्गुहमागतः ॥ १६
 मातापितृश्रूपस्कृत्य पादयोर्विनयान्वितः ।
 तस्थी तत्र गुहे धीमान् माकंण्डेयो महामुनिः ॥ १७
 तं निरीक्ष्य महात्माने सतप्रज्ञं च विचक्षणम् ।
 दुःखितौ तौ भृशं तत्र तन्मातृपितरी शुचा ॥ १८
 ती हृष्ट्वा दुःखमापन्नी माकंण्डेयो महामतिः ।
 उवाच वचने तत्र किमध्ये दुःखमीहशम् ॥ १९
 सदैतत् कुरुथे यातस्तातेन सह धीमता ।
 वक्तुमहंसि दुःखस्य कारणं पम पृच्छतः ॥ २०
 इत्युक्ता तेन पुत्रेण माता तस्य महात्मनः ।
 कथयामास तत्सर्वमागमी यदुवाच ह ॥ २१
 तच्छ्रुत्वासौ मुनिः प्राह मातरं पितरं पुनः ।
 पित्रा साधी त्वया मातरं कार्यं दुःखमण्वपि ॥ २२
 अपनेव्यामि भो मृत्युं तपसा नात्र संशयः ।
 यथा चाहं चिरायुः स्यां तथा कुर्यामहं तपः ॥ २३
 इत्युक्त्वा ती समाश्चास्य पितरी वनप्रभ्यगात् ।
 वक्षीवटं नाम वनं नानाश्रूपिणिषेवितम् ॥ २४
 तत्रासी मुनिभिः साधीमासीनं स्वपितामहम् ।
 भृगुं ददर्श धर्मज्ञं माकंण्डेयो महामतिः ॥ २५

भृगुनीके उनको पत्री रुषातिके गर्भसे 'मृकण्डु' नामक एक पुत्र हुआ। महात्मा मृकण्डुकी पत्री सुमित्रा हुई। वह धर्मको जाननेवाली, धर्मपरायणा और पतिकी सेवामें लगी रहनेवाली थी। इसीके गर्भसे मृकण्डुके पुत्र मेधावी माकंण्डेयजी हुए। ये भृगुके पीत्र महाभाग माकंण्डेय वचनमें भी बड़े बुद्धिमान् थे। पिताके द्वारा जातकर्म आदि संस्कार कर देनेपर माँ-बापके लाइसे बालक माकंण्डेयजी क्रमशः बढ़ने लगे ॥ ८—१८ ॥

उनके जन्म लेते ही किसी भविष्यवेत्ता ज्योतिषीने यह कहा था कि 'बारहवीं वर्षे पूर्ण होते ही इस बालकको मृत्यु हो जायगी।' वह सुनकर उनके माता-पिता बहुत ही दुःखी हुए। महामते! उन्हें देखा-देखकर उन दोनोंका हृदय व्यथित होता रहता था, तथापि उनके पिताने उनके नामकरण आदि सभी संस्कार किये। तत्पश्चात् पेधाली बालक माकंण्डेय गुरुके घर ले जाये गये। यहाँ उपर्युक्त उपकरण-संस्कार हुआ। वहाँ वे गुरुकी सेवामें तप्तपर रहकर वेदाभ्यास करते हुए ही रहने लगे। वेदाभ्यासीका यथावृत्त अध्ययन करके वे पुनः अपने घर लौट आये। घर आनेपर बुद्धिमान् महामुनि माकंण्डेयने विनयपूर्वक नाता-पिताके उपरोक्ते शीश सुकाया और तबसे वे आपर ही रहने लगे ॥ १९—२४ ॥

तुकटैव । उस समय उन परम बुद्धिमान् महात्मा एवं विद्वान् पुत्रको देखकर माता पिता शोकसे बहुत ही दुःखी हुए। उन्हें दुःखी देखकर महामति माकंण्डेयजीने कहा—'मैं! तुम बुद्धिमान् पिताजीके साथ क्यों इस प्रकार निरन्तर दुःखी रहा करती हो? मैं पूछता हूँ मुझसे अपने दुःखका कारण बतालाओ।' अपने पुत्र माकंण्डेयजीके इस प्रकार पूछनेपर उन महात्माकी माताने, ज्योतिषी जी कुछ कह गया था, वह सब कह सुनाया। वह सुनकर माकंण्डेयमुनिने माता-पितासे कहा—'मैं! तुम और पिताजी लक्षिक भी दुःख न मानो। मैं तपस्याके द्वारा अपनी मृत्युको दूर हटा दूँगा, इसमें संशय नहीं है। मैं ऐसा तप करूँगा, जिससे चिरजीवी हो सकूँ।' १८—२५ ॥

इस प्रकार कहकर, माता-पिताको आशासन देकर, वे अनेक ऋषियोंसे सुसेवित 'वल्लीश्वर' नामक बनाये। वहाँ पहुँचकर महामति माकंण्डेयजीने मुनियोंके

अभिवाद्य यथान्यायं मूर्नीश्चैव स धार्मिकः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तस्थौ तत्पुरतो दमी॥ २६
गतायुं ततो दृष्ट्वा पौत्रं बालं महामतिः।
भृगुराह महाभागं मार्कण्डेयं तदा शिशुम्॥ २७
किमागतोऽसि पुत्रात्र पितुस्ते कुशलं पुनः।
मातुश्च बान्धवानां च किमागमनकारणम्॥ २८
इत्येवमुन्तो भृगुणा मार्कण्डेयो महामतिः।
उवाच सकलं तस्मै आदेशिवचनं तदा॥ २९
पौत्रस्य चचने श्रुत्वा भृगुस्तु पुनरब्द्वात्।
एवं सति महाबुद्धे किं त्वं कर्म चिकीर्षसि॥ ३०

मार्कण्डेय उक्ताच

भूतापहारिणं मृत्युं जेतुमिच्छापि साम्प्रतम्।
शरणं त्वा प्रपत्त्रोऽस्मि तत्रोपायं चदस्व चः॥ ३१

भृगुरुकाश

नारायणमनाराध्य तपसा महता सुतः।
को जेतुं शक्वन्यामृत्युं तस्मात्तं तपसाचर्चय॥ ३२
तमनन्नमजं विष्णुमच्युतं पुरुषोन्नमम्।
भक्तप्रियं सुरश्रेष्ठं भवत्या त्वं शरणं चञ्ज॥ ३३
तमेव शरणं पूर्वं गतवाचारदो मुनिः।
तपसा महता वत्स नारायणमनामयम्॥ ३४
तत्प्रसादान्महाभाग नारदो ब्रह्मणः सुतः।
जरां मृत्युं विजित्याशु दीर्घायुवृद्धिं सुखम्॥ ३५
तमृते पुण्डरीकाक्षं नारसिंहं जनादिनम्।
कः कुर्याम्नानबो वत्स मृत्युसन्नानिवारणम्॥ ३६
तमनन्नमजं विष्णुं कृष्णं जिष्णुं श्रियः पतिम्।
गोविन्दं गोपति देवं सततं शरणं चञ्ज॥ ३७
नरसिंहं महादेवं यदि पूजयसे सदा।
वत्स जेतासि मृत्युं त्वं सततं नात्र संशयः॥ ३८

मार्कण्डेय उक्ताच

उक्तः पितामहेनैवं भृगुणा पुनरब्द्वीत्।
मार्कण्डेयो महातेजा विनयात् स्वपितामहम्॥ ३९

साथ शिराजमान अपने पितामह धर्मांत्मा भृगुजीका दर्शन किया। उनके साथ हो अन्य ऋषियोंका भी यथोचित अभिवादन करके धर्मपरायण मार्कण्डेयजी मनोनिग्रहपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर भृगुजीके समक्ष खड़े हो गये। महामति भृगुजीने अपने बालक पौत्र महाभाग मार्कण्डेयको, जिसको आयु प्रायः बीत चुकी थी, देखकर कहा—'वत्स! तुम यहाँ कैसे आये? अपने माता-पिता और बान्धवजनोंका कुशल कहो तथा यह भी बतलाओ कि यहाँ तुम्हारे आनेका क्या कारण है?' भृगुजीके इस प्रकार पूछनेपर महाब्रह्म मार्कण्डेयजीने उनसे उस समय ज्योतिषीको कहो तुझे स्तरी बाल कह सुनायी। पौत्रकी बात सुनकर भृगुजीने पुनः कहा—'महाबुद्ध! ऐसी मिथ्यतमें तुम कीन-सा कर्म करना चाहते हो?'॥ ३४—३०॥

मार्कण्डेयजी बोले—भगवन्! मैं इस समय प्राणिदोक्ष अपहरण करनेकाले मृत्युको जीतसा चाहता हूँ, इसीलिये आपकी शरणमें आया हूँ। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये आप मुझे कोई ठपाय चाहते हैं॥ ३१॥

भृगुजी बोले—पुत्र! यहाँ बड़ी तपस्याके द्वारा भगवान् नारायणकी आराधना किये जिना कौन मृत्युको जीत सकता है? इसलिये तुम तपस्याद्वारा उन्हींका उच्चान्त करो। भक्तोंके प्रियतम और देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ उन अनन्त, अजन्मा, अचूत मुल्योत्तम भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ। बत्ता! पूर्वकालमें नारदमुनि भी महान् तपके द्वारा उन्हीं अनामय भगवान् नारायणकी शरणमें गये थे। महाभाग! ब्रह्मपुत्र नारदजी उन्हींकी कृपासे जहा और मृत्युको शीघ्र ही जीतकर दीर्घायु-हो सुखपूर्वक रहते हैं। पुल! उन कमललोधन नृसिंहस्वरूप भगवान् जलादेनके जिना कौन मनुष्य यहाँ मृत्युकी सत्ताका निवारण कर सकता है? तुम निरन्तर उन्हीं अनन्त, अजन्मा, विजयी, कृष्णवर्ण, लक्ष्मीपति, गोविन्द, गोपति भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ। वत्स! यदि तुम सदा उन महान् देवता भगवान् नरसिंहको पूजा करते रहोगे तो सदा॒के लिये मृत्युपर विजय प्राप्त कर सोगे, इसमें संशय नहीं है॥ ३२—३८॥

व्यासजी बोले—पितामह भृगुके इस प्रकार कहनेपर महान् तेजस्वी मार्कण्डेयजीने उनसे विनयपूर्वक कहा॥ ३९॥

मार्कंण्डेयजी बोले—

आराध्यः कथितस्तात् विष्विर्विशेषवाः प्रभुः ।
कथं कुत्र यथा कार्यमच्युताराधनं गुरो ।
येनासौ मम तुष्टस्तु मूल्युं सद्योऽपनेष्यति ॥ ४० ॥

भृगुलक्षण

तुङ्गभद्रेति विष्वात्मा या नदी सहायत्वं ।
तत्र भद्रवटे यत्प त्वं प्रतिष्ठाप्य केशवम् ॥ ४१ ॥
आराध्य जगत्राथं गन्धपुष्पादिभिः कर्मात् ।
हृदि कृत्वेन्द्रियग्रामे मनः संयम्य तत्पतः ॥ ४२ ॥
हत्पुण्डरीके देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
ध्यायन्नेकमना वत्स द्वादशाक्षरपञ्चमस्त् ॥ ४३ ॥
३० नमो भगवते बासुदेवाय ।
दुर्य यन्व हि जपतो देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥
प्रीतो भवति विष्वात्मा मूल्युं येनापनेष्यति ॥ ४४ ॥

वल्लभ उक्ताच

इत्युक्तस्ते प्रणाम्याथ म जगाम तपोवनम् ॥ ४५ ॥
सह्यपादोद्भवायास्तु भद्रायास्तटमुत्तमम् ।
नानादुपलताकीर्ण नानापुष्पोपशोभितम् ॥ ४६ ॥
गुल्मवेणुलताकीर्ण नानामुनिजनाकुलम् ।
तत्र विष्णुं प्रतिष्ठाप्य गन्धधूपादिभिः कर्मात् ॥ ४७ ॥
पूजयामास देवेशं मार्कंण्डेयो महामुनिः ।
पूजयित्वा हरि तत्र तपस्तेष्ये मुदुष्करम् ॥ ४८ ॥
निराहारो मुनिसतत्र वर्षमेकमतन्दितः ।
मात्रोक्तकाले त्यासत्रे दिने तत्र महापतिः ॥ ४९ ॥
स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथार्चनम् ।
हृदि कृत्वेन्द्रियग्रामं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ ५० ॥
आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा कृत्वासौ प्राणसंयप्तम् ।
अँखारोच्चारणाद्वीमान् हृष्पद्यं स विकासयन् ॥ ५१ ॥
तन्मध्ये गविसोमाग्निमण्डलानि यथाकरम् ।
कल्पयित्वा हरे: पीठं तस्मिन् देशे सनातनम् ॥ ५२ ॥

भगवान् विष्णुको आराध्य तो बतलाया, परंतु मैं उन अचुतको आराधना कहाँ और किस प्रकार कहें? जिससे ये शोष प्रसन्न होकर मेरी मृत्युको दूर कर दें ॥ ५० ॥

भृगुजी बोले—सहायत्वं पर जो 'तुङ्गभद्रा' नामसे विज्ञात नदी है, वहो 'भद्रवट' नामक यूधके नामे जगत्राथ भगवान् केशवको स्थापना कर कर्मात् गन्ध और पुष्प आदिसे उनको पूजा करो। इन्द्रियोंको मनमें निष्पत्ति कर, मनको भी पूर्णतः संयममें रखते हुए एकादशिन हो, 'ॐ नमो भगवते बासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करो और अपने हृदयकमलमें रहु, चक्र, गदा (एवं पद) धारण किये देवेशभर भगवान् विष्णुके इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करता है, उसके ऊपर ये विष्वात्मा प्रसन्न होते हैं। तुम भी इसका जप करो, जिससे प्रसन्न होकर ये तुष्टारो मूल्य दूर कर दें ॥ ४८—५२ ॥

ज्यासजी कहते हैं—गत्स! भृगुजीके इस प्रकार कहनेपर उन्हे प्रणाम करके मार्कंण्डेयजी सहायताकी जाग्रत्ये निकली हुई तुङ्गभद्राके तत्त्वं लटपर विविध प्रकारके युक्त और लक्षाओंमें थे, हुए जान भीतिके पुष्पोंसे मूलोभित, गुल्म, लक्ष और यंसुओंसे व्यास तथा अनेकानेक मुनिजनोंसे पूर्व तपोवनमें गये। यहाँ ये महामुनिने हृदेशभर भगवान् विष्णुकी स्थापना करके कर्मात् गन्ध-पुष्प आदिसे उनको पूजा करने लगे। भगवान्की पूजा करते हुए वहों उन्होंने निराहार राहकर सालभार जल्दन्त दुष्कर तप किया। याताका बतलाया हुआ समय निकट आनेपर उस दिन प्रातःमति मार्कंण्डेयजीने वहाँ स्नान करके पूर्वोक्त धिधिसे विष्णुकी पूजा की और स्वस्तिकालन लौग इन्द्रियममूर्हको मनमें संयम कर विशुद्ध अन्तःकरणसे युक्त हो प्राणायाम किया। फिर ३०कारके उच्चारणमें इदंतकमलको निकासित करते हुए उसके मध्यभागमें कर्मात् गन्ध-पुष्प, वन्दनमा तथा अग्निमण्डलको कल्पना करके भगवान् विष्णुका पीठ निश्चित किया

पीताम्बरथरं कृष्णं शङ्खचक्रगदाधरम्।
भावपृथ्यैः समध्यर्च्य मनस्तस्मिन्निवेश्य च ॥ ५३
ब्रह्मरूपं हरि ध्यायस्ततो मन्त्रमुदीरयत्।
३० नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५४

व्यास उक्ताच

द्वित्येवं ध्यायतस्तस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
मनस्तत्रैव संलग्नं देवदेवे जगत्पती ॥ ५५
ततो यमाज्ञया तत्र आगता यमकिंकरा ।
पाशहस्तास्तु तं नेतुं विष्णुदूतैस्तु ते हताः ॥ ५६
शूलैः प्रहृन्यमानास्तु द्विजं मुक्त्वा यद्युस्तदा ।
वयं निवर्त्य गच्छायो मृत्युरेवागमिष्यति ॥ ५७

विष्णुदूत उक्तुः

यत्र नः स्वामिनो नाम लोकनाथस्य शार्दृणः ।
को यमस्तत्र मृत्युर्वा कालः कलयतां चरः ॥ ५८

व्यास उक्ताच

आगत्य स्वयमेवाह मृत्युः पार्श्वं महात्मनः ।
मार्कण्डेयस्य वधाम विष्णुकिंकरशङ्खया ॥ ५९
तेऽप्युद्याम्याशु मुशलानायसान् विष्णुकिंकरा ।
विष्णवाज्ञया हनिष्यामो मृत्युप्रदोति संस्थिताः ॥ ६०
ततो विष्णवपिंतमना मार्कण्डेयो महापतिः ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा देवदेवं जनादनम् ॥ ६१
विष्णुनैवोदितं यत्तत्त्वोत्रं कर्णो महात्मनः ।
सुभाषितेन मनसा तेन तुष्टाव माधवम् ॥ ६२

भार्कण्डेय उक्ताच

नारायणं सहस्राक्षं परानामं पुरातनम् ।
प्रणतोऽस्मि दूषीकेशं किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६३
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षमनन्तप्रज्ञमव्ययम् ।
केशवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६४
वासुदेवं जगद्योनि भानुवर्णमतीन्द्रियम् ।
दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६५

और उस स्थानपर पीताम्बर तथा शङ्ख, चक्र, गदा भारण करनेवाले सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी भावमय पुष्टोंसे पूजा करके उनमें अपने चित्तको लगा दिया । फिर उन लक्ष्मीवरूप श्रीहरिका ध्यान करते हुए वे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस मन्त्रका जप करने लगे ॥ ५५—५४ ॥

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव ! इस प्रकार ध्यान करते हुए चुदिभान् भार्कण्डेयजीका मन उन देवाभिदेव जगदीश्वरमें लीन हो गया । तदनन्तर यमराजकी आज्ञासे उन्हें ले जानेके लिये हाथोंमें पाश लिये हुए यमदूत वहाँ आये; परंतु भगवान् विष्णुके दूतोंने उन्हें मार भगाया । शूलोंसे मारे जानेपर वे उस समय विप्रवर मार्कण्डेयको छोड़कर भाग जाले और यह कहते गये कि 'हमलोग तो लौटकर चले जा रहे हैं, परंतु अब साक्षात् मृत्युदेव ही पहाँ आयेंगे' ॥ ५५—५६ ॥

विष्णुदूत बोले—जहाँ हमारे स्वामी जगदीश्वर शार्दृण्यवा भगवान् विष्णुका नाम जापा जाता हो, वहाँ उनकी जय विजय है ? यहाँनेवालोंमें क्षेत्र फाल, मृत्यु अथवा यमराज कौन होते हैं ? ॥ ५६ ॥

व्यासजी कहते हैं—यमदूतोंके लौटनेके बाद साक्षात् मृत्युने ही वहाँ आकर उन्हें बमलोक चलनेकी कहा, परंतु विष्णुदूतोंके हासे वे महात्मा मार्कण्डेयके आसपास ही गूमते रह गये; उन्हें स्पर्श करनेका साहस न कर सके । इधर विष्णुदूत भी जीव ही लोहेके मूसल उडाकर खड़े हो गये । उन्होंने अपने मनमें यह निश्चय कर लिया था कि 'आज हमलोग विष्णुकी आज्ञासे मृत्युका वध कर दालेंगे ।' तत्पश्चात् महात्मति मार्कण्डेयजी भगवान् विष्णुमें चित्त लगाये उन देवाभिदेव जनादेनको प्रणाम करते हुए स्तुति करने लगे । भगवान् विष्णुने ही वह सांत्र उन महात्माके कानमें कह दिया । उसी सुभाषित स्तोत्रद्वारा उन्होंने मनोयोगपूर्वक भगवान् लक्ष्मीपतिकी सृति की ॥ ५५—५६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—जो सहस्रों नेत्रोंसे युक्त, इन्द्रियोंके स्वामी, उपरहन पुरुष तथा पश्चानाम (अपनी नाभिसे छालाण्डमय कमलको प्रकट करनेवाले) हैं, उन श्रीनारायणदेवको मैं प्रणाम करता हूँ । मृत्यु मेरा क्या कर सकता ? मैं अनन्त, अजन्मा, अत्रिकारी, गोविन्द, कमलनयन भगवान् केशवको शरणमें आ गया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या कर सकता ? मैं संसारके उत्पत्तिके स्थान, सुकै समान प्रकाशायान, इन्द्रियातीत वासुदेव (सर्वव्यापी देवता) भगवान् दामोदरको शरणमें आ गया हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकता ?

शङ्खचक्रधरं देवं छत्रस्त्रिपणपव्ययम्।
अधोक्षजं प्रपत्रोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६६

वाराहं वामनं विष्णुं नरसिंहं जनादेनम्।
माधवं च प्रपत्रोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६७

पुरुषं पुष्करं पुण्यं क्षेमवीजं जगत्पतिम्।
लोकनाथं प्रपत्रोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६८

भूतात्मानं महात्मानं जगद्योनिपयोनिजम्।
विश्वरूपं प्रपत्रोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६९

सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्।
महायोगं प्रपत्रोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ७०

इत्युदीरितमाकरण्यं स्तोत्रं तस्य महात्मनः।
अपयातसतो मृत्युर्विष्णुदूतैश्च पीडितः ॥ ७१

इति तेन गितो मृत्युर्मार्कं उद्देशेन धीपता।
प्रसत्रे पुण्डरीकाष्ठे नृसिंहं नास्ति दुर्लभम् ॥ ७२

मृत्युञ्जयमिदं पुण्यं मृत्युप्रशमनं शुभम्।
मार्कं उद्देश्यहितार्थाय स्वयं विष्णुरुचाच ह ॥ ७३

य इदं पठते भवत्या त्रिकालं नियतः शुचिः।
नाकाले तस्य मृत्युः स्याद्वरस्याच्युतचेतसः ॥ ७४

हृत्यन्तमध्ये पुरुषं पुराणं
नारायणं शाश्वतमादिदेवम्।
संचिन्त्य सूर्यादिपि राजमानं
मृत्युं स योगी जितवांसदैव ॥ ७५

जिनका स्वरूप अव्यक्त है, जो विकारोंसे रहित है, उन शङ्ख-चक्रधारी भगवान् अधोक्षजकी मैं शरणमें आ गया; मृत्यु मेरा क्या कर लेगा ? मैं वाराह, वामन, विष्णु, नरसिंह, जगत्पति एवं मातृशक्ती शरणमें हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? मैं पवित्र, पुष्कररूप अथवा पुष्कल (पूर्ण) रूप, कल्याणवीज, जगत्-प्रतिपातक एवं लोकनाथ भगवान् पुरुषोत्तमकी शरणमें जा गया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या करेगा ? जो समस्त भूतोंके आत्मा, महात्मा (परमात्मा) एवं जगत्को योगि (उत्पत्तिके स्थान) होते हुए भी स्वयं अयोनिज हैं, उन भगवान् विश्वरूपकी मैं शरणमें आया हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? जिनके सहस्रों मरणके हैं, जो लोकाल्यक स्वरूप हैं, उन महायोगी सनातन देवताओं मैं शरणमें आया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? ॥ ७३—७० ॥

महात्मा मार्कं उद्देश्यके द्वारा उच्चारित हुए उस स्तोत्रको मूनकर विष्णुदूतोऽहारा पीडित हुए मृत्युदेव वहाँसे भाग चले। इस इकार चुदिमान् मार्कं उद्देश्यने मृत्युपर विजय पायी। सच है, कमललोचन भगवान् नृसिंहके प्रसन्न होनेपर कृष्ण भी दुर्लभ नहीं रह जाता। स्वयं भगवान् विष्णुने ही मार्कं उद्देश्यके हितके लिये मृत्युको शान्त जरनेवाले इस परम पावन मङ्गलप्रय मृत्युञ्जय-स्तोत्रका उच्चदेश दिया था। जो नित्य विष्मपूर्वक पवित्रभावसे भक्तिमुख होकर साध, प्राप्ति और मध्याह-सीनों समय इस स्तोत्रका पाठ करता है, भगवान् अच्युतमें विन समानेवाले उस पुरुषका अकालमरण नहीं होता। योगी मार्कं उद्देश्यने अपने हृदय कमलमें सूर्यसे भी अधिक प्रकाशमान सनातन पुराण पुरुष आदिदेव नाशयणका विनाश करके तत्काल मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली ॥ ७४—७५ ॥

इति ओनरेसेंहपुण्याणे मार्कं उद्देश्यमृत्युञ्जये नमः सत्त्वांपूर्वकः ॥ ७३ ॥

इति प्रकार ओनरेसेंहपुण्याणे 'मार्कं उद्देश्यकी मृत्युञ्जय' नामक सत्त्वांपूर्वक अध्याय गुण हुआ ॥ ७५ ॥

आठवाँ अध्याय

मृत्यु और दूतोंको समझाते हुए यमका उन्हें विचारोंके पास जानेसे गेकरा; उनके मैंहसे श्रीहरिके नामकी महिमा सुनकर नमस्कार जीवोंका भगवान्‌को नमस्कार करके श्रीविष्णुके धारमें जाना

अंतर्वार उक्त

**पृथुष्टि किंकराश्रीव विष्णुदृतैः प्रपीडिताः।
स्वराज्ञस्तेऽनु निर्वेशं गत्वा ते चक्रशुभृशम्॥ १**

पृथुष्टि कदं उनुः

शृणु राजन् वचोऽस्माकं तवाग्ने यद् व्रवीमहे ।
त्वदादेशाद्युयं गत्वा मृत्युं संस्थाप्य दूरतः ॥ २
आहृणस्य सर्वीषं च भूगोः पौत्रस्य सत्तम् ।
तं व्यायपानं कपमि देवघेकाग्रमानसम् ॥ ३
गन्तु न शक्तास्तत्पार्थं वयं सर्वे महापते ।
यावत्तायन्धाकायैः पुरुषंमृशलैर्हिताः ॥ ४
वयं निवृत्तास्तद्वीक्ष्य मृत्युस्तत्र गतः पुनः ।
अस्माप्तिर्भृत्यं तत्रायं तैर्नर्मृशलैर्हितः ॥ ५
एवमप्त्र तपानेतुं आहृणं तपसि स्थितम् ।
अशक्ता वयपेषाऽपि मृत्युना सह वै प्रभो ॥ ६
तद्वीहि महाभाग यद्वहु आहृणस्य तु ।
देवं कं व्यायते विष्णुः के वा ते वीर्हता वयम् ॥ ७

लाल उक्त

**इत्पुक्तः किंकरैः सर्वैर्पृथ्युना च महापते ।
व्यायत्वा क्षणं महाब्रुद्धिः प्राह वैवस्वतो यथः ॥ ८**

उन उक्त

शृणवन्तु किंकराः सर्वे पृथ्युश्चान्ये च मे वचः ।
सत्यपेतत्प्रवक्ष्यामि ज्ञाने यद्योगभार्ततः ॥ ९
भूगोः पौत्रो महाभागो माक्षण्डेयो महापतिः ।
स ज्ञात्वाद्यात्मनः कालं गतो मृत्युजिगीयत्वा ॥ १०
भृगुणोनेन पार्गण स तेष्ये परमं तपः ।
हरिमाराघ्य मेधावी जपन् वै द्वादशाक्षरम् ॥ ११

श्रीव्यासजी बोले—विष्णुदूतोंके द्वारा उत्पन्ना पीडिता हुए मृत्युदेव और यमदूत अपने राजा यमके भवनमें जाकर बहुत रोने-बलतपे लगे ॥ १ ॥

मृत्यु और यमदूत बोले—राजन् ! आपके आगे हम जो कुछ कह रहे हैं, हमारे इन वातोंकी आप सुनें । हमलोगोंने आपको आजाके अनुसार यहाँसे जाकर मृत्युको तो दूर छोटा दिखा और स्वयं भृगुके पौत्र ब्राह्मण माक्षण्डेयके समाप्त गये । परंतु मृत्युर्हर्षीशरीरमये । वह उस समय एकाग्रचित्त होकर विस्तो देवताका ध्यान कर रहा था । महामते ! हम सभी लोग उसके पासतक पहुँचने भी यहाँ जाने से कि जहाँ से महाभाग पुरुष मृत्युलये हमें गाने लगे । तब हमलोग तो लौट पड़े, परंतु वह देखकर मृत्युंतर यहाँ फिर पधारे । तब हमें ऊँट-फाटकारकर उन लोगोंने इन्हें भी मृत्युलोगोंसे पारा । प्रभो ! इस प्रकार तपस्यामें सिद्ध हुए उस ब्राह्मणको यहाँतक लानेमें मृत्युसहित हम सब लोग समर्पि न हो सके । महाभाग ! उस ब्राह्मणको जो तप है, उसे आप बलताइये, वह किस देवताका ध्यान कर रहा था और विन लोगोंने हमें पारा, ये कौन से ? ॥ २—३ ॥

व्यायसजी कहते हैं—महामते ! मृत्यु तथा यमस्तु दूतोंके इस प्रकार कहनेपर महाब्रुद्धि सूर्यकुमार यमने छलाभर इच्छा करके कहा ॥ ४ ॥

यम बोले—मृत्यु तथा मेरे अन्य सभी किंकर आज मेरो बत सुनें—योगमार्ग (समाधि)-के द्वारा मैंने इस समय जो कुछ जाना है, यही सच-सच बतला रहा है । भृगुके पौत्र महाब्रुद्धिमान् महाभाग माक्षण्डेयजी आजके दिन अपनी मृत्यु जानकर मृत्युको जीतनेकी इच्छारेते तपोवनमें गये थे । यहाँ उन ब्रुद्धिमान्-भृगुजीके बतलाये हुए मार्गके अनुसार भगवान् विष्णुकी आराधना एवं ददरशकर बन्दका जप करते हुए उत्कृष्ट तपस्या को है ।

एकाग्रेणीव मनसा ध्यायते हृदि केशवम्।
सततं योगयुक्तस्तु स मुनिस्त्र किंकराः ॥ १२
हरिद्व्यानमहादीक्षाबलं तस्य महामुनेः।
नान्यद्वै प्रामकालस्य बलं पश्यामि किंकराः ॥ १३
हृदिस्थे पुण्डरीकाक्षे सततं भक्तवत्सले।
पश्यतं विष्णुभूतं नु को हि स्यात् केशवाश्रयम् ॥ १४
तेऽपि वै पुण्या विष्णोर्वैद्यूयं ताङिता भृशम्।
अत ऊर्ध्वं न गन्तव्यं यत्र वै वैष्णवाः स्थिताः ॥ १५
न चित्रं ताङ्गनं तत्र अहं मन्ये महात्मभिः।
भवतां जीवने चित्रं यक्षेदंतं कृपालुभिः ॥ १६
नारायणपरं विप्रं कस्ते वीक्षितुमुत्सहेत्।
युष्माभिश्च महापापैर्मक्षिण्डेयं हरिप्रियम्।
समानेतुं कृतो यतः समीचीनं न तत्कृतम् ॥ १७
नरसिंहं महादेवं ये नराः पर्युपासते।
तेषां पाञ्चं न गन्तव्यं युष्माभिर्यम शासनात् ॥ १८

त्रिविषय वर्णन

स एवं किंकरानुकूल्या मृत्युं च पुरातः स्थितम्।
यथो निरीक्ष्य च जने नरकस्य प्रपीडितम् ॥ १९
कृपया परया युक्तो विष्णुभक्त्या विशेषतः।
जनस्यानुग्रहार्थाय तेऽनोक्ताङ्ग गिरः श्रुणु ॥ २०
नरके पच्यमानस्य यमेन परिभाषितम्।
किं त्वया नार्थितो देवः केशवः चतोशनाशनः ॥ २१
उदकेनाप्यलाभे तु द्रव्याणां पूजितः प्रभुः।
यो ददाति स्वकं लोकं स त्वया किं न पूजितः ॥ २२
नरसिंहो हृषीकेशः पुण्डरीकनिभेषणः।
स्परणान्मुक्तिदो नृणां स त्वया किं न पूजितः ॥ २३
इत्युक्त्वा नारकान् सर्वान् पुनराह स किंकरान्।
वैवस्वतो यमः साक्षाद्विष्णुभक्तिसमन्वितः ॥ २४
नारदाय स विश्वात्मा प्राहृत्वं विष्णुरब्ध्यः।
अन्येभ्यो वैष्णवेभ्यश्च सिद्धेभ्यः सततं श्रुतम् ॥ २५
तद्वा प्रीत्या प्रवक्ष्यामि हरिवाक्यमनुत्तमम्।
शिक्षार्थं किंकराः सर्वे श्रुणुत प्रणता होरः ॥ २६

दूहो! वे नुनि निरन्तर वोगयुक्त होकर वहाँ एकाग्रचित्तसे अपने हृदयमें केशवका ध्यान कर रहे हैं। किंकरो! उस महामुनिको भगवान् विष्णुके भ्यानकी महादोक्षाका ही बल प्राप्त है; व्योंगि जिसका मरणकाल प्राप्त हो गया है, उसके लिये मैं दूसरा कोई बल नहीं देखता। भक्तवत्सल, कमललोचन भगवान् विष्णुके निरन्तर हृदयस्थ हो जानेपर उस विष्णुस्वरूप भगवच्छरणागत पुरुषको ओर कौन देख सकता है? ॥ १—१४ ॥

वे पुरुष भी, किंहोंने तुम्हें बहुत मारा है, भगवान् विष्णुके ही दूल हैं। आजमे जहाँ वैष्णव हों, वहाँ तुमलोग न जाना। उन महात्माओंके द्वारा तुम्हारा मारा जाना आसार्यकी बात नहीं है। आख्यं तो यह है कि उन दग्धतु महापुरुषोंने तुम्हें जीवित रहने दिया है। भला, नारायणके ध्यानमें तत्पर हुए उस ग्राहणको देखनेका भी साहस कौन कर सकता है? तुम महापापियोंने भगवान्के प्रिय भक्त भार्क्षण्डेयजीको जो वहाँ लानेका प्रयत्न किया है, यह अच्छा नहीं कहिया। आजमे तुमलोग मेरी आज्ञा मानकर उन महात्माओंके रास न जाना, जो महादेव भगवान् नुसिंहको उपासना करते हों। ॥ १५—१८ ॥

श्रीविषयासाजी कहते हैं—सुकृदेव! यमने अपने सामने रहे हुए मृत्युर्देव और दूसीसे इस प्रकार कहकर नरकमें चढ़े हुए योगित्व मनुष्योंको और देखा तथा अत्यन्त कृपा एवं विशेषतः विष्णुभक्तिरे पुक्त होकर नारकीय जीवोंपर अनुष्रव करनेके लिये जो बहाँ कहीं, उन्हें तुम सुनो। नरकमें जानना सहाये हुए जीवोंसे यमने कहा—‘पापसे कष्ट पानेकाले जोश! तुमने क्लेशनाशक भगवान् केशवकी पूजा कर्म नहीं की? पूजन-स्मरणमें द्रव्योंके न मिलनेपर केवल जलमात्रसे भी पूजित होनेपर जो भगवान् पूजको अपना हीकृतक दे रहा है, उनकी पूजा तुमने कर्म नहीं की? कमलके समान हीचर्नोंवाले, नरसिंहरूपधारी जो भगवान् हृषीकेश स्मरणमात्रसे ही मनुष्योंको मुक्ति देनेवाले हैं, उनकी पूजा तुमने कर्म नहीं की?’ ॥ १९—२३ ॥

नरकमें पढ़े हुए जीवोंकि प्रति यों कहकर विष्णुभक्तिरे पुक्त सूर्यनन्दन यमने अपने किंकरोंसे पुनः कहा—‘किंकरो! अदिनासीं विश्वात्मा भगवान् विष्णुने नारदजीसे जैसा कहा था और अन्य वैष्णवों तथा सिद्धोंसे जैसा सदा ही सुना गया है, यह अत्यन्त उत्तम भगवद्वाक्य में प्रसन्न होकर तुम स्वोगोंसे शिक्षाके लिये कह रहा हूँ। तुम सभी भगवान्के रात्रिग्राम होकर सुनो। ॥ २४—२६ ॥

हे कृष्ण कृष्ण कृष्णोति यो मां स्मरति नित्यः।
जलं भित्या यथा पर्यं नरकादुद्धराम्यहम्॥ २७
पुण्डरीकाक्ष देवेश नरसिंह त्रिविक्रम।
त्वामहं शरणं प्राप्त इति यस्तं समुद्दरे॥ २८
त्वां प्रपञ्चोऽस्मि शरणं देवदेव जनादेन।
इति यः शरणं प्राप्तस्तं बलेशादुद्धराम्यहम्॥ २९

व्यास उक्तव्य

इत्युदीरितमाकरणं हरिवाक्यं यमेन च।
नारकाः कृष्णकृष्णोति नरसिंहेति चुकुशुः॥ ३०
यथा यथा हरेनाम्य कीर्तयन्यत्र नारकाः।
तथा तथा हरेभित्तिमुद्भूत्तोऽशूत्रितम्॥ ३१

व्यास उक्तुः

३० नमो भगवते तस्मै केशवाय महात्मने।
यद्वामकीर्तनात् सद्यो नरकाग्निः प्रशाम्यति॥ ३२
भक्तप्रियाय देवाय रक्षाय हरये नमः।
सोकनाथाय शान्ताय यज्ञेशायादिपूर्णये॥ ३३
अनन्तायाप्रपेयाय नरसिंहाय ते नमः।
नारायणाय गुरवे शङ्खचक्रगदाभृते॥ ३४
ब्रह्मप्रियाय महते विक्रमाय नमो नमः।
याराहायाप्रतकर्त्तय ब्रह्मप्रियाय महीभृते॥ ३५
नमो द्युतिमते नित्यं द्वाह्यणाय नमो नमः।
वायनाय बहुज्ञाय ब्रह्मवेदाहृधारिणो॥ ३६
बलिवन्धनदक्षाय ब्रह्मपालाय ते नमः।
विष्णवे सुरनाथाय व्यापिने परमात्मने॥ ३७
चतुर्भुजाय शुद्धाय शुद्धद्रव्याय ते नमः।
जामदग्न्याय रामाय दुष्क्रत्रान्तकारिणो॥ ३८
रामाय रावणान्ताय नमस्तुभ्यं महात्मने।
अस्मानुद्धर गोविन्द पूतिगच्छात्रमोऽस्तु ते॥ ३९

भगवान् कहते हैं—‘हे कृष्ण! कृष्ण!—
इस प्रकार जो मेरा नित्य स्मरण करता है, उसको मैं
उसी प्रकार नरकमें निकाल लेता हूँ, जैसे जलको भेदकर
कमल बाहर निकाल आता है। ‘पुण्डरीकाक्ष! देवेश्वर
नरसिंह! त्रिविक्रम! मैं आपकी शरणमें पड़ा हूँ’—यों जो
कहता है, उसका मैं उदाहर कर देता हूँ। ‘देवाभिनिवेदन!
जनादेन! मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ’—इस प्रकार
जो मेरा शरणागत होता है, उसे मैं कलेशसे मुक्त कर देता
हूँ॥ ३७—३९॥

ब्राह्मणी कहते हैं—वत्स! यमराजके काहे हुए इस
भगवद्वाक्यको सुनकर नरकमें पढ़े हुए जीव ‘कृष्ण!
कृष्ण! नरसिंह!’ इत्यादि भगवत्तामार्पका लोरसे उच्चारण
करने लगे। नारकीय जीव यहाँ ज्यों-ज्यों भगवत्तामार्पका
कीर्तन करते थे, त्यों-ही त्यों भगवद्वाक्यसे युक्त हीते
जाते थे। इस तरह भक्तिभावसे पूर्ण हो चे इस प्रकार
कहने लगे॥ ३०—३१॥

वरकल्पय जीव बोले—‘३५’ विष्णुका नाम कीर्तन
करनेसे भरकको अवाहन लाकाल जात हो जाती है, उन
महात्मा भगवान् वेदज्ञको नमस्कार है। जो यहींके ईश्वर,
अदिद्यूति, शान्तायत्नप और सोसारके स्वामी हैं, उन
भक्तप्रिय, विश्वपालक भगवान् विष्णुको नमस्कार है।
अनन्त, अप्रभेद नरसिंहस्वरूप, रुद्र-चक्र-गदा भारण
करनेवाले, सोकगृह आप श्रीनारायणको नमस्कार है।
वेदोंके श्रिय, महान् एवं विशिष्ट गतिवाले भगवान् को
नमस्कार है। उक्तके अविषय, वेदतत्त्वरूप, पृथ्वीको भारण
करनेवाले भगवान् वाराहको प्रणाम है। ऋषादण्डकुलमें
अवतीर्ण, वेद-वेदाहृतोंके ज्ञाता और अनेक विषयोंका
ज्ञान रखनेवाले कान्तिमान् भगवान् वामनको नमस्कार है।
विलिङ्गे जीवदेवाले, वेदोंके पालक, देवताओंके स्वामी,
व्यापक, परमात्मा आप जामनस्त्रभारी विष्णुभगवान् को
प्रणाम है। त्रुट शत्रियोंका अन्त करनेवाले जमदग्निवन्दन
भगवान् यज्ञुरुदाम्बको प्रणाम है। रावणका वध करनेवाले
आप महारथ गोरामको नमस्कार है। गोविन्द! आपको
बारेकार द्वारा है। आप इस दुर्गायजूर्ण नरकसे हमारा
उद्धर करें॥ ३२—३९॥

व्यास उकाच

इति संकीर्तिं विष्णो नारके भक्तिपूर्वकम्।
 तदा सा नारकी पीडा गता तेषां महात्मनाम्॥ ४०
कृष्णरूपधरः सर्वे दिव्यवस्थाविभूषिताः।
दिव्यगन्धानुलिपाङ्गा दिव्याभरणभूषिताः॥ ४१
 तानारोप्य विमानेषु दिव्येषु हरिपूरुषाः।
 तर्जयित्वा यमभटान् नीतास्ते केशवालयम्॥ ४२
 नारकेषु च सर्वेषु नीतेषु हरिपूरुषैः।
 विष्णुलोके यमो भूयो नमश्क्रेत तदा हरिम्॥ ४३
 यन्नापकीर्तनाद्याता नारकाः केशवालयम्।
 तं नमामि सदा देवं नरसिंहमहं गुरुम्॥ ४४
 तस्य वै नरसिंहस्य विष्णोरमिततेजसः।
 प्रणामं येऽपि कुर्वन्ति तेभ्योऽपीह नमो नमः॥ ४५
इष्टा प्रशान्तं नरकाश्रिमुखं
यन्त्रादि सर्वे विषरीतमत्र।
पुनः स शिक्षार्थमध्यात्मदूतान्
यमो हि बकुं कृतवान् मनः स्यथम्॥ ४६

इति श्रीनरसिंहपुराणे यमराजे नरसिंहस्य उकाचः ॥ ४०—४६
 इस उकाच श्रीनरसिंहपुराणमें 'यमराज' नामक अलौकिक अध्याय शुरू हुआ ॥ ४० ॥

■ ■ ■ नवाँ अध्याय ■ ■ ■

यमाष्टक—यमराजका अपने दूतके प्रति उपदेश

श्रीव्यास उकाच

स्वपुरुषप्रभिवीक्ष्य पाशहस्तं
 वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर मधुसूदनप्रपत्नान्
 प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम्॥ १
अहमरगणार्चितेन धात्रा
 यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः।
हरिगुरुविमुखान् प्रशास्मि भत्यान्
 हरिचरणप्रणतात्रमस्करोमि ॥ २

व्यासजी कहते हैं—‘हुकदेव !’ इस प्रकार नरकमें पढ़े हुए जीवोंने जब भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका कीर्तन किया, तब उन महात्माओंको नरक-चीड़ा तत्काल दूर हो गयी। वे सभी अपने अङ्गोंमें दिव्य गन्धका अनुलेप लगाये, दिव्य वस्त्र और भूषणोंसे विभूषित हो, श्रीकृष्णस्वरूप हो गये। फिर भगवान् विष्णुके किंकर यमदूतोंकी भर्तृता करके उन्हें दिव्य विमानोंपर विटाकर विष्णुभाष्मको ले गये। विष्णुदूतोंद्वारा सभी नरकस्थ जीवोंके विष्णुलोकमें ले जाये जानेपर यमराजने पुनः भगवान् विष्णुको प्रणाम किया। ‘जिनके नामकीर्तनसे नरकमें पढ़े हुए जीव विष्णुभाष्मको छाले गये, उन गुरुदेव नरसिंह भगवान्को मैं सदा प्रणाम करता हूँ। उन अमित तैजस्यी नरसिंहस्वरूप भगवान् विष्णुको जो प्रणाम करते हैं, उन्हें भी मेरा आर-आर नमस्कार है’॥ ४०—४६॥

उय नरकाश्रियोंको शान्त और सभी यन्त्र आदियोंको विपरीत दशामें पढ़े देखकर यमराजने स्वयं ही पुकः अपने दूतोंको शिक्षा देनेके लिये मनमें विचार किया ॥ ४६ ॥

श्रीव्यासजी बोले—अपने किंकरको हाथमें पाश लिये कहाँ जानेको उद्यत देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं—“दूत ! तुम भगवान् मधुसूदनकी शरणमें गये हुए प्रजायोंको छोड़ देना, वैष्णवोंपर मेरा प्रभुत्व नहीं है देवपूजित चहाजीने मुझे ‘यम’ कहकर लोगोंके पुण्य पापका विचार करनेके लिये नियुक्त किया है। जो विष्णु और गुरुसे विमुख हैं, मैं उन्हीं मनुष्योंका शासन करता हूँ। जो श्रीहरिके चरणोंमें शोश झुकानेवाले हैं, उन्हें तो

सुगतिमभिलषापि वासुदेवा-
दहमपि भागवते स्थितान्तरात्मा ।
मधुवधवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः
प्रभवति संयमने ममापि कृष्णः ॥ ३
भगवति विमुखस्य नास्ति सिद्धि-
विषयमपृतं भवतीति नेदपस्ति ।
वर्षशतमपीह पच्यमाने
व्रजति न काञ्छनतामयः कदाचित् ॥ ४
नहि शशिकलुपच्छविः कदाचिद्-
विरपति नो रवितामूर्पति चन्द्रः ।
भगवति च हरावनन्यवेता
भृशपलिनोऽपि विराजते मनुष्यः ॥ ५
महदपि सुविचार्य लोकतत्त्वं
भगवदुपासितमृते न सिद्धिरस्ति ।
सुरगुरुसुहृदप्रसाददी तौ
हरिचरणी स्मरतापवर्गहितोः ॥ ६
शुभगिदमुपलभ्य मानुषत्वं
सुकृतशतेन वृथेन्द्रियार्थहितोः ।
रमयति कुरुते न भोक्ष्यमार्गं
दहयति चन्द्रनमाशु भस्महेतोः ॥ ७
मुकुलितकरकुड्डमलैः सुरेन्द्रैः
सततनमस्कृतपादपद्मजो यः ।
अविहतगतये सनातनाय
जगति जनि हरते नमोऽग्रजाय ॥ ८
यमाष्टकमिदं पुण्यं पठते यः श्रृणोति वा ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ९
इतीदमुक्तं यमवाक्यमपृतमं
मयाधुना ते हरिभक्तिवद्वन्म् ।
पुनः प्रवक्ष्यामि पुरातनीं कथां
भृगोस्तु पीत्रेण च या पुरा कृता ॥ १०

मैं स्वयं ही प्रणाम करता हूँ। भगवद्गत्कोंके चिन्तन एवं
स्मरणमें अपना मन लगाकर मैं भी भगवान् यासुदेवसे
अपनो सुगति चाहता हूँ। मैं मधुसूदनके वशमें हूँ,
स्वतन्त्र नहीं हूँ। भगवान् विष्णु मेरा भी निष्पत्रण
करनेमें समर्थ हूँ। जो भगवान् से विमुख है, उसे कभी
सिद्धि (मुक्ति) नहीं प्राप्त हो सकती; विषय अमृत हो
जाय, ऐसा कभी सम्भव नहीं है; लोहा सैकड़ों तथाँतक
आगमें तपाया जाय, तो भी कभी सोना नहीं हो सकता;
चन्द्रमाकी कलाङ्कित कानि कभी निष्करणहुँ नहीं हो
सकती; वह कभी सूर्यके समान प्रकाशमान नहीं हो
सकता; परंतु जो अनन्यवित्त होकर भगवान् विष्णुके
पितृतनमें लगा है, वह मनुष्य अपने शरीरले अत्यन्त
मतिन होनेपर भी अहीं शोभा पाता है। महान् लोकतत्त्वका
अमृती हरह विजार करनेपर भी यही निश्चित होता है
कि भगवान्की उपासनाके द्विन विद्धि नहीं प्राप्त हो
सकती; इत्तलिये देवगुरु यहस्मातिके ऊपर सुदृढ़ अनुकरण
करनेवाले भगवचरणोंका तुमलोग मोक्षके लिये स्वरण
करते रहो। जो तीर्ण सैकड़ों पूजयोकि पहलस्वरूप इस
सुन्दर मनुष्य-शरीरको पाकर भी व्यथं विषयसुखोंमें
रमण करते हैं, पौष्ट्रपथका अनुसरण नहीं करते, तो
मानो राघवके लिये जल्दी-जल्दी चन्दनकी लकड़ीको
फूँक लें हैं। जड़े-जड़े देवेशर हाथ जोड़कर मुकुलित
कर पद्मज-कोषद्वारा जिन भगवान्के चरणामविन्दोंको प्रणाम
करते हैं तथा जिनकी गति कभी और कहीं भी प्रतिहत
नहीं होती, उन भवजन्मनाशक एवं सबके आप्रज सनातन
पुरुष भगवान् विष्णुको नमस्कार है'' ॥ १-८ ॥

श्रीव्यामर्जी कहते हैं—इस पवित्र यमाष्टकको जो
पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो
विष्णुलोकको चलता जाता है। भगवान् विष्णुकी भक्तिको
बढ़ानेवाला यमराजका यह उत्तम वचन मैंने इस समय
तुमसे कहा है; अब पुनः उसी पुरानी कथाको अर्थात्
भृगुके पीत्र मार्कण्डेयजीने पूर्वकालमें जो कुछ किया
था, उसको कहूँगा ॥ ९-१० ॥

दसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयका विवाह कर वेदशिराको उत्पन्न करके प्रथागमें अक्षयवटके नीचे तप एवं भगवान्‌की स्तुति करना; फिर आकाशवाणीके अनुसार स्तुति करनेपर भगवान्‌का उन्हें आशीर्वाद एवं वरदान देना तथा मार्कण्डेयजीका क्षीरसागरमें जाकर पुनः उनका दर्शन करना

श्रीमात् उत्तम

जित्वैवमात्मनो मृत्युं तपसा शंसितवतः।
स जगाम पितुर्गेहं मार्कण्डेयो महामतिः॥ १
कृत्वा विवाहं धर्मेण भृगोर्बाक्यविशेषतः।
स वेदशिरसं पुत्रमृत्याद्य च विधानतः॥ २
इष्ट्वा यज्ञेस्तु देवेशं नारायणमनामयम्।
शाद्वेन तु पितृनिष्ट्वा अन्नदानेन चातिथीन्॥ ३
प्रयागमासाद्य पुनः स्नान्वा तीर्थे गरीयसि।
मार्कण्डेयो महातेजास्तेष्ये वटतले तपः॥ ४
यस्य प्रसादेन पुरा जित्यान् मृत्युमात्मनः।
तं देवं ब्रह्मिच्छन् यः स तेष्ये परमं तपः॥ ५
वायुभक्षिर्कालं तपसा शोषयस्तनुम्।
एकदा तु महातेजा मार्कण्डेयो महामतिः॥ ६
आराध्य माधवं देवं गन्धपुष्यादिभिः शुभे।
अये व्यग्रमनाः स्थित्वा हृदये तमनुस्परन्।
शङ्खचक्रगदापाणिं तुष्टव गरुडध्वजम्॥ ७

मार्कण्डेय उत्तम

नं नृसिंहं नरनाथमच्युतं
प्रलम्बवाहुं कमलायतेक्षणम्।
क्षितीश्वरर्घितपादपङ्कजं
नमामि विष्णुं पुरुषं पुरातनम्॥ ८
जगत्पतिं श्रीरसमुद्रमन्दिरं
तं शाङ्कपाणिं मुनिवृन्दवन्दितम्।
क्षियःपति श्रीधरमीशमीश्वरं
नमापि गोविन्दमनन्तवर्घसम्॥ ९

श्रीव्यासजी कहते हैं—शुकदेव! इस प्रकार तपस्याद्वाय अपनी मृत्युको जीतकर प्रशंसित ग्रतवाले महायुद्धिमान् मार्कण्डेयजी पितोंके धर गये। वहाँ भृगुजीके विशेष आश्रयसे धर्मपूर्वक विवाह करके उन्होंने विधिके अनुसार 'वेदशिर' नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। तत्पक्षात् निरामय (निविंकार) देवेशर भगवान् नारायणका यज्ञोद्घारा यज्ञ करते हुए उन्होंने आद्वासे पितोंका और अमदानसे अतिविद्योंका भूजन किया। इसके बाद पुनः प्रथागमें जाकर यहाँके नेतृत्व मीर्त्यु लिपेणीमें स्नान करके महातेजस्वी मार्कण्डेयजी अक्षयवटके नीचे तप करने लगे। जिनका कृपाप्रसादसे उन्होंने पूर्वीकालमें मृत्युपर विजय प्राप्त की थी, उन्होंने देवाधिदेवके दर्शनकी इच्छासे उन्होंने उत्कृष्ट तपस्या आरम्भ की। दीर्घकालतक केवल वायु पौकर तपस्याद्वारा अपने शरीरको सुखाते हुए वे महातेजस्वी महायुद्धिमान् मार्कण्डेयजी एक दिन गन्ध-पुष्य आदि शुभ उपकरणोंसे भगवान् वैष्णोमीष्वरकी आराधना करके उनके सम्पुर्ण स्वस्थाचित्तसे खड़े हो गये और हृदयमें उन्होंने शङ्ख-चक्र-गदाधारी गरुडध्वज भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए उनकी स्तुति करने लगे॥ १—७॥

मार्कण्डेयजी बोले—जो भगवान् श्रेष्ठ नर, नृसिंह और नरनाथ (मनुष्योंके स्वामी) हैं, जिनको भुजाएं लक्ष्मी हैं, वे त्रि प्रफुल्ल कमलके समान विशाल हैं तथा चरणाविन्द असंख्य भूपतियोंद्वारा पूजित हैं, उन पुरातन पुरुष भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जो संसारके पालक हैं, क्षीरसमुद्र जिनका निवास स्थान है, जो हाथमें शार्ङ्गधनुष धारण किये रहते हैं, मूर्निवृन्द जिनकी बन्दना करते हैं, जो लक्ष्मीके पति हैं और लक्ष्मीको निरन्तर अपने हृदयमें धारण करते हैं, उन सर्वसमर्थ, सर्वेष्वधर, अनन्त तेजोमय भगवान् गोविन्दको मैं प्रणाम करता हूँ।

अजं वरेण्यं जनदुःखनाशनं
गुरुं पुराणं पुरुषोत्तमं प्रभुम्।
सहस्रसूर्यद्युतिमन्तमच्युतं
नमामि भक्त्या हरिमाद्यमाधवम्॥ १०

पुरस्कृतं पुण्यवतां परां गतिं
क्षितीश्वरं लोकपतिं प्रजापतिम्।
परं पराणामपि कारणं हरिं
नमामि लोकत्रयकर्मसाक्षिणम्॥ ११

भोगे त्वननास्य पयोदधीं सुरः
पुरा हि शेते भगवाननादिकृत्।
क्षीरोदचीचीकणिकाम्बुनोक्षितं
तं श्रीनिवासं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥ १२

यो नारसिंहं बपुरास्थितो महान्
सुरो मुरारिर्घुकेटभान्तकृत्।
समस्तलोकार्तिहरं हिरण्यकं
नमामि विष्णुं सततं नमामि तम्॥ १३

अनन्नमव्यक्तमतीन्द्रियं विभुं
स्वे स्वे हि रूपे स्वयमेव संस्मिताम्।
योगेश्वरेरेव सदा नप्रस्कृतं
नमामि भक्त्या सततं जनादेनम्॥ १४

आनन्दपेकं विसर्जं विदात्मकं
बुद्धालयं योगिभिरेव पूजितम्।
अणोरणीयांसपविद्विमक्षयं
नमामि भक्तप्रियमीश्वरं हरिम्॥ १५

श्रीविष्णुवत् उक्तव्य

इति स्तोत्रावसाने तं बागुवाचाशरीरिणी।
मार्कण्डेयं महाभागं तीर्थेऽनु तपसि स्थितम्॥ १६

किमप्य विलश्यते द्वाहस्त्वया यो तैव दृश्यते।
माधवः सर्वतीर्थेषु बावत्र स्वानमाचरेः॥ १७

इत्युक्तः सर्वतीर्थेषु स्वात्मोवाच महाप्रतिः।
कृत्वा कृत्वा सर्वतीर्थे स्नानं चैव कृतं खवेत्।
तद्वद त्वं प्रम प्रीत्या योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥ १८

जो अजन्मा, सबके वरणीय, जन-समुदायके दुःखोंका नाश करनेवाले, गुरु, पुराण-पुरुषोत्तम एवं सबके स्वामी हैं, सहस्रों सूर्योंके स्वाम जिनकी कलिति है तथा जो अच्युतस्वरूप हैं, उन आदिमाधव भगवान् विष्णुको मैं भक्तिभावसे प्रणाम करता हूँ। जो पुण्यात्मा भक्तोंकी ही समझ समुण्ड-साकार रूपसे प्रकट होते हैं, सबको परमात्मा है, भूमि, लोक और प्रजाओंके पाति हैं, 'पर' अर्थात् कारणोंकी भी परम कारण हैं तथा तीनों लोकोंके कर्मोंकी साक्षी हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं नप्रस्कार करता हूँ। जो जनादिं विधाता भगवान् दूरवाहालमें क्षीरसमुद्रके भीतर 'जनन' नामक शैवनामके शरीररूपी शश्वापर सोये थे, क्षीरसिंहसुको तरङ्गोंके जलकणोंसे अभिषिक्त होनेवाले उन लक्ष्मीनिवास भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने वरसिंहस्वरूप धारण किया है, जो महान् देवता है, मुर दैत्यके शत्रु हैं, मधु तथा कैटभ नामक दैत्योंका अन्त करनेवाले हैं और समस्त लोकोंको पीड़ा दूर करनेवाले एवं हिरण्यगर्भ हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा नप्रस्कार करता हूँ। जो अनन्त, अच्युत, इन्द्रियातीत, सर्वज्ञापी और अपने विभिन्न कर्मोंमें स्वयं ही प्रतिषिद्ध है तथा योगेश्वराय जिनके चरणोंमें सदा ही समस्त क्षुकारों हैं, उन भगवान् जनादेनको मैं भक्तपूर्वक निरन्तर प्रणाम करता हूँ। जो आनन्दमय, एक (अद्वितीय), हजारगुणसे रहित, ज्ञानस्वरूप, खन्दा (लक्ष्मी) के धाम और योगियोंद्वारा पूजित हैं, जो अणुसे भी अस्थन अणु और बृद्धि तथा क्षयसे शून्य है, उन भक्तप्रिय भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ८—१५॥

श्रीविष्णुमध्यी कहते हैं—यत्स! इस प्रकार स्तुति समाप्त होनेपर उस तीर्थोंमें तपस्या करनेवाले उन महाभाग मार्कण्डेयजीसे आकाशबाणीने कहा—'ज्ञदम्! यदों कलेश ठटा रहे हो, तुम्हें जो भगवान् माधवका दर्शन नहीं हो रहा है, वह तपोत्तम जयतक तुम समस्त तीर्थोंमें स्नान नहीं कर लेते' उसके यों कहनेपर महाभृति मार्कण्डेयजीने समस्त तीर्थोंमें स्नान किया (परंतु यदि फिर भी दर्शन नहीं हुआ, तब उन्होंने आकाशबाणीको लक्ष्य करके कहा—) 'जो कार्य करनेसे समस्त तीर्थोंमें स्नान करना सफल होता है, वह कार्य मुझे प्रसन्न होकर आप बतलाइये। आप जो भी हों, आपको नप्रस्कार है'॥ १६—१८॥

वागुवाच

स्तोत्रेणानेन विश्रेन्द्र स्तुहि नारायणं प्रभुम्।
नान्यथा सर्वतीर्थानां फलं प्राप्यसि सुद्रवत् ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उकाच

तदेवाख्याहि भगवन् स्तोत्रं तीर्थफलप्रदम्।
येन जसेन सकलं तीर्थस्त्रानफलं लभेत् ॥ २० ॥

वागुवाच

जय जय देवदेव जय माधव केशव।
जय पद्मपलाशाक्ष जय गोविन्द गोपते ॥ २१ ॥
जय जय पचानाभ जय वैकुण्ठ वामन।
जय पचा हुषीकेश जय दामोदराच्छ्रुत ॥ २२ ॥
जय पचोभ्यरानन्त जय लोकगुरो जय।
जय शङ्खगदापाणी जय भूधरमूकर ॥ २३ ॥
जय यज्ञेश वाराह जय भूधर भूमिप।
जय योगेश योगज्ञ जय योगप्रवर्तक ॥ २४ ॥
जय योगप्रवर्तक जय धर्मप्रवर्तक।
कृतप्रिय जय जय यज्ञेश यज्ञाङ्क जय ॥ २५ ॥
जय बन्दितसद्दिव्विज जय नारदसिद्धिद।
जय पुण्यवतां गेह जय वैदिकभाजन ॥ २६ ॥
जय जय चतुर्भुज(श्री) जयदेव जय दत्यभयावह।
जय सर्वज्ञ सर्वात्मन् जय शंकर शाश्वत ॥ २७ ॥
जय विष्णो महादेव जय नित्यमधोक्षज।
प्रसादे कुरु देवेश दर्शयादा स्वकां तनुम् ॥ २८ ॥

व्यास उकाच

इत्येवं कीर्तिते तेन मार्कण्डेयेन धीमता।
प्रादुर्बूब भगवान् पीतवासा जनार्दनः ॥ २९ ॥
शङ्खचक्रगदापाणि: सर्वाभरणभूषितः।
तेजसा द्योतयन् सर्वा दिशो विष्णुः सनातनः ॥ ३० ॥
तं हृष्ट्वा सहसा भूमी चिरप्रार्थितदर्शनम्।
प्रयातः शिरसा बश्यो भक्त्या स भृगुनन्दनः ॥ ३१ ॥
निपत्योत्पत्य च पुनः पुनः साङ्कुं महामनाः।
प्रवद्धसम्पुटकरो गोविन्दं पुरतः स्तुवन् ॥ ३२ ॥

आकाशवाणीने कहा—विश्रेन्द ! सुव्रत ! इस स्तोत्रसे प्रभुवर नारायणका स्तवन करो ; और किसी उपायसे तुम्हें समस्त तीर्थोंका फल नहों प्राप्त होगा ॥ १९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—भगवन् ! जिसका जप करनेसे तीर्थस्त्रानका सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है, वह तीर्थफल-दायक न्योन कोन सा है ? उसे ही मुझे बताइये ॥ २० ॥

आकाशवाणीने कहा—देवदेव ! माधव ! केशव ! आपकी जय हो, जय हो । आपके नेत्र प्रपुत्रल कमलदलके समान शोभा पाते हैं । गोविन्द ! गोपते ! आपकी जय हो, जय हो । पद्मनाभ ! शङ्खुष्ठ ! वामन ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो । पद्मस्वरूप हृषीकेश ! आपकी जय हो । दामोदर ! अच्छुत ! आपकी जय हो । लक्ष्मीपते । अनन्त ! आपकी जय हो । नोकनुगो । आपकी जय हो, जय हो । शङ्ख और गदा प्रसाद करनेवाले तथा वृत्तीको उठानेवाले भगवान् वाराह ! आपको जय हो, जय हो । यज्ञेश्वर ! पृथ्वीका धारण तथा पोषण करनेवाले वायुह । आपको जय हो, जय हो । योग और भूमि के प्रत्यर्थक । आपकी जय हो, जय हो । कर्मप्रिय ! यज्ञेश्वर ! यज्ञाङ्क ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो । उत्तम ब्रह्मणोंकी बन्दन करने—उन्हें सम्मान देनेवाले देवता । आपको जय हो और नारदजीको सिद्धि देनेवाले परमेश्वर । अनन्तको जय हो । पुण्यवानेवि आश्रय, वैदिक वाणीके चरम तात्पर्यभूत एवं लंबोदाच कर्मोंके परम आश्रय नारायण ! आपको जय हो, जय हो । चतुर्भुज ! आपको जय हो । दैत्योंको चर्य देनेवाले श्रीजयदेव । आपको जय हो, जय हो । सर्वज्ञ ! महाव्याप्तन् । आपकी जय हो । सनातनदेव । कल्पयणकारी भगवन् । आपकी जय हो, जय हो । महादेव ! विष्णो ! अधोक्षज । देवेश ! आप मुमुक्षुप्र प्रसन्न होइये और आज मुझे अपने स्वरूपका उत्पत्त दर्शन कराइये ॥ २१—२८ ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—शुकदेव ! आकाशवाणीके कथनानुसार जब शुक्लिमान् मार्कण्डेयजीने इस प्रकार भगवत्प्राणोंका जीर्णन किया, तब पीताम्बरधारी भगवान् जनार्दन वहाँ प्रकट हो गये । वे सनातन भगवान् विष्णु हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा लिये, समस्त आभूतोंसे भूषित हो अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे । भूमुखेशको आनन्दित करनेवाले मार्कण्डेयजीने भगवान्को, जिनका दर्शन चिरकालसे प्रार्थित था, सहसा स्थाने प्रकट हुआ देख, भक्तिविवश हो, भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम किया । भूमिपर गिर-गिरकर बाँधार साण्ठेग प्रणाम करके खड़े हो, महामना मार्कण्डेय दोनों हाथ जोड़ सामने उपस्थित हुए भगवान्की इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ २९—३२ ॥

मार्कण्डेय उक्तच

नमोऽस्तु ते देवदेव महाचित्त महाकाव्य
महाप्राञ्छ महादेव महाकीर्त्ते ब्रह्मेन्द्रचन्द्र-
रुद्रार्चितपादयुगल श्रीपण्डितस्त सम्पर्दितदैत्य-
देह ॥ ३३ ॥ अनन्तभोगशयनार्पितसर्वाङ्ग सनक-
सनन्दनसनत्कुमाराण्योगिभिर्नासाग्रन्यस्तलोचनै-
रनवरतमभिचिन्तिमोक्षतत्त्व ।

गन्धर्व-

विद्याधरयक्षकिं नरकिम्पुरुषेरहरहोगीयमानदिव्य-
यशः ॥ ३४ ॥ नृसिंह नारायण पद्मनाभ गोविन्द
गोवर्द्धनगुहानिवास योगीश्वर देवेश्वर जलेश्वर
महेश्वर ॥ ३५ ॥ योगधर महामायाधर विद्याधर
यशोधर कीर्तिधर त्रिगुणनिवास त्रितत्त्वधर
प्रेताग्निधर ॥ ३६ ॥ त्रिवेदभाकु त्रिनिकेत त्रिसुपर्ण
त्रिदण्डधर ॥ ३७ ॥ त्रिग्रामेषाभार्चितद्युतिविराजित
पीताम्बरधर

किरीटकठक-

केशूरहारमणिरलाशुदीसिविद्योतितमर्थदिश ॥ ३८ ॥
कनकपणिकुपड्लमणिङ्गतगण्डम्बल मधुसूदन
विश्वमूर्ते ॥ ३९ ॥ लोकनाथ यज्ञेश्वर यज्ञप्रिय तेजोमय
भक्तिप्रिय वासुदेव दुरितापहाराराध्य पुरुषोत्तम
नमोऽस्तु ते ॥ ४० ॥

उक्तच

इत्युदीरितमाकर्ण्य भगवांस्तु जनार्दनः ।
देवदेवः प्रसन्नात्मा मार्कण्डेयमुक्ताच ह ॥ ४१ ॥

श्रीभगवान्

तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स तपसा महता पुनः ।
स्तोत्रैरपि महाबुद्धे नष्टपापोऽसि साम्प्रतम् ॥ ४२ ॥
वरं वरय विप्रेन्द्र वरदोऽहं तवाग्रतः ।
नात्मतपसा ब्रह्मन् द्रष्टुं साध्योऽहमञ्जमा ॥ ४३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—महामना ! महाकाव्य ! महामते !
महादेव ! महाप्रशस्त्री ! देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है।
ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा तथा रुद्र निन्दतर आपके युगल-
चरणार्थिन्दोंकी अर्चना करते हैं। आपके हाथमें शोभाशाली
कमल सुशोभित होता है; आपने दैत्योंके शरीरोंको मसल
दाला है, आपको नमस्कार है। आप 'अनन्त' नामसे
विश्वमत शेषनागके शरीरकी शश्याको अपने सम्पूर्ण अङ्ग
समर्पित कर देते हैं—ठसीपर शवन करते हैं; सनक,
सनन्दन और सनत्कुमार आदि योगीजन अपने नेत्रोंकी
दृष्टिको नायिकाके अग्रभागपर सुस्थिर करके नित्य-
निन्दतर जिस मोक्षतत्त्वका चिन्तन करते हैं, वह आप ही
हैं। गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, किंवर और किम्पुरुष प्रतिदिन
आपके ही दिव्य सूयशका गान बारते रहते हैं। नृसिंह !
नारायण ! पद्मनाभ ! गोविन्द ! गिरिशंख गोवर्धनको कन्दरामें
जोहा-विश्वामाटिने लिये निवास करनेवाले ! योगीश्वर !
देवेश्वर ! जलेश्वर और महेश्वर ! आपको नमस्कार है।
योगधर ! महामायाधर ! विद्याधर ! यशोधर ! कीर्तिधर !
सत्यादि तीनों गुणोंकी आश्रय ! त्रितत्त्वधारी तथा गार्हपत्यादि
तीनों अग्रियोंकी आरण करनेवाले देव ! आपको प्रणाम है।
आप ऋषि, साम और यज्ञपूर्ण—इन तीनों लोटोंके परम
प्रतिपाद, त्रिनिकेत (तीनों लोकोंके आश्रय), त्रिसुपर्ण,
मन्त्रज्ञप और त्रिदण्डधारी हैं; ऐसे आपको प्रणाम है।
लिंग येषस्वी आधाके सदृश सुन्दर यशामवज्जनिसे सुखोभित,
पीताम्बराधारी, किरीट, चलय, केन्द्र और हारोंमें जटित
मणिलोकी किरणोंसे ममस्त दिशओंको प्रकाशित करनेवाले
नारायणदेव ! आपको नमस्कार है। सुवर्ण और भणियोंसे
जने हुए कुण्डलोंद्वारा असंकृत कपोलोंवाले मधुसूदन !
विश्वमूर्ते ! आपको प्रणाम है। लोकनाथ ! यज्ञेश्वर ! यज्ञप्रिय !
तेजोमय ! भक्तिप्रिय वासुदेव ! पापहारिन् ! आग्रह्यदेव
पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है ॥ ३३—४० ॥

श्रीभगवान् बोले—इस प्रकार स्त्रावन सुनकर देवदेव
भगवान् जनार्दनने प्रसन्नज्ञित होकर मार्कण्डेयजीसे
कहा ॥ ४१ ॥

श्रीभगवान् बोले—वत्स ! मैं तुम्हारे भहान् तप
और फिर स्तोत्रपाठसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। महाबुद्ध !
इस समय तुम्हारा सारा पाप नष्ट हो चुका है। विषेन्द्र !
मैं तुम्हारे सम्पुरुष वर देवोंके लिये उपस्थित हूँ; वर भौंगो
ब्रह्मन् ! जिसने तप नहीं किया है, ऐसा कोई भी मनुष्य
अवायास हो मेरा दर्शन नहीं पा सकता ॥ ४२—४३ ॥

मार्कण्डेय इत्याच

कृतकृत्योऽस्मि देवेश साप्त्यनं तव दशानात्।
त्वद्गतिमचलामेकां मम देहि जगत्पते ॥ ४६
यदि प्रसन्नो भगवन् प्रभ माधव श्रीपते।
चिरायुधं हृषीकेश येन त्वा चिरमन्धये ॥ ४७

कौशलकामुकाच

पृथुस्ते निर्जितः पूर्वे चिरायुस्त्वं च लक्ष्यवान्।
भक्तिरस्त्वचला ते मे वैष्णवी मुकिदायिनी ॥ ४८
इदं तीर्थं महाभाग त्वत्रामा स्वयातिमेव्यति।
पुनस्त्वं द्रक्ष्यसे मां यै क्षीराक्षी योगजायिनम् ॥ ४९

त्वत् उक्तच

उत्सुक्त्वा पुण्डरीकाक्षमत्रैवान्तराधीयतः।
मार्कण्डेयोऽपि धर्मात्मा चिन्तयमपुसूदनम् ॥ ५०
अर्चयन् देवदेवेशं जगन् शुद्धं नमस्त्रपि।
वेदशास्त्राणि पुण्यानि पुराणान्यग्निलानि च ॥ ५१
मुनीनां आख्यामास गाथाश्रीय तयोधनः।
इतिहासानि पुण्यानि पितृतत्वं च सत्तमः ॥ ५०
ततः कदाचित् पुरुषोऽप्नोत्तं

यच्चः स्मरन् शास्त्रविदां यतिष्ठुः।

ध्रमन् समुद्रं स जगाम द्रुष्टुं
हरिं सुरेशं मुनिरुपतेजाः ॥ ५१
श्रमेण युक्तिभुरकालसाध्यमाद्
भूगोः स पीत्रो हरिभक्तिमुद्भवन्।
क्षीराविषयासाद्य हरिं सुरेण
नागेन्द्रभोगे कृतनिद्रपैक्षत ॥ ५२

इति श्रीकार्णदेवपुराणे मार्कण्डेयवर्णात् इत्यत्त्वम् ॥ १०४
इति प्रकाश उपायीनहुन्नामाद् 'प्रकाशेऽप्नो लोके' वर्णनके प्रसंगमें इतर्ही अध्याय तृतीय हुआ ॥ १०५

तदनन्तरे तदनन्तरे

ग्यारहवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीद्वारा शेषशास्त्री भगवान्का स्वत्वन्

त्वत् उक्तच

प्रणिपत्य जगत्त्राथं चराचरगुरुं हरिप्।
मार्कण्डेयोऽभितुष्टाव भोगपर्यहुशायिनम् ॥ १

मार्कण्डेयजी योसे—देवेश! इस समय आपके दर्शनसे ही मैं कृतायं हो गया। जगत्पते! अब तो मुझे एकमात्र आहनी अविकल भक्ति हो दोजिये। माधव! कीपते! हरीकेम! यदि आप पुष्टपर प्रसन्न हैं तो मुझे विरकालिक अग्नु दोजिये, जिससे मैं विरकालतक आपकी ग्राहणना कर सकूँ ॥ ५४-५५ ॥

श्रीभगवान् योसे—मृत्युको तो तुम पहले ही ओत खुके हो, अब विरकालिक आग्नु भी तुम्हें प्राप्त हुई। साथ ही, मेरो मुकिदायिनी अविकल वैष्णवी भक्ति भी तुम्हें प्राप्त हो। महाभाग! यह तीर्थ आजसे तुम्हारे ही नमस्ते विश्वाल होगा; अब पुनः तुम क्षीरसमुद्रमें योगविद्वान्का आश्रय लेकर सौंदर्य हुए, मेरा दर्शन पाऊगे ॥ ५६-५७ ॥

श्रीव्यासजी योसे—यो कहकर उमलतोष्ण भगवान् विष्णु वहो अदृश्य हो गये। धर्मात्मा, सामुश्शरोभानि, तत्त्वान्पन पार्वतीसंदृयतो भी शुद्धलव्यक्षं देवदेवेशरं प्रभुसूदनका व्याप, शूद्रन, जप और नमस्कार करते हुए वहों गहकर नुनियोंके परिव्रत वेदास्त्र, अधिकल पुराण, विधिप्रकाशकी गाथाएँ, पात्रन इतिहास और विद्वत्वत्व भी सुनाने लगे। तदनन्तर किसी समय भगवान् पुरुषोऽप्नोके कहे हुए वचनको स्वरूप कर, ने शास्त्रविद्वान्में केवल उपर्योगात्मकी नृणि उन सुरेशर भगवान् श्रीहरिका दर्शन करनेके लिये शूष्यते हुए समुद्रकी ओर चले। हृदयमें भगवान्की भक्ति धारण किये विरकालतक परिव्रम्पूर्वक भसते-चलते श्रीरामागामें पहुँचकर उन भृगुके पीत्रमें जागाराजके शरीरस्तो पर्यहुपर निष्ठामण्ड हुए सुरेशर भगवान् विष्णुका दर्शन किया ॥ ५८-५९ ॥

ब्रह्मसज्जी योसे—शुक्लदेव! तदनन्तर मार्कण्डेयजी शेषश्वायर सौंदर्य हुए उन चराचरगुरु जगदेशर भगवान् विष्णुको प्रणाम करके उनका स्वत्वन करने लगे ॥ १ ॥

सर्वदेव उदाह

प्रसीद भगवन् विष्णो प्रसीद पुनर्योत्तमः।
 प्रसीद देवदेवेश प्रसीद गरुडचक्र॥ २
 प्रसीद विष्णो लक्ष्मीश प्रसीद धरणीधर।
 प्रसीद लोकनाथाद्य प्रसीद परमेश्वर॥ ३
 प्रसीद सर्वदेवेश प्रसीद कर्मलेखण।
 प्रसीद मन्दरधर प्रसीद मधुसूदन॥ ४
 प्रसीद मुभगाकान प्रसीद भुवनाधिप।
 प्रसीदाद्य महादेव प्रसीद मम केशव॥ ५
 जय कृष्ण जयाचिन्त्य जय विष्णो जयाव्यय।
 जय विश्व जयाव्यक्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते॥ ६
 जय देव जयानेय जय सत्य जयाक्षर।
 जय काल जयेशान जय सर्व नमोऽस्तु ते॥ ७
 जय यज्ञपते नाथ जय विश्वपते विभी।
 जय भूतपते नाथ जय सर्वपते विभी॥ ८
 जय विश्वपते नाथ जय दक्ष नमोऽस्तु ते।
 जय पापहरानन्त जय जन्मजरापह॥ ९
 जय भद्रातिभद्रेश जय भद्र नमोऽस्तु ते।
 जय कामद काकुलस्थ जय मानद माधव॥ १०
 जय शंकर देवेश जय श्रीश नमोऽस्तु ते।
 जय कुहुमरकाभ जय पद्मजलोचन॥ ११
 जय चन्दनलिसाङ्ग जय राम नमोऽस्तु ते।
 जय देव जगत्राथ जय देवकिनन्दन॥ १२
 जय सर्वगुरो ज्ञेय जय शम्भो नमोऽस्तु ते।
 जय सुन्दर पश्चाभ जय सुन्दरियालभ।
 जय सुन्दरसर्वाङ्ग जय वन्द्य नमोऽस्तु ते॥ १३
 जय सर्वद सर्वेश जय शर्मद शाश्वत।
 जय कामद भक्तानां प्रभविष्णो नमोऽस्तु ते॥ १४

मार्कंषदेवजी बोले— भगवन्! विष्णो! आप प्रसन्न हों। पुरुषोत्तम! आप प्रसन्न हों। देवदेवेश! गरुडचक्र! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लक्ष्मीपते विष्णो! धरणीधर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लोकनाथ! आदिपर्वेश्वर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। कमलके समान वेणोंकाले सर्वदेवेश्वर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। समुद्रमन्तरके समय मन्दर पर्वतको धारण करनेवाले मधुसूदन! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लक्ष्मीकाल! पुलमपते! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। अदिपुरुष महादेव! केशव! आप मुहूरप्रसन्न हों, प्रसन्न हों॥ २—५॥

कृष्ण! अधिननोय कृष्ण! अव्यय विष्णो! विश्वके स्वप्नमें रहनेवाले एवं व्यापक व्यक्त होते हुए भी अव्यक्त! यत्तमेश्वर! आपकी जय हो, आपको मेरा प्रणाम है। अव्यय देव! आपकी जय हो, जय हो। अविवाशी सत्य! आपकी जय हो, जय हो। सर्वका शासन करनेवाले काल! आपकी जय हो, जय हो। सर्वव्यय! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है। यज्ञेश्वर! नाथ! व्यापक विश्वनाथ! आपकी जय हो, जय हो। स्वामिन्। भूतनाथ! सर्वधर! विभी। आपकी जय हो, जय हो। विश्वपते! नाथ! कालांगदा इश्वर! आपकी जय हो, जय हो; आपको प्रणाम है। पापहारी! अनन्त! जय लक्ष्मीकालके भवयको नष्ट करनेवाले देव! आपकी जय हो, जय हो। भद्र! अतिभद्र! हिंस! कल्पनामय प्रधी! आपको जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है। कल्पनालोके पूर्ण करनेवाले कल्पनस्थ-कुरुतोऽप्य श्रीराम! सम्मान देनेवाले माधव! आपकी जय हो, जय हो। देवेश्वर शंकर! लक्ष्मीपते! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है। कुहुमूलके समान अरुण कानितकाले कमलनयन! आपको जय हो, जय हो। चन्दनसे अनुसिंह श्रीअङ्गोंकाले श्रीराम! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है। देव! जगत्राथ! देवजीनन्दन! आपकी जय हो, जय हो। सर्वगुरी! जाननेवोर्य शम्भो! आपको जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है। नौल कमलको-सी जाभालाले श्यामसुन्दर! सुन्दरी श्रीराधाके प्राजलालभ! आपको जय हो, जय हो। सर्वाङ्गसुन्दर! चन्दनीय प्रधी! आपको नमस्कार है; आपकी जय हो, जय हो। सर्व कुछ देनेवाले भर्वेश्वर! कल्पनालदायी सनातन पुरुष! आपकी जय हो, जय हो। भक्तोंकी कामनाओंको देनेवाले प्रभुवत! आपको जय हो, आपको नमस्कार है॥ ६—१४॥

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने।
 लोकनाथ नमस्तेऽस्तु वीरभद्र नमोऽस्तु ते॥ १५
 नमस्तेऽलोक्यनाथाय चतुर्मुखे जगत्पते।
 नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय ते॥ १६
 नमस्ते वासुदेवाय नमस्ते पीतवाससे।
 नमस्ते नरसिंहाय नमस्ते शार्ङ्गधारिणो॥ १७
 नमः कृष्णाय गणाय नपश्चकायुधाय च।
 नमः शिवाय देवाय नमस्ते भूवनेश्वर॥ १८
 नमो वेदान्तवेदाय नमोऽनन्ताय विष्णवे।
 नमस्ते सकलाध्यक्षं नमस्ते श्रीधराच्युत॥ १९
 लोकाध्यक्षं जगत्पूज्यं परमात्मन् नमोऽस्तु ते।
 त्वं माता सर्वलोकानां त्वयेव जगतः पिता॥ २०
 त्वमातर्नां सुहृदिभ्यः प्रियस्त्वं प्रपितामहः।
 त्वं गुरुस्त्वं गतिः साक्षी त्वं पतिस्त्वं परायणः॥ २१
 त्वं भूवस्त्वं वयट्कर्ता त्वं हविस्त्वं हृताशनः।
 त्वं शिवस्त्वं वसुधार्ता त्वं द्वाह्या त्वं सुरेश्वरः॥ २२
 त्वं यमस्त्वं रथिर्वायुस्त्वं जलं त्वं धनेश्वरः।
 त्वं मनुस्त्वमहोरात्रे त्वं निशा त्वं निशाकरः।
 त्वं धूतिस्त्वं श्रियः कानितस्त्वं क्षमा त्वं धाराधरः॥ २३
 त्वं कर्ता जगतामीश्वस्त्वं हन्ता मधुमूदनः।
 त्वयेव गोपा सर्वस्य जगतस्त्वं चराचर॥ २४
 करणं कारणं कर्ता त्वयेव परमेश्वरः।
 शङ्खचक्रगदापाणे भी समुद्दर माधव॥ २५
 प्रिय पचपलाशाक्षं शेषपर्यङ्कशायिनम्।
 त्वापेव भक्त्या सततं नमामि पुरुषोन्मयम्॥ २६
 श्रीवत्साङ्गु जगद्गुरुं उद्यापलं कमलेश्वरणम्।
 नमामि ते वपुर्देव कलिकल्पणनाशनम्॥ २७
 लक्ष्मीधरमुदाराङ्गं दिव्यमालाविभूषितम्।
 चारुपृष्ठं महाबाहुं चारुभूषणभूषितम्॥ २८
 पचनाभं विशालाक्षं पचपत्रनिभेश्वरणम्।
 दीर्घतुङ्गप्रहाराणं नीलजीपूतसंनिभप्॥ २९
 दीर्घवाहुं सुगुमाङ्गं रबहारोज्ज्वलोग्रासम्।
 सुभूललाटमुकुटं स्त्रिघदनं सुलोचनम्॥ ३०

जिनको नाभिसे कमल प्रकट हुआ है तथा जो कमलकी
 माला पहने हुए हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। लोक-
 नाथ ! वीरभद्र ! आपको वार-वार नमस्कार है। चतुर्मुख-
 स्वरूप जगदीश्वर ! आप त्रिभुवननाथ देवाधिदेव नारायणको
 नमस्कार है। पीताम्बरधारी वासुदेवको प्रणाम है, प्रणाम
 है। शार्ङ्गधनुष धरण जलेवाले नरसिंहस्वरूप आप भगवान्
 विष्णुको नमस्कार है, नमस्कार है। भूवनेश्वर ! चक्रधारी
 विष्णु, कृष्ण, राम और भगवान् शिवके रूपमें वर्तमान
 आपको वार-वार नमस्कार है। सचके स्वामी श्रीधर !
 अच्युत ! चेदानन्द शास्त्रके द्वारा जाननेयोग्य आप अनारोहित
 भगवान् विष्णुको जारीबार नमस्कार है। लोकाध्यक्ष !
 जगत्पूज्य परमात्मन् ! आपको नमस्कार है॥ १५—१९ ।

आप ही समस्त संसारकी माता और आप ही सम्पूर्ण
 जगत्के पिता हैं। आप शीढितोंके मुहूर्द हैं; आप सबके
 मित्र, द्विषयम्, विलासके भी पितामह, गुरु, गति, साक्षी,
 चाति और परम व्यवर्थ हैं। आप ही भूम, वयदृक्तारा,
 हाथ, हृताशन (अंडिं), शिव, भूमि, याता, चक्र, मुरराज
 इन्, यम, सूर्य, यातु, जल, कुम्हर, मणि, दिन-रात,
 रजनी, चन्द्रमा, भूति, श्री, कानिति, धमा और धराधर
 शोषणाग हैं। भरातास्त्रवाहण भूम्यसूदन। आप ही जगत्के
 सरण, शासक और संहारक हैं तथा आप ही समस्त
 संसारके रक्षक हैं। आप ही करण, कारण, कर्ता और
 परमेश्वर हैं। हाथवंश शाहु, चक्र और गदा भरण करनेवाले
 शापण ! उक्त मंदा दुष्टां उर्में। कमलदललोचन प्रियतम्।
 शेषपलाशापर शश्वत करनेवाले पुरुषोत्तम आपको ही मैं
 मदा भृकुलके साथ प्रणाम करता हूँ। देव ! विश्वमें श्रीवत्सपित्र
 शोभा वाता है, जो जगत्का आदिकारण है, जिसका वर्ण
 श्यामल और नेत्र कमलके समान हैं तथा जो कलिकं
 दोषोंको नष्ट करनेवाता है, आपके उस श्रीविष्णुहको मैं
 नमस्कार करता हूँ॥ २०—२०॥

जो साध्योजीको अपने हृदयमें धारण करते हैं,
 जिनका शरीर मुन्दर है, जो दिव्यमालामें विभूषित
 है, जिनका पुष्पदेश मुन्दर और भूजाईं चढ़ी-चढ़ी
 हैं, जो मुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत हैं, जिनकी नाभिसे
 पद्म प्रकट हुआ है, जिनके नेत्र कमलदलके समान
 मुन्दर और विश्वात हैं, नासिका बड़ी कंची और लम्बी
 है, जो नील मेषके समान श्याम हैं, जिनकी भूजाईं
 लम्बी, शरीर सुग्रीव और चक्र-स्वरूप रसोंके हारमें
 प्रकाशन है, जिनकी भीहं, स्त्रेल और मुकुट-
 मध्ये मुन्दर हैं, दोन विकने और नेत्र मनोहर हैं,

चारुबाहुं सुताप्रोष्टं रत्नोज्ज्वलितकुण्डलम्।
वृत्तकण्ठं सुपीनांसं सरसं श्रीधरं हरिम्॥ ३१
सुकुमारमजं नित्यं नीलकुञ्जितपूर्वजम्।
उन्नतांसं महोरस्कं कर्णान्तायतलोचनम्॥ ३२
हेमारविन्दवदनभिन्दिरायनमीश्वरम्।
सर्वलोकविधातारं सर्वपापहरं हरिम्॥ ३३
सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वसत्त्वमनोरमम्।
विष्णुमच्युतपीशानमनन्तं पुरुषोत्तमम्॥ ३४
नतोऽस्मि मनसा नित्यं नारायणमनामयम्।
बरदं कापदं कान्तपनन्तं सूनूतं शिवम्॥ ३५
नमामि शिरसा विष्णो सदा त्वं भक्तवत्सल।
अस्मिन्नेकार्णवे धोरे बायुस्कम्भितचक्षुले॥ ३६
अनन्नभोगशयने सहस्रफणशोभिते।
विचित्रशयने रथे सेविते मन्दवायुना॥ ३७
भूजपञ्चरसंसक्तकमलालयसेवितम्।
इह त्वं मनसा सर्वमिदानीं दृष्टवानहम्॥ ३८
इदानीं तु सुदुःखाते मायथा तव मोहितः।
एकोदके निरालम्बे नष्टस्थावरजङ्गमे॥ ३९
शून्ये तमसि दुष्यारे दुःखपङ्के निरामये।
शीतातपजरारोगशोकतुष्णादिभिः सदा॥ ४०
पीडितोऽस्मि भृशं तात सुचिरं कालमच्युत।
शोकमोहयहयस्तो विचरन् भवसागरे॥ ४१
इहाद्य विधिना प्राप्तस्तव पादाक्षरसंनिधी।
एकार्णवे महाधोरे दुस्तरे दुःखपीडितः॥ ४२
चिरध्मपरिश्रान्तस्त्वामद्य शरणं गतः।
प्रसीद सुमहामाय विष्णो राजीवलोचन॥ ४३

जो सुन्दर भुजाओं और रुचिर अहम अधरोंसे सुशोभित है, जिनके कुण्डल खजटिं होनेके कारण जगमगा रहे हैं, कण्ठ बुलुताकर हैं और कंधे मांसल हैं, उन रसिकशंखर श्रीधर हरिको नमस्कार हैं॥ २८—३१॥

जो अजन्मा एवं नित्य होनेपर भी सुकुमारस्त्वलप भारण किये हुए हैं, जिनके केश काले-काले और पूँछाले हैं, कंधे ऊंचे और चक्षःस्थल विशाल हैं, आँखें कानोंतक फैली हुई हैं, मुखारविन्द सुखर्णमय कमलके समान परम सुन्दर हैं, जो लक्ष्मीके निवासस्थान एवं सबके लासक हैं, सम्पूर्ण लोकोंके लक्ष्मा और समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं, समग्र शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और सभी जीवोंके लिये भनोरम हैं तथा जो सर्वव्यापी, अच्युत, इश्वर, अनन्त एवं पुरुषोत्तम हैं, वसदाता, ब्रह्मपूरव, कमनीय, अनन्त, मधुरधारी एवं कर्णवाणस्त्वलप हैं, उन निरामय भगवान् नारायण श्रोहरिको मैं सदा हृदयसे नमस्कार करता हूँ॥ ३२—३५॥

भक्तवत्सल विष्णो। मैं सदा आपको भस्तक शुकाकर प्रणाम करता हूँ। इस भयंकर एकार्णवमें, जो प्रालयकालिक वायुको प्रेरणासे विक्षुल्य एवं चक्षुल हो रहा है, सहस्रफणोंसे सुशोभित 'अनन्त' नामक शेषनागके शरीरकी विचित्र एवं रमणीय लक्ष्मा, जहाँ मन्द-मन्द वायु चल रही है, आपके भूजपङ्कमें बैधी हुई श्रीलक्ष्मीजीसे आप सेवित हैं, मैंने इस समय सर्वव्याप्त आपके रूपका चहाँपर जो भरकर दर्शन किया है॥ ३६—३८॥

इस समय आपकी मायासे मोहित होकर मैं अत्यन्त दुःखसे चोहित हो रहा हूँ। दुःखरूपी पङ्कसे भरे हुए, व्याधिपूर्ण एवं उत्पत्तम्बशून्य इस एकार्णवमें समस्त स्थावर-जङ्गम नहीं हो चुके हैं। सब और शून्यमय अपार अन्यकार काया हुआ है। मैं इसके भीतर शीत, अल्प, जरा, रोग, शोक और तृष्णा आदिके द्वारा सदा चिरकालसे अत्यन्त कष्ट पा रहा हूँ। लाता! अच्युत! इस भवसागरपे शोक और मोहयही ड्राहसे ग्रस्त होकर भटकता हुआ आज मैं यहाँ दैववत्ता आपके चरणकमलोंके निकट आ पहुँचा हूँ। इस महाभयानक दुस्तर एकार्णवमें बहुत कालतक भटकते रहनेके कारण दुःखपीडित एवं थका हुआ मैं आज आपकी जाग्रणमें आया हूँ। महामायी कमललोचन भगवन्! विष्णो! आप मुझपर प्रसन्न हों॥ ३९—४३॥

विश्वयोने विशालाक्ष विश्वात्मन् विश्वसम्भव ।
 अनन्यशरणं प्राप्तमतोऽत्र कुलनन्दन ॥ ४४
 त्राहि मां कृपया कृष्ण शरणागतमातुरम् ।
 नमस्ते पुण्डरीकाक्ष पुराणपुरुषोत्तम ॥ ४५
 अङ्गनाभ हृषीकेश मायामय नमोऽस्तु ते ।
 मामुद्धर महाबाहो मग्ने संसारसागरे ॥ ४६
 गहरे दुस्तरे दुःखविलष्टे क्लेशमहाग्रहैः ।
 अनाथं कृपणं दीने पतितं भवसागरे ।
 मां समुद्धर गोविन्द वरदेश नमोऽस्तु ते ॥ ४७
 नमस्तेऽलोक्यनाथाय हरये भूधराय च ।
 देवदेव नमस्तेऽस्तु श्रीकाळभ नमोऽस्तु ते ॥ ४८
 कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भवान् ।
 संमाराणवपूर्णानां प्रसीद मधुमृदन ॥ ४९
 त्वायेकमादं पुरुषं पुराणं
 जगत्पतिं कारणमच्युतं प्रभूम् ।
 जनार्दने जन्मजरातिनाशनं
 सुरेश्वरं सुन्दरमिन्दिरापतिम् ॥ ५०
 वृहद्दुर्ज श्यामलकोमलं शुभं
 वराननं वारिजपत्रनेत्रम् ।
 तरंगभङ्गायतकुन्तलं हरि
 मुकान्तमीशं प्रणतोऽस्मि शाश्वतम् ॥ ५१
 सा जिह्वा या हरि स्तीति तत्त्वित्तं यत्त्वदर्पितम् ।
 तावेव केवली श्लाघ्यी यी त्वत्पूजाकरी करी ॥ ५२
 जन्मान्तरसहस्रेषु यमया पातकं कृतम् ।
 तन्मे हर त्वं गोविन्द वासुदेवेति कीर्तनात् ॥ ५३

व्यास उक्तान

इति सुतसतो विष्णुर्मार्कंण्डेयेन धीमता ।
 संतुष्टः प्राह विश्वात्मा तं मुनिं गरुडघवजः ॥ ५४
 श्रीभगवानुकाच
 प्रीतोऽस्मि तपसा विप्र सुत्या च भृगुनन्दन ।
 वरं वृणीष्व भद्रं ते प्रार्थितं दद्यि ते वरम् ॥ ५५

कुलनन्दन कृष्ण ! आप विश्वकी उत्पत्तिके स्थान, विश्वात्मलोचन, विश्वोपादक और विश्वात्मा हैं; अतः दूसरेकी शरणमें न जाकर एकमात्र आपकी ही शरणमें आये हुए मुझ आतुरका आप कृपापूर्वक यहाँ उद्धार करें। पुराण-पुरुषोत्तम पुण्डरीकाक्षोचन ! आपको नमस्कार है। कञ्जलके समान इथाम कान्तिवाले हृषीकेश ! मायामें आश्रयभूत महेश्वर ! आपको नमस्कार है। महाबाहो ! संसार-सागरमें दूने हुए मुझ शरणागतका उद्धार कर दें। खरदाता ईश्वर ! गोविन्द ! क्लेशकारी महान् प्राहोंसे भरे हुए, दुःख और ज्वरेशोंमें गुरु, दुस्तर एवं गहरे भवसागरमें गिरे हुए मुझ दौन्, अनाथ एवं कृपणका उद्धार करें। त्रिभुवनवाय विष्णु और धर्मीधर अनन्तको नमस्कार है। देवदेव ! श्रीबल्लभ ! आपको ज्ञाम्बार नमस्कार है ॥ ५४—५८ ॥

कृष्ण ! कृष्ण ! आप दयालु और आश्रयहीनके आश्रय हैं। मधुमृदन ! संमार-सागरमें विमान हुए प्राणियोंपर आप प्रसन्न हों। आज मैं एक (अद्वितीय), आदि, पुराणपुरुष, जगदी शर, जगत्के कारण, अच्युतस्वरूप, सबके स्वामी और जन्म-जरा एवं प्राणाको नष्ट करनेवाले, देवेश्वर, परम सुन्दर लक्ष्मीपति भगवान्, जनार्दनकी प्रणाम करता हूँ। जिनको भूजाएं चढ़ो हैं, जो श्यामवर्ण, कोमल, मुशीभन, मुमुख और कमलदललोचन हैं, श्रीरामारकी तरंगभङ्गीके समान जिनके लाले-लाले धूपधारने केस हैं, उन परम कमलोंवाय, सनातन ईश्वर भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। भगवन् ! वही जिह्वा सकल है, जो आप श्रीहरिका स्तवन करती है; वही चित्त सार्थक है, जो आपके चरणोंमें समर्पित हो चुका है तथा केवल वे ही हाथ श्लाघ्य हैं, जो आपको चूजा करते हैं। गोविन्द ! हजारों जन्मान्तरोंमें मैंने जो-जो याप किये हैं, उन सबको आप 'ब्रह्मुदेव' इस नामका कीर्तन करनेमाप्रसे हार लौंजिये ॥ ५९—५३ ॥

व्यासजी बोले—लदनन्दर बुद्धिमान् पार्कण्डेव मुनिके इस प्रकार स्तुति करनेपर गरुडचिह्नित श्वजावाले विश्वात्मा भगवान् विष्णुने संतुष्ट होकर उनसे कहा ॥ ५४ ॥

श्रीभगवान् बोले—विप्र ! भृगुनन्दन ! मैं तुम्हारी हपत्त्वा और स्तुतिसे प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम मुझसे वर माँगो। मैं तुम्हें मुंहमाँगा वर दूँगा ॥ ५५ ॥

मार्कण्डेय उक्ताच

त्वत्पादपद्मे देवेश भक्ति मे देहि सर्वदा।
यदि तुष्टो ममाद्य त्वमन्यदेकं वृणोम्यहम्॥ ५६
स्तोत्रेणानेन देवेश यस्त्वां स्तोष्यति नित्यशः।
स्वलोकवसतिं तस्य देहि देव जगत्पते॥ ५७
दीर्घायुष्मद्वं तु यद्दत्तं त्वया मे तप्यतः पुरा।
तत्सर्वं सफलं जातमिदानीं तव दर्शनात्॥ ५८
वस्तुमिच्छामि देवेश तव पादाब्जमचंयन्।
अत्रैव भगवन् नित्यं जन्ममृत्युविवर्जितः॥ ५९

श्रीभगवान्तुत्तम

पथ्यस्तु ते भृगुश्चेष्टु भक्तिरव्यभिचारिणी।
भक्त्या मुक्तिर्भवत्येव तव कालेन सत्तम्॥ ६०
यस्त्वदं पठते स्तोत्रं सायं प्रातसायेतिष्ठ।
मयि भक्ति दृढां कृत्वा मम लोके स मोदते॥ ६१
यत्र यत्र भृगुश्चेष्टु मिथतस्त्वं मां स्परिष्यमि।
तत्र तत्र समेष्यामि दान्तो भक्तवशोऽस्मि भोः॥ ६२

लक्षण उक्ताच

इत्युक्त्वा ते मुनिश्चेष्टु मार्कण्डेयं म माधवः।
विरराम स सर्वत्र पश्यन् विष्णुं यतस्ततः॥ ६३
इति ते कथितं विष्णु चरितं तस्य धीमतः।
मार्कण्डेयस्य च मुनेस्तेनैवोक्तं पुरा मम॥ ६४
ये विष्णुभक्त्या चरितं पुराणं
भृगोस्तु पीत्रस्य पठन्ति नित्यम्।
ते मुक्तपापा नरसिंहलोके
वसन्ति भक्तरपिपून्यमानाः॥ ६५

इटि लक्षणिहुरुन्माने नार्कण्डेयस्त्वात् लक्षण हक्तवशोऽस्मायः॥ ६६ ॥

इति इकार अंशस्तिहुरुन्माने 'मार्कण्डेय-चरितं' नामक म्याहकौ अध्याय पुरा हुम्भा ॥ ६६ ॥

मार्कण्डेयजी थोले—देवेश! यदि आज आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं यही माँगता हूँ कि 'आपके चरणकम्लोमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे।' इसके सिवा एक दूसरा वह भी मैं माँग रहा हूँ—'देव! देवेश! जगत्कर्ते! जो इस स्तोत्रसे आपकी नित्य स्तुति करे, उसे आप अपने वैकुण्ठधाममें निवास प्रदान करें।' पूर्वकालमें तपस्या करते हुए मुझको जो आपने हीरायु होनेका चरदान दिया था, वह सब आज आपके दर्शनसे सफल हो गया। देवेश! भगवन्! अब मैं आपके चरणारविन्दीका पूजन करता हुआ जन्म और मृत्युसे रहित होकर यहाँ ही नित्य निवास करना चाहता हूँ॥ ५६—५९॥

श्रीभगवान् थोले—भृगुश्चेष्टु। मुझमें तुम्हारी अनन्य भक्ति बनी रहे तथा साधुशिरोमणे। सरमल अनेपर इस भक्तिमें तुम्हारी मुक्ति भी अवश्य ही हो जायगी। तुम्हारे कहे हुए इस स्तोत्रका जो लोग नित्य प्रातःकाल और संध्याके समय पाठ करते, वे मुझमें सुदृढ़ भक्ति रखते हुए मेरे लोकमें आनन्दपूर्वक रहेंगे। भृगुश्चेष्टु! मैं दाना (स्वरवा) होनेपर भी भक्तोंके वशमें रहता हूँ; अतः तुम जहाँ-जहाँ रहकर मेरा स्वरण बारोगे, वहाँ-वहाँ मैं पहुँच जाऊंगा॥ ६०—६२॥

व्यासजी थोले—मुनिवर मार्कण्डेयसे यों कहकर भगवान् सत्यमीषति मौन हो गये तथा वे मुनि इधर उधर विचरते हुए सर्वथ भगवान् विष्णुका साक्षात्कार करने लगे। विष्णु! मुद्दिमान् मार्कण्डेय मुनिके इस चरित्रका, जिसे पूर्वकालमें उन्होंने स्वयं ही मुझसे कहा था, मैंने तुमसे वर्णन किया। जो लोग भृगुके यीव्र मार्कण्डेयजीके इस पुरातन चरित्रका भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए नित्य पाठ करते हैं, वे यापोंसे मुक्त हो, भक्तोंसे पूजित होते हुए भगवान् नृसिंहके लोकमें निवास करते हैं॥ ६३—६५॥

बारहवाँ अध्याय

यम और यमीका संवाद *

सूत उच्चार

श्रुत्वेषामप्यतां पुण्यां सर्वपापप्रणाशितीम्।
अवितुपः स धर्मात्मा शुक्रो व्यासमध्यापत् ॥ १
श्रीशुक्र उच्चार

अहोऽतीव तपश्चर्या मार्कंडेयस्य धीमतः ।
येन दुष्टो हरि: साक्षात्येन मृत्युः पराजितः ॥ २
न तु मिरिति मे तात श्रुत्वेषो वैष्णवीं कथाम् ।
पुण्यां पापहरां तात तस्मादन्वयन् मे बद ॥ ३
नराणां दुखचित्तानामकार्यं नेह कुर्वताम् ।
यत्पुण्यमृषिभिः प्रोक्तं तम्ये बद महामते ॥ ४
व्यास उच्चार

नराणां हृष्टचित्तानामिह लोके परत्र च ।
पुण्यं यत् स्यान्मुनिश्चेष्ट तम्ये निगदतः शृणु ॥ ५
अत्रैवोदाहरन्तीमभिनिहासं पुरातनम् ।
यम्या च सह संवादं यमस्य च महात्पनः ॥ ६
विवस्यानदिते: पुत्रस्तस्य पुत्री सुवर्चसी ।
जग्नाते स यमश्रीव यमी चापि यदीपसी ॥ ७
ती तत्र संविविधेते पितुर्भवन उत्तमे ।
क्रीडमानी स्वभावेन स्वच्छन्दगमनावृभी ॥ ८
यमी यमं समासाद्य स्वसा भातरमद्यात् ॥ ९

* यह 'यम-यमी-संवाद' क्रृत्येदके एक सूक्ष्मण अल्पांश्चित है। वही प्रस्तुत यह है कि यम और यमी, जो परस्पर खाई और यहन ही, कृग्रामरमणामें बालोंचित उत्तमें मन बहला हो है। उनके मनमें एक ऐसा दृष्टप्रभाव, जिसमें कोई लाला-गाजेके साथ विलाहके लिये ज्ञ रहा था। यमीने पूछा—'यैष! यह क्यै है?' यमने उसे यत्तमा कि 'यह जगतात है। इसमें वर, वैष्णवार्थ, पुरुष किसी कुमारी स्त्रीके साथ विकाह करता है।' यमी बहलाचित सरलताके साथ प्रत्यावत कर दीठी—'मिया! आकरी, हम और तुम भी परस्पर विकाह जर लीं।' यमने उसे समझता कि पाठीके साथ जहनका विकाह नहीं होता। तुम्हें मुझसे किसी दूसरे बैशु पुरुषको आपना पति नहीं होगा—'अस्य वृणुष्म सुभूते पति नहु।'

इसी वैदिक उत्तमज्ञानको यहीं इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, जिसे ज्ञानवेदनामें पीड़ित हो यमसे यह प्रार्थना कर रही ही कि—वे उसे अगरी जानी बलात्र उसको इच्छा दूर करें। इसमें दोषेका विकारसंकेतक विव व्रस्तुत किया गया है और 'विकारहेती सर्व विकारान् येषां न चेताति त एव धीता।' (विकारान् व्यापक उपर्युक्त दोषेका भी विकारके वितरमें विकार बहीं होता, वे ही पुरुष भी—जानी और संयमी हैं—) इस उत्तिके अनुसार यमकी विकारिता, उनकी व्यविधियां, उनकी व्यविधियां विविध विवरण निका, दीर्घीं और विवेककी लोकके समझ प्राकाशी लाया जाया। वैसे दोनों आगमी तत्त्वक लगा उत्तमा है, उसी द्रष्टव्य चंद्र चंगीकी अपि-परीक्षामें उत्तोर्ण ही सुदृढ धर्मात्मा, हंगमी और विवेकी रिंदू दूर हैं। यमने उत्तमज्ञान विकारकी और भी व्यापकको लघुर्में हाथपैने लाया। इस कथाका उत्तरण है। इसमें वृणुष्मके विकारको विकारान् व्यापक उत्तमज्ञान होनेकी विकारन् किसी दीर्घ वरके साथ विकाह कर देना चाहिये। यात्रामें यम और यमी दोनों ही सूचीकरको निष्प संताने हैं। उनमें किसी प्रकारके विकारको लेनेमात्र भी सम्भवता नहीं है। लोगोंको सदाचार और संयमको शिक्षा देनेके लिये ही व्यासजीने उस वैदिक उत्तमज्ञानको यहीं इष्ट प्रकार विश्रित किया है।

यमुक्ताच

न भ्राता भगिनी योग्यां कामदन्तीं च कामयेत्।
भ्रातृभूतेन किं तस्य स्वसुर्यों न पतिर्भवेत्॥ १०
अभूत इव स द्वेषो न तु भूतः कथञ्चन।
अनाथां नाथमिच्छन्तीं स्वसारं यो न नाथति॥ ११
काहूलन्तीं भ्रातरं नाथं भर्तरं यस्तु नेच्छति।
भ्रातेति नोच्यते स्नोके स पुमान् मुनिसत्तमः॥ १२
स्याद्वान्यतनया तस्य भार्या भवति किं तया।
इङ्गतस्तु स्वसा भ्रातुः कामेन परिदह्यते॥ १३
यत्कार्यमहमिच्छामि त्वयेवेच्छ तदेव हि।
अन्यथाहुं मरिष्यामि त्वामिच्छन्तीं विचेतना॥ १४
कामदुःखप्रसादं तु भ्रातः किं त्वं न चेच्छमि।
कामाग्निं भृशं तसा प्रलीयाम्ब्रह्म मा चिरम्॥ १५
कामात्मायाः स्विद्याः कान्त वशगो भव मा चिरम्।
स्वेन कायेन मे कायं संयोजयितुमहसि॥ १६॥

यम उत्तर

किमिदं सोकविद्विष्ट धर्मं भगिनि भाषते।
अकार्यपिह कः कुर्यात् पुमान् भद्रे सुचेतनः॥ १७
न ते संयोजयिष्यामि कायं कायेन भायिनि।
न भ्राता मदनात्मायाः स्वसुः कामे प्रयच्छति॥ १८
महापातकमित्याहुः स्वसारं योउद्धिगच्छति।
पश्चनापेष धर्मः स्यात् तिर्यग्योनिवर्ता शुभे॥ १९

यमुक्ताच

एकस्थाने यथा पूर्वं संयोगो भी न दुष्यति।
मातृगर्भे तथैवायं संयोगो भी न दुष्यति॥ २०
किं भ्रातरप्यनाथां त्वं मा नेच्छसि शोभनम्।
स्वसारं निर्वहनीं रक्षः संगच्छति च नित्यशः॥ २१

यमी ओत्ती—जो भाई अपनी योग्य बहिनको उसके चाहनेपर भी न चाहे, जो बहिनका पति न हो सके, उसके भाई होनेसे क्या लाभ? जो स्वामीकी इच्छा रखनेवाली अपनी कुमारी बहिनका स्वामी नहीं बनता, उस भ्राताको ऐसा समझना चाहिये कि वह पैदा ही नहीं हुआ। किसी तरह भी उसका उत्तर होना नहीं माना जा सकता। देखा! यदि बहिन अपने भाईकी ही अपना स्वामी—अपना पति बनाना चाहती है, इस दशामें जो बहिनको नहीं चाहता, वह पुरुष मुनिशिरोमणि ही क्यों न हो, इस संसारमें भ्राता नहीं कहा जा सकता। यदि किसी दूसरेकी हो कर्त्या तामको पलों हो तो भी उससे क्या लाभ, यदि उस भाईकी अपनी बहिन उसके देखते-देखते कामसे दग्ध हो रही है। मेरे होश, इस समय अपने ठिकाने नहीं हैं। मैं इस समय जो काम करना चाहती हूँ, तुम भी उसीकी इच्छा करो; नहीं तो मैं तुम्हारी ही चाह हेकर प्राण त्याग दैगी, मर जाऊँगी। भाई! जल्मको जेटना असह्य होती है। तुम युझे क्यों नहीं चाहते? प्यारे देखा! कामाग्रिसे आत्मने संतान होकर मैं भरी जा रही हूँ; अब देर न करो। कान्त! मैं कामपीड़िता स्त्री हूँ। तुम यीप्र ही मेरे अधीन हो जाओ। अपने शरीरसे मेरे शरीरका संयोग होने दो॥ १०—१६॥

यम ओत्ती—बहिन! सारा संमार जिसकी विना करता है, उसी इस पापकर्मको त् धर्म में कैसे चला रही है? भ्रौ! भ्राता जीन संघर्ष पुरुष यह न करने चाहेय पाप कर्म कर सकता है? भायिनि! मैं अपने शरीरसे तुम्हारे शरीरका संयोग न होने दैगा। कोई भी भाई अपनी काम पीड़िता बहिनकी इच्छा नहीं पूरी कर सकता। जो बहिनके साथ सुभाग्य करता है, उसके इस जर्खंडको महापाताक बहाया गया है—मुझे। यह तिर्यग्योनिमें पढ़े हुए पशुओंका धर्म है—देखता या मनुष्यका नहीं॥ १७—१९॥

यमी ओत्ती—देखा! हम दोनों जुड़की संतानें हैं और माताके नर्तमें एक साथ रहे हैं। पहले माताके नर्तमें एक ही स्थानपर हम दोनोंका जो संयोग हुआ था, वह जैसे दूषित नहीं माना गया, उसी प्रकार यह संयोग भी दूषित नहीं हो सकता। भाई! अभीतक मुझे पतिकी प्राप्ति नहीं हुई है। तुम मेरा भ्राता करना क्यों नहीं चाहते? 'निर्वहनी' नामक गुरुतम तो अपनी बहिनके साथ नित्य ही सम्भाग्य करता है॥ २०—२१॥

यम उक्तव्

स्वयम्भुवापि निनोत लोकवृत्तं जुगुप्मितम्।
प्रधानपुरुषाच्चीर्ण लोकोऽयमनुवर्तते ॥ २२

तस्मादनिन्दितं धर्मं प्रधानपुरुषक्षोत्।
निन्दितं वर्जयेद्यत्तादेतद्दर्थस्य लक्षणम् ॥ २३

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्ततदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २४

अतिपापमहं प्रन्ये सुभगे वचनं तथा।
विरुद्धं सर्वधर्मेषु लोकेषु च विशेषतः ॥ २५

मत्तोऽन्यो यो भवेत्यो वै विशिष्टो रूपशीलतः।
तेन सार्थं प्रयोदस्य न ते भर्ता भवाम्यहम् ॥ २६

नाहं स्पृशापि तन्या ते तनुं भद्रे दृढवतः।
प्रनयः पापपादुस्तं यः स्वसारं निग्रहति ॥ २७

सम्पुर्ण

दुर्लभं चैव पश्यामि लोके रूपमिहेदृशम्।
यत्र रूपं वयश्चैव पृथिव्यां क्व प्रतिष्ठितम् ॥ २८

न विजानामि ते चिन्तं कुत एतत् प्रतिष्ठितम्।
आत्मसूपमुणोपेतां च कामयमि मोहितम् ॥ २९

लतेव पादपे लग्ना कामं त्वच्छरणं गतः।
ब्राह्म्यां सम्परिष्वव्य निवसामि शुचिस्मिता ॥ ३०

यम उक्तव्

अन्यं अवस्था मुश्लोणि देवं देव्यसितेक्षणे।
यस्तु ते कामयोहेन चेतसा विभूमं गतः।
तस्य देवस्य देवीं त्वं भवेद्या वरवर्णिनि ॥ ३१

ईपिततो सर्वभूतानां चर्या शासनित मानवाः।
सुभद्रां चास्तर्वाङ्गीं संस्कृतां परिचक्षते ॥ ३२

तत्कृतेऽपि मुविद्वांसो न करिष्यन्ति दूषणम्।
परितापं महाप्राज्ञे न करिष्ये दृढवतः ॥ ३३

चिन्तं मे निर्मलं भद्रे विष्णो रुद्रे च मंसिधतम्।
अतः पापं नु नेच्छामि धर्मचिन्तो दृढवतः ॥ ३४

यम बोले— नहिन् ! कुत्सित लोकव्यवहासको निर्दा
चहाजीने भी को है । इस संसारके लोग ऐह पुरुषोंहुमा
आचरित धर्मका ही अनुसरण करते हैं । इसलिये ऐह
पुरुषको चाहिये कि वह उत्तम धर्मका ही आचरण करे
और निन्दित कर्मको यत्पूर्वक त्वाग दे— यही धर्मका
लक्षण है । ऐह पुरुष जिस-जिस कर्मका आचरण करता
है, उसको अन्य लोग भी आचरणमें लाते हैं और वह
जिसे प्रमाणित कर देता है, लोग उसका अनुसरण करते
हैं । मुझे । मैं तो तुम्हारे इस त्वचनको अत्यन्त पापपूर्ण
समझता हूँ । इनका ही नहीं, मैं इसे सब धर्मों और विहेषकों
समझता हूँ । मैं तुम्हारी विषयीन मानता हूँ । मुझसे अन्य जो कोई
भी लूप और नोलमें विशिष्ट हो, उसके साथ तुम आत्मपूर्वक
हो; मैं तुम्हारा परिवहन नहीं हो सकता । भद्रे ! मैं दृढतापूर्वक
उत्तम प्रताक्षरा पालन करनेवाला हूँ, अतः अपने शरीरसे
तुम्हारे शरीरका सभी नहीं करूँगा । जो चहिनको ग्रहण
करता है, उसे मुश्लोणे ‘पाते’ कहा है ॥ २२—३४ ॥

यमो बोली— मैं देखती हूँ, इस संसारमें ऐसा (तुम्हारे
सम्बन्ध) रूप दुर्लभ है । भला, पृथ्वीपर ऐसा स्थान कहाँ है,
जहाँ सूप और समान अवस्था—दोनों एकत्र वर्तमान हों । मैं
नहीं समझता, तुम्हारा यह चित इतना स्थिर किसे है, विसर्गे
कारण तुम अपने राशन कृप और गृहण युक्त होनेपर भी मुझ
मोहिता नहींही इच्छा । नहीं करते हो । यक्षर्म संलग्न हुई
स्त्रीके सम्बन्ध में एवं व्याकुन्त्री तुम्हारी शरणमें आयी हूँ । ऐसे
मुख्य परिवर्तन मुझकान भी भापती हैं । अब मैं अपनी दोनों
भुजाओंसे तुम्हारा आलिङ्गन करके हो रहूँगी ॥ २८—३० ॥

यम बोले— इष्यमलोचने ! मुश्लोण ! मैं तुम्हारी इच्छा
पूर्ण करनेमें आसमर्जन हूँ । तुम किसी दूसरे देवताका आश्रय
नहीं । चरक्षिति । तुम्हें देवकर कापनोहसे विसर्ग चित
विभूत ही उठे, उसी देवताकी तुम देवी हो जाओ । जिसे
ममस्त प्राप्ति नहीं हो, मानवगण जिसे वरणीय बललाते
हैं, उत्तमात्मयों, सर्वाङ्गमुन्दी और सुसंस्कृता कहते हैं,
उसके लिये भी विद्वान् पुरुष कभी दृष्टित कर्म नहीं करेंगे ।
महाप्राप्ति ! मैरा चल अटल है । मैं यह पश्चात्तापजनक पाप
करापि नहीं करूँगा । भद्रे ! मैरा चित निर्मल है, भगवान्
विज्ञ और शिवके चिन्तनमें लगा हुआ है । इसलिये मैं
दृढसंकल्प एवं धर्मान्वय होकर निरूप हो यह पापकर्म नहीं
करना चाहता ॥ ३२—३४ ॥

व्यास उक्तम्

असकृत् प्रोच्यमानोऽपि तथा चेचं दुरद्वतः ।
 कृतवान् न यमः कार्यं तेन देवत्वमाप्नवान् ॥ ३५
 नराणां दुद्वचित्तानामेवं पापमकुर्वताम् ।
 अनन्तं फलमित्याहुस्तेषां स्वर्गफलं भवेत् ॥ ३६
 एतन् यम्युपाख्यानं पूर्वचुक्तं सनातनम् ।
 सर्वपापहरं पुण्यं श्रीतत्त्वमनुयया ॥ ३७
 यश्चेतत् पठते नित्यं हृव्यक्ष्येषु ब्राह्मणः ।
 संतुष्टाः पितरस्तस्य न विशक्ति यमालयम् ॥ ३८
 यश्चेतत् पठते नित्यं पितॄणामनुणो भवेत् ।
 वैवस्त्वीभ्यस्तीत्राभ्यो यातनाभ्यः प्रमुच्यते ॥ ३९
 पुत्रैतदाख्यानमनुसारं मया
 तत्त्वोदितं वेदपदार्थनिक्षितम् ।
 पुरातनं पापहरं सदा नृणां
 किमन्यदौर्यं वदापि शंस मे ॥ ४०

इति वैतराणीत्युपराते कथीप्रमाणकाठे नाम द्वारान्तर्भाषः ॥ १२ ॥
 इति प्रकार श्रीपरमार्थित्युपराते 'कथी नाम द्वारा' नामक वाक्यां भवत्यप्युपात्र द्वारा ॥ १२ ॥

त्रिवेदि श्री वैदिक

तेरहवाँ अध्याय

पतिव्रताकी शक्ति; उसके साथ एक ब्रह्मचारीका संवाद; माताकी
 रक्षा परम धर्म है, उसका उपदेश

श्रीगुरु उक्तम्

विचित्रेयं कथा तात वैदिकी मे त्वयेति ।
 अन्याः पुण्याक्ष मे त्रृहि कथा: पापप्रणाशिनीः ॥ १

व्यास उक्तम्

अहं ते कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुनम् ।
 पतिव्रतायाः संवादं कस्यच्छ्रुद्ध्यचारिणः ॥ २
 कश्यपो नीतिमान् नाम ब्राह्मणो वेदपारगः ।
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो व्याख्याने परिनिष्ठितः ॥ ३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—शुकदेव! यमीके बारेवार कहनेपर भी दृढ़तापूर्वक उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले यमने वह पाप-कर्म नहीं किया; इसलिये वे देवताओंको प्राप्त हुए। इस प्रकार सिद्धरचित्त होकर पाप न करनेवाले मनुष्योंके लिये अनन्त पुण्यफलको प्राप्ति बतलायी गयी है। ऐसे लोगोंको ह्यगंगलप फल उपलब्ध होता है। यह यमीका उपाख्यान, जो प्राचीन एवं सनातन इतिहास है, सब पार्वोंको दूर करनेवाला और पवित्र है। असूया त्याकर इसका उत्तम करना चाहिये। जो ज्ञात्यां देवयान और पितॄशयामें सदा इसका पाठ करता है, उसके पितॄगण पूर्णतः तृप्त होते हैं। उन्हें कभी यमराजके भवनमें प्रवेश नहीं करना चाहता। जो इसका नित्य पाठ करता है, वह पितॄश्वरमें मुक्त हो जाता है तथा उसे तीक्ष्ण यम-यातनाओंसे छुटकारा मिल जाता है। येषा शुकदेव! यैसे तुमसे यह मार्गोत्तम एवं पुरातन उपाख्यान कह मुनाया, जो वेदोंके वटों तथा अर्चोद्वारा विशिष्ट है। इसका पाठ करनेपर यह सदा ही मनुष्योंका पाप हर सेवा है। मुझे बताओ, अब मैं तुम्हें और क्या मुनाकै? ॥ ३५—४० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—तात! आपने जो यह वैदिक कथा मुझे सुनायी है, वही विनिप्र है। अब दूसरी पापनाशक कथाओंका मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—वेष्ट! अब मैं तुमसे उस परम उत्तम प्राचीन इतिहासका वर्णन करौंगा, जो किसी ग्रहणार्थी और एक पतिव्रता स्त्रीक संवादरूप है। (मध्यदेशमें) एक कश्यप नामक ब्राह्मण रहते थे, जो वडे ही नीतिज्ञ, वेद-वेदाङ्गोंके पासंगत विद्वान्, समस्त शास्त्रोंके अर्थ एवं उल्लङ्घन ज्ञाता, ज्ञात्यानमें प्रवीण,

स्वधर्मकार्यनिरतः परधर्मं पराद्भुखः ।
 ऋतुकालाभिगामी च अग्निहोत्रपरायणः ॥ ४
 साध्यप्रातर्पंहाभाग हुत्वाग्ने तर्पयन् द्विजान् ।
 अतिथीनागतान् गेहं नरसिंहं च पूजयत् ॥ ५
 तस्य पत्नी महाभागा सावित्री नाम नामतः ।
 पतिव्रता महाभागा पत्न्यः प्रियहिते रता ॥ ६
 भर्तुः शश्रूषणे नैव दीर्घकालमनिन्दिता ।
 परोक्षज्ञानमापद्मा करन्याणी गुणसम्मता ॥ ७
 तया सह स धर्मत्वा मध्यदेशे महामतिः ।
 नन्दिग्रामे वसन् धीमान् स्वानुष्ठानपरायणः ॥ ८
 अथ कौशलिको विद्रो यज्ञशर्मा महापतिः ।
 तस्य भार्याभवत् साध्यी रोहिणी नाम नामतः ॥ ९
 सर्वलक्षणसम्पन्ना पतिशश्रूषणे रता ।
 सा प्रसूता मुनं त्वेकं तस्माद्दर्तुरनिन्दिता ॥ १०
 स यायावरवृत्तिस्तु पुत्रे जाते विज्ञाप्तुः ।
 जातकर्म तदा चक्रे स्नात्वा पुत्रस्य मनवतः ॥ ११
 द्वादशोऽहनि तस्यैव देवशर्मं तु वृद्धिमान् ।
 पैषयाहं बाचयित्वा तु नाम चक्रे यथाविधि ॥ १२
 उपनिषद्गमणं चैव चतुर्थे मासि चत्रतः ।
 तथाप्रप्राशनं पष्टे मासि चक्रे यथाविधि ॥ १३
 संबत्तरे ततः पूर्णे चृडाकर्मं च धर्मविन् ।
 कृत्वा गर्भाण्डमे वर्षे द्वत्वयन्यं चकार सः ॥ १४
 सोपनीतो यथान्याये पित्रा वेदमधीतवान् ।
 स्वीकृते त्वेकवेदे तु पिता स्वर्लोकिमास्थितः ॥ १५
 मात्रा सहास दुःखी स पितर्युपरते सुतः ।
 धीर्यमास्थाय मेधावी साधुभिः प्रेरितः पुनः ॥ १६
 प्रेतकार्याणि कृत्वा तु देवशर्मा गतः सुतः ।
 गङ्गादिषु सुतीर्थेषु स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ १७
 तयेव प्रामयान् ग्रामं यत्रास्ते सा पतिव्रता ।
 सम्प्राप्य विश्रुतः सोऽथ द्वाहृचारी महापते ॥ १८

अपने धर्मके अनुकूल कार्योंमें तत्पर और परमामंसे विमुख रहनेवाले थे । वे ऋतुकाल आनेपर ही पत्नी-समागम करते और प्रतिदिन अग्निहोत्र किया करते थे । महाभाग ! कल्यापवी नित्य सार्वे और प्रातःकाल अग्निमें हवन करनेके चक्रत् ज्ञाहाणों तथा चरपर आये हुए अतिथियोंको तृप्त करते हुए भगवान् तृतीयका पूजन किया करते थे । उनकी चरम सौभाग्यशालिनी पात्रीका नाम सावित्री था । महाभागा सावित्री पतिव्रता होनेके कारण पतिके ही प्रिय और हित-सापनमें लगी रहती थी । अपने गुणोंके कारण उसका बड़ा सम्मान था । वह कल्याणमयी अनिन्दिता सती-साखी दीर्घकालतक पतिको शुक्रशुमारे संलग्न रहनेके कारण परेका ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी थी—परोक्षमें शृदित होनेवाली फटाऊओंका भी उसे ज्ञान हो जाता था । मध्यदेशके निवासी वे धर्मत्वा एवं परम वृद्धिमान् कल्यापवी अपनी उमी धर्मपत्नीके साथ नन्दिग्राममें रहते हुए स्वधर्मके अनुशासनमें लगे रहते थे ॥ २—८ ॥

उन्हों दिनों कोशलदेशमें उत्तम यज्ञशर्मा नामक एक परम वृद्धिमान् ज्ञात्वा थे, जिनको सती-साखी स्त्रीका नाम रोहिणी था । वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी और पतिकी संवादमें सदा तत्पर रहती थी । उस उत्तम आचार-विचारवाली लौटे अपने स्वामी यज्ञशर्मासे एक पुत्र उत्पन्न किया । पुत्रके द्वादश होनेपर यायावर-तृतीयासे वृद्धिमान् पण्डित यज्ञशर्माने ज्ञान चक्रके मन्त्रोद्गाम उसका जातकर्म-संस्कार किया और ज्ञानके बारहवें दिन उन्होंने विधिपूर्वक पूर्णाहृताचन वाराकर उसका 'देवशर्मा' नाम रखा । इसी प्रकार चौथे महीनेमें वृद्धिपूर्वक उसका उपनिषद्गमण हुआ अर्थात् वह चरमे बाहर लाया गया और छठे मासमें उन्होंने उस पुत्रका विधिपूर्वक अन्नप्राशन-संस्कार किया ॥ ९—१६ ॥

तदनन्तर एक वर्षे पूर्णे होनेपर धर्मजु पिताने उसका चृडाकर्म और गर्भसे आटवें खर्षण उपनयन-संस्कार किया । पिताके द्वारा यथोचितक्रमसे उपनयन-संस्कार ही जानेपर उसने वेदाध्ययन किया । उसके द्वारा एक वेदका अध्ययन लूप्त हो जानेपर उसके पिता त्वंगंगामी हो गये । पिताको मृत्यु होनेपर वह अपनी माताके साथ चहुत दुःखी हो गया । किंतु श्रेष्ठ पुरुषोंकी आज्ञासे उस वृद्धिमान् पुत्रने वैर्य धारण करके पिताका प्रेतकार्य किया । इसके पश्चात् यायावरकुमार देवशर्मा जरमें निकल गया (त्रिरक्ष हो गया) । वह गङ्गा आटि उत्तम तीर्थोंमें विधिपूर्वक स्नान करके धूमता हुआ वही जा पहुँचा, जहाँ वह पतिव्रता सावित्री निवास करती थी । महामते । वहीं जाकर

भिक्षाटनं तु कृत्वासी जपन् वेदमतन्नितः।
कुर्वत्रेवाग्निकार्यं तु नन्दिग्रामे च तस्मिवान्॥ १९
मृते भर्तैरितन्माता पुत्रे प्रद्वजिते तु सा।
दुःखाददुःखमनुप्राप्ता नियते रक्षकं विना॥ २०
अथ स्नात्वा तु नष्टां वै ब्रह्मचारी स्वकपटम्।
क्षिती प्रसार्य शोषार्थं जपत्रासीत वाग्यतः॥ २१
काको बलाका तदूर्सं परिगृहाश जग्मतुः।
तौ दृष्ट्वा भत्संयामास देवशर्मा ततो द्विजः॥ २२
विष्णुमुत्सन्ध्य वस्ते तु जग्मतुमस्य भर्त्सनात्।
रोधेण वीक्षयामास खो यानी पक्षिणी तु मः॥ २३
तद्रोपयविहिना दग्धी भूम्यां निपतिती खणी।
स दृष्ट्वा तौ क्षितिं याती पक्षिणी विस्मयं गतः॥ २४
तपसा न मया कश्चित् सदूशोऽस्मि महीतले।
इति मत्वा गतो भिक्षामटितु ग्राममङ्गसा॥ २५
अटन् ब्राह्मणगेहेषु ब्रह्मचारी तपःस्मर्य।
प्रविष्टस्तदगुहे वस्ते गृहे यज्ञ यतिव्रता॥ २६
तं दृष्ट्वा याच्यमानापि तेन भिक्षां पतिव्रता।
वाग्यता पूर्वं विज्ञाय भर्तुः कृत्वानुशासनम्॥ २७
क्षालयामास तत्पादी भूय उष्णोन वारिणा।
आश्चास्य स्वपतिं सा तु भिक्षां दानं प्रचक्रमे॥ २८
ततः क्रोधेन रक्ताक्षो ब्रह्मचारी पतिव्रताम्।
दग्धुकामस्तपोबीर्यात् पुनः पुनर्दैक्षत।
सावित्री तु निरीक्ष्यैवं हसन्ती सा तमद्वयात्॥ २९
न काको न बलाकाहं त्वत्क्रोधेन तु यी मृती।
नदीतरिऽद्यु कोपात्मन् भिक्षां मतो यदीच्छुभिः॥ ३०

वह 'ब्रह्मचारी' के स्वर्णे विछात हुआ। भिक्षाटन करके जीवन-निवौह करता हुआ वह आलस्यरहित हो वेदके स्वास्थ्याय तथा अविहोऽस्मै तप्तपर रहकर उसी नन्दिग्राममें रहने लगा। इधर उसकी माता अपने स्वामीके मरने और पुत्रके विरक्त होकर यारसे निकल जानेके बाद किसी नियत रक्षकके न होनेसे दुःख-पर-दुःख भोगने लगा॥ १८—२०॥

तदनन्तर एक दिन ब्रह्मचारीने बटीमें ज्ञान करके अपना वास सुखानेहो लिये पृथ्वीपर फैला दिया और स्वयं भीन होकर यज्ञ करने लगा। इसी समय एक जीवा और चग्नुला—दोनों वह वस्त्र लेकर शीघ्रतासे उड़ चले। तथ उन्हें इस प्रकार करते देख देवशर्मा ब्राह्मणने डॉट बतायी। उसकी डॉट मुनकर वे पक्षी उस प्रकार चोट करते हुए उसे यहीं ब्रह्मचार चले गये। तथ ब्राह्मणने आकाशमें उसे हुए उन पक्षियोंकी ओर छोड़पूर्वक देखा। वे पक्षी उसकी जीवाणिसे भास्म होकर पृथ्वीपर गिर गए। उन्हें पृथ्वीपर गिर देख ब्रह्मचारी बहुत ही विस्मित हुआ। फिर वह यह समझकर कि इस पृथ्वीपर तपस्यामें भीरी यात्रारी करनेवाला जोई नहीं है, अनापास ही गौवमें भिक्षा माँगने लगा॥ २१—२२॥

कल! गपन्नाकर अभिमान रखनेवाला वह ब्रह्मचारी ज्ञानग्रन्थके चाहोने भीष्म भौगोला हुआ उस यात्रे गया, जहाँ वह पतिव्रता साक्षितो रहती थी। पतिव्रताने उसे देखा, ब्रह्मचारीने भिक्षाके लिये उससे याचना की, तो भी वह मौत हो रहे। पहले उसने अपने यात्रीमें आटेशकी ओर ध्यान दे उसीका पालन किया; फिर यहम जलसे चोटीके चारण भोगे—इस प्रकार स्वामीकी जासाम देखत वह भिक्षा देनेको उचित हुई। तथ प्राप्तचारी ज्ञोभसे लाल झौंगु लाल अपने उपोक्तव्यके द्वारा पतिव्रताकी जला देनेको इच्छासे उसकी ओर आरंभ देखने लगा। साक्षितो उसे यों करते देख हँसती हुई बोली—'ऐ, जोधी ब्राह्मण! मैं कौआ और चग्नुला नहीं हूँ, जो आज नदीके हटपर तुम्हारे जीवसे जलकर भास्म हो गये। मुझसे डॉट भोग चाहते हो, तो तुम्हारा ले लो'॥ २६—३०॥

तर्यैवमुक्तः सावित्र्या भिक्षामादाय सोऽग्रतः ।
चिन्तयन् मनसा तस्या शक्तिं दूरार्थवेदिनीम् ॥ ३१

एत्याश्रमे मठे स्थाप्य भिक्षापात्रं प्रवत्ततः ।
पतिव्रतायां भुक्तायां गृहस्ये निर्गते पतीं ॥ ३२
पुनरागम्य तदेहं तामुवाच पतिव्रताम् ।

जहानार्थकाव्य

प्रदूषेतन्महाभागे पृच्छते मे यथार्थंतः ॥ ३३

विप्रकृष्टार्थविज्ञाने कथमाशु तदाभवत् ।
इत्पुक्ता तेन सा साध्यी सावित्री तु पतिव्रता ॥ ३४

तं यहायारिणं प्राह पृच्छन्तं गृहमेत्य वै ।
भृण्यस्यावहितो यहान् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ३५

तते ५५ सप्तवक्ष्यामि स्वपर्यपरिवृहितम् ।
स्त्रीणां तु पतिशुभ्रा धर्मं एषः परिस्थितः ॥ ३६

तमेवाहं सदा कुर्यां नान्यमस्मि यहामते ।
दिवाग्रामसंटिष्ठं शुद्धया परितोषणम् ॥ ३७

कुर्वन्त्या मम सप्त्वां विप्रकृष्टार्थदर्शनम् ।
अन्यत्वं ते प्रवक्ष्यामि निषोध त्वं यदीच्छसि ॥ ३८

पिता यायावरः शुद्धस्तस्माद्देवमधीत्य वै ।
मृते पितरि कृत्वा तु प्रेतकार्थमिहागतः ॥ ३९

उत्सृज्य घातरं इत्यु वृद्धां दीनां तपस्विनीम् ।
अनाथां विध्वामत्र नित्यं स्वोदरपोषकः ॥ ४०

यथा गर्भे धृतः पूर्वं पालितो लालितस्तथा ।
तां त्यक्त्वा विपिने धर्मं चरन् विप्रं न लज्जसे ॥ ४१

यथा तव कृतं यहान् यात्ये मलनिकृननम् ।
दुरितिनां तां गृहे त्यक्त्वा किं भवेद्विपिनेऽप्ततः ॥ ४२

मानुदुःखेन ते वक्त्रं पृतिगन्धपिदं भवेत् ।
पित्रेव संस्कृतो यस्मात् तस्माच्छक्तिरभूदियम् ॥ ४३

सावित्रीके यों कहनेपर उससे भिक्षा लेकर वह आगे चला और उसकी दूरवर्ती घटनाको जान लेनेवाली शक्तिका मन हो—मन चिन्तन करता हुआ अपने आत्मपर पहुंचा । वहाँ भिक्षापात्रको यत्वपूर्वक मठमें रखकर जब पतिव्रता भोजनसे नियुत हो गयो और जब उसका गृहस्थ चलि घरसे बाहर चला गया, तब वह पुनः उसके घर आगे लौर उस पतिव्रतासे बोला ॥ ३१—३२ ॥ ॥

जहानार्थारोने कहा—महाभागे ! मैं तुमसे एक यात पूछता हूं, तुम मुझे यथार्थरूपसे बताओ, तुम्हें दूरकी घटनाका ज्ञान इतना शीघ्र किसे हो गया ? ॥ ३३ ॥ ॥

उसके यों कहनेपर वह साध्यी पतिव्रता सावित्री घर आकर प्रसन्न बतनेवाले उस जहानार्थारोने यों खोलो—‘ग्रन्थ ! तुम मुझसे जो कुछ पूछते हो, उसे साध्यात्म होकर मूर्तो—स्वरूप-पालनसे बढ़े हुए, अपने परोक्षज्ञानके विषयमें मैं तुमसे भालीभौति बताऊंगा । पतिव्रता सेवा जानना ही स्वियोंका मुनिकाल एवं धर्म धर्म है । महाभागे ! मैं यहां उसी धर्मज्ञा पालन करती हूं किसी अन्य धर्मका नहीं । निष्ठादेह मैं दिन-रात अद्वैतार्थक पतिको संग्रह बताती हूं इसीलिये मूर्ते दूर होनेवाली घटनाका भी ज्ञान हो जाता है । मैं तुम्हें कुछ और भी बताकैगी; तुम्हारी इच्छा हो, तो मूर्तो—‘तुमसे पिता यज्ञार्थी यज्ञावर यूक्तिके शुद्ध ब्राह्मण थे । उनसे ही तुमने बेदाध्ययन किया था । जिताके भर जानेपर उनका प्रेतकार्य करके तुम यहाँ चले आये । दोन-अवस्थामें पहुंचकर कष्ट भोगते हुई उस अनाथ विध्वा युद्ध माताकी देवत-भूत करता छोड़कर तुम यहाँ रोज अपना ही पेट खानेमें सभे बुरे हो । जाह्नवा ! जिसने यहाँ सुन्हें गर्भमें शरण किया और जन्मके बाद तुम्हारा लालन पालन किया, उसे असहायावस्थामें छोड़कर बनमें धर्माचरण करते हुए तुम्हें लाजा नहीं आती ? यहान् ! जिसने बाल्यावस्थामें तुम्हारा मल-मूत्र साफ किया था, उस दुरिया माताको घरमें अकोली छोड़कर घरमें घूमनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? माताके कष्टमें तुम्हारा मूह दुर्गमदुक हो जायगा । तुम्हारे पिताने हीं तुम्हारा उसम संस्कार कर दिया था, जिससे तुम्हें यह शक्ति प्राप्त हुई है ।

पक्षी दग्धः सुदुरुद्धे पापात्मन् साम्प्रतं वृथा ।
वृथा स्नानं वृथा तीर्थं वृथा जासं वृथा हुतम् ॥ ४४
स जीवति वृथा ब्रह्मन् यस्य माता सुदुःखिता ।
यो रक्षेत् सततं भक्त्या मातरं मातृवत्सलः ॥ ४५
तस्येहानुष्टुतं सर्वं फलं चामुत्र चेह हि ।
मातुश्च वचनं ब्रह्मन् पालितं यैर्नरोजमैः ॥ ४६
ते मान्यास्ते नमस्कार्या इह लोके परत्र च ।
अतस्त्वं तत्र गत्वा द्यु यत्र माता व्यवस्थिता ॥ ४७
तां त्वं रक्षय जीवनीं तद्रक्षा ते परं तपः ।
क्रोधं परित्यजैनं त्वं दुष्टदृष्टिविद्यातकम् ॥ ४८
तयोः कुरु वधे शुद्धिं पश्चिणोत्तमशुद्धये ।
याथातथ्येन कथितमेतत्सर्वं मया तव ॥ ४९
ब्रह्मचारिन् कुरुष्व त्वं यदीच्छसि सतां गतिम् ।
इत्युक्त्या विररामाथ द्विजपुत्रं पतिव्रता ॥ ५०
सोऽपि तामाह भूयोऽपि साक्षिर्वीं तु क्षमापयन् ।
अज्ञानात्कृतपापस्य क्षमस्य वरविणिनि ॥ ५१
मया तवाहितं यच्च कृतं क्रोधनिरीक्षणाम् ।
तत् क्षमस्व महाभागे हितमुक्तं पतिव्रते ॥ ५२
तत्र गत्वा मया यानि कर्माणि तु शुभद्वते ।
कार्याणि तानि मे दूहि यथा मे सुगतिर्भवेत् ॥ ५३
तेनैवमुक्ता साप्याह तं पृच्छन्ते पतिव्रता ।
यानि कार्याणि वक्ष्यामि त्वया कर्माणि मे शृणु ॥ ५४
पोष्या माता त्वया तत्र निश्चयं भेष्मवृत्तिना ।
अत्र वा तत्र वा ब्रह्मन् प्रायश्चित्तं च पश्चिणोः ॥ ५५
यज्ञशर्मसुता कन्या भार्या तव भविष्यति ।
तां गृहीष्व च धर्मेण गते त्वयि स दास्यति ॥ ५६
पुत्रस्ते भविता तस्यामेकः संततिवर्धनः ।
यायावरधनाद्वृत्तिः पितृवते भविष्यति ॥ ५७

दुर्युद्धं पापात्मन्! तुम्हने व्यर्थ हीं पक्षियोंको जलाया। इस समय तुम्हाये किया हुआ थान, तीर्थसेवन, जप और होम—सब व्यर्थ हैं। ब्रह्मन्! जिसकी माता अत्यन्त हुआमें पड़े हों, वह व्यर्थ हीं जोवन धारण करता हैं। जो पुत्र भक्तापर दया करके भक्तिपूर्वक निरन्तर उसकी रक्षा करता है, उसका किया हुआ सब कर्म यहाँ और परलोकमें भी कलाप्रद होता है। ब्रह्मन्! जिन तत्त्व पुरुषोंने माताके वर्णनका पालन किया है, वे इस लोक और परलोकमें भी माननीय रूप नमस्कारके योग्य हैं। आतः जहाँ तुम्हारी मता है, वहाँ जाकर उसके जीते-जी उसीको रक्षा करो। उसकी रक्षा करना हीं तुम्हारे लिये परम तपस्या है। इस क्रोधको त्वाण दो, क्योंकि यह तुम्हारे दृष्ट और अदृष्ट—सभी कर्मोंको नष्ट करनेवाला है। उन पक्षियोंकी हत्याके पापमें अपने शुद्धिके लिये तुम प्रायश्चित्त करो। यह सब मैंने तुमसे व्यक्त कराये कहीं हैं। ब्रह्मचारिन्! यदि तुम जन्मुक्त्योंको गतिको प्राप्त करना चाहते हों तो मेरे कहे अनुसार करो ॥ ५४—५७ ॥

ब्रह्मानुकमारसे यों कहकर वह पतिव्रता चुप हो गयी। तब ब्रह्मचारी भी पुनः अपने अपराधके लिये क्षमा मौगता हुआ स्वाक्षिकीमें चोला—‘बरविणिनि। अनजानमें किये हुए मेरे इस पापको क्षमा करो। महाभागे! पतिव्रते! तुम्हें मेरे हितकी ही बात कहा है। मैंने जो क्रोधपूर्वक तुम्हारी और देखकर तुम्हारा अपराध किया था, उसे क्षमा कर दो। शुभद्वते! अब मुझे माताके पास जाकर जिनके करनेसे मेरों शुभगति हो’॥ ५०—५३ ॥

उसके इस प्रकार कहनेपर उस पूछनेवाले ब्रह्मणसे पतिव्रता साक्षियों पुनः चोली—‘ब्रह्मन्! वहाँ तुम्हाको जो कर्म करने चाहिये, उन्हें बतलाती हैं, सुनो—‘तुम्हें भिशमवृत्तिमें ज्योत्ननिर्वाह करते हुए वहाँ माताका निश्चय हीं पोषण करना चाहिये और पक्षियोंकी हत्याका प्रायश्चित्त वहाँ अथवा वहाँ अवश्य करना चाहिये। यज्ञशर्मांकी’ पुत्री तुम्हारी पत्री होगी। उसे ही तुम धर्मपूर्वक यहला करो। तुम्हारे जानेपर यज्ञशर्मा अपनी कन्या तुम्हें दे देंगे। उसके गर्भसे तुम्हारी बंश-परम्पराको बढ़ानेवाला एक पुत्र होगा। पिताकी भाँति यायावर-शृणिये प्राप्त हुए धनसे हीं तुम अपनी जांविका चलाओगे।

पुनर्मृतायां भार्यायां भविता त्वं त्रिदण्डकः ।
स यत्याश्रमधर्मेण यथोक्त्यानुषितेन च ।
नरसिंहप्रसादेन वैष्णवं पदमास्थयसि ॥ ५८

भाव्यप्रेतन् कथितं मया तत्र हि पृच्छतः ।
मन्यसे नानृतं त्वेतत् कुरु सर्वं हि मे वचः ॥ ५९

ग्रहण उक्तव्य

गच्छामि मातृरक्षार्थमर्हैवाहं पतिव्रते ।
करिष्ये त्वद्वचः सर्वं तत्र गत्वा शुभेक्षणे ॥ ६०
इत्युक्त्वा गत्वान् ग्रहणं देवशर्मा ततस्त्वरन् ।
संरक्ष्य मातरं यत्तात् क्रोधमोहविवर्जितः ॥ ६१
कृत्वा विवाहमूल्याद्य पुत्रं बंशकरं शुभम् ।
मृतभार्यैषु संन्यस्य समलोक्षाश्मकाङ्गनः ।
नरसिंहप्रसादेन परां सिद्धिमव्याप्तवान् ॥ ६२
पतिव्रताशक्तिरियं तत्वेरिता
धर्मश्च मातुः परिरक्षणं परम् ।
संसारवृक्षं च निहत्य चन्द्रं
छित्त्वा च विष्णोः पदमेति मानवः ॥ ६३

इति अन्यसिंहपुण्ये ग्रहणसाकारो लक्ष्यं उक्तव्यादेव ॥ ६३ ॥
उत्तम प्रकार अन्यसिंहपुण्ये 'पतिव्रत और ग्रहणार्थका संकार' विवरक तेरहाँ अभ्याप्त पृष्ठ हुआ ॥ ६३ ॥

फिर तुम अपनी पत्नीको मृत्युके बाद त्रिदण्डो (संन्यासी) हो जाओगे। वहाँ संन्यासाश्रमके लिये शास्त्रविहित धर्मका यथावद् रूपसे पालन करनेपर भगवान् नरसिंहकी प्रसन्नतासे तुम विष्णुपदको प्राप्त कर लोगे।' तुम्हारे पूर्णेपर मैंने ये भविष्यमें होनेवाली बातें तुमसे बतला दी हैं। यदि तुम इन्हें असत्य नहीं मानते, तो मेरे सब वचनोंका पालन करो' ॥ ५८—५९ ॥

ग्रहण बोला—पतिव्रते। मैं माताकी रक्षाके लिये आज ही जाता हूँ। शुभेक्षणे! यहाँ जाकर तुम्हारी सब वचनोंका मैं पालन करौगा ॥ ६० ॥

ग्रहण् । यों कहकर देवशर्मां वहाँसे शोषितापूर्वक चला गया और क्रोध तथा मोहसे रहित होकर उसने यत्पूर्वक माताकी रक्षा की। फिर विवाह करके एक सुन्दर बंशवर्षक पुत्र उत्तम किया और कुछ कालके बाद पत्नीकी मृत्यु हो जानेपर संन्यासी होकर केले और मिट्टीकी बराबर समझते हुए उसने भगवान् नरसिंहको कृपासे परमसिद्धि (मोक्ष) प्राप्त कर ली। यह मैंने तुमसे पतिव्रताकी शक्ति बतायी और यह भी बतलाया कि माताकी रक्षा करना परम धर्म है। संसारवृक्षका उच्छेद करके सब वचनोंको तोड़ देनेपर मनुष्य विष्णुपदको प्राप्त करता है ॥ ६१—६३ ॥

प्राप्ति अन्यसिंहपुण्ये ग्रहणसाकारो लक्ष्यं उक्तव्यादेव ॥ ६३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

तीर्थसेवन और आराधनसे भगवान्की प्रसन्नता; 'अनाश्रमी' रहनेसे दोष तथा आश्रमधर्मके पालनसे भगवत्प्राप्तिका कथन

ग्रहण उक्तव्य

शृणु बत्स प्रहारुद्दे शिष्याश्रीतां परां कथाम् ।
पर्योच्यमानां शृण्वन्तु सर्वपापप्रुणाशिनीम् ॥ १
पुरा द्विजवरः कश्चिद्देदशास्त्रविशारदः ।
पृतभार्यो गतस्तीर्थं चक्रे स्नानं यथाविधि ॥ २
तपः सुतम् विजने निःस्पृहो दारकर्मणि ।
भिक्षाहारः प्रवसितो जपस्नानपरायणः ॥ ३

व्यासजी बोले—महातुदिमान् पुत्र शुकदेव ! तुम और मेरे अन्य शिष्यगण भी मेरे हारा कहीं जानेवाली इस पापहारियो कथाको सुनो ॥ १ ॥

पूर्वकलमें कोई बेदशास्त्रविशारद ब्रेष्ट ग्राहण अपनी पक्षीको मृत्यु हो जानेपर तीर्थमें गया और वहाँ उसने विधिपूर्वक स्नान किया और विजन (एकान्त) -में रहकर उत्तम तपस्या की। तत्पश्चात् दारकर्म (विवाह) को इच्छा न रखकर वह परटेशमें रहता हुआ भिक्षा माँगकर

स्नात्वा स गङ्गां यमुनां सरस्वतीं
पुण्यां वित्तस्तामथ गोपतीं च।
यथां समासाद्य पितृन् पितामहान्
संतर्पयन् मन् गतवान् महेन्द्रम्॥ ४

तत्रापि कुण्डेषु गिरौ महामतिः
स्नात्वा तु दृष्टा भगुनन्दनोत्तमम्।
कृत्वा पितृभ्यस्तु तथेव तुमि
द्वजन् वनं पापहरं प्रविष्टः॥ ५

धारां पतन्तीं महतीं शिलोच्चयात्
मंधार्य भक्त्या त्वन् नारसिंहे।
शिरस्याशेषाधविनाशिनीं तदा
विशुद्धदेहः स बभूव विष्णुः॥ ६

विन्याचले सत्कर्मननामल्युतं
भक्तैर्मुनीन्द्रिये पूजितं सदा।
आराध्य पुर्णिमिरिसम्भवैः शुभे-
सत्रिय मिठ्ठिं त्वभिकांश्य मंस्यतः॥ ७

स नारसिंहो वहुकालपूजया
तुष्टः सुनिद्रागतमाह भक्तम्।
अनाश्रमित्वं गुहभङ्गकारणे
हृतो गृहाणाश्रममुत्तमं द्विज॥ ८

अनाश्रमीति द्विजवेदपारणा-
नपि त्वहं नानुगृह्णमि चात्र।
तथापि निष्ठां तव दीक्ष्य सनम
त्वयि प्रसन्नेन मदेत्पुटीरितम्॥ ९

तेनैवमृतः परमेश्वरेण
द्विजोऽपि कुदृष्टा प्रविचिन्त्य खाक्यप्।
हरेस्त्रलकृष्णं नरमिहृपूर्ते-
बाधं च कृत्वा स यतिर्बंधूव॥ १०

त्रिदण्डवृक्षाक्षपवित्रपाणि-
गान्तुत्य तोये त्वद्वहरिणि मित्यतः।
जपन् सदा मन्त्रमपास्तदोर्य
सावित्र्यमीशं हृदये स्मरन् हरिम्॥ ११

यथाकर्थं चित् प्रतिलभ्य शाकं
भैक्ष्याभिन्नुष्टो वनवासासी।
अभ्यच्छं विष्णुं नरमिहृपूर्ति
ध्यात्वा च नित्यं हृदि शुद्धमाद्यम्॥ १२

जीवननिवाह करने और जप, स्नान आदि उत्तम कर्मये
तत्त्वपर रहने लगा। गङ्गा, यमुना, सरस्वती, पावन वित्तस्ता
(प्रेस्त्रम) और गोपती आदिये स्नान करके वह गयामें
पहुंचा और वहों अपने पिता-पितामह आदिका तर्पण
करके महेन्द्र पर्वतपर गया। वहीं उस परम बुद्धिमान
द्विजने पर्वतीय कुण्डोंमें स्नान करनेके पश्चात् ऋषिश्रेष्ठ
भगुनन्दन वशशुभागीका दर्शन किया; फिर पूर्ववत् पितरोंके
लिये तर्पण करके चलते-चलते एक वनमें प्रवेश किया,
जो पापोंका नाश करनेवाला था॥ २-५॥

वहों एक पर्वतसे बहुत यहां धारा निरती थी, जो
विश्वेत पापराशिका विनाश करनेवाली थी। उसके जलको
संकर द्वाहूनने भक्तिपूर्वीक भगवान् नुसिंहके मस्तकपर
चढ़ाया। इससे उसी समय उसका शरीर विशुद्ध हो
गया। किंतु विन्याचल पर्वतपर मिथ्यत होकर भक्तों और
मनोकरोंसे सदा पूजित होनेवाले अनन्त अस्तुत भगवान्
विष्णुकी सुन्दर पर्वतीय पुष्पोंसे पूजा करता हुआ वह
द्वाहून विद्विकी जापनसे वहीं उहर गया॥ ६-०॥

इस तरह दीर्घकालतक उसने पूजा की। उससे प्रसन्न
होकर वे भगवान् नुसिंह गाढ़ निदामें सोये हुए अपने
उस भक्तसे स्नानये दर्शन देकर बोले—'श्रद्धाम्। किसी
आश्रमभर्योंकी श्वीकार करके व चलना गृहस्थाको मन्यांदाके
भङ्गका कारण होता है; अतः यदि तुम्हें गृहस्थ नहीं
रहना है तो किसी दूसरे उसमें आश्रमको ग्राहण करो। श्रद्धाम्।
जो किसी आश्रममें मिथ्यत नहीं है, वह यदि वेदोंका
पारगामी विद्वान् हो, तो भी मैं वहां उसपर अनुग्रह नहीं
करता; परंतु सामुख्य। तुम्हारी निष्ठा देखकर मैं तुमपर
प्रसन्न हूँ, इससे मैंने तुमसे यह चात कही है॥ ८-९॥

उन वर्षेश्वरके इस द्विकार कहनेपर उस द्वाहूनने भी
अपनी बुद्धिसे नृसिंहस्वरूप श्रीहरिके उस कथनपर विचार
करके उसे अलकृतीय माना और सम्पूर्ण नगतका बाध
(त्वाम) करके वह संन्यसी हो गया॥ १०॥

फिर प्रतीतिदिन उस पापहारी जलमें दुष्करों लगाकर
तथा उसमें दृष्टा रहकर विद्वान् और अशामाला भास्त्र
करनेसे दर्शित हाथोंवाला वह द्वाहून मन ही भन भगवान्
विष्णुका स्तरण करता हुआ निर्दोष गयत्री-मन्त्रका जप
करने लगा। निष्प्रति शुद्ध आदिदेव भगवान् विष्णुका
हृदयमें ध्यान करके उनके नुसिंह विग्रहका पूजन करता

विविक्तदेशे विपुले कुजासने
निवेश्य सर्व हृदयेऽस्य सर्वम्।
बाहुं समस्तं गुणमिन्द्रियाणां
विलीय भेदं भगवत्यनन्ते ॥ १३
विज्ञेयमानन्दभजं विशालं
सत्यात्पकं क्षेमपदं वरोऽप्यम्।
संचिन्त्य तस्मिन् प्रविहाय देहं
यथूव मुक्तः परमात्मस्त्वयो ॥ १४
इमां कथां पुक्तिपां यथोनां
पठन्ति ये नारींसिंहं स्मरन्तः।
प्रयागतीर्थपवने तु यत्कलं
तत् प्राप्य ते यान्ति होः पदं महत् ॥ १५
इत्येतदुक्तं तत्र पुत्र पृच्छतः
पुरातनं पुण्यतमं पवित्रकम्।
संसारवृक्षस्य विनाशनं परं
पूनः कपिच्छस्यभिवाज्जितं वद ॥ १६

इति श्रीवरसिंहपुराणे द्युर्दिलेऽप्याद ॥ १५ ॥

इति प्रवत्त श्रीवरसिंहपुराणे वीर्यादौ अध्याय पूरा हुता ॥ १६ ॥

पूर्वम् ॥ अन्तम् ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

संसारवृक्षका वर्णनं तथा इसे नष्ट करनेयासे ज्ञानकी महिमा

श्रीशुक उत्तरः

श्रोतुपिच्छाप्यहं तात साप्तां मुनिभिः सह ।
संसारवृक्षं सकलं येनेदं परिवर्तने ॥ १
वक्तुमर्हसि मे तात त्वयीतत् सूचितं पुरा ।
नान्यो वैति महाभाग संसारोच्चारलक्षणम् ॥ २

सृष्ट उत्तरः

म पुत्रेणीवमुक्तस्तु शिष्याणां पश्यगेन च ।
कृप्याद्वृपायनः प्राह संसारतरुलक्षणम् ॥ ३

अन्त उत्तरः

श्रृण्वनु शिष्याः सकला चत्स त्वं शृणु भावितः ।
संसारवृक्षं वक्ष्यामि येन चेदं समावृतम् ॥ ४

और जनवासी हो किसी प्रकार शाक आदि खाकर भिक्षाकृतिसे ही संतोषपूर्वक रहता था । विस्तृत एकान्त प्रदेशमें कुशासवपर बैठकर वह इन्द्रियोंके समरत बाहु विषयों तथा भेदभूदिको हृदयस्थित भगवान् अनन्तमें विशेषज्ञ करके विद्येष, अजन्मा, विराट, सत्यस्वरूप, श्रेष्ठ, कल्पाणशाम आनन्दमय परमेश्वरका विन्दन करता हुआ आयु पूर्ण होनेपर कारीर त्यागकर मुक्त एवं परमात्मस्वरूप हो गया ॥ १५—१६ ॥

जो होता थोड़ा सम्बन्धिनी अधिका भोक्ता हो उत्कृष्ट बनानेवाली इस बन्धाको भगवान् नृसिंहका रगण करते हुए पढ़ते हैं, वे प्रथमतीर्थमें स्वान करनेसे जो फल होता है, हमें जाकर अनन्तमें भगवान् विष्णुके महान् पदको प्राप्त कर लेते हैं । येदा ! तुम्हारे पूछनेसे देवे वह उत्तम, पवित्र, पुण्यतम एवं पुरातन डपाडान, जो संसारवृक्षका नाम जरनेवाला है, तुमसे कहा है; अब और यह सुनना चाहते हो ? अपना मनोरथ प्रकट करो ॥ १५—१६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—तात ! मैं इस समय मुनियोंके साथ संसारवृक्षका वर्णन सुनना चाहता हूँ, जिसके हारा यह परिच्छानका सम्मूर्ति चक्र चलता रहता है । तात ! आपने ही यहले इस वृक्षको सूचित किया है; अतः आप ही इसका वर्णन करनेके योग्य हैं । महाभाग ! आपके सिवा दूसरा कोई इस संसारवृक्षका लक्षण नहो जानता ॥ १—२ ॥

मृतजी बोले—भरद्वाज ! अपने शिष्योंके घोचमें थें दुष्पुत्र मुक्तदेवजीके इस प्रकार पूछनेपर श्रीकृष्णद्वृपायन (व्यासजी) ने उन्हें संसारवृक्षका लक्षण इस प्रकार बताया ॥ ३ ॥

श्रीव्यासजी बोले—नंद र रथो शिष्य इस विषयको सुनें, तथा जासें ! तुम भी सावधान होकर सुनो—मैं

अव्यक्तमूलपृथक्सत्तमादग्रे तशोन्मितः ।
 बुद्धिस्कन्थमयश्चैव इन्द्रियाद्वक्त्रकोटः ॥ ५
 महाभूतविशाखाश्च विशेषैः पत्रशाखावान् ।
 धर्माधर्मसुपुण्यश्च सुखदुःखफलोदयः ॥ ६
 आजीव्यः सर्वभूतानां ब्रह्म ब्रह्मः सनातनः ।
 एतद ब्रह्म परं चैव ब्रह्म ब्रह्मस्य तस्य तद् ॥ ७
 इत्येवं कथितं यत्त संसारवृक्षलक्षणम् ।
 ब्रह्ममेवं समारुद्धा योहमायानित देहिनः ॥ ८
 संसरन्तीह सततं सुखदुःखसमन्वितः ।
 ग्रायेण प्राकृता मर्त्या ब्रह्मज्ञानपरावृत्युक्ता ॥ ९
 छित्तेवं कृतिनो यानित नो यानित ब्रह्मज्ञानिनः ।
 कर्मक्रिये महाप्राज्ञ नैवं छिन्दनित दुष्कृताः ॥ १०
 एवं छित्त्वा च भित्त्वा च ज्ञानेन परमाप्तिना ।
 ततोऽपरत्यं ते यानित यस्माप्रावर्तते पुनः ॥ ११
 देहदारमयैः पाशीर्दृष्टे बद्धोऽपि मुच्यते ।
 ज्ञानमेव परं पुंसां श्रेयसामभिवाजितम् ।
 तोपणां नरमिंहस्य ज्ञानहीनः पशुः पुमान् ॥ १२
 आहारनिद्राभयपैच्युनानि
 समानमेतत्पशुभिर्निराणाम् ।
 ज्ञानं नराणामपिके हि लोके
 ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥ १३

इति उत्तरार्थापुरावै रुद्रदत्तोऽभ्युक्तः ॥ १४ ॥
 उत्तर इति उत्तरार्थापुरावै रुद्रदत्तोऽभ्युक्तम् तु ॥ १५ ॥

—१३—

सोलहवाँ अध्याय

श्रीरुद्र उक्तः

संसारवृक्षमारुद्धा द्वन्द्वपाशशर्तीर्दृष्टिः ।
 ब्रह्मामानः सुतेभ्यैः पतितो योनिसागरे ॥ १

संसारवृक्षका वर्णन करता है, जिसने इस सारे दृश्य-प्रपञ्चको ल्पन कर रखा है। यह संसार-ब्रह्म अव्यक्त-परमात्मानन्दी मूलसे प्रकट हुआ है। उन्होंसे प्रकट होकर हमारे सामने इस रूपमें खड़ा है। बुद्धि (महत्त्व) उसका तना है, इन्द्रियों ही उसके अङ्ग हैं और कोटर हैं, पञ्चमहापृथुत उसकी बड़ी-बड़ी छालियाँ हैं, चिंहोंप वदार्थ हों उसके पासे और ठहनियाँ हैं, धर्म-अधर्म फूल हैं, उससे 'सुख' और 'दुःख' नामक फूल प्रकट होते हैं, प्रकाहरणार्थे मदा रहनेवाला यह संसारवृक्ष ब्रह्माकी भीति सभी भूतोंका आश्रय है। यह अपरद्वय और परद्वय भी इस संसार-ब्रह्मका आश्रय है। त्रुति। इस प्रकार, मैंने तुम्हारे संसारवृक्षका लक्षण बतालाया है। इस ब्रह्मपर अद्ये हरण-देहाभिमानी जीव भोगित हो जाते हैं। प्रायः ज्ञानज्ञानार्थे लिप्युच प्राकृत मनुष्य मदा सुख-दुःखसे पुक्त होकर इस संसारमें रैंगे रहते हैं, ज्ञानज्ञानी विद्वान् इस संसारवृक्षकी नहीं जाते होते। वे इसका उद्घोष करके मुक्त हो जाते हैं। महाप्राज्ञ तुष्टिदेते! जो जाते हैं, वे कर्म क्रियाकाल उच्छेद नहीं कर पाते। जानी पुरुष ज्ञानकारी उत्तम रुद्रदग्धक द्वारा इस वृक्षकी छिन-भिन करके उस अमरपदाकी प्राप्त करते हैं, जहाँसे जीव पुनः इस संसारमें नहीं आता। जारीत हम्मा स्त्रीरूपी बनन्तीसे दृढ़तापूर्वक चौथा हुआ पुरुष भी हमारे द्वारा मुक्त हो जाता है; अतः केषम पुरुषोंको ज्ञानकी प्राप्ति ही यस्म अधीक्ष होती है; क्योंकि ज्ञान ही भगवान् तुष्टिदेते संतोष देता है। ज्ञानहीन पुरुष तो पशु ही है। मनुष्योंके आहार, निदा, भय और मैथुन आदि कर्म तो पशुओंके ही समान होते हैं, उनमें केवल ज्ञान ही अधिक होता है। जो ज्ञानहीन है, वे पशुओंके ही तुल्य हैं ॥ १४—१५ ॥

यः कामक्रोधलोभेस्तु विषयैः परिषीडितः ।
वद्धः स्वकर्मभिर्गाणैः पुत्रदैरेषणादिभिः ॥ २
स केन निस्तरत्याशु दुस्तरं भवसागरम् ।
पृच्छामाख्याहि मे तात तस्य मुक्तिः कथं भवेत् ॥ ३

त्रिव्यास उक्तव्य

शृणु वत्स महाप्राज्ञ यज्ञात्मा मुक्तिमाण्यात् ।
तत्त्वं ब्रह्मामि ते दिव्यं नारदेन श्रुतं पुरा ॥ ४
नरके रीरये घोरं धर्मज्ञानविवर्जिताः ।
स्वकर्मभिर्महादुःखं प्राप्ता यत्र यमालये ॥ ५
महापापकृतं घोरं सम्प्राप्ताः पापकृज्ञानाः ।
आलोक्य नारदः शीघ्रं गत्वा यत्र त्रिलोचनः ॥ ६
गङ्गाधरं महादेवं शंकरं शूलपाणिनम् ।
प्रणाम्य विधिवदेवं नारदः परिपृच्छति ॥ ७

नारद उक्तव्य

यः संसारे महाद्वन्द्वः कामभोगीः शुभाशुभैः ।
शब्दादिविषयैवंद्वः पीड्यामानः यद्गुर्विभिः ॥ ८
कथं तु मुच्यते शिष्ठे पृत्युसंसारसागरात् ।
भगवन् दृष्टि मे तत्त्वं श्रोतुमिच्छामि शंकर ॥ ९
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य त्रिलोचनः ।
उत्तरं तमुपि शाप्तुः प्रसव्रवदनो हरः ॥ १०

संहेत्र उक्तव्य

ज्ञानामृतं च गुहां च रहस्यमुखिसत्तम् ।
ब्रह्मामि शृणु दुःखघ्नं सर्वबन्धभयापहम् ॥ ११
तुणादि चतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
चराचरं जगत्सर्वं प्रसुमं चस्य मायया ॥ १२
तस्य विष्णोः प्रसादेन यदि कश्चित् प्रबुद्ध्यते ।
स निस्तरति संसारं देवानामपि दुस्तरम् ॥ १३
भोगश्वर्यमदोन्मन्तस्तत्त्वज्ञानपराइमुखः ।
संसारमुभाष्टु जीर्णा गौरिव मज्जति ॥ १४

१- पृथ्वी, प्यास, जरा, मृदु, गोप्ता और मोह—ये ये दृष्टि 'तत्त्वं' कहे गये हैं।

मिरा हुआ है तथा काम, क्रोध, लोभ और विषयोंसे पीड़ित होकर अपने कर्ममय मुख्य बन्धनों तथा पुत्रेयणा और दैरेषणा आदि गौण बन्धनोंसे आवद्ध है, वह मनुष्य इस दुस्तर भवसागरको कैसे शीघ्र पार कर सकता है? उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है? हमारे इस प्रश्नका समाधान कीजिये ॥ १—३ ॥

श्रीव्यासजी बोले— महाप्राज्ञ पुल! मैंने पूर्वकालमें नारदजीके मुखसे विसका अवण किया था और जिसे जान लेनेपर मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है, उस दिव्य ज्ञानका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। यमराजके भवनमें जहाँ प्रेत रैख्य नरकके भौतर धर्म और जानसे रहित प्राणी अपने नापकर्मोंके कारण महान् कष्ट पाते हैं, वहाँ एक जार मारदण्डी गये। उन्होंने देखा, पांची जीव अपने महान् पापोंके कर्त्तव्यरूप बोर दंकटमें पड़े हैं। यह देखकर नारदजी शीघ्र ही उस स्थानपर गये, जहाँ त्रिलोचन महादेवको थे। वहाँ पृथ्वेकर मिरिपर गङ्गाजीको धारण करनेवाले महान् देवता शूलपाणि भगवान् शंकरको उन्होंने विधितात् प्रणाम किया और इस प्रकार पूछा ॥ ४—७ ॥

नारदजी बोले—'भगवन्! जो संसारमें महान् द्वन्द्वों, शुभाशुभ कामभोगों और शब्दादि विषयोंमें बैधवार छहों कर्मियोंद्वारा पीड़ित हो रहा है, वह पृथ्युमय संसार-मालासे किस प्रकार शीघ्र ही मुक्त हो सकता है? चतुर्वाज्ञायश्च भगवान् शिव! यह जात मुझे बताइये। मैं यही सुनना चाहता हूँ।' नारदजीका वह चबन सुनकर विनेप्रधारी भगवान् हरका मुखारविन्द प्रसन्नतासे छिल उठा। वे उन महर्षिसे थोले ॥ ८—१० ॥

श्रीमहेश्वरने कहा— मूर्तिक्षेप! सुनो; मैं सब प्रकारके बन्धनोंका भय और दुःख दूर करनेवाले गौणनौय रहस्यभूत ज्ञानामृतका वर्णन करता हूँ। 'तृणसे' लेकर चतुरासन ब्रह्माजीतक, जो चार प्रकारका प्राणिसमुदाय है, वह अश्रुका समस्त चराचर जगत् जिनकी मायासे सुत हो रहा है, उन भगवान् विष्णुकी कृपासे यदि कोई जाग उठता है—ज्ञानवान् हो जाता है तो वही देवताओंके लिये भी दुस्तर इस संसार-सागरको पार कर जाता है। जो मनुष्य भोग और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत और तात्परज्ञानसे विमुक्त है, वह संसारलूपो महान् पङ्कमें उस तरह रुच जाता है, जैसे कीचड़में फैसी हुई बूढ़ी गाय।

यस्त्वात्मानं निवर्जाति कर्मभिः कोशकारवत् ।
तस्य मुक्तिं न पश्यापि जन्मकोटिश्चतैरपि ॥ १५
तस्मान्नारद सर्वेशं देवानां देवमव्ययम् ।
आराधयेत्सदा सम्यग् ध्यायेद्विष्टुं समाहितः ॥ १६
यस्ते विश्वमनाद्यनमाद्यं स्वात्मनि संस्थितम् ।
सर्वज्ञपमलं विष्टुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ १७
निर्विकल्पं निराकाशं विष्टुपञ्चं निरामयम् ।
वासुदेवमजं विष्टुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ १८
निरक्षुणं परं शान्तमच्युतं भूतभावनम् ।
देवगर्भं विष्टुं विष्टुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ १९
सर्वपापविनिर्मुक्तमप्नेयमलक्षणम् ।
निर्बाणपनष्ठं विष्टुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २०
अमृतं परमानन्दं सर्वपापविवर्जितम् ।
ब्रह्माण्डं शंकरं विष्टुं सदा संकीर्त्य मुच्यते ॥ २१
योगेश्वरं पुराणाख्यमशरीरं गुहाशयम् ।
अमात्रमव्ययं विष्टुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २२
शुभाशुभविनिर्मुक्तमृपिंषदकपरं विभूम् ।
अचिन्त्यपमलं विष्टुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २३
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वदुःखविवर्जितम् ।
अप्रत्यक्ष्यमजं विष्टुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २४
अनामगोत्रमद्वितं चतुर्थं परमं पटम् ।
तं सर्वद्वद्वतं विष्टुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २५
अरुपं सत्यसंकल्पं शुद्धमाकाशवत्परम् ।
एकाग्रप्रमनसा विष्टुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २६
सर्वांतिमकं स्वभावस्थमात्मचंतन्यरूपकम् ।
शुभमेकाक्षरं विष्टुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २७
अनिर्वाच्यमविज्ञेयमक्षरादिमसम्पवम् ।
एकं नृतं सदा विष्टुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २८

जो लेखके जोड़ेके भीति अन्तेको कर्मोंके अन्तर्मनसे बाँझ लेता है, उसके लिये कठोरों जन्मोंमें भी मूकिको सम्भावना नहीं देता। इसलिये नाश! सदा समाधिविचित होकर सर्वेषां अविनाशो देवदेव भगवान् विष्टुक सदा भलीभीत आगमन और ध्यान करना चाहिये ॥ ११—१८ ॥

जो सदा उन विश्वस्थरम्, आदि-अन्तसे रहित, सभ्योंके आदिकरण, आत्मनिष्ठ, अनन्त एवं सर्वज्ञ भगवान् विष्टुक भगवान् करता है, वह मुक्त हो जाता है। जो विकल्पसे रहित, अवकाशाद्यन्तं प्रपद्यते एवं, रोग-शोकसे हीन एवं अवन्मा है, उन वासुदेव (सर्वव्यापी भगवान्) विष्टुक सदा भगवान् करनेवाला पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो सब दोषोंसे रहित, परम शान्त, अच्युत, प्राणियोंकी मृष्टि करनेवाले तथा देखताओंके भी उत्तमत-हस्तान हैं, उन भगवान् विष्टुक सदा भगवान् करनेवाला पुरुष जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। जो सम्पूर्ण वापोंसे शून्य, झामालाहित, लक्षणहीन, शान्त तथा विष्टुप है, उन भगवान् विष्टुक सदा विनान करनेवाला अनुष्ठ ऋमेंद्रि बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो अमृतमप, वामानन्दमध्यरूप, सब वापोंसे रहित, ब्राह्मणप्रिय तथा ब्रह्मवा-कल्पान करनेवाले हैं, उन भगवान् विष्टुक विनान करें तथा अपेतं वहांसे मृत्यु संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो वीरोंके हृष्णर, पुराण, प्राकृत देहहोन, बुद्धिरूप गुहामें शशन करनेवाले, विष्टुपके सम्पर्कसे शून्य और अविनाशी हैं, उन भगवान् विष्टुक सदा ध्यान करनेवाला पुरुष उन मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है ॥ १७—२८ ॥

जो शूष्प और अत्युभावके बन्धनसे रहित, उः उभियोंसे परं, सर्वज्ञादी, अचिन्तनीय तथा निर्मल हैं, उन भगवान् विष्टुक सदा भगवान् करनेवाला अनुष्ठ संसारसे मुक्त हो जाता है। जो यमल दद्वांसे मुक्त और सब दुःखोंसे रहित है, उन तर्कोंके अविषय, अवन्मा भगवान् विष्टुक सदा ध्यान करता हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है। जो नाम गोत्रसे शून्य, अद्वितीय और जाग्रत् आदि नीनों अवश्यक्तिसे परं दुरीय वर्णवद है, अमल भूतोंके हृदय-धन्दिरमें विषयमन उन भगवान् विष्टुक सदा भगवान् करनेवाला पुरुष मुक्त हो जाता है। जो रूपरहित, अत्यनंकल्प और आकाशके समान धरम शुद्ध है, उन भगवान् विष्टुक सदा एकावित्तसे विनान करनेवाला अनुष्ठ मुक्त प्राप्त कर सकता है। जो सर्वेषां तत्त्वभावनिष्ठ और आत्मर्थ्याद्यका है, उन प्रकृत्यमन दृष्टधर (प्रकृत्यमन) भगवान् विष्टुक सदा ध्यान करनेवाला अनुष्ठ मुक्त हो जाता है।

विश्वादं विश्वगोपारं विश्वादं सर्वकामदम्।
स्थानन्त्रयातिगं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २९

सर्वदुःखक्षयकरं सर्वशान्तिकरं हरिम्।
सर्वपापहरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ ३०

ब्रह्मादिदेवगन्धवैर्मुनिभिः सिद्धचारणैः।
योगिभिः सेवितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ ३१

विष्णौ प्रतिष्ठितं विश्वं विष्णुर्विश्वे प्रतिष्ठितः।
विश्वेभ्यरमजं विष्णुं कीर्तयत्रेव मुच्यते ॥ ३२

संसारबन्धनान्मुक्तिमिच्छन् काममरोपतः।
भक्तयैव वारदं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ ३३

तत्त्व इति

नारदेन पुरा पृष्ठ एवं स वृथभध्यजः।
यद्युवाच तदा तस्मै तन्मया कथितं ततः ॥ ३४

तमेव सततं ध्याहि निर्विजं द्वया केवलम्।
अवाप्यसि ध्रुवं तात शाश्वतं पदमज्यथम् ॥ ३५

श्रुत्वा सुग्रहितिष्णोः प्राधान्यमिदपीक्षुरात्।
स विष्णुं सम्प्यगाराध्य परां सिद्धिमवासवान् ॥ ३६

यश्चेनं पठते चैव नृसिंहकृतमानसः।
शतजन्मकृतं पापमयि तम्य प्रणश्यति ॥ ३७

विष्णोः स्तवमिदं पुण्यं महादेवेन कीर्तिंतम्।
प्रातः स्नात्वा पठेन्नित्यममृतत्वं स मच्छति ॥ ३८

ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तमच्युतं
हृत्पद्यमध्येष्वथ कीर्तयन्ति ये।

उपासकानां प्रभुमीक्षुरं यत्
ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥ ३९ ॥

जो अनिर्वचनीय, ज्ञानातीत, प्रणवस्वरूप और जन्म-
रहित हैं, उन एकमात्र नित्यनूतन भगवान् विष्णुका सदा
ध्यान करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो विश्वके
आदिकरण, विश्वके रथक, विश्वका भक्षण (संहार) करनेवाले
तथा सम्पूर्ण काम्यवस्तुओंके दाता हैं, तीनों अवस्थाओंसे
अतीत उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य
मुक्त हो जाता है। समस्त दुःखोंके नाशक, सबको शान्ति
प्रदान करनेवाले और सम्पूर्ण पापोंको हर लैनेवाले भगवान्
विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य संक्षर अन्धनसे
मुक्त हो जाता है। ब्रह्मा आदि देवता, गच्छर, मुनि,
सिद्ध, चारण और योगियोंद्वारा सेवित भगवान् विष्णुका
सदा ध्यान करनेवाला पुरुष पाप-तापसे मुक्त हो जाता
है। वह विश्व भगवान् विष्णुमें स्थित है और भगवान्
विष्णु इस विश्वमें प्रतिष्ठित है। सम्पूर्ण विश्वके स्वामी,
अत्यन्त भगवान् विष्णुका कीर्तन करनेमात्रसे मनुष्य मुक्त
हो जाता है। जो संसार-बन्धनसे मुक्ति तथा सम्पूर्ण
ज्योग्यताओंके खुर्ते जाहता है, वह यदि भृत्यपूर्वक वरदायक
भगवान् विष्णुका ध्यान करे तो सफलमनोरथ होकर
सोसात जन्मान्तर से मुक्त हो जाता है ॥ ३८—३९ ॥

श्रीक्ष्वामजी कहते हैं—ब्रह्मा! इस प्रकार पूर्वकालमें
देवपिं नारदजीके पूछेनेपर उन वृथभिंहित
भवजाताले भगवान् शंकरने उस समय उनके प्रति जो
कुछ कहा था, वह सब मैंने तुमसे कह सुनाया। तात
निर्विज ब्रह्माकृप उन अद्वितीय विष्णुका ही निरन्तर ध्यान
करो; इससे तुम अवश्य ही सनातन अविनाशी पदको
प्राप्त करोगे ॥ ३४—३५ ॥

देवपिं नारदने शंकरजीके मुखसे इस प्रकार भगवान्
विष्णुके ब्रह्माकृप श्रीक्ष्वामन सुनकर उनकी भलीभीत आगमन
करके उल्लम्ब मिद्दि प्राप्त कर ली। जो भगवान् नृसिंहमें चित्त
लगाकर इस प्रसारका नित्य पाठ करता है, उसका ये
जन्ममें विष्णु हुआ पाप भी नष्ट हो जाता है। महादेवजीके
द्वायु अधित भगवान् विष्णुके इस पाथन स्तोत्रका जो प्रतिदिन
प्रत्यक्षल स्नान करके पाठ करता है, वह अमृतपद (मोक्ष)
जो प्राप्त कर लेता है। जो लोग अपने हृदय-कमलके
पाथमें विष्णुजमान अनन्त भगवान् अच्छुतका सदा ध्यान
करते हैं और उपासकोंके प्रभु उन परमेश्वर भगवान्
विष्णुहा कीर्तन करते हैं, वे परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि
(विष्णु-सायन्य) प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३६—३९ ॥

इसे श्रीक्ष्वामजीके विष्णु-स्तवत्रयस्त्रियों कीहस्तीप्रश्नापाठः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीक्ष्वामजीके विष्णु-स्तवत्रयस्त्रियों कीहस्तीप्रश्नापाठः ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

अष्टाक्षरमन्त्र और उसका माहात्म्य

कल्पुक उच्चार

कि जपन् मुच्यते तात सततं विष्णुतत्परः ।
संसारदुःखात् सर्वेषां हिताय घट मे पितः ॥ १

व्यास उच्चार

अष्टाक्षरं प्रवक्ष्यापि मन्त्राणां मन्त्रमुन्नयम् ।
यं जपन् मुच्यते मर्त्यों जन्मसंसारबन्धनात् ॥ २

हृष्पुण्डरीकमध्यस्थं शङ्खचक्रगदाघरम् ।
एकाग्रमनसा ध्यात्वा विष्णुं कुरुपूजिपं द्विजः ॥ ३

एकान्ते निर्जनस्थाने विष्णवग्ने वा जलानिके ।
जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं वित्ते विष्णुं निधाय वै ॥ ४

अष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य ऋषिनांरायणः स्वयम् ।
छन्दश्च दैवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥ ५

शुक्लवर्णं च अङ्कारं नकारं रक्तमुच्यते ।
मोक्षारं चर्णतः कृष्णा नाकारं रक्तमुच्यते ॥ ६

राकारं कुम्भपार्थं तु यकारं पीतमुच्यते ।
णाकारमङ्गनार्थं तु यकारं बहुवर्णकम् ॥ ७

अङ्ग नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।
भक्तानां जपता तात स्वर्णपीक्षफलप्रदः ।

वेदानां प्रणवेनेष मिद्दो मन्त्रः सनातनः ॥ ८

सर्वपापहरः श्रीमान् सर्वमन्त्रेषु चोत्तमः ।
एनमष्टाक्षरं मन्त्रं जपत्रारायणं स्मरेत् ॥ ९

संध्यावसाने सततं सर्वपापैः प्रपुच्यते ।
एष एव परो मन्त्र एष एव परं तपः ॥ १०

एष एव परो मोक्ष एष स्वर्गं उदाहृतः ।
सर्ववेदरहस्येभ्यः सार एष समुद्दतः ॥ ११

विष्णुना वैष्णवानां हि हिताय मनुजां पुणः ।
एवं द्वात्वा ततो विप्रो हृष्टाक्षरमिमं स्मरेत् ॥ १२

श्रीशुकदेवजी बोले — तत ! पिताजी ! मनुष्य आदा भगवान् विष्णुके भगवन्में तत्पत्र रहतारे किस मन्त्रका अप करनेमें स्मारणिक कष्टमें मुक्त होता है ? यह मुझे बतायें । इसमें यह लोगोंका हित होगा ॥ १ ॥

श्रीव्यामिनी बोले — चेता ! मैं तुम्हें सभी भज्ञोंमें उत्तम अष्टाक्षरमन्त्र बताताकौंगा, जिसका अप करनेवाला मनुष्य जन्म और मृत्युमें द्रुक् संसारलग्नी वस्त्रमें मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

द्वितीयो चाहिये कि अपने हृदय कमलके मध्यभागमें शाहू, चक्र और गदा प्रारम्भ करनेवाले भगवान् विष्णुका एकाहारितसे व्याप करते हुए जप करे । एकान्त, जनशून्य लक्षणमें, श्रीविष्णुधृतिके सम्मुख अध्यया जन्मानामें विष्णुका भगवन्में विष्णुका भगवन्में हुए अष्टाक्षरमन्त्रका जप करता चाहिये । साक्षात् भगवान् नारायण ही अष्टाक्षरमन्त्रके ऋषिः हैं, ऐसी गायत्री छन्द है, परमात्मा देवता है, अङ्कार शुक्लवर्ण है, 'न' रक्तवर्ण है, 'मो' कृष्णवर्ण है, 'ना' रक्त है, 'रा' कुम्भ-रेणुका है, 'य' पीतवर्णनका है, 'षा' अङ्गनके भगवन् कृष्णवर्णवाला है और 'ष' विष्णु वर्णमें चुक्क है । तत ! यह 'अङ्ग नमो नारायणाय' मन्त्र समरूप प्रयोजनोंका साम्रक्षण्यक है और भक्तिपूर्वक जप करनेवाले लोगोंको रक्षण तथा शोकरूप फल दे देवता है ॥ ३—४ ॥

वह सनातन मन्त्र वेदोंके प्रणव (सारभूत अक्षरों) — में मिठ्ठ होता है । यह सभी मन्त्रोंमें उत्तम, श्रीसच्चाल और सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला है । जो सदा संध्याके अन्तमें इस अष्टाक्षरमन्त्रका जप करता हुआ भगवान् नारायणका स्मरण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है । यही उत्तम मन्त्र है और यही उत्तम तपस्या है । यही उत्तम मोक्ष तथा यही स्वर्गं कहा गया है । पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वैष्णवजनोंके हितके लिये सम्पूर्ण वेद-रहस्योंमें यह सारभूत मन्त्र निष्काला है । इस प्रकार जननक ब्राह्मणको चाहिये कि इस अष्टाक्षर-मन्त्रका समरण (जप) करे ॥ ८—१२ ॥

स्वात्वा शुचिः शुचो देशे जपेत् पापविशुद्धये ।
जपे दाने च हौमे च गपने ध्यानपर्वतम् ॥ १३
जपेत्रारायणं मन्त्रं कर्मपूर्वं परे तथा ।
जपेत्सहस्रं नियुतं शुचिर्भूत्वा सप्ताहितः ॥ १४
मासि मासि तु द्वादशयां विष्णुभक्तो द्विजोत्तमः ।
स्वात्वा शुचिर्जपेत्सहस्रं नमो नारायणं शतम् ॥ १५
स गच्छेत् परमं देवं नारायणमनामयम् ।
गच्छपृथग्यादिभिर्विष्णुभनेनाराध्य यो जपेत् ॥ १६
महापातकसुकोऽपि मुच्यते नाशं संशयः ।
हृषि कृत्वा हरिं देवं मन्त्रमेन तु यो जपेत् ॥ १७
सर्वपापविशुद्धात्मा स गच्छेत् परायां गतिम् ।
प्रथमेन तु लक्षणं आत्मशुद्धिर्भविष्यति ॥ १८
द्वितीयेन तु लक्षणं मनुसिद्धिमवाण्यात् ।
तृतीयेन तु लक्षणं स्वर्गलोकमवाप्न्यात् ॥ १९
चतुर्थेन तु लक्षणं हरेः सार्वीप्यमाप्न्यात् ।
पञ्चमेन तु लक्षणं निर्मलं ज्ञानमाप्न्यात् ॥ २०
तथा पठेन लक्षणं भवेद्विष्णी स्थिरा मतिः ।
सप्तमेन तु लक्षणं स्वरूपं प्रतिपादते ॥ २१
अष्टमेन तु लक्षणं निर्वाणमधिगच्छति ।
स्वास्वधर्मसमायुक्तो जपे कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥ २२
एतत् सिद्धिकरं मन्त्रमष्टाक्षरमतन्दितः ।
दुःस्वप्नासुरपैशाचा उरगा ब्रह्मराक्षसाः ॥ २३
जापिनं नोपसर्पन्ति चौरक्षुद्राधयस्तथा ।
एकाग्रमनसाव्यग्नो विष्णुभक्तो दृढवतः ॥ २४
जपेत्रारायणं मन्त्रमेतन्यत्युभवापहम् ।
मन्त्राणां पाठ्मो मन्त्रो देवतानां च देवतम् ॥ २५

सान करके, एवित्र होकर, शुद्ध स्थानमें शैठकर पापशुद्धिके लिये इस मन्त्रका जप करना चाहिये । जप, दान, होम, गमन, ध्यान तथा पर्वके अवसरपर और किसी कर्मके महाते तथा पश्चात् इस नारायण-मन्त्रका जप करना चाहिये । भगवान् विष्णुके भक्तेषु द्विजको चाहिये कि वह प्रत्येक मासको द्वादशी लिखिको पवित्र-भावमें एकार्याचित होकर सहज या लक्ष मन्त्रका जप करे ॥ १३-१८ ॥ ॥

यहान ऊर्जे पवित्रभावमें जो 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका स्त्री (एक स्त्री आठ) चार जप करता है, वह निरामय परमांदेव भगवान् नारायणको प्राप्त करता है । जो इस मन्त्रके द्वारा गच्छ पुण्य आदिते भगवान् विष्णुकी आत्मधना करके इसका जप करता है, वह महापातकमें युक्त होनेपर भी निर्मलादेह मुक्त हो जाता है । जो इदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए, इस मन्त्रका जप करता है, वह समस्त पापोंमें विष्णुद्वाचित होकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है ॥ १५-१८ ॥ ॥

एक लक्ष मन्त्रका जप करनेसे चित्तशुद्धि होती है, दो लक्षके जपसे मन्त्रकी शिर्द्वंद्व होती है, तीन लक्षके जपसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर मजाता है, चार लक्षसे भगवान् विष्णुकी स्मरणता प्राप्त होती है और पाँच लक्षसे निर्मल जनकी प्राप्ति होती है । इसी प्रकार छ: लक्षसे भगवान् विष्णुमें चित्र मिश्र होता है, मात्र लक्षसे भगवत्स्वरूपका जन होता है और आठ लक्षसे पुण्य विकारी (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है । द्वितीयाको चाहिये कि अपने-अपने धर्मसे युक्त रहकर इस मन्त्रका जप करे । यह अग्रसरमन्त्र मिद्दिद्वापक है । आलस्य रूपानवार इसका जप करना चाहिये । इसे जप करनेकाले पुण्यको पास दुःस्वप्न, अमृत, पिण्डाच, सर्व, ब्रह्मराक्षस, चौर और छोटी-मोटी मानसिक अवधिर्भी भी नहीं पड़ती है ॥ १८-२३ ॥ ॥

विष्णुभक्तको चाहिये कि वह दृढसंकल्प एव स्वप्न होकर एकाग्राचिन्तसे इस नारायण मन्त्रका जप करे । वह मृत्यु भवका नाश करनेवाला है । मन्त्रोंमें स्वप्नमें उत्तम मन्त्र और देवताओंका भी देवता (आराध्य) है ।

गुहानां परमं गुह्यमोक्षाद्यक्षराष्ट्रकम्।
आयुष्यं धनपुत्रांश्च पशून् विद्यां महद्वाशः ॥ २६
धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते च जपन्नरः।
एतत् सत्यं च धर्मं च वेदश्रुतिनिदर्शनात् ॥ २७
एतत् सिद्धिकरं नृणां मन्त्ररूपं न संशयः।
ऋघ्यः पितरो देवाः सिद्धास्त्वसुराक्षसाः ॥ २८
एतदेव परं जपन्ना परां सिद्धिमितो गताः।
ज्ञात्वा यस्त्वात्मनः कालं शास्त्रान्तरविधानतः।
अन्तकाले जपन्नेति तद्विद्योः परमं पदम् ॥ २९
नारायणाय नम इत्ययमेव सत्यं
संसारधोरविषमंहरणाय मन्त्रः।
शृणुन् भव्यमतयो धुटितास्त्वरागा
उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्खवाहुः ॥ ३० ॥
भूत्योर्ध्वंवाहुरद्याहं सत्यपूर्वं द्वयोम्यहम्।
हे पुत्र शिष्याः शृणुत न मन्त्रोऽङ्गाक्षरात्परः ॥ ३१
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षम्य भुजमुच्यते।
वेदाच्छास्त्रं परं नास्ति न देवः केशवात् परः ॥ ३२
आलोच्य सर्वेशास्वाणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदपेक्ष सुनिष्पत्तं ध्येयो नारायणः सदा ॥ ३३
इत्येतत् सकलं ग्रोक्तं शिष्याणां तत्र पुण्यदम्।
कथाश्च विधिधाः ग्रोक्ता मया भज जनादेनम् ॥ ३४
अष्टाक्षरमिष्यं मन्त्रं सर्वदुखविनाशनम्।
जप पूत्र महायुद्धे यदि सिद्धिमधीप्ससि ॥ ३५
इदं स्तवं व्यासमुखानु निष्पृतं
संध्यात्रये ये पुरुषाः पठन्ति।
ते धौतपाण्डुरपटा इव राजहंसाः
संसारसागरपेतभवास्तरन्ति ॥ ३६

यह अङ्गकाशादि अष्टाक्षर-मन्त्र गोपनीय वस्तुओंमें परम गोपनीय है। इसका जप करनेवाला मनुष्य आशु, धन, पुत्र, पशु, विद्या, महान् यज्ञ एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भी प्राप्त कर सकता है। यह वेदों और श्रुतियोंके कथनानुसार धर्मसम्मत तथा सत्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये मन्त्ररूपी नारायण मनुष्योंको सिद्धि देनेवाले हैं। प्राप्ति, पितृगति, देवता, सिद्धि, अमूर और राक्षस इसी परम उत्तम मन्त्रका जप करके परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। जो ज्योतिष उद्दि अन्य ज्ञास्त्रोंके विधानसे अपना अन्तकाल निकट जानकर इस मन्त्रका जप करता है, वह भगवान् विष्णुके प्रसिद्ध परमपदको प्राप्त होता है। २४—२९ ॥

भव्य बुद्धिजाले विरक्त पुरुष प्रसन्नतापूर्वक भेरी
यात तुने—मैं दोनों भूजाएँ ऊपर उठाकर उच्चतस्वरमें
यह उपदेश देता है कि “संसाररूपी संपैके भयानक
विषयका नाश करनेके लिये यह ‘अङ्ग नारायणाय नमः’
मन्त्र ही सत्य (असौषध) और धृति है”। पुत्र और शिष्यों
मुनो—आज मैं दोनों याहं ऊपर उठाकर सत्यपूर्वक
कह रहा हूँ कि ‘अष्टाक्षरमन्त्र’ से बढ़कर दूसरा कोई
मन्त्र नहीं है। मैं भूजाओंको ऊपर उठाकर सत्य, सत्य
और सुरक्ष कह रहा हूँ, ‘वेदसे बढ़कर दूसरा शास्त्र
और भगवान् विष्णुसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं
है।’ अन्यथा ज्ञास्त्रोंको जालीचना तथा बार-बार उनका
विचार करनेसे एकमात्र यही उत्तम कर्तव्य सिद्ध होता
है कि ‘निष्पत्त-निरन्तर भगवान् नारायणका भयन ही
करना चाहिये’। धेरा! तुमसे और शिष्योंसे यह सारा
पुण्यदायीक प्रसंग यैने कह मूलाया तथा नाना प्रकारकी
कथाएँ भी मूलायीं; अब तुम भगवान् जनादेनका भजन
करो। महाबुद्धिमान् पूत्र! यदि तुम सिद्धि चाहते हो तो
इस सर्वदुखवाशक अष्टाक्षरमन्त्रका जप करो। जो पुरुष
श्रोत्यासौजीके मुखसे निकले हुए इस स्तोत्रका ग्रिकाल
संध्याके समय चाठ करेंगे, वे धूले हुए क्षेत्र वस्त्र तथा
गङ्गामंडीके समान निर्मल (विशुद्ध)-चित ही निर्भयतापूर्वक
संसार-सागरसे जार हो जाएंगे ॥ ३०—३६ ॥

इति ब्रैंसनिंहुयदेन अष्टाक्षरमन्त्रे तत्त्वं निकलते उपदेशः ॥ ३६ ॥

इस उत्तर ब्रैंसनिंहुयदेन अष्टाक्षरमन्त्रे निकलते उपदेशः ॥ ३७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

भगवान् सूर्यद्वारा संज्ञाके गर्भसे मनु, यम और यमीकी, छायाके गर्भसे मनु, शनैश्चर एवं तपतीकी उत्पत्ति तथा अश्वारूपयारिणी संज्ञासे अश्विनीकुमारोंका प्रादुर्भाव

गुरु उक्ताव

इति श्रुत्वा कथा: पुण्या: सर्वंपापप्रणाशिनीः ।
नानाविधा भूनिशेष्टाः कृष्णद्वयावनात् पुनः ॥ १ ॥
शुकः पूर्वं महाभागो भरद्वाजो महामते ।
सिद्धैरन्वैश्च सहितो नारायणपरोऽभवत् ॥ २ ॥
एवं ते कथिता विप्रं मार्कण्डेयादिकाः कथाः ।
मध्या विचित्राः पापच्यः किं भूयः श्रोतुमिच्छन्ति ॥ ३ ॥

भरद्वाज उक्ताव

वस्यादीनां तथा प्रोक्ता मम सुष्टिस्त्वया पुरा ।
अश्विनोर्पहतां चैव नोक्तोत्पत्तिस्तु तां खद ॥ ४ ॥

गुरु उक्ताव

परतां विस्तरेणोक्ता वैष्णवाचार्थे महामते ।
पुराणे शक्तिपुत्रेण पुरोत्पत्तिश्च वायुना ॥ ५ ॥
अश्विनोर्देवयोक्त्वं सुष्टिरक्ता सुविस्तरात् ।
संक्षेपानव वश्यामि सुष्टिपेतां शृणुव च मे ॥ ६ ॥

दक्षकन्यादितिः । अदितेरादित्यः पुत्रः । तस्मै त्वष्टा दुहितरं संज्ञां नाम वक्त्यां ददत्वान् ॥ ७ ॥ सोऽपि त्वाष्ट्रीं रूपवतीं मनोज्ञां प्राप्य तथा सह रेषे । सा कतिपयात् कालात् स्वभर्तुरादित्यस्य तापपसहन्ती पितुर्गृहं जगाप ॥ ८ ॥ तामवलोक्य सुतां पितोवाच किं पुत्रि तव भर्ता मविता स्नेहात् त्वां रक्षत्व्युत प्रत्युवाच । दग्धाहं भर्तुः प्रचण्डतापादिति ॥ ९ ॥ एवं पितुर्वचनं श्रुत्वा संज्ञा ते प्रत्युवाच । दग्धाहं भर्तुः प्रचण्डतापादिति ॥ १० ॥ एवं श्रुत्वा तामाह पिता गच्छ पुत्रि भर्तुर्गृहमिति ॥ ११ ॥ युवतीस्त्रीणां भर्तुः शुश्रूषणमेव धर्मः श्रेयान् । अहमपि कतिपयदिवसामादागन्यादित्यस्वोप्यातां जामानुरुद्धरिष्यामि ॥ १२ ॥

सुतजी बोले—मुनिवरो तथा महामते भरद्वाज ! पूर्वकालमें श्रीकृष्णाद्वयावनसे इस प्रकार नाना भौतिकी पत्तन पापनाशक कथाएँ सुनकर महाभाग शुक अन्य मिद्दूरज्ञोंके साथ भगवान् नारायणकी आत्मभवनमें ताप्त हो गए । ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने आपसे पाप नाश करनेवालों याकेपहेय आदिको विचित्र कथाएँ कहीं, अब आप और मैं मुनिना चाहते हैं ॥ १ — ३ ॥

भरद्वाजजी बोले—सुहो ! आपने यहां सुनहमें उनु आदि देवताओंकी सुष्टिका उस प्रकार तर्तन किया; उरु अश्विनीकुमारों तथा महादूर्जोंकी उत्पत्ति वहीं कहीं कहीं आह ; अब उसे हो कहिये ॥ ४ ॥

सुतजी बोले—महामते ! पूर्वकालमें शक्तिनन्दन श्रीपराशरजीने विष्णुपुराणमें महादूर्जोंकी उत्पत्तिका विवरा—पूर्वक वर्णन किया है तथा यानुदेशताने वायुपुराणमें अश्विनो-कुमारोंकी उत्पत्ति भी विस्तारपूर्वक कही है; अतः मैं यहां संक्षेपमें ही इस सुष्टिका वर्णन करौगा, सुनिये ॥ ५ ॥

प्रकाशने दक्षकी एक कन्या आदिति नामसे प्रसिद्ध है । उनके गर्भसे 'अदित्य' नामक पुत्र हुआ । अदितिकुमार अदित्यको त्वष्टा प्रवापत्तिने अपनी संज्ञा नामकी कन्या बद्ध की । आदित्य भी त्वष्टाकी रूपवती एवं मनोरमा कन्या संज्ञाकी पालक उसके साथ सूखपूर्वक रहने लगे । संज्ञा अपने पतिके दापको न सह स्वकनेके कारण कुछ उत्तरके बाद अपने पिताके घर चली गयी । उस कन्याकी देवताने पिताने कहा—‘येरी ! तुम्हारे स्वामी सूर्योदय तुम्हारा स्नेहपूर्वक पालन करते हैं या तुम्हारे साथ कट्ठोरापूर्ण व्यवहार करते हैं ?’ पिताको ऐसी आत सुनकर संज्ञा उनसे जोली—‘तात ! मैं स्वामीके प्रचण्ड तापसे खल गयी हूँ ।’ यह सुनकर पिता ने उससे कहा—‘येरी ! तुम पतिके घर चलो जाओ । पतिको मेहा करना ही युक्तो मित्रवंश वरम उनमें धर्म है । मैं भी कुछ दिनोंके बाद आहार जामाता आदित्यदेवको उप्ताताको उनके शरीरसे कुछ कम कर दूँगा ॥ ५—१२ ॥

इत्युक्ता सा च पुनर्भृत्युर्गृहे प्राप्य क्षतिपय-
दिवसाम्बन्धुं यमीं यमं चापत्यत्रयमादित्यात् प्राप्सुत् ।
पुनरस्तदृष्टातामसहनी छायां भर्तुलयभोगाय
स्वप्रज्ञावलेनोत्पाद्य तत्र संस्थाप्य गत्योत्तर-
कुरुत्यनिधिष्ठायास्ती भूत्वा विच्चार ॥ १३ ॥

आदित्योऽपि संज्ञेयमिति मत्वा तस्यां जायां
पुनरपत्यत्रयमुत्पादयामास ॥ १४ ॥ मनुं शनैश्चरं तपते
च । स्वेष्यपत्येषु पक्षपातेन वर्तनीं छायां हृष्टा यमः
स्वपितरमाह नेयमस्मन्मातेति ॥ १५ ॥ पितापि
तच्छ्रुत्वा भार्या प्राह । सर्वेष्यपत्येषु सम्मेव
वर्ततामिति ॥ १६ ॥ पुनरपि स्वेष्यपत्येषु स्नेहात्
प्रवर्तनीं छायां हृष्टा यमो यमीं च तो
यहृविधपर्यात्यमुवाच । आदित्यसंनिधानात् तृणीं
बध्यतुः ॥ १७ ॥ ततश्चायां तयोः शाये दत्तयती ।
यम त्वं ग्रेतसाजो भव यमि त्वं यमुना नाम नदी
भवेति ॥ १८ ॥ ततः क्रोधादादित्योऽपि उत्तापुद्वयोः
शाये दत्तवान् हे पुत्र शनैश्चर त्वं ग्रहो भव
कृरहस्तिर्मन्दगामी च पापग्रहस्त्वं च ॥ १९ ॥ पुर्वि
तपती नाम नदी भवेति । अथादित्यो ध्यानमास्थाय
संज्ञा कु रिथतेति विचारयामास ॥ २० ॥

म दृष्टानुजाकुरुपु ध्यानचक्षुषास्तीभृय
विचरनीम् । स्वयं चाक्षुरुपेण तत्र गत्वा तथा मह
सप्तके कृतवान् ॥ २१ ॥

तस्यामेवादित्यादश्चिनावुत्पन्नी तयोरतिशयवपुयोः
साक्षात् प्रजापतिरागत्वं देवत्वं यज्ञभागत्वं मुख्यं च
देवानां भिषजत्वं दत्त्वा जगाम । आदित्यक्षाक्षुरुप
विहाय स्वभायां संज्ञां त्वाहुं स्वस्तप्यधारिणां
नीत्वा स्वस्तप्यपास्थाय दिवं जगाम ॥ २२ ॥

पिताके यों कहनेवाल वह मनुः पिताके यह सौंदर भायी
तथा कुछ दिनोंके यह ज्ञातः मनु यम और यमी (यमुना) —
इन तीन संहारोंको इन्हे दिया । किंतु मनुः जब सूर्योका ताप
उससे नहो सहा गया, तब संहारे अपनी चुट्ठिके बलसे
स्वामीके उपरोगके लिये अपनी लापा (प्रतिविष्व) — स्वस्त्रा
एक स्त्रीको उत्तम किया तथा उसे ही परमे गत्यकर वह
उत्तरकुरुदेहमें बहते गयी और वही शोङ्किका रूप पारण
करके उधर-उधर विचरने लगी ॥ २३ ॥

अदितिनन्दन सूर्यने भी उसे रंगा ही गत्यकर उस
अपनी जापा (भार्या) — रूपधारिणी लापाके गर्भमें पूर्ण
मनु, शनैश्चर तथा तपती — इन तीन संहारोंको उत्पत्ति किया ।
छायाको अपनी संहारोंके प्रतीति पक्षपालपूर्ण वर्तावं वरों
देखकर यमने अपने पितासे कहा — “तात ! यह उत्तरांगोंकी
मत्ता नहीं है ।” पिताने भी जब यह मनु, तब उत्तर भव्यांसे
कहा — “सब संहारोंके प्रतीति सम्बलतारपरे ही वर्तावं वरों ।”
पिता भी छायाको अपनी ही संहारोंके प्रतीति अधिक स्वरूपरूप
वर्तावं वरों देख यम और यमीने उसे चहत कुछ चुरा-
भला लहा, किंतु जब सूर्योंदेव पाल आये, तब वे दोनों युप
ही रहे । यह देख छायाने उन दोनोंको शाप देते हुए,
कहा — “यम ! तुम प्रेतोंको राजा बनो और यमो ! तु यमुना !
नामक नदी हो जा !” छायाका यह कृत्यरूपरूप वर्तावं
देखकर भगवान् सूर्य भी कुपित हो उठे और उत्तरके
पुरोंको शाप देते हुए बोले — “सेतु शनैश्चर ! तु सूर्यरूपरूप
दृष्टिसे देखनेवाला नदनामी राह हो जा । तेरी यमना यापग्रहांमें
होगी । बेटी तपती ! तु भी ‘तपती’ नामकी नदी हो जा !”
उसके बाद भगवान् सूर्य यमनकर विचार करने से लगे
कि ‘संज्ञा’ कही है ॥ २४ — २५ ॥

उन्होंने यमन-नेत्रसे देखा, संहा उत्तरकुरुमें ‘अशा’ का
रूप ध्यान करके विचर रही है । तब वे स्वयं भी अक्षका
रूप ध्यान करके लहां गये । जाहर उन्होंने उसके साथ
स्वस्त्राय किया । उस अक्षास्तप्यधारिणी संहारके ही गर्भमें
सूर्यके चीरेंसे दोनों ‘अभिनीकुमार’ उत्पन्न हुए । उनके शरीर
स्वयं देवताओंसे अधिक सुन्दर थे । साक्षात् प्रजापातीने यहाँ
प्रधानकर उन दोनों कुमारोंको देवत्वं तथा वर्तावं भाग प्राप्त
करनेका अधिकार प्रदान किया । साथ ही उन्हें देवताओंका
प्रभान वेद नवा दिया । उन्होंने यह अद्वितीय जले गये । पिता
सूर्योंदेव अक्षास्तप्यधारिणी अपना स्वस्त्राय ध्यान कर-

विश्वकर्मा चागत्य आदित्यं नामभिः स्तुत्वा
तदतिशयोष्टातांशतामपशातवामास ॥ २३ ॥

एवं वः कथिता विप्रा अधिष्ठित्यतिरुत्तमा ।

पुण्या पवित्रा पापर्जी भरद्वाज महापते ॥ २४ ॥

आदित्यपुत्री पितॄनी सुराणां
दिव्येन रूपेण विराजमानी ।

श्रुत्वा तथोर्जन्म नरः पृथिव्यां
भवेत् सुरुपो दिवि मोदते च ॥ २५ ॥

लिखा । त्वष्टा प्रजापतिकी पुत्री संज्ञा भी अध्याका रूप ढोड़कर अपने साक्षात् स्वरूपमें प्रकट हो गयी । उस अवस्थामें सूर्यदेव त्वष्टा को पुत्री अपनी पतीं संज्ञाको आदित्यलोकमें ले गये । तदनन्तर विश्वकर्मा सूर्यके पास आये और उन्होंने विश्व नामोद्वारा उनका स्तवन किया तथा उनको अनुमतिसे ही उनके श्रीअङ्गूष्ठीकी ओतिशय उष्णताके अंतको कुछ शान्त कर दिया ॥ २१—२३ ॥

महामते भरद्वाज तथा अन्य ब्राह्मणो । इस प्रकार वैने आपलोगोंसे दोनों अधिष्ठित्यार्थीके जन्मकी उत्तम, पुण्यमयी, पवित्र एवं पापनाशक कथा कह सुनायी । सूर्यके बे दोनों पुत्र देवताओंके बैद्य हैं । अपने दिव्यहृष्णसे सदा प्रकाशित होते रहते हैं । उन दोनोंके जन्मकी कथा सुनकर मनुष्य इस भूतलपर सुन्दर रूपसे सुशोभित होता है और अनन्ते स्वर्गलोकमें जाकर वहाँ आकृदका अनुभव करता है ॥ २४—२५ ॥

इसी लंबाईहपुराणे लक्ष्मिदेवतालिङ्गं लक्ष्माद्वाराभ्युपः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'दोनों अधिष्ठित्यार्थीको उत्तरित' नामक अस्त्राहर्षी अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

प्रतिपादा ● प्रतिपादा

उन्नीसवाँ अध्याय

विश्वकर्माद्वारा १०८ नामोंसे भगवान् सूर्यका स्तवन

भरद्वाज उवाच

यैः स्तुतो नामभिस्तेन सविता विश्वकर्मणा ।
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि वद सूत विवस्वतः ॥ १ ॥

सूत उवाच

तानि मे शृणु नामानि यैः स्तुतो विश्वकर्मणा ।
सविता तानि वक्ष्यामि सर्वपापहराणि ते ॥ २ ॥

आदित्यः सविता सूर्यः खण्डः पूषा गर्भस्तिमान् ।

तिपिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मातृष्ठ आशुगः ॥ ३ ॥

भरद्वाजजी बोले—सूतजी! विश्वकर्माने जिन नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यका स्तवन किया था, उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ । आप सूर्यदेवके उन नामोंका वर्णन करें ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—बहान् । विश्वकर्माने जिन नामोंद्वारा भगवान् सविताका स्तवन किया था, उन सर्वपापहारी नामोंको तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ २ ॥

१. आदित्यः—आदित्यके पुत्र, २. सविता—जगत्के उत्पादक, ३. सूर्यः—सम्पत्ति एवं प्रकाशके रूप, ४. खण्डः—आकाशमें विचरनेवाले, ५. पूषा—सबका पोषण करनेवाले, ६. गर्भस्तिमान्—सहस्रों किरणोंसे

हिरण्यगर्भः कपिलस्तपनो भास्करो रविः ।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शम्भुस्तिमिरनाशनः ॥ ४

ओशुमानंशुमाली च तमोघस्तेजसां निधिः ।
आतपी मण्डली मृत्युः कपिलः सर्वतपनः ॥ ५

हरिविंश्चो महातेजाः सर्वरत्नप्रभाकरः ।
अंशुमाली तिमिरहा ऋग्यजुस्मामभावितः ॥ ६

प्राणाविष्करणो मित्रः सुप्रदीपो मनोजवः ।
यज्ञेशो गोपतिः श्रीमान् भूतज्ञः बलेशनाशनः ॥ ७

युक्त् ६. तिमिरोन्मथनः—अन्धकारनाशक, ८. शम्भुः—
कल्पाचकारी, ९. त्वष्टा—विश्वकर्मा अथवा विश्वरूपी
शिल्पके निर्माता, १०. मार्तण्डः—सूर अण्डसे प्रकट,
११. आशुगः—शीघ्रगामी ॥ ३ ॥

१२. हिरण्यगर्भः—ब्रह्मा, १३. कपिलः—
कपिलवर्जीवाले अथवा कपिलमूर्तिस्वरूप, १४. तपनः—
तपने या ताप देनेवाले, १५. भास्करः—प्रकाशक,
१६. रविः—रव—वेदव्रयोकी व्यनिसे युक्त अथवा भूतलके
रसोंका आदान (आकर्षण) करनेवाले, १७. अग्निगर्भः—
अपने भीतर अग्निमय तेजको भारण करनेवाले,
१८. अदितेः पुत्रः—अदितिदेवोंके पुत्र, शम्भुः—
कल्पाचके उत्पादक, १९. तिमिरनाशनः—अन्धकारका
नाश करनेवाले ॥ ४ ॥

२०. अंशुमान्—अनन्त किरणोंमें प्रकाशमान,
२१. अंशुमाली—किरणमालामणिहत, २२. तमोज्ञः—
अन्धकारनाशक, २३. तेजसां निधिः—तेज अथवा
प्रकाशके भण्डार, २४. आतपी—आतप या घाम प्रकट
करनेवाले, २५. मण्डली—अपने मण्डल या विष्वसे
युक्त, २६. मृत्युः—मृत्युरूप अथवा मृत्युके अधिष्ठाता
यमको जन्म देनेवाले, २७. कपिलः सर्वतपनः—भूरी
या सुनहरे किरणोंसे युक्त होत्र सबको संताप देनेवाले ॥ ५ ॥

२८. हरिः—सूर्य अथवा चापहारी, २९. विशुः—
सर्वरूप, ३०. महातेजाः—महातेजस्वी, ३१. सर्वरत्न-
प्रभाकरः—सम्पूर्ण रसों तथा प्रभापुलाके प्रकट करनेवाले,
३२. अंशुमाली तिमिरहा—किरणोंकी माला भारण करके
अन्धकारको दूर करनेवाले, ३३. ऋग्यजुस्मामभावितः—
ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद—इन तीनोंके द्वारा भावित
या प्रतिभावित ॥ ६ ॥

३४. प्राणाविष्करणः—प्राणोंके आधारभूत अन्न
आटिकी उत्पत्ति और जलकी वृष्टि करनेवाले,
३५. मित्रः—‘मित्र’ नामक आटिक अथवा सबके सुहृद,
३६. सुप्रटीपः—भलीभौति प्रकाशित होनेवाले अथवा
सर्वत्र उत्तम प्रकाश विख्यानेवाले, ३७. मनोजवः—
मनके सम्मन या उससे भी अधिक तीव्र योगदाले,
३८. यज्ञेशः—यज्ञोंके स्वामी नारायणस्वरूप,
३९. गोपतिः—किरणोंके स्वामी अथवा भूमि एवं गौओंके
पालक, ४०. श्रीमान्—कानिमान्, ४१. भूतज्ञः—सम्पूर्ण
भूतोंके ज्ञाता अथवा भूतकालकी ज्ञातोंको भी जाननेवाले,

अमित्रहा शिवो हंसो नायकः प्रियदर्शनः।
शुद्धो विरोचनः केशी महस्तांशुः प्रतर्दनः॥ ८

धर्मरथः पतंगश्च विशालो विश्वमनुतः।
दुर्धित्रेयगतिः शूरस्तोराशीर्षहायशः॥ ९

भाजिष्यन्योतिथापीशो विजिष्यविश्वभावनः।
प्रभविष्युः प्रकाशात्मा ज्ञानराशिः प्रभाकरः॥ १०

आदित्यो विश्वदृग् यज्ञकर्ता नेता यशस्करः।
विमलो वीर्यवानीशो योगज्ञो योगभावनः॥ ११

४२. क्लेशनाशनः—सब प्रकारके क्लेशोंका नाश करनेवाले ॥ ७ ॥

४३. ओमित्रहा—शत्रुनाशक, ४४. शिवः—
क्लेशाश्रमस्वरूप, ४५. हंसः—आकाशरुपी सरोवरमें
जिवनेवाले एकमात्र गुणहंस अथवा सबके आत्मा,
४६. नायकः—नेता अथवा नियन्ता, ४७. प्रियदर्शनः—
सबका प्रिय देखने या चाहनेवाले अथवा जिनका दर्शन
प्राप्तिमात्रको प्रिय है, ऐसे, ४८. शुद्धः—मलिनतासे
रहित, ४९. विरोचनः—अत्यन्त प्रकाशमान,
५०. केशी—किरणकापी केशोंसे युक्त, ५१. महस्तांशुः—
असंख्य किरणोंके पृथक्, ५२. प्रतर्दनः—अन्यकार आदिका
विशेषरूपसे संहार करनेवाले ॥ ८ ॥

५३. धर्मरथः—धर्मस्थी किरणोंसे युक्त अथवा
धर्मज प्रकाशक, ५४. पतंगः—किरणकापी पंखोंसे उड़नेवाले
भाव, जान्मारी सहितस्वरूप, ५५. विशालः—महान्
आकाशवाले अथवा विशेषरूपसे शोभायमान, ५६.
विश्वमनुतः—समस्त जगत् जिनकी सुन्ति—गुणगात्र
जाता है, ऐसे, ५७. दुर्धित्रेयगतिः—जिनके स्वरूपको
जानना या समझना अत्यन्त कठिन है, ऐसे, ५८. शूरः—
शौर्यवाली, ५९. तेजोराशिः—तेजके समूह, ६०.
महायशः—महान् यशसे सम्पन्न ॥ ९ ॥

६१. भाजिष्युः—योजितात्, ६२. योजितिथामीशः—
तेजोमय यह—नक्षत्रके स्वार्थी, ६३. विजिष्युः—
विजयशील, ६४. विश्वधात्रवः—जगत्के उत्पादक,
६५. प्रभविष्युः—प्रभावशाली अथवा जगत्को
उत्पादनके बहारण, ६६. प्रकाशात्मा—प्रकाशस्वरूप,
६७. ज्ञानराशिः—ज्ञाननिधि, ६८. प्रभाकरः—उत्कृष्ट
प्रकाश केरलानेवाले ॥ १० ॥

६९. आदित्यो विश्वदृग्—आदित्यरूपसे जगत्के
इष्ट या साक्षी अथवा सम्पूर्ण संसारके नेत्ररूप,
७०. यज्ञकर्ता—जगत्को जल एवं जीवन प्रदान करके
दानवक्त सम्पन्न करनेवाले, ७१. नेता—अन्यकारका नयन—
अपसारण कर देनेवाले, ७२. यशस्करः यशका
चिन्मतार करनेवाले । ७३. विमलः—निर्मलस्वरूप,
७४. वीर्यवान्—शक्तिशाली, ७५. ईशः—ईश्वर,

अमृतात्मा शिवो नित्यो वरेण्यो वरदः प्रभुः ।
थनदः प्राणदः श्रेष्ठः कामदः कामलपथृक् ॥ १२

तरणिः शास्त्रः शास्त्रा शास्त्रज्ञस्तप्तः शयः ।
वेदग्रन्थै विभुवीरः शान्तः सावित्रिवाक्यभः ॥ १३

ध्येयो विशेष्यतो भर्ता लोकनाथो महेश्वरः ।
महेन्द्रो वरणो प्राप्ता विष्णुरश्रितिवाकरः ॥ १४

एतेस्तु नामभिः सूर्यः स्तुतस्तेन महात्मना ।
द्याच विश्वकर्मणं प्रसन्नो भगवान् गच्छः ॥ १५

प्रथिमारोद्य धामत्र मण्डलं मम ज्ञातय ।
त्यद्विद्विस्थं भया ज्ञातमेवपीच्यर्य शमं द्वजेत् ॥ १६

७६. योगजः—भगवान् ऋहरिसे कर्मयोगका ज्ञान प्राप्त
करके उत्तमा भवुत्ते उपदेश करनेवाले,
७७. योगभावनः—योगको प्रकट करनेवाले ॥ १७ ॥

७८. अमृतात्मा शिवः—अमृतस्वरूप शिव,
७९. नित्यः—सत्त्वात्, ८०. वरेण्यः—वरण्योप—आश्रव
सेवेदोषप, ८१. वरदः—उपासकको मनोवाचित्त वर
देनेवाले, ८२. प्रभुः—सव तुष्ट करनेमें समर्थ,
८३. थनदः—थनद्वारा उत्तरनेवाले, ८४. प्राणदः—
प्राणद्वारा, ८५. श्रेष्ठः—सत्त्वसे उत्कृष्ट, ८६. कामदः—
मनोवाचित्त वस्तु देनेवाले, ८७. कामलपथृक्—
इन्द्रानुसार सव भास्त्रा करनेवाले ॥ १८ ॥

८८. तरणिः—संभवसागरसे तरनेवाले,
८९. शास्त्रः—सत्त्वात् पुरुष, ९०. शास्त्रा—शास्त्रक
या उपदेशक, ९१. शास्त्रज्ञः—समाज शास्त्राके ज्ञाता,
तप्तः—उपनेषद्से या ताप देनेवाले, ९२. शयः—गायक
अधिकार या अद्वय, ९३. वेदग्रन्थै—सूक्तसंकुचेष्टको
उपर उत्तरनेवाले, ९४. विभुः—सर्वत्र व्यापक,
९५. शीरः—शूरवीर, ९६. शान्तः—शम्पुरु,
९७. सावित्रिवाक्यभः—गायत्रीमन्त्रके अधिदेवता ॥ १९ ॥

९८. ध्येयः—ध्यान उत्तरनेवाय, ९९. विशेष्यतः—
स्तम्भूर्ज उत्तरके ईश्वर, १००. भर्ती—सत्त्वका भरण-
प्रोपय उत्तरनेवाले, १०१. लोकनाथः—संसारके रक्षक,
१०२. महेश्वरः—परमेश्वर, १०३. महेन्द्रः—देवताज इन्द्र
स्तम्भूर्ज, १०४. धात्रः—विष्णु दिवाके अधिदेवता 'धरक'—
नामक अद्वय, १०५. धाता—जगत्का धारण-प्रोपय
उत्तरनेवाले अधिका 'धरता' नामक आदित्य, १०६. विष्णु—
जगत्का अग्रवा 'विष्णु' नामक आदित्य, १०७. अग्निः—
अग्निस्तम्भूर्ज, १०८. दिवाकरः—गत्रिका अंभका दूर
करके इन्द्रानुसारी दिवको प्रकट करनेवाले ॥ २० ॥

उन यज्ञात्मा विश्वकर्माने उपर्युक्त नामोद्वारा भगवान्
सूर्यका स्तवन किया। इसमें भगवान् सूर्यको बहुत प्रसन्नता
हुई और वे उन विश्वकर्मासे बोले ॥ २१ ॥

प्रजापते! आपको बुद्धिमें जो ज्ञात है—आप जिस
उद्देशके लिएकर आये हैं, वह मुझे ज्ञात है। अतः आप
मुझे ज्ञातकरकर यज्ञाकर मेरे मण्डलस्त्रो द्वारा दें। इसमें
मेरो उपनामा तुष्ट कम हो जायगये ॥ २२ ॥

उत्पुत्तो विश्वकर्मा च तथा स कृतवान् द्विज ।
शान्तोऽप्यः सविता तस्य दुर्हितुर्विश्वकर्मणः ॥ १७

संज्ञायाक्षाभवद्विष्ट भानुस्त्वष्टारमद्वयीन् ।
तथा यस्मात् स्तुतोऽहं वै नाप्राप्नुष्टशतेन च ॥ १८

वरं वृणीष्व तस्मात् त्वं चरदोऽहं तवानप ।
इत्युत्तो भानुना सोऽथ विश्वकर्माद्विदिदम् ॥ १९

चरदो यदि मे देव वरमेते प्रयच्छ मे ।
एतैस्तु नामभिर्यस्त्वां नरः स्तोप्यति नित्यशः ॥ २०

तस्य पापक्षर्य देव कुरु भक्तस्य भास्कर ॥ २१

तेरीयमुनो दिनकृत् तथेति
त्वष्टारमुक्त्या विरगम भास्करः ।
संज्ञां विशङ्गां गविमण्डलस्थितां
कृत्या जगामात् गविं प्रमाणा ॥ २२

शहान् ! भगवान् सूर्यके यो कहनेपर विश्वकर्माने चोले ही किया । विष्टवः उस दिनसे प्रकाशस्वरूप सविता विश्वकर्माको बेटी संज्ञाके लिये शान्त हो गये तस्य उनकी उण्ठाना कम हो गयी । इसके बाद ये त्वष्टासे चोले ॥ १७' ॥

अब ! चौक आपने एक सौ आठ नामोंके द्वारा मेरी स्तुति की है, इससिये मैं प्रसन्न होकर आपहो वर देनेके लिये उपत हूं। कोई वर माँगिये ॥ १८' ॥

भगवान् सूर्यके यो कहनेपर विश्वकर्मा चोले—देव ।
यदि आप मूँझे वर देनेको उपत हूं तो यह मूँझे वर प्रदान कीजिये—‘देव भास्कर । जो मनुष्य इन नामोंके द्वारा प्रतिदिन आपकी स्तुति करे, उस भक्तगुणके योगे शारोंका आप नाश कर दे’ ॥ १९—२१ ॥

विश्वकर्माके यो उहानेपर दिन प्रकट करनेवाले भगवान् भास्कर उनसे ‘उपत अच्छा’ उहकर भूप हो गये,
तत्पश्चात् सूर्यमण्डलमें विश्वास चरनेवाली संज्ञाको निर्भय
करके, सूर्यदेवको संतुष्टकर विश्वकर्मा आपने स्थानको
नहीं गये ॥ २२ ॥

इति श्रीवरसिंहपुराणे शूर्यस्त्रियोऽप्यत्थः ॥ १८' ॥

इति उपकरण श्रीवरसिंहपुराणवर्त्तमार्थं अभ्युप तुय हृष्टः ॥ १९' ॥

प्राप्तिकर्त्ता चोले ॥

बीसवाँ अध्याय

पारुतोंकी उत्पत्ति

सूर्य उक्त्वा

साप्तते पारुतोत्पत्तिं वक्ष्यामि द्विजसत्तम । पुरा
देवासुरे युद्धे देवं रिन्द्रादिभिर्दीते ॥ १ ॥ पुराः पराभूत
दितिश्च विनष्टपुत्रा महेन्द्रदर्पहरं पूर्वमिच्छुनी
कश्यपमृष्टिं स्वपतिमाराप्त्यामास ॥ २ ॥ स च तपसा
संतुष्टो गर्भाधानं चकार तस्याम् ।
युनस्तापेवमुक्तवान् ॥ ३ ॥ यदि त्वं शुचिः सती

श्रीसूतजी चोले—द्विजश्चेष्ट ! अब मैं पारुतोंकी
उत्पत्तिका वर्णन करौंगा । पूर्वकालमें ऐतामुर-संग्राममें
इन्द्र आदि देवताओंद्वारा वित्तिके पूज्र दैत्याणा पराजित
हो गये थे । तस्य समय टिकि, जिसके पुर नहीं हो
गये थे, महेन्द्रके अधिगावको चूंगा करनेवाले पुत्रकी
इच्छा मनमें लेकर अपने पति कश्यप ऋषिको
आराधना करने लगे । तपस्यामें संतुष्ट होकर उपिने
वित्तिके भीतर नर्भका आधान किया । पिर ये उसमें
इस उक्तार चोले—‘नदि तुम परिप्र रहती दुः

शरच्छतपिमं गर्भं धारयिष्यसि ततश्च महेन्द्रदर्पणहन्ता
पुत्रो भविष्यति । इत्येवमुक्ता सा च तं गर्भं
धारयामास ॥ ४ ॥ इन्द्रोऽपि तत्त्वात्वा
बृद्धब्राह्मणरूपेणागत्य दितिपाश्च स्थितवान् ।
किंचिद्दूनपूर्णे वर्णशते पादशीचपकृत्वा दिति-
शयनमारुद्धा निद्रां गता ॥ ५ ॥ सोऽपि लक्ष्यावसरो
बन्धपाणिस्तत्कुहिं प्रविश्य वन्देण तं गर्भं सापथा
चिच्छेद । सोऽपि तेन प्रचिछुष्टानो रुरोद ॥ ६ ॥ मा
रोदीरिति बद्धिन्द्रस्तान् समधैकं चिच्छेद ॥ ७ ॥
सापथा ते सर्वे परुतो यतो जातमात्रान्मा
रोदीरित्युक्तवान् । महेन्द्रस्य सहाया अपी परुतो नाम
देवा वभूयः ॥ ८ ॥

एवं मुने सुषिरियं तद्यरिता
देवामुराणां नरनागरक्षसाम् ।
वियन्मुखानामपि यः पठेदिदं
भृणवंशु भक्त्या हरिलोकमेति सः ॥ ९ ॥

इति कीर्तिर्थपुराणे विवितात्मेऽप्यलयः ८ २० ३

इति प्रकार कीर्तिर्थपुराणे 'भरतोऽर्थं उत्तराणि' नामक वीरां अभ्यास पूरा हुः ४ ॥ १ ॥

—४—

इक्ष्वाकुसवाँ अध्याय

सूर्योदयका वर्णन

प्रदान उपाय

अनुसर्गश्च सर्गश्च त्वया चित्रा कथेति ।
वंशमन्वन्तरे बृहि वंशानुचरितं च मे ॥ १ ॥

सूत उक्ताः

राज्ञो वंशः पुराणेषु विस्तरेण प्रकीर्तिः ।
संक्षेपात् कथयिष्यामि वंशमन्वन्तराणि ते ॥ २ ॥
वंशानुचरितं चैव शृणु विष्णु महापते ।
शृणवन्तु मुनयश्चेष्टे श्रोतुमागत्य ये स्थिताः ॥ ३ ॥

सौ वर्षोंतक इस गर्भको धारण कर सकोगी तो उसके
बाद इन्द्रका दर्प चूर्ण करनेवाला पुत्र तुम्हारे गर्भरो उत्पन्न
होगा ।' कृष्णजोके यो कहनेपर इट्टात्मे उस गर्भको
धारण किया ॥ १ ॥ ४ ॥ इन्द्रकी भी जब यह समाचार ज्ञात
हुआ, तब ये बृहु ब्राह्मणके वेपमें दितिरूप पास आये और
रहने लगे । जब सौ वर्षे पूर्ण होनेमें त्रुत ही कमी रह
गयी, तब एक दिन दिति (भोजनके पश्चात्) पैर धोये
किना ही शत्यापर आकड़ हो, सो गयी । उधर इन्द्रने भी
अवसर प्राप्त हो जग्नेमें बृहु धूषमें स्नै, दितिके उदारमें प्रविष्ट
हो, कहामें उस गर्भिक सात दुकड़े बद दिये । उनके द्वारा काढे
जानेपर वह गर्भ रंगे लगा । तब इन्द्रने 'मा रोदीः' (मा
रोदीओ)—यों कहो हुए पुनः एक एकके सात सात दुकड़े
कर दीहे । इस राह सत्त-सात दुकड़ोंमें बैटे हुए, वे सातों
सूकड़ 'मारुत' नाममें विश्वास तुष्टः कर्णिक जन्म होते ही
इन्द्रने उन्हें 'मा रोदीः'—इस प्रकार कहा था । ये सभी
इन्द्रके सहायक 'मरुत' नामक देवता हुए ॥ ५ ॥ ६ ॥

मुने ! इस प्रकार मैंने तुमसे दैवता, असुर, नर, नाग,
राजस और आकाश आदि भूतोंकी युद्धिका वर्णन किया ।
जो इसका भक्तिपूर्वक शान्त अध्याय अवलोकन करता है, वह
सिद्धान्तोंको प्रसन्न होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

भगव्याजकी बोले—सूतजो ! आपने 'सर्ग' और
'अनुसर्ग' का वर्णन किया, विचित्र कथाएँ सुनायों; अब
मुहामें राजाओंके वंश, मनवन्तर तथा वंशानुचरिताका वर्णन
करें ॥ १ ॥

सूतजी बोले—पुराणोंमें राजाओंके वंशका विस्तार-
पूर्णक वर्णन किया गया है; यहाँ वै राजाओंके वंश,
मनवन्तर तथा वंशानुचरिताका वर्णनमें वर्णन
करेंगा । महामते विष्णव ! इसे आप तथा अन्य
मुनि भै, जो कथाकथितके लिये यहाँ आकर ठहरे
हुए हैं, सुनें ॥ २ ॥ ३ ॥

आदौ तावद्वृहा ब्रह्मणो मरीचिः । मरीचेः कश्यपः
कश्यपादादित्यः ॥ ४ ॥ आदित्याभ्यनुः । मनो-
रिक्ष्वाकुः, उक्ष्वाकोविर्कुक्षिः । विकुक्षेद्योत्,
द्योताद्यो वेनात्पृथुः पृथोः पृथाश्चः ॥ ५ ॥
पृथाश्चादसंख्याताश्चः । असंख्याताश्चा-
मान्याता ॥ ६ ॥ मान्यातुः पुरुकृत्सः पुरुकृत्साददृपदो
दृष्टदादभिशाम्भुः ॥ ७ ॥ अभिशाम्भोदारुणो दारुणात्
सगरः ॥ ८ ॥ सगराद्दर्यस्थो हर्यश्चाद्वारीतः ॥ ९ ॥
हारीताद्रोहिताश्चो रोहिताश्चादंशुमान् । अंशुमतो
भगीरथः ॥ १० ॥ भगीरथात् सौदासः सौदासा-
च्छब्रुदमः ॥ ११ ॥

शत्रुंदमादनरण्यः ।
अनरण्यादीर्थबाहुः । दीर्थबाहोरजः ॥ १२ ॥
अजाहशरथः, दशरथाद्रामः, रामालक्ष्मः,
लक्ष्मान् पक्षः ॥ १३ ॥ पक्षादनुपर्णः ।
अनुपर्णाद्विस्तपाणिः ॥ १४ ॥ वस्तपाणोः शुद्धोदनः ।
शुद्धोदनादूधः । वृथादादित्यवेशो निवर्तते ॥ १५ ॥
सूर्यवंशभावा ये ते प्रायान्येन प्रकीर्तिताः ।
यैरियं पृथिवी भृत्या धर्मतः क्षत्रियैः पुरा ॥ १६ ॥
सूर्यस्य वंशः कवितो मया मुने
समुद्रता यज्ञ नरेश्वरः पुरा ।
मयोच्यमानाऽङ्गिनः समाहितः
शृणुष्व वंशोऽथ नृपाननुज्ञमान् ॥ १७ ॥

१८ श्रीनरसिंहपुराणे सूर्यवंशकावदात् इति॒कविलोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणे 'एवं॒स्तत्त्वं वर्णनं' कालकृत्यकीर्तनीं क्रमागतं पूरा हुआ ॥ २१ ॥

पृष्ठा २१ पृष्ठा २२

बाईसवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

गुरु डयाल

सोमवंशं शृणुष्वाथ भरद्वाज महामुने ।
पुराणो विस्तरेणोक्तं संक्षेपात् कथयेऽधुना ॥ १ ॥
आदौ तावद्वृहा । ब्रह्मणो मानसः पुत्रो
मरीचिर्मरीचेदक्षियपर्यां कश्यपः ॥ २ ॥ कश्यपा-

सबसे पहले ब्रह्माजो प्रकट हुए; उनसे मरोचि, मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य, सूर्यसे मनु, मनुसे इश्वरकु, इश्वरकुसे विकुक्षि, विकुक्षिसे द्योत, द्योतसे वेन, वेनसे पृथु और पृथुसे पृथाशको उत्पत्ति हुई। पृथाशसे असंख्याताश्च, असंख्याताश्चसे मान्याजा, मान्याजासे पुरुकृत्स, पुरुकृत्ससे हृषद, हृषदसे अभिशाम्भु, अभिशाम्भुसे दाहण, दाहणसे सगर, सगरसे हर्यश, हर्यशसे हारीत, हारीतसे रोहिताश्च, रोहिताश्चसे अंशुमान् तथा अंशुमानसे भगीरथ उत्पत्ति हुए। भगीरथसे सौदास, सौदाससे शबुदम, शबुदमसे अवारण, अवारणसे हौर्यवाह, हौर्यवाहसे अज, अजसे दशरथ, दशरथसे श्रीराम, श्रीरामसे लव, लवसे पद्म, पद्मसे अनुपर्ण और अनुपर्णसे वस्त्रपाणिका जन्म हुआ। वस्त्रपाणिसे शुद्धोदन और शुद्धोदनसे सुध (चुद) को उत्पत्ति हुई। सुधसे सूर्यवंश समाप्त हो जाता है ॥ २ - १८ ॥

सूर्यवंशमें उत्पत्ति हुए जो क्षत्रिय हैं, उनमेंसे
मूरुष-मूरुष लोगोंका यहाँ वर्णन किया गया है, जिन्होंने
पूर्वकालमें इस पृथिवीका धर्मपूर्वक पालन किया है।
मूरे! यह मैंने सूर्यवंशका वर्णन किया है, जिसमें ज्ञातीन
कालमें अवेकानेक नरेश ही गये हैं। अब मेरे द्वारा
प्रतालामे जानेवाले चन्द्रवंशीय परम उत्तम राजाओंका
वर्णन आपलोग सुनें ॥ १६ - १७ ॥

मृतजी ओले—महामुने भरद्वाज! अब चन्द्रवंशका
वर्णन सुनो। (अन्य) पुराणोंमें इसका विस्तारपूर्वक वर्णन
किया गया है, अतः इस समय में यहाँ संक्षेपसे इसका
वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

सर्वप्रथम ब्रह्माजी हुए, उनके मानसपुत्र मरोचि हुए,

ददितेरादित्यः । आदित्यात् सुवर्चलायां मनुः ॥ ३ ॥
 पनोः सुरुपायां सोमः । सोमाद्रोहिण्यां बुधः ।
 बुधादिलायां पुरुरवाः ॥ ४ ॥ पुरुरवस आयुः । आयो
 रूपवत्यां नहुयः ॥ ५ ॥ नहुषात् पितृवत्यां ययाति ।
 ययाते शर्मिष्ठायां पूरुः ॥ ६ ॥ पूरोर्वंशदायां सम्पाति ।
 सम्पाते भर्नुदत्तायां सार्वभीमः । सार्वभीमस्य वैदेह्यां
 भोजः ॥ ७ ॥ भोजस्य लिङ्गायां दुष्यनः । दुष्यनस्य
 शकुन्तलायां भरतः ॥ ८ ॥ भरतस्य नन्दायामज्ञीहः ।
 अजमीढस्य सुदेव्यां पृथिनः । पृथनेकग्रसेनायां प्रसरः ।
 प्रसरस्य बहुरुपायां शंतनुः । शंतनोर्योजनगच्छायां
 विचित्रवीर्यः । विचित्रवीर्यस्यामिकायां पाण्डुः ॥ ९ ॥
**पाण्डोः कुन्तिदेव्यामर्जुनः । अर्जुनात् सुभद्राया-
 मधिमन्युः ॥ १० ॥ अभिमन्योरुत्तरायां परीक्षितः ।**
 परीक्षितस्य मातृवत्यां जनमेजयः । जनमेजयस्य
 पुण्यवत्यां शतानीकः ॥ ११ ॥ शतानीकस्य पुण्यवत्यां
 सहस्रानीकः । सहस्रानीकस्य मृगवत्यामुदयनः । तस्य
 वासवदत्तायां नरवाहनः ॥ १२ ॥ नरवाहनस्याशु-
 पेधायां क्षेमकः । क्षेमकान्नाः पाण्डवाः सोमवंशो
 निवर्तते ॥ १३ ॥

य इदं शृण्याग्नित्यं राजवंशमनुस्तप्तम् ।
 सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १४ ॥
 यद्येदं पठते नित्यं श्राद्धे वा श्रावयेत् पितृन् ।
 वंशानुकीर्तिं पुण्यं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ १५ ॥
 राजा हि सोमस्य पद्या तवेरिता
 वंशानुकीर्तिर्द्विज पापनाशनी ।
**शृणुष्व विप्रेन्द्र पद्योच्यमानं
 मन्वन्तरं चापि चतुर्दशाख्यम् ॥ १६ ॥**

इति श्रीरामसिंहपुरुषं सोमवंशानुकीर्तिं उत्तम प्रविष्टेऽप्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीरामसिंहपुरुषमें 'सोमवंशका वर्णन' उत्तम चार्द्वंश अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

मरीचिसे दाक्षायणीके गर्भसे कश्यपजी उत्पन्न हुए । कश्यपसे
 अदितिके गर्भसे सूर्यका जन्म हुआ । सूर्यसे सुवर्चला
 (चंडा)-के गर्भसे मनुवंशी उत्पत्ति हुई । मनुके द्वारा सुरुपायके
 गर्भसे सोम और सीमके द्वारा शोहिणीके गर्भसे बुधका
 जन्म हुआ तथा बुधके द्वारा इलाके गर्भसे राजा पुरुरवा
 उत्पन्न हुए । पुरुरवासे आद्युका जन्म हुआ, आद्युद्वारा
 रूपवतीके गर्भसे नहुय हुए । नहुयके द्वारा पितृवतीके
 गर्भसे वयाति त्रिमिष्ठाके गर्भसे पूरुका
 जन्म हुआ । पूरुके द्वारा वंशदाके गर्भसे सम्पाति और
 भानुदत्तलके गर्भसे सार्वभीम हुआ । सार्वभीमसे
 वैदेह्योके गर्भसे भोजका जन्म हुआ । भोजके लिङ्गाके
 गर्भसे दुष्यन्त और दुष्यन्तके शकुन्तलासे भरत हुआ ।
 भरतके नन्दामे अजमीढ नामक पुत्र हुआ, अजमीढके
 सुदेहोके गर्भसे पृथिन हुआ तथा पृथिनके उपरोक्तके
 गर्भसे प्राचारका अभिमन्यु हुआ । प्रसरके बहुरुपायके गर्भसे
 तत्तनु हुए, तत्तनुसे योजनगच्छाने विचित्रवीर्यको जन्म
 दिया । विचित्रवीर्यके अभिमन्युके गर्भसे पाण्डुका जन्म
 हुआ । पाण्डुसे कुन्तीदेवीके गर्भसे अर्जुन हुआ, अर्जुनसे
 सुभद्राने अभिमन्युको उत्पन्न किया । अभिमन्युसे उत्तराके
 गर्भसे परीक्षित हुआ, परीक्षितके मातृवतीसे जनमेजय
 उत्पन्न हुआ और जनमेजयके गर्भसे शतानीकवती
 उत्पत्ति हुई । शतानीकके पुण्यवतीसे सहस्रानीक हुआ,
 सहस्रानीकसे मृगवतीसे उदयन उत्पन्न हुआ और उदयनके
 वासवदत्तके गर्भसे नरवाहन हुआ । नरवाहनके अस्तमेभासे
 क्षेमक हुआ । यह क्षेमक ही पाण्डववंशका अनिम राजा
 है, इसके बाद सोमवंश निवृत हो जाता है ॥ २—१६ ॥

जो पूर्ण इस उत्तम राजवंशका सदा श्रवण करता
 है, वह सब पाण्डीसे मुक्त एवं विशुद्धित होकर विष्णु-
 लोककी प्राप्त होता है । जो इस पवित्र वंश-जन्मनको
 ज्ञातिदिन स्वर्ण पद्मा अथवा श्राद्धकालमें पितृगणोंको
 सूनाना है उसके पितृरोक्ते दिया हुआ दान अक्षय हो
 जाता है । हिंज ! यह मैंने आपसे सोमवंशी राजाओंका
 पाप-नाशक वंशानुकीर्तन सुनाया । विप्रजर ! अब मेरे द्वारा
 वयाते जानेवाले चीदह मन्वन्तरोंको सुनिये ॥ १४—१६ ॥

तेर्द्देसवाँ अध्याय

चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन

मृत उक्तन्

प्रथमं तावत् स्वाच्छुर्व मन्वन्तरं तत्स्वरूपं
कथितम् । सर्गादौ स्वारोचिषो नाम द्वितीयो
मनुः ॥ १ ॥ तस्मिन् स्वारोचिषे मन्वन्तरे विष्णुच्छ्राम
देवेन्द्रः । पारावता: सतुषिता देवा: ॥ २ ॥ ऊर्जमत्प्यः
सुप्राणो दन्तो निक्षेपभो वरीयानीभुरः सोमः
सप्तर्थ्यश्चैवम् किम्बुरुपादा: स्वारोचिषप्य मनोः
पुत्रा राजानो भवन्ति ॥ ३ ॥ तुलीय उत्तमो नाम मनुः ।
सुधामानः सत्या: शिवा: प्रतर्दना वंशवर्तिनः देवा: ।
पञ्चते द्वादशगणाः ॥ ४ ॥ तेषां सुशानिरन्द्रः ॥ ५ ॥
बन्धा: सप्तर्थ्योऽभवन् । अत्र परशुच्छ्रामा मनोः
सुता: ॥ ६ ॥ चतुर्थस्तापसो नाम मनुः । तत्र मन्वन्तरे
सुरा: परा: सत्या: सुधिष्ठितु जापितातिका
गणाः ॥ ७ ॥ तत्र भृशुण्डी नाम देवेन्द्रः । हिरण्यरोमा
देवश्रीस्तर्थ्यवाहुदेवयाहुः सुप्राप्ता ह पर्वत्यो मुभिरित्येते
सप्तर्थ्यः ॥ ८ ॥ न्योतिधीमा पृथुः काश्योऽग्निर्धनक
इत्येते तापसम्य मनोः पुत्रा राजानः ॥ ९ ॥ पञ्चमो
नाम रैवतो मनुः । तस्यान्तरे अभिता विरता वैकुण्ठाः
मुपेधस इत्येते देवगणाश्चतुर्दशका गणाः ।
असुरानाको नाम देवेन्द्रः । सप्तकाणा मनोः सुता
राजानो वै ब्रह्मः ॥ १० ॥ शान्तः शान्तभयो
विद्वांसपस्त्री मेधावी सुताः सप्तर्थ्योऽभवन् ॥ ११ ॥
पषुक्षाकृष्णो नाम मनुः । पुरुषतद्युम्प्रमुखासप्तस्य सुता
राजानः । मुशान्ता आप्या: प्रसृता भव्या: प्रथिताकृष्ण
महान् भावा लेखादा: पञ्चते हाष्टका गणास्तत्र
देवा: ॥ १२ ॥ तेषामिन्द्रो मनोजयः । मेधा: सुमेधा
विरजा हविष्यानुत्तमो मतिमात्राम्ना सहिष्णुक्षीने
सप्तर्थ्यः ॥ १३ ॥ सप्तमो वैवस्त्रतो मनुः साप्त्रते वर्तते ।
तस्य पुत्रा उक्ष्याकुप्रभृतयः क्षत्रिया भूभुजः ॥ १४ ॥

सुतजी बोले — प्रथमं 'स्वाच्छुर्व' मन्वन्तर है, उसका
स्वरूप पहसे वत्साया जा चुका है । मृत्युके आदिकालमें
'स्वारोचिष' नामक द्वितीय मनु हुए थे । उस स्वारोचिष
मन्वन्तरमें 'विष्णुलिङ्म' नामक देवराज इन्द्र थे । उस समयके
देवता 'पारावत' और 'तुषित' नामसे प्रसिद्ध थे । कर्वन्तप्य,
सुप्राण, दन्त, निश्चय, वरीयान्, ईश्वर और सोम—ये उस
मन्वन्तरमें जातिए थे । उसके प्रकार 'स्वारोचिष' मनुके
किम्बुप आदि तुष्ट उन दिनों भूमण्डलके गजा थे । तुलीय
मनु 'डलम' नामसे जातिष्ठ थुए । उनके समयमें सुधामा,
सल्ल, शिव, प्रतर्दन और वंशवर्ती (अश्वत्थ वशवर्ती) —ये
चौथे देवगण थे । हनुमें प्रत्येक गणामें यारह-बारह व्यक्ति
में । इन देवताओंके इन्द्रका नाम था—'सुशानिः' । उन दिनों
जो स्वर्णिये थे, उनको 'वन्द' 'संता' थी । इस वन्दनाममें 'परशु'
और 'गिर्ज' आदि यन्मपूज राजा थे । चौथे मनुका नाम था—
'साप्तम': उनके मन्वन्तरमें देवताओंके पर, सत्य और सुधी
नामवाले गण थे । इनमेंसे प्रत्येक गणामें मत्साईस-मत्साईम
देवता में । इन देवताओंके राजा इन्द्रका नाम था—'भृशुण्डी' ।
उस समय हिरण्यरोमा, देवश्री, कृष्णजयहु, देवयाहु, सुप्राप्ता,
पर्वत्य और मुनि—ये सत्तरिं थे । न्योतिधीम, पृथु, काश्य,
आग्नि और धनक—वैलामस मनुके पृथु इस भूमण्डलके राजा
थे । पांचवें मनुका नाम था—'रैत' । उनके मन्वन्तरमें
अभित, निश्च, वैकुण्ठ और सुमेधा—ये देवताओंके गण थे ।
इनमेंसे प्रत्येक गणमें चौदह-चौदह व्यक्ति थे । इन देवताओंके
जो इन्द्र थे, उनका नाम था—'असुरानक' । उस समय
सहस्र आदि यन्मपूज भूतलके राजा थे । शान्त, शान्तमय,
विद्वान्, तपस्यो, मेधावी और सुताः—ये सत्तरिं थे । छठे
मनुका नाम 'गारुद' था । उनके समयमें पुरु और शतद्युम्प
आदि मनुपूज राजा थे । उस समय अल्पन्त शान्त रहनेवाले
लेख, आप्य, प्रसृत, भाव और प्रथित—ये चाँद महान् भाव
देवगण थे । इन चाँदों गणोंमें आठ-आठ व्यक्ति थे । इनके
इन्द्रका नाम 'मनोजव' था । उन दिनों मेधा, सुमेधा, विरजा,
हविष्यान्, उत्तम, मतिमान् और सहिष्णु—ये सत्तरिं थे ।
सातवें मनुको 'वैवस्त्रत' कहते हैं, जो इस समय वर्तमान
है । उनके इत्यत्रहु आदि शृणिवाजातीय पुत्र भूपाल हुए ।

आदित्यविश्ववसुरुद्राद्या देवाः पुरंदरोऽन्
देवेन्द्रः ॥ १५ ॥ वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिर्जंमद्विग्निंतम्-
विश्वामित्रभरद्वाजाः सप्तर्षयो भवन्ति ॥ १६ ॥

भविष्याणि मन्वन्तराणि कथ्यन्ते । तद्यथा
आदित्यात् संज्ञायां जातो यो मनुः
पूर्वोक्तश्छायायायामृत्युग्रो मनुर्दुर्तीयः स तु । पूर्वजस्य
साक्षण्स्य मन्वन्तरे साक्षण्िकमष्टमं शृणु ॥ १७ ॥
मनुः साक्षण्िऽष्टमो भविता तत्र सुतपाद्या
देवगणास्तेषां अलिरिन्द्रो भविता ॥ १८ ॥ दीक्षिमान्
गालबो नामा कृपद्वौणिव्यासऋष्यभृत्याक्षु सप्तर्षयो
भवितारः । विगाजोर्वरीयनिर्मोकाद्याः साक्षण्स्य मनोः
मुता राजानो भविष्यन्ति ॥ १९ ॥ नवमो दक्ष-
साक्षण्िर्मनुर्भविता । धृतिः कीर्तिर्दीपि: केतुः पञ्चाहस्तो
निरामयः पृथुश्वराद्या दक्षसाक्षणां राजानोऽस्य मनोः
पुत्राः ॥ २० ॥ मरीचिगर्भः सुपाप्णिं हविष्यन्तस्तत्र
देवता । तेषामिन्द्रोऽद्युतः ॥ २१ ॥ सखनः कृतिमान्
हत्यो वसुपेत्यातिथिन्योतिथ्यानित्येते सप्तर्षयः ॥ २२ ॥
दशमो छहासाक्षण्िर्मनुर्भविता । विहङ्कादयस्तत्र
देवाः । तेषां शान्तिरिन्द्रः । हविष्यान् सुकृतिः
सत्यस्तपोमूर्तिनांभागः प्रतिमोकः समकेतुरित्येते
सप्तर्षयः ॥ २३ ॥ सुक्षेत्र उत्तमो भूरिषेणादयो
छहासाक्षण्िपुत्रा राजानो भविष्यन्ति ॥ २४ ॥ एकाटशे
मन्वन्तरे धर्मसाक्षणिको मनुः ॥ २५ ॥ सिंहसखनादयो
देवगणाः । तेषां दिवस्यतिरिन्द्रः ॥ २६ ॥
निर्मोहस्तत्त्वदशो निकम्प्यो निन्तसाहो धृतिमान् रुच्य
इत्येते सप्तर्षयः । चित्रसेनविचित्राद्या धर्मसाक्षण्िपुत्रा
भूमृतो भविष्यन्ति ॥ २७ ॥ रुद्रसाक्षण्िर्भविता द्वादशो
मनुः ॥ २८ ॥ कृतधामा तत्रेन्द्रो हरिता रोहिता
सुमनसः सुकमणिः सुतपाशु देवाः ॥ २९ ॥ तपस्यी
चारुतपास्तपोमूर्तिस्तपोगतिस्तपोधृतिन्योतिस्तप इत्येते
सप्तर्षयः ॥ ३० ॥ देववान् देवशेष्टुद्यास्तस्य मनोः
सुता भूपाला भविष्यन्ति ॥ ३१ ॥ त्रयोदशो रुचिर्नाम
मनुः । स्वर्गी वाणः सुधर्मा प्रभृतयो देवगणाः ।

इस मन्वन्तरमें आदित्य, विश्ववसु और रुद्र आदि देवगण हैं
जौर 'पुरंदर' इनके इन्द्र हैं । वसिष्ठ, कश्यप, अति, जमदग्नि,
गीतम, विश्वामित्र और भरद्वाज—ये इस मन्वन्तरके सप्तर्षी
हैं ॥ १—१६ ॥

अब भविष्य मन्वन्तरोका वर्णन किया जाता है—
आदित्यसे संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न हुए जो 'मनु' हैं, उनकी
चर्चा पहले हो चुकी है और हायाके गर्भसे उत्पन्न दूसरे
'मनु' हैं । इनमें प्रथम उत्पन्न हुए जो 'मात्र्वर्ण' मनु हैं,
उनके हो 'मात्र्वर्णक' नामक आठवें मन्वन्तरका वर्णन
सुनिये । 'मात्र्वर्ण' ही आठवें मनु होंगे । उस समय सुतप
आदि देवगण होंगे और 'शति' उनके इन्द्र होंगे । दीक्षिमान्,
गत्तव, नामा, कृत, अक्षमध्या, व्यास और ऋष्यभृत्—
ये सप्तर्षी होंगे । विराज, उत्तरीय और विर्योक आदि
साक्षण मनुके पुत्र रहते होंगे । परं भावी मनु 'दक्षसाक्षणी'
है । धृति, कीर्ति, दीपि, केतु, पञ्चाहस्त, निरामय तथा
पृथुक्षक आदि दक्षसाक्षणी मनुके पुत्र उस समय राजा
होंगे । उस मन्वन्तरमें भरतीयगर्भ, सुधर्मा और हविष्यान्—
ये देवता होंगे और उनके इन्द्र 'अद्युत' नामसे प्रसिद्ध
होंगे । सखन, कृतिमान्, हत्य, चमु, मेघर्तिर्षी तथा ज्योतिर्मान्
(और रुच्य)—ये सप्तर्षी होंगे । दसवें मनु 'छहासाक्षणी'
होंगे । उस समय विरुद्ध, आदि देवता और उनके 'शान्ति'
नामक इन्द्र होंगे । हविष्यान्, सुकृति, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग,
प्रतिमोक और सहकेन्द्र—ये सप्तर्षी होंगे । सुक्षेत्र, उत्तम,
भूरिषेण आदि 'छहासाक्षणी' के पुत्र रहते होंगे । ग्यारहवें
मन्वन्तरमें 'धर्मसाक्षणी' नामक मनु होंगे । उस समय मिंह,
सखन आदि देवता और उनके 'टिगरस्वर्णी' नामक इन्द्र
होंगे । निषेद्ध, तत्त्वदशो, निकम्प्य, निलक्ष्मा, भूतिमान् और
रुच्य—ये सप्तर्षी होंगे । विश्वेन और विचित्र आदि धर्मसाक्षणी
मनुके पुत्र रहते होंगे । चारहवें मनु 'रुद्रसाक्षणी' होंगे । उस
मन्वन्तरमें 'कृतधामा' नामक इन्द्र और हरित, रोहित,
सुमना, सुकम्पी तथा सुतपा नामक देवगण होंगे । तपस्यी,
चालना, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, ज्येति और रुच—
ये सप्तर्षी होंगे । रुद्रसाक्षणीके पुत्र देववान् और देवकेन्द्र
आदि भूमध्यदलके रहते होंगे । तेरहवें मनुका नाम 'रुचि'
होगा । उस समय सुग्रीव, व्यास और सुधर्मा नामक देवगण

तेषामिन्द्र ऋषभो नाम भविता ॥ ३२ ॥
 निश्चितोऽग्नितेजा वपुष्मान् धृष्टे वारुणिहृविष्मान्
 नहुयो भव्य इति समर्थ्यः । सुधर्मा देवानीकादयस्तस्य
 मनोः पुत्राः पृथ्वीश्वरा भविष्यन्ति ॥ ३३ ॥
 भौपश्चतुर्दशो मनुभीविता । सुरचिह्नत्रेन्द्रः चक्राम्बन्तः
 पवित्राः कनिष्ठाभा देवगणाः ॥ ३४ ॥
 अग्निबाहुशुचिशुकपाधवशिवाभीमजितस्त्रामा इत्येते
 समर्थ्यः । उरुगम्भीरद्वाहामास्तस्य मनोः सुता
 राजानः ॥ ३५ ॥ एवं ते चतुर्दश मन्वन्तराणि
 कथितानि । राजानश्च येरियं यसुथा पाल्यते ॥ ३६
 मनुः समर्थ्यो देवा भूपालाश्च मनोः सुताः ।
 मन्वन्तरे भवन्त्येते शक्ताञ्छिकारिणः ॥ ३७

चतुर्दशभिरतेन्द्रु गतीमन्वन्तीद्विज ।
 सहस्रयुगपर्यन्तः कालो गच्छति वासरः ॥ ३८
 तावत्प्रमाणा च निशा ततो भवति सत्तम् ।
 अह्यरूपधरः शेते सर्वात्मा नुहरिः स्वपम् ॥ ३९
 प्रेतोक्त्यमधिलं प्रस्ता भगवानादिकुद्विभः ।
 स्वमायामास्थितो विष्र सर्वसूपी जनादेन ॥ ४०
 अथ प्रयुज्हो भगवान् यथा पूर्वं तथा पुनः ।
 युगव्यवस्थां कुरुते सृष्टि च पुरुषोत्तमः ॥ ४१
 एते ततोक्ता मनवोऽपराश्च
 पुत्राश्च भूपा मनवश्च सर्वे ।
 विभूतयस्तस्य स्थिती स्थितस्य
 तस्येव सर्वं त्वयवेहि विष्र ॥ ४२ ॥

तथा उनके 'ज्ञवभ' नामक इन्द्र होंगे । निश्चित, अग्नितेजा,
 वपुष्मान्, धृष्ट, वारुणि, हृविष्मान् और भव्यमूर्ति नहुय—
 ये सहर्मि होंगे । उस मनुके सुधर्मा तथा देवानीक आदि
 पुत्र भूपाल होंगे । चौदहवें भावो मनुका नाम 'भौम'
 होंगा । उस समय 'सुरस्वि' नामक इन्द्र और चक्राम्बन्,
 पवित्र तथा कनिष्ठाभ नामक देवगण होंगे । अग्निबाहु,
 शुचि, शुक्र, माघव, शिव, अभीम और जितशास—ये
 सहर्मि होंगे तथा उस भौम मनुके पुत्र रह, गम्भीर और
 चक्रा आदि भूतलके रुप होंगे । इस प्रकार मैंने आपसे
 चौदह मन्वन्तरोंका और उन-उन मनुके पुत्र तत्कालीन
 राजाओंका वर्णन किया, जिनके द्वारा इस वसुधारा
 पालन होता है ॥ १७—३६ ॥

अल्लेक मन्वन्तरमें मनु, शत्रुघ्नि, देवता और भूपाल
 मनुपुत्र तथा इन्द्र—ये अधिकारी होते हैं । अहम् । इन
 चौदह मन्वन्तरोंके व्यतीत हो जानेपर एक हजार चतुर्युगका
 समय बीत जाता है । यह (ज्ञानाजीका) एक दिन कहानाता
 है । माधुकिरोमणे । फिर उन्हें हो प्रमाणको उनकी राजि
 होती है । उस समय सब भूतोंके आत्मा साक्षात् भगवान्
 नृसिंह ज्ञानकृप भारत करके शयन करते हैं । निष्पत्र ।
 सर्वज्ञ ज्ञानाक एवं आदिविधाता सर्वरूप भगवान् जनादेन
 उस समय सभस्त विभूतिनको अपनेमें लीन करके अपनी
 योगमायाका आत्म ही शयन करते हैं । फिर जाग्रत्
 होनेपर वे भगवान् पुरुषोत्तम पूर्वोक्तपके अनुसार पुनः
 युग-ज्ञानस्या तथा सृष्टि करते हैं । अहम् । इस प्रकार मैंने
 मनु, देवगण, भूपाल, मनुपुत्र और चक्रघ—इन सबका
 आपसे वर्णन किया । आप इन सबको पालनकर्ता भगवान्
 विष्णुकी विभूतियों ही समझें ॥ ३७—४२ ॥

इसे ओनरसिंहपुराणे इस्तोनिलोपव्याप्तः ॥ २३ ॥

इस प्रकार ओनरसिंहपुराणे 'चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन' नामक लेइसलॉ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

सूर्यवंश—राजा इश्वाकुका भगवत्प्रेम; उनका भगवद्दर्शनके हेतु तपस्याके लिये प्रस्थान

श्रीसूत उल्लङ्घन

- अतः परं प्रवक्ष्यामि बंजानुचरितं शुभम्।
श्रुत्वतामपि पापचं सूर्यसोम्यनुपात्मकम्॥ १
- सूर्यवंशोद्धवो यो वै मनुपुत्रः पुरोदितः।
इश्वाकुनाम भूपालक्ष्मिं तस्य मे शृणु॥ २
- आसीद भूमी महाभाग पुरी दिव्या सुशोभना।
सरयूतीरमासाद्य अयोध्या नाम नामतः॥ ३
- अमरावत्यतिशया त्रिंशदोजनजालिनी।
हमस्य शुराथपत्योर्हीर्तुष्टे: कल्पद्रुपद्मभैः॥ ४
- प्राकारादृप्रतोलीभिमतोरणैः काञ्छनप्रभैः।
विराजमाना सर्वत्र सुविभक्तचतुष्पद्मा॥ ५
- अनेकभूमिप्रासादा वहुभाण्डसुविक्रया।
पद्मोत्पलशुभैस्तोर्यवापीभिरुपशोभिता॥ ६
- देवतायतनेदिव्यवेदपोषेष्ठ शोभिता।
वीणावेणुमृदङ्गेष्ठ शब्देन्द्रकृष्णकेर्युता॥ ७
- शालैस्तालैर्नालिकेरैः पनसामलजम्बुकैः।
तथैवाप्नुकपित्यादैरशोकेनपशोभिता॥ ८
- आरामैविविधैर्युक्ता सर्वत्र फलपादपैः।
मलिकामालतीजातिपाटलानागच्छर्पकैः॥ ९
- करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलङ्घकृता।
कदलीलबलीजातिमातुलङ्घमहाफलैः।
क्वचिच्छन्दनगच्छादैर्नरङ्गेष्ठ सुशोभिता॥ १०
- नित्योत्सवप्रमुदिता गीतवाद्यविचक्षणैः।
नरनारीभिराङ्गाभी रूपद्रविणप्रेक्षणैः॥ ११

श्रीसूतदी कहते हैं— अब मैं सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओंके 'वंशानुचरित' का वर्णन करूँगा, जो श्रोतुओंका भी पाप नह जानेवाला है। मूर्ने! मैंने पहले सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए जिन मनुपुत्र 'इश्वाकु' नामक भूपालकी चर्चा की थी, उनके चरित्रका वर्णन आप मुझसे सुनें॥ १—२॥

महाभाग! इस पृथ्वीपर सरयू नदीके किनारे 'अयोध्या' नामसे प्रसिद्ध एक शोभायमान दिव्य पुरी है। यह अमरवती-से भी छढ़कर सुन्दर और तीस योजन लंबी-चौड़ी थी। हाथों, चोटों, रथ और फैदल संस्कृतोंके समूह तथा कल्पवृक्षोंके समान छानितमान् युक्त उस पुरोकी शोभा बढ़ाते थे। यहांसदीवारी, अद्वितीयता, प्रतोली (गली या राजमार्ग) और सुखर्जकी सी काँचनयाली फाटकोंसे वह बड़ी शोभा का रही थी। अलग-अलग बने हुए उसके चौराहे बहुत सुन्दर लगते थे। वहांके महल कई मंजिल ढैखते थे। नाना प्रकारके भाण्डों (भौति-भौतिके सामानों)-का सुन्दर दोणसे क्रृप-क्रिक्रप होता था। कमर्ती और उत्तरांसे मुखोंभित जलसे भरी हुई बाललियाँ उस पुरोकी शोभा बढ़ा रही थीं। दिव्य देवतायत तथा ऐदमन्त्रोंके घोप उस नगरीकी श्री-मुद्दि करते थे। बीणा, खेत्र और मृदग आदिके उत्कृष्ट शब्दोंसे वह पुरी गैंडती रहती थी। शाल (सालू), ताल (ताड़), नरियल, कटहल, ओंवला, जामुन, आम और कलियथ (कैथ) आदिके वृक्षों तथा अशोक-पुष्पोंसे अपोध्यापुरीको बड़ी शोभा होती थी॥ ३—४॥

बहाँ सब जगह नाना प्रकारके खगोंसे और फलवाले वृक्ष पुरोकी शोभा बढ़ाते थे। मलिकका (मोतिया या बेत्ता), मालारी, चमेली, पाहर, नागकेसर, चम्पा, करनेर, कनकचम्पा और केलकी (केलड़ा) आदि पुष्पोंसे मानो उस पुरोका भूङ्गर किया गया था। केला, हरफा, रेवड़ी, जायफल और चिंबीर नीबू चन्दनकी-सी गंधवाले तथा दूसरे प्रकारके संतरे आदि बड़े-बड़े फल उसकी शोभा बढ़ाते थे। गौत और बाटूयें कुशल पुरुष उस पुरोमें प्रतिदिन आनन्दोत्सव मनाये रहते थे। वहाँके स्त्री-पुरुष क्रृप-वैभव तथा सुन्दर नेत्रोंसे सम्पन्न थे॥ ५—११॥

नानाजनपदाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता ।
देवतुल्यप्रभायुक्तं नृपपुर्वक्ष संयुता ॥ १२

सुखपापिवरखीभिदेवखीभिरिवायुता ।
विग्रे: सत्कविभिर्युक्ता ब्रह्मतिसमप्रभे: ॥ १३

वणिगजनैस्तथा पौर: कल्पवृक्षवर्युता ।
अश्वैरुच्चैः श्रवस्तुल्यदन्तिभिर्दिग्गर्जित्व ॥ १४

इति नानाविधेभाविरयोध्येन्पुरीसमा ।
तां दृष्टा नारदः श्लोकं सभामध्ये पुरोक्तवान् ॥ १५

स्वर्गं वै सुजमानस्य व्यर्थं स्यात् पद्यजन्मनः ।
जातायोध्याधिका स्वर्गात् कामपोगसमन्विता ॥ १६

तामावसदयोध्यां तु स्वाभिधिको महीयतिः ।
जितवान् सर्वभूपालान् धर्मेण स महावलः ॥ १७

पाणिकयमुकुटैर्युक्ते राजभिर्मण्डलाधियैः ।
नमद्विर्भक्तिभीतिभ्यां पादी तस्य किणीकृतौ ॥ १८

इक्ष्वाकुरक्षतबलः सर्वशास्त्रविशारदः ।
तेजसेन्द्रेण सदृशो मनोः सुनुः प्रतापवान् ॥ १९

धर्मतो न्यायतक्षीव वेदज्ञवृह्णीयुतः ।
पालयामास धर्मात्मा आसमुद्रां पर्हीमिमाम् ॥ २०

अस्त्रीर्जिंगाय सकलान् संयुगे भूपतीन् खली ।
अखजित्य सुतीक्ष्णैस्तु तन्मण्डलमध्याहरत् ॥ २१

जितवान् परलोकांश्च क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
दानेश्च विविधैर्वृह्णान् राजेक्ष्वाकुः प्रतापवान् ॥ २२

बाहुद्वयेन वसुधां जिह्वाग्रेण सरस्वतीम् ।
बभार पद्मामुरसा भक्तिं चित्तेन माधवे ॥ २३

संतिष्ठुतो हरे रूपमुपविष्टुं च माधवम् ।
शयानमप्यनन्तं तु कारयित्वा पटेऽमलम् ॥ २४

यह पुरी नाना दंशोंके मनुष्योंसे भरी-पूरी, ध्वजा-पताकाओंसे सुरोभित तथा अनेकानेक कानिमान् देवोपम राजकुमारोंसे युक्त थी। वहाँ देवाङ्गनाओंके समान श्रेष्ठ श्वं रूपवती विनिताएँ निवास करती थीं। बृहस्पतिके समान तेजस्वी सत्कवि ज्ञाह्यण उस नारीकी शोभा बढ़ाते थे। कल्पवृक्षसे भी बढ़कर उदार नारीकों और वैश्यों, उच्चे शवाके समान वेष्ट घोड़ों और दिग्गजोंके समान विश्वालक्षण इत्याधियोंसे वह पुरी बड़ी शोभा पाती थी। इस प्रकार नाना वस्तुओंसे भरी-पूरी अयोध्यापुरी इन्द्रपुरी अमरावतीकी समाना करती थी। पूर्वकालमें नारदजीने उस पुरीको देखकर भरी सभामें यह श्लोक कहा था—‘स्वर्गाको सृष्टि करनेवाले विद्वानाका वह सारा प्रयत्न लक्ष्य ही गया, क्योंकि अयोध्यापुरी उससे भी बढ़कर मनोजान्मित भोगोंमें सम्मङ्ग ही गयी’ ॥ १२—१६ ॥

इक्ष्वाकु इसी अयोध्यामें निवास करते थे। वे राजा के पट्टपर अभिधिक हो, पृथ्वीका पालन करने लगे। उन महान् व्यक्तिगती नेतृत्वे धर्ममुद्देश्यके हारा समलूप भूपालोंको जीत लिया था। मानिकने बने मुकुटोंसे अलंकृत अपैक छोटे-छोटे मण्डलोंके सासाक राजाओंकि भक्ति तथा भयपूर्वक प्रणाम करनेमें उनके दोनों चरणोंमें मुकुटोंकी रागड़रे चिह्न बन गया था ॥ १७—१८ ॥

मनुषु प्रतापी राजा इक्ष्वाकु अपने राजोचित तेजस्ये इन्द्रोंको समानता करते थे। वे सम्पूर्ण लास्त्रोंकि ज्ञानमें निरुण थे। उनका वल कभी क्षीण नहीं होता था। वे धर्मात्मा भूपाल वेदवेत्ता ज्ञाह्यणोंके साथ धर्म और न्याय-पूर्वक इस समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका पालन करते थे। उन व्यक्तिगती नेतृत्वे संग्राममें अपने तीखे लस्त्रोंसे समस्त भूपांको जीतकर उनका मण्डल अपने अधिकारमें कर लिया था ॥ १९—२१ ॥

ब्रह्मन् ! प्रतापी राजा इक्ष्वाकुने प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञ और नाना प्रकारके दान करके परलोकोंपर भी विजय प्राप्त कर सी थी। वे अपनी दोनों भुजाओंहारा पृथ्वीका, जिह्वाके अग्रभागसे सरसवाकीका, वक्षःस्थलसे राजलक्ष्मीका और हृदयसे भगवान् लक्ष्मीपतिको भक्तिका भार चहत करते थे। एक वस्त्रपर खड़े हुए भगवान् हरिका, बैठे हुए लक्ष्मीपतिका

प्रिकालं ग्रयमाराघ्य स्वप्ने विष्णोर्महात्मनः।
गन्धपूष्पादिपिर्वित्यं रेषे दुहा पटे हरिम्॥ २५
कृष्णं तं कृष्णमेधाभं भुजगेन्द्रनिवासिनम्।
पद्माक्षं पीतकामं च स्वप्नोत्थपि स दृष्टवान्॥ २६
चकार मेषे तद्वर्णं बहुमानमति नृपः।
पक्षपातं च तप्त्रामिन् मृगे पद्मे च तादृशो॥ २७
दिव्याकृति हरे: साक्षाद् द्रव्यं तस्य महीभृतः।
अतीव तुष्णा संजाता अपूर्वैव हि सत्तमः॥ २८
तुष्णायां तु प्रवृद्धायां मनसैव हि पार्थिवः।
चिन्तयामास मतिमान् रात्र्यभोगमसारबन्॥ २९
वेशमदारसुतक्षेत्रं संन्यसत् येन दुःखदम्।
दैराग्यज्ञानपूर्वेण लोकेऽस्मिन् नास्ति तत्समः॥ ३०
इत्येवं चिन्तयित्वा तु तपस्यासक्तचेतनः।
वसिष्ठं परिप्रच्छ तत्रोपायं पुरोहितम्॥ ३१
तपोबलेन देवेशं नारायणमयं भुवे।
प्रमुहित्तुष्णाप्यहं तत्र उपायं तं बदस्य मे॥ ३२
इत्युक्तः प्राह राजानं तपस्यासक्तमानसम्।
वसिष्ठः सर्वधर्मज्ञः सदा तस्य हिते रतः॥ ३३
यदीच्छसि महाराज द्रव्यं नारायणं परम्।
तपसा सुकृतेनेह आराध्य जनार्दनम्॥ ३४
केनाप्यतपतपसा देवदेवो जनार्दनः।
प्रदृष्टुं न शक्यते जातु तस्मान् तं तपसार्चय॥ ३५
पूर्वदक्षिणदिभागे सरयूतीरगे नृप।
गालवप्रमुखानां च ऋषीणामस्ति चाश्रमः॥ ३६
पञ्चयोजनमध्यानं स्थानमस्मान् पावनम्।
नानाद्रुपलताकीर्ण नानापुष्पसमाकुलम्॥ ३७

और सौये हुए अनन्तदेवका निर्मल चित्र बनवाकर क्रमसः
जातःकाल, मध्याह्नकाल और संध्याकालमें तीनों समय वे
महात्मा भगवान् विष्णुके उन तीनों रूपोंका गम्य तथा
पुण्य आदिके द्वारा पूजन करते और उस पटपर प्रतिदिन
भगवान् विष्णुका दर्शन करके प्रसन्न रहते थे। उन्हें
स्वप्नमें भी नागराज अनन्तकी शत्यापर सौये हुए,
कलों मेषके समान इष्टामयर्ण, कमललोकन, पीताम्बरधारी
भगवान् श्रीकृष्ण (विष्णु)-का दर्शन हुआ करता था।
एवाने भगवान्के समान इष्टामयर्णवाले नेष्टमें अत्यन्ता
सम्मानपूर्ण चुदि कर ली थी। भगवान् श्रीकृष्णवो
नामसे युक्त कृष्णसार मृगमें और कृष्णमयवाले
कमलमें वे पक्षपात रखते थे॥ २२—२७॥

महापुणिरोपने! उस राजाके मनमें भगवान् विष्णुके
दिव्य लक्षणको ग्राहक देखनेकी अप्यन्त उल्लट अभिनाशा
जाता॥ हृदय, उनको वह तुष्णा अपूर्व ही थी। जब उनको
तुष्णा बहुत बढ़ गयी, तब वे चुडिमान् भूमाल मन-ही-
मन सारे रात्र-भोगको निस्तार-सा समझने लगे। उन्होंने
सोचा—‘विष्णु पुरुषने ये, स्त्री, पुरुष और योज आदि
दुःखद भोगोंको विद्युत्य और हातपूर्वक त्वाग दिया है,
उसके समान बहुभागी इस संशालमें कोई नहीं है।’ इस
प्रकार सोच-विचारकर, तपस्यामें आसक्तचित हो उन्होंने
उसके लिये अपने ‘पुरोहित वसिष्ठजीसे उपाय पूजा—
‘भ्रुवे! मैं तपस्याके बलसे देवेशर, अलम्य भगवान्
नारायणका दर्शन करना चाहता हूँ; इसके लिये आप मुझे
कोई उत्तम उपाय लगाइये’॥ ३८—३२॥

उनके इस प्रकार कहनेपर राजाके हितमें सदा लगे
रहनेवाले सर्वधर्मज्ञ मुनिवा चमिहुडीने तपमें आसक्तचित
उन नेत्रसे कहा—‘महाराज! यदि तुम तपस्यामा नारायणका
साधारणता करना चाहते हो तो तपस्या और शुभकर्मोंका
द्वारा उन भगवान् जनार्दनकी आराधना करो। कोई भी
पुण्य तपस्या किये विष्णु देवदेव जनार्दनका दर्शन नहीं पा
सकता। उसलिये तुम तपस्याके द्वारा उनका पूजन करो।
यहाँसे सौंदर्य योग्य दूर सरयूके तटपर पूर्व और दक्षिण
भागमें एक चौथित्र स्थान है, जहाँ गात्रप आदि श्रूपियोंका

स्वपन्त्रिणि महाप्राज्ञे नीतिमत्वजुने नृप।
स्वराज्यभार विन्यस्य कर्मकाण्डमपि द्विज ॥ ३८

स्तुत्याऽग्राध्य गणाध्यक्षमितो द्रव विनायकम्।
तपःसिद्ध्यर्थमन्विच्छंस्तस्मात् तत्र तपः कुरु ॥ ३९

तापसं वेष्मास्थाय शाकमूलफलाशनः।
ध्यायन् नारायणं देवमिमं मन्त्रं सदा जप ॥ ४०

३० नमो भगवते वासुदेवाय।
एष सिद्धिकरो मन्त्रो द्वादशाक्षरसंब्रितः।

जपत्वैनं मुनयः सिद्धिं परां प्राप्ताः पुरातनाः ॥ ४१

गत्या गत्या निवर्तने चन्द्रसूर्यादियो ग्रहाः।
अह्यापि न निवर्तने द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥ ४२

व्याहोनिदियं हृदि स्थाप्य मनः सूक्ष्मे परात्परि ।
नृप संजप तन्मन्त्रं उष्टुव्यो मधुमूदनः ॥ ४३

इति ते कथितोपायो हरिप्राप्तेस्तपःकृती ।
पृच्छतः साप्ततं भूयो यदीच्छसि कुरुत्व तत् ॥ ४४

इत्येवमुक्तो मुनिना स राजा
राज्यं भूयो मन्त्रिवरे समर्थ ।

स्तुत्या गणोशं सुप्तनोभिरच्च
गतः पुरात् स्वात् तपसे धृतात्मा ॥ ४५ ॥

आश्रम है। वह स्थान नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त तथा विविध भौतिके पृष्ठोंसे परिपूर्ण है। राजन्! अपने दुष्टिमान् एवं नीतिज्ञ मन्त्री अर्जुनको राज्यका भार तथा सारा कार्य-कलाप सौंप, तत्परतात् गणनायक भगवान् विनायककी स्तुति एवं आशाधना करके तपस्याकी सिद्धिरूप प्रयोजनकी इच्छा मनमें लेकर यहाँसे उस आश्रमकी यात्रा करो और वहाँ चहुंचकर तपस्यामें संलग्न हो जाओ। तपस्यीका चेष्ट धारणकर, साम और फल-मूलक आहार करते हुए, भगवान् नारायणके ध्यानमें तप्तर रहकर सदा हो '३० नमो भगवते वासुदेवाय।'—इस मन्त्रका जप करो। वह 'द्वादशाक्षर'-संज्ञक मन्त्र अर्पणको सिद्ध करनेवाला है। प्राचीन कालके ऋषियोंने इस मन्त्रका जप करके परम सिद्धि प्राप्त की है। चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रह जा-जाकर पूरः लौट आते हैं, परंतु द्वादशाक्षर-मन्त्रका चिन्तन करनेवाले पूर्ण आज्ञातक नहीं लौटे—भगवान्को पढ़कर आवागमनसे भूल हो गये। नैश्वर ! बाह्य इन्द्रियोंको द्वादशमें रक्षापिताकर तथा मनको सूख्म परामर्त्तव्यमें स्थिर करके इस मन्त्रका जप करो; इससे तुम्हें भगवान् मधुमूदनका दर्शन होगा। इस प्रकार इस समय तुम्हारे पूछनेपर मैंने तपस्या कर्मसे भगवान्की प्राप्तिका उपाय बताया; अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो। ॥ ४३—४५ ॥

मुनिवर वसिष्ठके इस प्रकार कहनेपर वे राजा इश्वरकु अपने शेष मन्त्रीको भूमण्डलके राज्यका भार सौंपकर, पुर्णोद्वारा गणेशजीका पूजन तथा स्तावन करके, तपस्या करनेका दृद निष्ठय मनमें लेकर, अपने नगरसे चल दिये ॥ ४५ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे इक्षकुचरीते चतुर्विंशतिः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'इक्षकुका चरित' विशदक घीर्णीसर्वं इक्षाय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

* * *

पचीसवाँ अध्याय

इक्षवाकुकी तपस्या और द्वादशजीद्वारा विष्णुप्रतिमाकी प्राप्ति

भद्राज उक्तव

कथं स्तुतो गणाध्यक्षस्तेन राजा महामता ।

यथा तेन तपस्तमं तन्मे बद महामते ॥ १ ॥

भद्राजजीने पूछा—महामते! उन महात्मा राजा ने किस प्रकार गणेशजीका स्तावन किया? तथा उन्होंने जिस प्रकार तपस्या की, उसका आप मुझसे बर्णन करें॥ १ ॥

सूत उवाच

चतुर्थीदिवसे राजा स्नात्वा त्रिष्ठवणं द्विज ।
रक्ताम्बरधरो भूत्वा रक्तगन्धानुलेपनः ॥ २
सुरक्तकुमुमैहृषीविनायकमयाच्यत् ।
रक्तचन्दनतोयेन स्नानपूर्वं यथाविधि ॥ ३
विलिप्य रक्तगन्धेन रक्तपुर्ण्यः प्रपूजयत् ।
ततोऽस्ती दत्तवान् धूपमान्यद्युक्तं सच्चन्दनम् ।
नैवेश्वं चैव हारिं गुडखण्डयुतप्लुतम् ॥ ४
एवं सुविधिना पूज्य विनायकमयास्तवीत् ।

इश्वाकुलतात्

नपस्कृत्य महादेवं स्तोष्येऽहं तं विनायकम् ॥ ५
महागणपतिं शूरमजितं ज्ञानवर्धनम् ।
एकदनं द्विदनं च चतुर्दनं चतुर्भुजम् ॥ ६
त्र्यक्षं विशूलहस्तं च रक्तनेत्रं वरप्रदम् ।
आभिवकेयं शूर्पकर्णं प्रचण्डं च विनायकम् ॥ ७
आरक्तं दण्डिनं चैव वद्धिवक्रं हुतप्रियम् ।
अनर्चितो विष्णकरः सर्वकार्येषु यो नुणाम् ॥ ८
तं नमामि गणाच्यक्षं भीममुग्रपुमासुतम् ।
मदमत्तं विरुपाक्षं भक्तविष्णनिवारकम् ॥ ९
सूर्यकोटिप्रतीकाशं भिस्त्राङ्गनसमप्रभम् ।
शुद्धं सुनिर्मलं शान्तं नमस्यामि विनायकम् ॥ १०
नमोऽस्तु गजवक्त्राय गणानां पतये नमः ।
भैरुमन्दररुपाय नमः कैलासवासिने ॥ ११
विरुपाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते ग्रहाचारिणे ।
भक्तस्तुताय देवाय नमस्तुर्यं विनायक ॥ १२
त्वया पुराणं पूर्वेषां देवानां कार्यसिद्धये ।
गजरूपं सपास्थाय ब्रासिताः सर्वदानवाः ॥ १३

सूतजी बोले—हिंज ! गणेश-चतुर्थीके दिन राजाने त्रिकाल स्नान करके रक्तवस्त्र धारण किया और लाल चन्दन लगाकर मनोहर लाल फूलों तथा रक्तचन्दनमिश्रित जलसे गणेशजीको स्नान करके विधिवत् उनका पूजन किया । स्नान करानेके बाद उनके श्रीअङ्गोमें लाल चन्दन लगाया । फिर रक्तपुर्ण्यसे उनकी पूजा की । तदनन्तर उन्हें धूत और चन्दन मिला हुआ धूप निवेदन किया । अन्तमें हात्ती, शी और गुडखण्डके खेलसे तैयार किया हुआ मधुर वैकेश अपैण किया । इस प्रकार सुन्दर विधिपूर्वक भगवान् विनायकका मूजन करके राजाने उनकी सुती आस्म की ॥ २—४ ॥

इश्वाकु बोले—मैं महान् देव गणेशजीको प्रणाम करके उन विद्वानजाका स्तम्भन करता हूँ, जो महान् देवता एवं गणोंके स्वामी हैं, शूरवीर तथा अपराजित हैं और ज्ञानवृद्धि करानेवाले हैं । जो एक, दो तथा चार दौतोवाले हैं, जिनको चार भुजाएँ हैं, जो तीन नैवेंसे युक्त और हाथमें हिंडूल धारण करते हैं, जिनके नेत्र रक्तवर्ण हैं, जो चार दैनेवाले हैं, जो माता पार्वतीके पुत्र हैं, जिनके सुप्त-जैसे कान हैं, जिनका वर्ण कुछ-कुछ लाल है, जो दण्डधारी तथा अष्टिमुख हैं एवं जिन्हें होम प्रिय है तथा जो प्रथम चुम्बित न होनेपर मनुष्योंके सभी कार्योंमें विद्धिकारी होते हैं, उन भोगकाय और उप्र स्वभाववाले पांखोंनवन गणेशजीको मैं नमस्कार करता हूँ । जो महासे मृत रहते हैं, जिनके नेत्र भर्यकर हैं और जो भक्तोंके विष्णु दूर करेवाले हैं, करोड़ों सूर्यके समान जिनकी जलति है, खानसे काटकर निकाले हुए कोयलेकी भौति जिनकी श्याम प्रभा है तथा जो विमल और शान्त है, उन भगवान् विनायकको मैं नमस्कार करता हूँ । भेदगिरिके समान रूप और हाथीके मुख-सदृश मुखाले, कैलासवासी गणपतिको नमस्कार है । विनायक देव ! आप विष्णुधारी और ग्रहाचारी हैं, भक्तजन आपकी सुती करते हैं, आपको चारंबार नमस्कार है ॥ ५—१२ ॥

पुराणपुरुष ! आपने पूर्ववर्ती देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये हाथीका स्वरूप धारण करके समस्त दानवोंको भयभीत किया था ।

प्राप्तीणां देवतानां च नायकत्वं प्रकाशितम्।
यतस्ततः सुररग्ने पूज्यसे त्वं भवात्मज ॥ १४
त्वामाराध्य गणाध्यक्षं सर्वज्ञं कामलपिण्डम्।
कार्यार्थं रक्तकुमुरं रक्तचन्दनवारिभिः ॥ १५
रक्ताम्बरधरो भूत्वा चतुर्व्यामिर्वयेज्ञपेत्।
व्रिकालमेककालं वा पूजयेत्रियताश्वनः ॥ १६
राजानं राजपुत्रं चा राजपत्रिणामेत् चा।
राज्यं च सर्वविद्येश वशं कुर्यात् सराष्ट्रकम् ॥ १७
अविघ्नं तपसो महां कुरु नीयि विनायक।
मयेत्थं संस्तुतो भवत्या पूजितक्षु विशेषतः ॥ १८
यत्कलं सर्वतीर्थेषु सर्वविद्येषु यत्कलम्।
तत्कलं पूर्णमाणोति स्तुत्या देवं विनायकम् ॥ १९
विषयं न भवेत् तस्य न च गच्छेत् पराभवम्।
न च विष्णो भवेत् तस्य जातो जातिस्मरो भवेत् ॥ २०
य हृदं पठते स्तोत्रं चतुर्भिर्मासिर्वरं लभेत्।
संखत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः ॥ २१

सूत उपाख्य

एवं स्तुत्या पुरा राजा गणाध्यक्षं द्विजोत्तम्।
तापसे वेषमास्थाय तपश्चर्तुं गतो वनम् ॥ २२
उत्सृज्य वस्त्रं नागत्वकमहर्षं ब्रह्मूल्यकम्।
कठिनां तु त्वचं बार्धीं कटाणं धत्ते नृपोत्तमः ॥ २३
तथा रथानि दिव्यानि वलयानि विरस्य तु।
अक्षसूत्रमलंकारं फलैः पद्मस्य शोभनम् ॥ २४
तथोत्तमाङ्गे मुकुटं रबहाटकशोभितम्।
त्यक्त्वा जटाकलापं तु तपोऽथें विभृयात्रृपः ॥ २५
कृत्वेत्थं स तपोवेषं वसिष्ठोकं तपोवनम्।
प्रविश्य च तपस्तेषे शाकमूलफलाश्वनः ॥ २६

शिवपुत्र! आपने श्रुष्टि और देवताओंपर अपना स्वामित्व प्रकट कर दिया है, इसीसे देवगण आपको प्रभम पूजा करते हैं। सर्वविद्येश्वर! यदि मनुष्य रत्नवस्त्र धारणकर नियमित आहार करके अपने कार्योंकी सिद्धिके लिये लाल पुष्टों और रक्तचन्दन-युक्त जलसे चतुर्व्यामिर्वयेज्ञपेत् दिन लीनों काल या एक कालमें आप कामलपी सर्वज्ञ गणपतिका पूजन करे तथा आपका नाम जापे तो वह पुरुष राजा, राजकुमार, राजमन्त्रीको राज्य अधिका समला राष्ट्रसहित अपने वक्तमें कर सकता है ॥ १३—१७ ॥

विनायक। मैं आपको स्मृति करता हूँ। आप भेरे द्वारा भक्तिपूर्वक स्तवन एवं विशेषस्त्रपर्याप्ते पूजन किये जानेपर, भैरवी तपस्त्रयाके विष्णुको दूर कर दें। सम्पूर्ण लोकों और समस्त यज्ञोंमें जो फल प्राप्त होता है, उसी फलको मनुष्य भगवान् विनायकका स्तवन करके पूर्णस्त्रपर्याप्ते प्राप्त कर लीदा है। उसपर कभी संकट नहीं आता, उसका कभी तिरस्कार नहीं होता और न उसके कार्यमें विष एही उड़ता है; वह जन्म लेनेके बाद पूर्वजन्मको जातींको स्मरण करनेवाला होता है। जो प्रतिदिन इस योग्रका पाठ करता है, वह उँ: महीनोत्तम निरन्तर पाठ करनेसे गणेशजीमें भवनेवान्नित वर प्राप्त करता है और एक वर्षमें पूर्णतः सिद्धि प्राप्त कर लेता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ १८—२१ ॥

सुतजी बोले—द्विजोत्तमगण। इस प्रकार राजा इत्याकु पहले गणेशजीका स्तवन करके, फिर तपस्त्रीका येष धारणकर तप जरनेके लिये वनमें चले गये। सौंपकी तपयोग समाप्त मुलायम एवं ब्रह्मूल्य वस्त्र लगाकर ये वेष महाराज कमरमें चृक्षोंकी कठोर छाल पहनने लगे। दिव्य रसनोंके हार और कड़े विकालकर हाथमें अक्षसूत्र तथा गलेमें कमलगढ़ोंकी बनी हुई सुन्दर माला धरण करने लगे। इसी प्रकार ये नरेश मस्तकपरसे रत्न तथा सुचणीये सुशोभित मुकुट हटाकर वहाँ तपस्याके लिये जटाकूट रखने लगे ॥ २२—२५ ॥

इस प्रकार वसिष्ठजीके कथनानुसार तापस-वेष धारणकर तपोवनमें प्रविष्ट हो, वे शाक और फल-मूलका आहार करते हुए तपस्यामें प्रवृत्त हो गये।

ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थोऽतपत्काले महातपाः।
वर्षाकाले निरालम्बो हेमन्ते च सरोजले॥ २७

इन्द्रियाणि समस्तानि नियम्य हृदये पुनः।
मनो विष्णां समावेश्य मनं वै द्वादशाक्षरम्॥ २८

जपतो वायुभक्षस्य तस्य राज्ञो महात्मनः।
आविर्बभूव भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः॥ २९

तपागतमथालोक्य पद्मयोनि चतुर्मुखम्।
प्रणम्य भक्तिभावेन स्तुत्या च पर्यतोषयत्॥ ३०

नमो हिरण्यगर्भाय जगत्क्रष्टे महात्मने।
ब्रेदशास्त्रार्थविदुषे चतुर्वक्त्राय ते नमः॥ ३१

इति स्तुतो जगत्क्रष्टा ब्रह्मा प्राह नृपोत्तमम्।
तपस्यभिरते शान्तं त्यक्तरात्मं महासुखम्।

त्रिलोकात्

लोकप्रकाशको राजन् सूर्यस्तव पितामहः॥ ३२

मुनीनामपि सर्वेषां सदा मात्र्यो मनुः पिता।
कृतवन्ती तपः पूर्वं तीव्रं पितृपितामही॥ ३३

किमद्ये राज्यभोगं तु त्यक्त्वा सर्वं नृपोत्तम।
तपः करोषि घोरं त्वं सपाचक्षव महापते॥ ३४

इत्युक्तो ब्रह्मणा राजा ते प्रणम्याद्वयोद्वचः।
द्रष्टुमिच्छंस्तपश्चार्योद्वलेन मधुमृदनम्॥ ३५

करोप्येवं तपो ब्रह्मन् शङ्खचक्रगदाधरम्।
इत्युक्तः प्राह राजानं पन्चजन्मा हस्त्रिव॥ ३६

न शक्यस्तपसा द्रष्टुं त्वया नाशयणो विभुः।
मादृशैरपि नो दृश्यः केशवः क्लेशनाशनः॥ ३७

पुरातनीं पुण्यकथां कथयामि निबोध मे।
निशाने प्रलये लोकान् निर्नीय कमलेक्षणः॥ ३८

महातपस्वी राजा इक्षवाकु ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्निके बीच स्थित होकर तपस्या करते थे, वर्षाके समय खुले मैदानमें रहते और जीतकालमें सरोवरके जलमें छड़े होकर तप करते थे। इस प्रकार समस्त इन्द्रियोंको मनमें निरुद्ध करके, मनको भगवान् विष्णुमें लोन कर द्वादशाक्षर-मनवके जप करते और बायु धीकर रहते हुए उन महात्मा राजाके समक्ष लोक-पितामह भगवान् ब्रह्माजी प्रकट हुए। उन चार मुखोंवाले पद्मयोनि ब्रह्माजीको आया देख राजाने उन्हें भक्तिभावसे प्रणाम एवं उनकी स्तुति करके संतुष्ट किया॥ २६—३०॥

(राजा बोले—) 'संसारकी सुष्ठि करनेवाले तथा चैद-सास्त्रोंके मर्मज, चार मुखोंवाले महात्मा हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीको नमस्कार है।' इस प्रकार स्तुति की जानेपर जगत्क्रष्ट ब्रह्माजीने सम्बद्ध त्यागकर तपस्यामें लगे हुए उन जाने परं महान् सूखी त्रिलोक नैश्वर्य कहा॥ ३१॥

ब्रह्माजी बोले—राजन्। समस्त विश्वको प्रकाशित करनेवाले तुम्हारे पितामह सूर्य तथा पिता मनु भी सदा ही अपौ मुनियोंकि यात्र्य है। तुम्हारे पिता और पितामहने भी पूर्वकालमें तीव्र तपस्या की थी। (उन्होंके समान आज तुम भी तप कर रहे हो।) महामते नृपश्रेष्ठ! सारा राज्य-भोग छोड़कर किसलिये यह और तप कर रहे हो? इसका कारण बताओ॥ ३२—३५॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार पूछनेपर राजाने उनको प्रणाम करके कहा—'ब्रह्मन्! मैं तपोवलसे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् मधुमृदनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी इच्छा लेकर हो ऐसा तप कर रहा हूँ।' राजाके यों कहनेपर कमलजन्मा ब्रह्माजीने हैसते हुए—से उनसे कहा॥ ३५—३६॥

"राजन्! सर्वप्र व्यापक भगवान् नारायणका दर्शन तुम केवल तपस्यामें नहीं कर सकोगे। (औरौंकी तो बत ही क्या है,) हमारे-जैसे लोगोंको भी क्लेशनाशन भगवान् केशवका दर्शन नहीं हो पाता। महामते! मैं तुम्हें एक युरातन परिव्रत कथा सुनाता हूँ, सुनो—प्रलयकी रातमें कमलालोचन भगवान् विष्णुने समस्त लोकोंको अपनेमें लौन कर लिया

अनन्तभोगशयने योगनिद्रां गतो हरिः ।
सनन्दनाहौर्पुनिभिः स्नूयमानो महापते ॥ ३९

तस्य सुमस्य नाभौ तु महत्पद्ममजायत ।
तस्मिन् पदे शुभे राजन् जातोऽहं वेदवित् पुरा ॥ ४०

ततो भूत्वा त्वधोदृष्टिदृष्ट्वान् कमलेक्षणम् ।
अनन्तभोगपर्यद्वे भिन्नाङ्गनिभं हरिम् ॥ ४१

अतसीकुसुमाभासं शयानं पीतवाससम् ।
दिव्यरत्नविचित्राङ्गं मुकुटेन विशितम् ॥ ४२

कुन्देनुसदृशाकारमनन्तं च महापते ।
सहस्रफणमध्यस्थैर्मणिभिर्दीपिमत्तरम् ॥ ४३

क्षणमात्रं तु ते दृष्ट्वा पुनस्तत्र न दृष्ट्वान् ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो वभूत्वाहं नृपोत्तम् ॥ ४४

ततो न्वातरं तस्मात् पश्यनालं समाप्तिः ।
कौतूहलेन तं द्रष्टुं नारायणमनामयम् ॥ ४५

ततस्त्वचिष्य राजेन्द्र सलिलानो न दृष्ट्वान् ।
श्रीशं पुनस्तपेद्याहं पश्यमाक्षित्य चिन्तयन् ॥ ४६

तद्वपं वासुदेवस्य द्रष्टुं तेषे महत्पः ।
ततो मामन्तरिक्षस्या वागुवाचाशरीरिणी ॥ ४७

वृथा किं किलश्यते व्रह्मन् साम्प्रतं कुरु मे वचः ।
न दृश्यो भगवान् विष्णुस्तपसा महतापि ते ॥ ४८

सुष्टि कुरु तदाङ्गसो यदि द्रष्टुमिहेच्छसि ।
शुद्धस्फटिकसंकाशानागपर्यद्वृशायिनम् ॥ ४९

वददृष्टं शार्ङ्गिणो रूपं भिन्नाङ्गनसप्रभम् ।
प्रतिभानियतं रूपं विमानस्थं महापते ॥ ५०

भज नित्यमनालस्यस्ततो द्रक्ष्यसि माधवम् ।
तयेत्थं चोदितो राजस्त्वक्त्वा तस्मनुक्षणम् ॥ ५१

और सनन्दन आदि मुनियोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे 'अनन्त' नामक शेषनाशकी शब्दापर योगनिद्राका आश्रय ले सो गये। राजन्! उन सोये हुए भगवान्की नाभिसे प्रकाशमान एक बहुत बड़ा कमल उत्पन्न हुआ। पूर्वकालमें उस प्रकाशमान कमलपर सर्वप्रथम मुझ बेदवेता छहांकर हो आविर्भाव हुआ। तत्पश्चात् नीचेकी ओर दृष्टि करके मैंने खालसे काटकर निकाले हुए बोवलेके समान श्यामवर्णवाले भगवान् विष्णुको शेषनाशकी शब्दापर लोते देखा। उनके बोअङ्गोंकी झानि अलससोके फूलकी भौति सुन्दर जान पड़ती थी, दिल्ली रत्नोंके अधरणोंसे उनके श्रीविग्रहकी विचित्र शोभा ही रही थी और उनका मस्तक मुकुटसे शोभायमान था ॥ ३६—४८ ॥

'महापते! उस समय मैंने उन अनन्तदेव शेषनाशकी भी दर्शन किया, जिनका आकाश कुन्द और चन्द्रमाके समान थेत था तथा जो हजारों फणोंकी मणियोंसे अत्यन्त दीर्घियमान हो रहे थे। नृपश्चैष! शुणभर ही बहाँ उन्हें देखकर मैं पिर उनका दर्शन न पा सका, इससे अत्यन्त दुःखी हो गया। तब मैं कौतूहलवश निरामय भगवान् नारायणका दर्शन करनेके लिये कमलनालका सहारा ले कर्हासे बीचे उत्तरा; परंतु रुक्षेन्द्र! उस समय जलके भीतर बहुत खोजेपर भी मैं उन लक्ष्मीपतिका पुनः दर्शन न पा सका। तब मैं किर उसी कमलका आश्रय ले वासुदेवके डंसो रूपका चिन्तन करता हुआ उनके दर्शनके लिये बड़ी भारी तपस्या करने लगा। तत्पश्चात् अन्तरिक्षके भीतरसे किसी अवक्त शरीरवाली बाणीने मुझसे कहा ॥ ४३—४६ ॥

"अहन्! क्यों रूपर्थ कलेश उठा रहे हो? इस समय मेरी चात मानो। बहुत बड़ी तपस्यासे भी तुम्हें भगवान् विष्णुका दर्शन नहो हो सकेगा। यदि यहाँ शुद्ध स्फटिक-मणिके समान थेत नाम-शब्दापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुका दर्शन करना चाहते हो तो उनके आङ्गानुसार सुष्टि करो। महापते! तुमने 'शार्ङ्ग' धनुष धारण करनेवाले उन भगवान्का, जो अज्ञन-पुञ्जके समान श्याम मुष्पमासे युक्त तथा स्वभावतः प्रतिभाशालीरूप विमान (शैवशब्द) - परमित देखा है, उसीका अलस्त्वरहित होकर भजन-ध्यान करो, तब उन माधवको देखा सकोगे ॥ ४८—५० ॥

"राजन्! उस आकाशशालीद्वारा इस प्रकार प्रेरित हो मैंने नित्यतर की जानेवाली तीक्ष्ण तपस्याका अनुष्ठान

सुष्टवान् लोकभूतानां सृष्टि सृष्टा स्थितस्य च ।
आविर्बंभूत्य मनसि विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ ५२

अनन्ताकृष्णायोस्तेन द्वे रूपे निर्मिते शुभे ।
विमानस्थो यथापूर्वं मया दृष्टो जले नृप ॥ ५३

तथैव तं ततो भक्त्या सम्पूर्ण्याहं हरिं स्थितः ।
तत्प्रसादात्तपः श्रेष्ठं मया ज्ञानमनुजमम् ॥ ५४

लक्ष्या मुक्तिं च पश्यामि अविकारक्रियासुखम् ।
तदहं ते प्रब्रह्म्यामि हितं नृपवरेश्वर ॥ ५५

विसृज्यैतत्तपो धोरं पुरीं वज निजां नृप ।
प्रजानां पालनं धर्मस्तपद्वैव महीभूताम् ॥ ५६

विमानं प्रेषयिष्यामि सिद्धद्विजगणान्वितम् ।
तत्राराधय देवेशं ब्रह्मांडीरखिलैः शुभेः ॥ ५७

नारायणमनन्ताख्ये शयानं कर्तुभिर्यजन् ।
निष्कामो नृपशार्दूलं प्रजा धर्मेण पालय ॥ ५८

प्रसादाद्वासुदेवस्य मुकिस्ते भविता नृप ।
इत्युक्त्वा तं जगामाथ ब्रह्मलोके पितामहः ॥ ५९

इक्ष्वाकुश्चिन्नतयन्नास्ते पश्योनिवचो द्विज ।
आविर्बंभूत्य पुरतो विमानं तन्महीभृतः ॥ ६०

ब्रह्मदत्तं द्विजयुतं माधवानन्तयोः शुभम् ।
तं दृष्टा परद्या भक्त्या नत्या च पुरुषोत्तमम् ॥ ६१

ऋषीन् प्रणाम्य विग्रांश्च तदादाय यथीं पुरीम् ।
पौरीजनैश्च नारीभिर्हृष्टः शोभासमन्वितैः ॥ ६२

लाजा विनिक्षिपद्विश्च नीतो राजा स्वकं गृहम् ।
स्वमन्दिरे विशाले तु विमानं वैष्णवं शुभम् ॥ ६३

त्यगकर इस जगहके प्राणियोंकी सृष्टि की । सृष्टि करके स्थित होनेपर मेरे हृदयमें प्रजापति विश्वकर्माका प्राकट्य हुआ । उन्होंने 'अनन्त' नामक शेषनाम और भगवान् विष्णुको दो चमकीली प्रतिमाएँ बनायी । नरेश्वर । मैंने पहले जलके भीतर शेष-शास्यापर जिस रूपमें देख चुका था, उसी रूपमें भगवान् श्रीहरिकी वह प्रतिमा बनायी गयी थी । हब मैं उन श्रीहरिके उस श्रीविष्णुकी भक्तिपूर्वक पूजा करके और उन्होंके प्रसादसे श्रेष्ठ तपरूप परम उत्तम ज्ञान प्राप्त करके विकारहित नित्यानन्दमय मोक्ष-सुखका अनुभव करने लगा ॥ ५८—५९ ॥

"एवंशरणेश्वर ! इस समय मैं तुम्हारे हितकी बात बता रहा हूं, मुनो—एवंत् । इस ओर तपस्याको छोड़कर अब अपनी पुरोंको लौट जाओ । प्रजाओंका पालन करना ही राजाओंका धर्म तथा तप है । मैं सिद्धों और ब्राह्मणोंसहित उस विमानको, जिसपर भगवान्की प्रतिमा है, तुम्हारे पास भेजूँगा । उसीमें तुम सुन्दर बाह्य उपचारोंद्वारा उस देवेश्वरकी आराधना करो । नृपज्ञेष्ठ ! तुम यज्ञोद्वारा 'अनन्त' नामक शेषनामकी शृण्यापर शयन करनेयाले भगवान् नारायणका निष्कामभावसे यज्ञोद्वारा आराधन करते हुए धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करो । नृप ! भगवान् बासुदेवकी कृपासे अवश्य हो तुम्हारी मुक्ति हो जायगी ।" राजासे ये कहकर लोकपितामह ब्रह्माजी अपने भासको छले गये ॥ ६०—६१ ॥

द्विज ! ब्रह्माजीके चले जानेपर राजा इक्ष्वाकु उनकी चलोपर विचार ही कर रहे थे, तबतक उनके समझ वह विष्णु और अनन्तकी प्रतिमाओंका शुभ विमान, जिसे ब्रह्माजीने दिया था, सिद्ध ब्राह्मणोंसहित प्रकट हो गया । उन भगवान् पुरुषोत्तमके दर्शन करके उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ उन्हें प्रणाम किया तथा साथमें आये हुए ऋषियों एवं ब्राह्मणोंको भी नमस्कार करके वे उस विमानको लेकर अपनी पुरोंको गये । वहाँ नगरके सभी शोभायमान स्त्री-पुरुषोंने राजाका दर्शन किया और लावा छोटे हुए वे उन्हें राजभवनमें ले गये । राजाने अपने विशाल मन्दिरमें उस सुन्दर वैष्णव विमानकी स्थापित किया और साथ

संस्थाप्याराधयामास तद्विजैवचितं हरिम्।
महिष्यः शोभना यास्तु पिष्ठा तु हरिचन्दनम्॥ ६४

मालां कृत्वा सुगन्धाक्षां प्रीतिस्तम्य ववर्धं ह।
पौरा: कपूरश्रीखण्डं कुडकुमाद्यगुरुं तथा॥ ६५

कृत्वां विशेषतो वस्त्रं महिषासुरं च गुण्गलम्।
पुष्पाणि विष्णुयोग्यानि ददुरानीय भूपतेः॥ ६६

विमानस्य हरिं पूज्य गन्धपृष्ठादिभिः क्रमात्।
त्रिसंध्ये परया भक्त्या जपैः स्तोत्रैश्च वैष्णवैः॥ ६७

गीतैः कोलाहलैः शब्दैः शङ्खादित्रनादितैः।
प्रेक्षणैरपि शास्त्रोन्तैः प्रीतैश्च निशिजागरैः॥ ६८

कारयापास सुचिरमुत्सवं परमं हरेः।
यार्गेश्च तोषयित्वा तं सर्वदेवमयं हरिम्॥ ६९

निष्कायो दानधर्मैश्च परं ज्ञानपवासवान्।
यजन् यज्ञं महीं रक्षन् स कुर्वन् केशवाच्चनम्॥ ७०

उत्पाद्य पुत्रान् पित्रवर्य ध्यानात्प्रकृत्वा कलेवरम्।
ध्यायन् वै केवलं छहा प्राप्तवान् वैष्णवं पदम्॥ ७१

अजं विशोकं विमलं विशुद्धं
शान्तं सदानन्दचिदात्मकं ततः।

विहाय संसारमनन्तदुःखं

जगाम तद्विष्णुपदं हि राजा॥ ७२

आये हुए उन ब्राह्मणोंद्वारा पूजित भगवान् विष्णुकी वे आराधना करने लगे। उनकी सुन्दरी रानियाँ चन्दन घिस-कर और सुगन्धित फूलोंका हार गूढ़कर अर्पण करती थीं, इससे राजाको यहाँ प्रसन्नता होती थी। इसी प्रकार नगर-निवासी जन कपूर, श्रीखण्ड, कुडकुम, अगुरु आदि सभी उपचार और विशेषतः वस्त्र, गुण्गल तथा श्रीविष्णुके योग्य पुष्प ला-लाकर राजाको अर्पित करते थे॥ ६०—६६॥

राजा तीनों संध्याओंमें विमानपर विराजमान भगवान् श्रीहरिकी क्रमशः गन्ध-पूज्य आदि उपचारोंद्वारा बढ़ी भक्तिसे पूजा करते थे। श्रीविष्णुके नामोंका जप, उनके स्तोत्रोंका पाठ, उनके गुणोंका ज्ञान और शङ्ख आदि वाच्योंका सम्बद्ध करते-करते थे। शास्त्रोंका विधिसे प्रेमपूर्वक मजायी हुई भगवान्की झँकियों तथा रात्रिमें जागरण आदिके द्वारा ये सदा ही देरतक भगवत्सम्बन्धी उत्सव करता था। निष्कामभावसे किये गये यज्ञ, दान तथा धर्माचारणोंद्वारा उन सर्वदेवमय भगवान् विष्णुको संतुष्ट करके राजाने परम उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लिया। चज्जोका अनुष्ठान, पुष्पोंका पालन और भगवान् केशवका पूजन करते हुए राजाने पितृगणोंकी तुसिके निमित्त शब्द अमर्दि कर्म करनेके लिये पुत्रोंको उत्पन्न किया और केवल द्रष्टव्यका विनतन करते हुए ध्यानके द्वारा ही शरीरका स्थानकर भगवान् विष्णुके शामको प्राप्त कर लिया। इस प्रकार राजा इत्याकु अनन्त दुःखोंसे पूर्ण संसारका स्थान करके अज, अशोक, अमल, विशुद्ध, शान्त एवं सच्चिदानन्दमय विष्णुपदको प्राप्त हो गये॥ ७३—७२॥

इति श्रीनरसिंहपुण्ड्रे इत्यकुर्यात् एतद्विष्णुते एतद्विष्णुते ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुण्ड्रके अनन्ततः 'इत्यकुर्यात्' विष्णुक उच्चासर्व अथवा पुण्ड्र हुआ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

इक्ष्वाकुकी संततिका वर्णन

श्रीमूर्ति उक्तच

इक्ष्वाकोर्धिकुक्षिनामपुत्रः । स तु सिद्धे पितरि
महर्षिभिरभिधितो धर्मेण पृथिवीं पालयन्
विमानस्थमनन्तभोगशायिनमच्युतमाराध्य यागीरपि
देवानिद्वा स्वपुर्वं राज्ये सुवाहुमधिष्ठित्य दिवमारुरोह ।
सुवाहोर्धाज्ञानादुद्घोतोऽधिगीयते । स तु सप्तद्वीपां
पृथिवीं धर्मेण पालयित्वा भक्तिं परां नारायणे
पितामहवत् कृत्वा कर्तुभिर्भूरिदक्षिणीर्यज्ञेभ्वरं
निष्कामेन मनसेद्वा नित्यं निरञ्जनं निर्विकल्पं यसं
ज्योतिरमृताक्षरं परमात्मस्त्वं ध्यात्वा हरिमनन्तं च
परमाराध्य स्वर्गलोकं गतः ॥ १ ॥

तस्य युवनाश्चो युवनाश्चस्य च मांधाता
पुत्रोऽभवत् । स चाभिधितो महर्षिभिर्विसर्गदेव
विष्णुभक्तोऽनन्तशयनमच्युतं भक्त्या॑ऽनाध्यन्
यागीश्च विविधैरिद्वा सप्तद्वीपवतीं पृथिवीं परिपास्य
दिवं गतः ॥ २ ॥

यस्यैष श्लोको गीयते ।

यावत्सूर्यं उदेति स्म यावत्य प्रतितिष्ठुति ।
सर्वं तद्यौवनाश्चस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३ ॥

तस्य पुरुक्ष्योऽभवद् येन देवा शाहुणाक्ष
यागदानैः संतुष्टाः ॥ ४ ॥ **पुरुक्ष्याद् हृषदो**

श्रीमूर्तबी बोले— इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्रका नाम था विकुष्ठि । वह अपने पिलाके मुक्त हो जानेपर महर्षियोंद्वारा गम्यपदपर अभिधिक हुआ और धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन करने लगा । राजा विकुष्ठिने विमानपर विराजमान शेषशार्यी भगवान् विष्णुकी आराधना करते हुए अनेक यज्ञोद्वारा देवताओंका भी यज्ञ किया । अन्तमें वे अपने पुत्र सुवाहुको राज्यपर अभिधिकर रख्यं स्वर्गगामी हो गये । अब तेजस्वी राजा सुवाहुके पुत्र उद्घोतका यशोगान किया जाता है । उद्घोतने सातों द्विषेषाली पृथिवीका धर्मपूर्वक पालन किया । उन्होंने अपने पितामह राजा इक्ष्वाकुकी ही भक्तिं भगवान् नारायणमें परापरके बरके प्रभुर दक्षिणाकाले यज्ञोद्वारा चलायी विष्णुका निष्कामभावसे यज्ञ किया तथा नित्यं निरञ्जनं निर्विकल्पं अमृतं अक्षरं परमं असेतिर्यं परमात्मस्त्वका चिन्तन करते हुए श्रीविष्णु और अनन्तको आराधना करके वे परमधारको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥

उनके पुत्र युवनाश्च हुए, युवनाश्चके पुत्र मांधाता । मांधाता स्वभावसे ही भगवान् विष्णुके भक्त थे । महर्षियोंने ज्येष्ठ उनका गम्याभिषेक कर दिया, तब शेषशार्यी भगवान् विष्णुकी भक्तिपूर्वक आराधना तथा विविध यज्ञोद्वारा यज्ञ करते हुए उन्होंने सातों द्विषेषसे युक्त पृथिवीका पालन किया और अन्तमें उनका वैकुण्ठवास हुआ ॥ २ ॥

मांधाताके ही विषयमें यह श्लोक अवतक गायत्रा बाजा है—

‘जहाँसे सूर्यं उदय होता और जहाँतक जाकर अस्त होता है, यह सब युवनाश्चके पुत्र मांधाताका ही क्षेत्र कहलाता है’ ॥ ३ ॥

मांधाताका पुत्र पुरुक्ष्यश्च (या पुरुकुत्स) हुआ, जिसने यज्ञ और दानके द्वारा देवताओं तथा ब्रह्मज्ञोंको संतुष्ट किया था । पुरुक्ष्यसे दृष्ट और

दृष्टदादभिशम्भुः । अभिशम्भोर्दान्तो
 दारुणात्सगरः ॥ ५ ॥ सगराद्वर्यश्चो हर्यश्चाद्वारीतो
 हारीताद्रेहिताश्चः । रोहिताश्चादंशुमान् ॥ ६ ॥ अंशुमतो
 भगीरथः । येन महता तपसा पुरा दिवो गङ्गा
 अशेषकल्पयनाशिनी चतुर्विंधपुरुषाच्छायिनी
 भुवमानीता । अस्थिशक्तराभूताः कपिलमहर्षि-
 निर्दग्धाश्च गुरवः सगराख्या गङ्गातोयसंस्पृष्टा
 दिवमारोपिताः । भगीरथात् सौदासः
 सौदासात् सत्रसवः ॥ ७ ॥ सत्रसवा-
 दनरण्योऽनरण्यादीर्घवाहुः ॥ ८ ॥ दीर्घवाहो-
 रजोऽजाहशरथः । तस्य गृहे रावणविनाशाच्य
 साक्षात्राराणीऽवतीणो रामः ॥ ९ ॥

स तु पितृवचनाद् भास्तुभार्यसहितो दण्डकारण्यं
प्राप्य तपश्चाचार । बने रावणापहतभार्यो भास्त्रा सह
दुःखितोऽनेककोटि बानरनाथक सुयीवसहायो
महोदधी सेतु निवाद्य तैर्गत्वा लङ्घां रावणं देवकण्टके
सवान्धवं हत्वा सीतामादाय पुनरयोध्यो प्राप्य
भरताभिषिक्तो विभीषणाय लङ्घामाज्यं विमानं वा
दत्त्वा तं प्रेषयामास । स तु परमेश्वरे विपानस्थो
विभीषणेन नीघ्रमानो लङ्घायामपि राक्षसपुर्यो
वस्तुमनिच्छन् पुण्यारण्यं तत्र स्थापितवान् ॥ १० ॥
तत्रिरीक्ष्य तत्रैव महाहिभोगशयने भगवान् श्रेते ।
सोऽपि विभीषणस्ततस्तद्विमानं नेतुमसमर्थः,
तद्वचनात् स्वां पुरीं जगाम ॥११ ॥

नारायणसंनिधानामहद्वृत्तावं क्षेत्रमभवदग्यापि
दृश्यते। रामाक्षरो लवात्यवः पद्माहनुपर्ण

दृष्टदर्श अभिशम्भु हुआ। अभिशम्भु से दारण और दारण से सगरका जन्म हुआ। सगरसे हर्यश, हर्यशसे हारीत, हारीतसे रोहिताश्च, रोहिताश्चसे अंशुमान् और अंशुमानसे भगवर्ष्य हुए, जो पूर्वकालमें बहुत बड़ी तपस्या करके समस्त पापोंका नाश करनेवाली और चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली गङ्गाको आकाशसे पृथ्वीपर से आये। उन्होंने गङ्गावालके स्वर्णसे अपने 'सागर' संज्ञक पितरोंको, जो महार्य कपिलके शापसे दब्ख होकर अस्थि-भस्ममात्र हो रह गये थे, स्वर्णलोकको पहुँचा दिया। भगीरथसे सौटास और सौटाससे सत्रसवका जन्म हुआ। सत्रसवसे अनरथ और अनरथसे दीर्घवाहु हुआ। दीर्घवाहुसे अजतथा अजसे दररथ हुए। इनके घरमें साक्षात् भगवान् नारायण रामगवा नाश करनेके लिये 'राम' रूपमें अवतारित हुए थे॥ ५—९॥

गम अपने पिताका कहनेसे छोटे भाई लक्ष्मण तथा
पर्वतीसहित दृष्टव्यकरणमें जाकर तपस्या करने लगे। उस
बचनमें राखणे इनकी पत्नी सीताका अपहरण कर लिया।
इसमें दुःखी होकर वे अपने भाई लक्ष्मणको साथ लेकर
अनेक करोड़ बानर-सेनाके अधिकारी मुद्रोवको सहायक
बनाकर चले और महामारणमें पुल बौधकर उन सबके
साथ लक्ष्मणे जा पहुँचे। वहाँ देवताओंके मार्गका कौटा
बने हुए राघवको उसके बन्धु-आन्धवीसहित मारकर
सीताको साथ ले पुँ: अयोध्यामें लौट आये। अयोध्यामें
भरतजीने उनका 'राजा' के पदपर अधिकार किया।
लीरामने विभीषणको लक्ष्मण का राज्य तथा
(विष्णुप्रतिमाद्युत) विमान देकर अयोध्यासे विदा किया।
विमानपर विराजमान परमेश्वर विष्णु विभीषणद्वारा ले
जाये जानेपर भी राघवपुरी लक्ष्मणमें निवास करना नहीं
जाह्नवी थे, अतः विभीषणने वहाँ जिस परिव्रत बनकी
स्थापना नी थी, उसको देखकर वे उसीमें स्थित हो गये।
वहाँ महान् सर्प-जहोरकी शब्दापर भगवान् जायन करते
हैं। विभीषण भी जब वहाँसे उस विमानको ले जानेमें
असमर्प्य हो गये, तब भगवान्के ही कहनेसे वे उन्हें वहीं
छोड़ अपनी पुरी लक्ष्मणको चले गये ॥१०-११॥

भगवान् नारायणकी उपस्थितिसे वह स्थान महान् वैष्णवतोर्ध हो गया, जो आज भी श्रीरङ्गक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध देवता जाता है। यमसे लब लबसे पथ पद्मसे

ऋतुपर्णादस्तपाणिः । अस्त्रपाणेः शुद्धोदनः
शुद्धोदनादृथः । युधाद्वंशो निवर्तते ॥ १२ ॥

एते महीपा रविवंशजास्तव
प्राधान्यतस्ते कथिता महाबलाः ।
पुरातनैर्वर्वसुधा प्रपालिता
यज्ञकियाभिष्ठ दिवीकसंनृपेः ॥ १३ ॥

ऋतुपर्ण, ऋतुपर्णसे अस्त्रपाणिसे शुद्धोदन और शुद्धोदनसे चुप (चुढ़)-की उत्पत्ति हुई; चुपसे इस बंशकी समाजी हो जाती है ॥ १२ ॥

मैंने यहाँ आपके समक्ष पूर्ववर्ती उन प्रधान-प्रधान महाबली सूर्यवंशी राजाओंका नामोङ्कर किया है, जिन्होंने भर्मपूर्वक पृथ्वीका शालन और यज्ञ-क्रियाओंहारा देखताओंका भी शोषण किया था ॥ १३ ॥

इति ब्रह्मणिःशुद्धो दृष्टिरेतत्तु तत्त्वं च वृद्धिलित्तेऽभ्यासः ॥ २६ ॥
इति प्रकाश ब्रोदरामिःशुद्धो दृष्टिरेतत्तु तत्त्वं च वृद्धिलित्तेऽभ्यासः ॥ २६ ॥

—२६—

सत्ताईसवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

सूत उक्ताः

अथ सोमवंशोद्वानां भूभूजां संक्षेपेण
चरितमुच्यते ॥ १ ॥ आदौ तावत् समस्तं पैलोक्यं
कुशी कृत्वा एकार्णवे प्रहारभस्मि
नागभोगशायने ॥ २ ॥ ऋद्भयो यज्ञुर्पूर्णः
साधययोऽथर्वमयो भगवाद्वारायणो योगनिदां
समारोभे । तस्य सुमस्य नाभी महापश्चमज्ञायत । तस्मिन्
पदे चतुर्पुरुखो ग्राहाभवत् ॥ ३ ॥ तस्य ब्रह्मणो भानसः
पुत्रोऽत्रिरभवत् । अत्रेनसूयायां सोमः । स तु
प्रजापतेर्दक्षस्य त्रयस्त्रिंशत् कन्या रोहिण्यादा भार्यार्थं
गृहीत्वा प्रियायां ज्येष्ठायां विशेषात् प्रसरणनाः
रोहिण्यां चुधे पुत्रमुत्पादयामास ॥ ४ ॥ युधोऽपि
सर्वशास्त्रज्ञः प्रतिष्ठाने पुरेऽवसत् । इलायां पुरुषवसं
पुत्रमुत्पादयामास । तस्यातिशयस्यपान्वितस्य
स्वर्गभोगान् विहाय उर्वशी बहुकालं भार्या
वभूव ॥ ५ ॥ पुरुषवसः उर्वश्यामायुः पुत्रो जड़े । स
तु राज्यं धर्मतः कृत्वा दिवमारुरोह ॥ ६ ॥ आयो
रूपवत्यां नहुयः पुत्रोऽभवत् । येनेन्द्रत्वं प्राप्तम् ।

सूतजी बोले— अब संक्षेपसे चन्द्रवंशी राजाओंके चरित्रका वर्णन किया जाता है । कठपाके आदिकी बात है । ऐहु यज्ञ, साम और अथर्ववेदस्वरूप भगवान् नारायण समस्त विभुतिनकी अपने उदारमें लोन करके एकत्वार्थकी अग्राह जल्दाजिने जीवनागकी जाप्यापर योगनिदाका आश्रय ले सो रहे थे । मोरे हुए उन भगवान्मुखी नाभिसे एक महान् कमल प्रकट हुआ । उस कमलमें चतुर्पुरुष ब्रह्माका आविर्भव हुआ । उन ब्रह्माजीके भानसपुत्र अजि हुए । अजिसे अनसूयाके गर्भसे चन्द्रमाका जन्म हुआ । उन्होंने इस प्रजापतिकी रोहिणी आदि तीनोंका जन्माओंको पात्री बनानेके लिये प्राहण किया और ज्येष्ठ भार्या रोहिणीसे उसके प्रति अधिक प्रसन्न रहनेके कारण, ‘चुप’ नामक पुत्र उत्पन्न किया । युध भी समस्त लास्तोंके ज्ञाता होकर प्रतिष्ठानपूर्वमें विवास करने लगे । उन्होंने इसके गर्भसे पुरुषवा नामक पुत्रको जन्म दिया । पुरुषवा बहुत ही सुन्दर थे, अतः उर्वशी नामक अप्सरा बहुत कालक, स्वर्गके भोगोंको त्यागकर इनकी भार्या बनी रही । पुरुषवाद्वारा उर्वशीके गर्भसे आयु चापक पुत्रका जन्म हुआ । वह धर्मपूर्वक राज्य करके अन्तमें स्वर्गसोकको यात्रा गया । आयुके रूपवतोंसे नहुप नामक पुत्र हुआ, जिसने इन्द्रत्व प्राप्त किया था ।

नहुषस्यापि पितृमत्यां यथातिः ॥ ७ ॥ यस्य वंशजा
वृच्छायः । यथाते: शर्पिंश्चायां पूरुरभवत् ॥ ८ ॥
पूरोर्वशदायां संयातिः पुत्रोऽभवत् । यस्य पृथिव्यां
सम्पन्नाः सर्वे कामाः ॥ ९ ॥

संयातेभार्नुदन्नायां सार्वभीमः । स तु सर्वां पृथिवीं
धर्मेण परिपालयन्नासिंहं भगवन्नमाराध्य यागदानैः
सिद्धिमाप ॥ १० ॥ तस्य सार्वभीमस्य वेदेहां भोजः ।
यस्य वंशे पुरा देवामुरमंग्रामे विष्णुचक्रहतः
कालनेमि: कंसो भूत्या वृश्णिवेशजेन वासुदेवेन
घातितो निधनं गतः ॥ ११ ॥

तस्य भोजस्य कलिङ्गायां दुष्यन्तः । स तु नरसिंहं
भगवन्नमाराध्य तत्प्रसादाश्रित्कण्ठकं राज्यं धर्मेण
कृत्या दिवं प्राप्तवान् । दुष्यन्तस्य शकुनलायां
भरतः । स तु धर्मेण राज्यं कुर्वन् क्रतुभिर्भूरि-
दक्षिणीः सर्वदेवतामयं भगवन्नमाराध्य
निवृत्ताधिकारो व्रह्माद्यानपरो वैष्णवे परे ज्योतिषिः
लयमवाप ॥ १२ ॥

भरतस्य आनन्दायामजमीडः । स च परमवैष्णवो
नरसिंहमाराध्य जातपुत्रो धर्मेण कृतराज्यो
विष्णुपुरमारुरोह ॥ १३ ॥ अजमीडस्य सुदेव्यां वृष्णिः
पुत्रोऽभवत् । सोऽपि वहुवर्णं धर्मेण राज्यं कुर्वन्
दुष्टनिग्रहं शिष्टपरिपालनं समर्द्धाणां पृथिवीं वशे चक्रे ।
वृष्णोरुग्रसेनायां प्रत्यक्षः पुत्रो वभूव ॥ १४ ॥ सोऽपि
धर्मेण मेदिनीं पालयन् प्रतिसंवल्सरं ज्योतिष्ठोमं

नहुषके भी पितृमतीके गर्भसे यथाति हुए, जिनके
वंशज वृष्णि कहलाते हैं। यथातिके शमिंश्चाके गर्भसे
पूरु हुए। पूरुके वंशदासे संयाति नामक पुत्र हुआ,
जिसको इस पृथिवीपर सभी तरहके मनोवाचित्त भोग
प्राप्त हो ॥ १—९ ॥

संयातिसे भानुदन्नाके गर्भसे सार्वभीम नामक पुत्र
हुआ। उसने समृद्धि पृथिवीका धर्मपूर्वक पालन करते हुए
बड़ा-दान आदिके द्वारा भगवान् नृसिंहको आराधना
करके सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त कर ली। उपर्युक्त सार्वभीमसे
वेदेहोंके गर्भसे धीर्ज उत्पन्न हुआ, जिसके वंशमें कालनेमि
नामक राज्य, जो पहले देवामुर-संघाममें भगवान् विष्णुके
चक्रसे मारा गया था, कंसके रूपमें उत्पन्न हुआ और
वृष्णिभूमी वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे मारा
जाकर मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ १०—११ ॥

भौजकी गँडी कलिङ्गसे दुष्यन्तका जन्म हुआ। वह
भगवान् नृसिंहकी आराधना करते उनकी प्रसन्नतासे
धर्मपूर्वक निष्ठाप्तक राज्य भोगकर जीवनके अन्तमें
स्वर्गको प्राप्त हुआ। दुष्यन्तको शकुनलायांके गर्भसे भरत
नामक पुत्र प्राप्त हुआ। वह धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ
प्रभुरु दक्षिणाकाले यज्ञोंसे सर्वदेवमय भगवान् विष्णुकी
आराधना करते कर्माधिकारसे निष्पृत एवं ज्ञाप्यान-
परायण हो परम ज्योतिषय वैष्णवधारमें लौन हो
गया ॥ १२ ॥

भरतके उसकी पत्नी अनन्दाके गर्भसे अजमीड
नामक पुत्र हुआ। वह परम वैष्णव था। राजा अजमीड
भगवान् नृसिंहकी आराधनासे पुत्रवान् होकर धर्मपूर्वक
राज्य करनेके पश्चात् श्रीविष्णुभाष्मको प्राप्त हुए।
अजमीडके सुदेव्योंके गर्भसे वृष्णि नामक पुत्र हुआ। वह
भी चहुत वैष्णवक धर्मपूर्वक राज्य करता रहा। दुष्टोंका
दमन और सज्जनोंका पालन करते हुए उसने सातों
द्वारोंसे युक्त पृथिवीको अपने वक्षमें कर लिया था।
वृष्णिके उपर्योगाके गर्भसे प्रत्यक्ष नामक पुत्र हुआ। वह
भी धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन करता था। उसने प्रतिक्षर्व
ज्योतिष्ठोमव्यग्रक अनुष्ठान करते हुए आकुका अन्त होनेपर

चकार। निर्वाणमपि लक्ष्यवान्। प्रत्यञ्जल्य बहुरूपायां
शांतनुः ॥ १५ ॥ तस्य देवदत्स्यन्दनारोहणमशक्वं
बधूव पुरतः शक्यं च ॥ १६ ॥

निर्वाणमपि (मोक्ष) प्राप्त कर लिया। प्रत्यञ्जल्को बहुरूपाके
गर्भसे शांतनु नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जिनमें देवताओंके
दिवे हुए, रथपर चढ़नेको पहले शक्ति नहीं थी, परं
पौछे उसपर चढ़नेको शक्ति हो गयी ॥ १५—१६ ॥

इति श्रीनरसिंहपुण्ये सौमवंशवत्सर्वं नाम सत्त्वादिसोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुण्यने 'सौमवंशवत्सर्वं' नाम सत्त्वादिसोऽध्याय पुण्य पुरा हुआ ॥ २७ ॥

प्राप्तवान् अध्यायः

अद्वाईसवाँ अध्याय

शांतनुका चरित्र

भरद्वाज उक्तम्

स्यन्दनारोहणे पूर्वमशक्तिः शांतनोः कथम् ।
पश्चाचक्षुक्तिः कथं चासीन् तस्य वै तद्वदस्व नः ॥ १ ॥

सूत उक्तम्

भरद्वाज शृणु वैतत् पुरावृत्तं वदामि ते ।
सर्वपापहरं तद्दिव चरितं शांतनोर्नृणाम् ॥ २ ॥

बधूव शांतनुर्भक्तो नरसिंहतनी पुरा ।
नारदोक्तविद्यानेन पूजयामास माधवम् ॥ ३ ॥

नरसिंहस्य देवस्य निर्माल्यं तेन लङ्घितम् ।
राजा शांतनुना विष्णु तस्मात् स्यन्दनमुत्तमम् ॥ ४ ॥

देवदत्तं तदारोदुमशक्तस्तत्क्षणादभूत् ।
किमियं मे गतिर्भृषा सहसा वै रथान्तः ॥ ५ ॥

दुःखं चिन्तयतस्तस्य सम्प्राप्तो नारदः किल ।
किं विषण्णः स्थितो राजान्निति पृष्ठः स शांतनुः ॥ ६ ॥

नारदैतत्र जानामि गतिभङ्गस्य कारणम् ।
इत्युक्तो नारदो ध्यात्वा ज्ञात्वा तत्कारणं ततः ॥ ७ ॥

शांतनुं प्राह राजानं विनयेन यतः स्थितः ।
यत्र क्लापि त्वया राजन् नरसिंहस्य वै ध्रुवम् ॥ ८ ॥

निर्माल्यो लङ्घितस्तस्माद्रथारोहणकर्मणि ।
गतिर्भृग्ना महाराज श्रूयतापत्र कारणम् ॥ ९ ॥

भरद्वाजजीने पूछा — शांतनुको पहले देवताओंके रथपर
चढ़नेकी शक्ति क्यों नहीं थी ? और फिर उनमें वह शक्ति
कैसे आ गयी ? इसे आप हमें बतालायें ॥ १ ॥

सूतजी बोले — भरद्वाजजी ! यह पुराना इतिहास है,
इसे मैं कहता हूं, सुनिये । शांतनुका चरित्र मनुष्योंके
समस्त चारोंका नाश करनेवाला है । शांतनु पूर्वकालमें
नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुके भक्त थे और नारदजीकी
बतायी हुई विभिन्ने भगवान् लक्ष्मीपतिको सदा पूजा
किया करते थे । विष्णव ! एक बार राजा शांतनु भूलसे
श्रीनरसिंहदेवके निर्माल्यको लौटी गये, उत्त : ये उसी क्षण
देवताओंके दिवे हुए उत्तम रथपर चढ़नेमें असमर्थ हो
गये । तब वे सोचने लगे — 'यह क्या बात है ? इस रथपर
चढ़नेमें हमारी गति सहसा कुण्ठित क्यों हो गयी ?'
कहते हैं, इस प्रकार दुःखी होकर सोचते हुए उन राजाके
पास नारदजी आये और उन्होंने राजा शांतनुसे पूछा—
'राजन् ! तुम क्यों विचारमें डूबे हुए हो ?' ॥ २—६ ॥

राजाने कहा — 'नारदजी ! मेरी गति कुण्ठित कैसे
हुई, इसका कारण मुझे जात नहीं हो रहा है, इसीसे मैं
चिन्तित हूं ।' उनके यों कहनेपर नारदजीने ध्यान लगाया
और उसका कारण जानकर राजा शांतनुसे, जो विनीतभावसे
यहाँ खड़े थे, कहा—'राजन् ! अवस्थ ही तुमने कहीं—
न-कहीं भगवान् नृसिंहके निर्माल्यका लङ्घन किया है ।
इसीसे रथपर चढ़नेमें तुम्हारी गति अवरुद्ध हो गयी है ।
महाराज ! इसका कारण मुझो ॥ ७—९ ॥

अन्तर्वेदां पुरा राजशासीत् कश्चिभ्यमहापतिः।
मालाकारो रथिनामिना तेन बृद्धावनं कृतम्॥ १०

विविधानि च पुष्पार्थं वनानि सुकृतानि वै।
परिलकामालतीजातिबकुलादीनि सर्वशः॥ ११

प्राकारमुच्छृतं तस्य स्वभूमी चापि विसृतम्।
अलक्षणप्रयेश्यं च कृत्वा चक्रे स्वकं गृहम्॥ १२

गृहे प्रविश्य तद्द्वारं भवेत्तान्यत्र सन्तम्।
एवं कृत्वा तु वसतो मालाकारस्य धीमतः॥ १३

पुष्पितं तद्दुनं त्वासीद् गन्धामोदितदिहमुखम्।
भार्येण सह पुष्पाणि समाहृत्य दिने दिने॥ १४

कृत्वा यालां यथान्यावे चरसिंहम्य नित्यशः।
ददी काश्चिद्द्विषेभ्यश्च काश्चिद्विक्रीय योषणम्॥ १५

चक्रे समात् प्रजीवी च भार्यादेशात्मनसनथा।
अथ स्वर्गादुपागम्य इन्द्रपुत्रो रथेन वै॥ १६

अप्सरोगणसंयुक्तो निशि पुष्पाणि संहरेत्।
तद्वन्धनिष्पुः सार्वाणि विचित्याहृत्य गच्छति॥ १७

दिने दिने हते पुष्पे मालाकारोऽप्यचिनतयत्।
नान्यद् द्वारं चनस्यास्यालक्षणप्राकारमुक्तम्॥ १८

समस्तपुष्पजातस्य हरणे निशि वै नुणाम्।
अहं शक्तिं न पश्यामि किमिदं तु परीक्षये॥ १९

इति संचिन्त्य मेधावी जाग्रद्रात्री वने स्थितः।
तथैवागत्य पुष्पाणि संगृहीत्वा गतः पुमान्॥ २०

तं दृष्ट्वा दुःखितोऽतीक्ष्मी यात्यजीवी वनेऽभवत्।
ततो निद्रां गतः स्वप्ने दृष्ट्वांस्तं नुकेसरिष्॥ २१

तद्वाक्यं श्रुत्यांश्चैवं निपत्यं पम् पुत्रक।
आनीय क्षिप्यतां क्षिप्रं पुष्पारामसमीपतः॥ २२

‘राजन्! पूर्वकालकी यात है, अन्तर्वेदोंमें कोई बड़ा बुद्धिमान् माली रहता था। उसका नाम था रवि। उसने बुलसीका बगीचा संग्राम था और उसका नाम ‘बृद्धावन’ रख दिया था। उसमें पूलोंके लिये सब ओर मालिका, मालती, जाती तथा बकुल (मौलसिरी) आदि नाम प्रकारके वृक्षोंके बगां सुंदर झंगसे संग्राम थे। उस वनकी चहरादीवारी बहुत कैची और चौड़ी बनकाकर, उसे अलक्षणीय और दूराम करके भीतरको भूमिपर उसने अपने रहनेके लिये घर बनाया था। साधुशिरोभूमि! उसने ऐसा प्रबन्ध किया था कि गर्वे प्रवेश करनेके बाद ही उस वाटिकाका द्वार प्राप्त हो सकता था, दूसरी ओरसे डासका मार्ग नहीं था॥ १०—१२॥

‘ऐसी लघवस्या करके निवास करते हुए, उस मालीका वह बृद्धावन पूलोंसे भरा रहता था और उसकी सुगम्यासे सारी दिनाएँ सुखमित होती रहती थीं। वह प्रतिदिन अपनी पत्नीके साथ बुलोंका संग्रह करके पर्योगित मालार्दीपिता जाता था। उसमेंसे कुछ मालाएँ तो वह भगवान् नृसिंहको अपेक्षा फर देता था, कुछ आदाणोंको दे जाता था और कुछको बेचकर उससे अपना नशा पत्री आदिका पालन-पोषण करता था। मालासे जो कुछ प्राप्त होता, उसीके द्वारा वह अपनी जीविका बदलता था॥ १३—१५॥

‘कुछ कालाके बाद वहाँ इन्द्रका पुष्प जयन् प्रतिदिन रातमें स्वर्णसे अपवाहारीके माथ रथपर चढ़कर आने और फूलोंकी चोटी करने लगा। उस बनके पुष्पोंकी सुगम्याके लोधपरे वह सारे फूल तोड़ लेता और लेकर चल देता था। जब प्रतिदिन फूलोंकी चोटी होने लगी, तब मालीकी बड़ी चिना हुई। उसने मन-ही मन सोचा—‘इस वनका कोई दूसरा द्वार तो है नहीं। चहरादीवारी भी इतनी ढीची है कि वह लौधी नहीं जा सकती। मनुष्योंकी ऐसी शक्ति ये नहीं देखता कि इसे लौधिकर तो सारे फूल चुरा से जानेमें समर्थ हों। फिर इन फूलोंके सूत होनेका बन्ध कारण है, जो अवश्य ही इसका पता लगानेगा।’ यह सोचकर वह बुद्धिमान् माली उस रातमें जागता हुआ बगीचेमें ही बैठा रहा। अन्य दिनोंकी भीति उस दिन भी वह पुरुष आया और फूल लेकर चला गया॥ १६—२०॥

‘उसे देखकर मालाओंसे ही जीविका चलानेवाला वह माली उस उपवासमें बहुत ही दुःखी हुआ। तदनन्तर रातको नींद उसनेपर उसने स्वयम्भूमि भगवान् नृसिंहको देखा तथा उन नृसिंहदेवका यह बचन भी सुना—‘पुष्प! तुम हीष्ठ ही फूलोंके बगीचेके समीप मेरा निर्मल्य

इन्द्रपुत्रस्य दुष्टस्य नान्यदस्ति निवारणम्।
इति श्रुत्वा हेरेवाक्यं नरसिंहस्य भीमतः ॥ २३
युद्धवाऽनीय तु निर्पाल्यं तथा चक्रे यथोदितम्।
सोऽप्यागस्य यथापूर्वं रथेनालक्षितेन तु ॥ २४
रथादुतीयं पुष्पाणि विचिन्वत्सद्गुचिं स्थितम्।
निर्माल्यं लङ्घयामास इन्द्रसुतुरनिष्ठकृत् ॥ २५
ततस्तस्य न शक्तिः स्पाद्रथारोहणकर्मणि।
उक्तः सारधिना चैव रथस्यारोहणे तत्व ॥ २६
नरसिंहस्य निर्माल्यपलहृने नास्ति योग्यता।
गच्छाभिं दिवमेवाहं त्वं भूम्यां वस्म माऽऽकृतः ॥ २७
तेनैवमुक्तो मतिमांस्तमाह हरिनन्दनः।
पापस्य नोदनं त्वं कर्मणा येव मे भवेत् ॥ २८
तदुक्त्वा गच्छ चाकं त्वं कर्मास्मान् सारथे हुतम्।

ताराधिकार

राघवस्ते कुरुक्षेत्रे द्वादशाष्टे तु चित्यशः ॥ २९
द्विजोच्छिष्ठापनयनं कृत्वा त्वं सुखिमेष्यसि।
इत्युक्त्वासौ गतः स्वर्गं सारथिदेवसेवितम् ॥ ३०
इन्द्रसुनुः कुरुक्षेत्रे प्रामः सारस्वते तटम्।
राघवस्ते तथा कुर्याद्द्विजोच्छिष्ठस्य मार्जनम् ॥ ३१
पूर्णे द्वादशमे वर्षे तपूचुः शङ्खिना द्विजाः।
कस्त्वं यूहि महाभाग नित्यमुच्छिष्ठमार्जकः ॥ ३२
न भुज्ञासे च नः सत्रे शङ्खा नो महती भवेत्।
इत्युक्तः कथयित्वा तु यथावृत्तमनुक्रमात् ॥ ३३
जगाम प्रिदिवं शिष्ठे रथेन तनयो हरेः।
तस्मात् त्वयमपि भूपाल ग्राहणोच्छिष्ठपादरात् ॥ ३४
मार्जने कुरु राघव्य सत्रे द्वादशवार्षिके।
ग्राहणोभ्यः परं नास्ति सर्वपापहरं परम् ॥ ३५
एवं कृते देवदत्तस्यन्दनारोहणे गतिः।
भविष्यति महीपाल ग्रायक्षिते कृते तत्व ॥ ३६
अत ऊर्ध्वं च निर्माल्यं मा लङ्घय महामते।
नरसिंहस्य देवस्य तथान्येषां दिवीकसाम् ॥ ३७

लाकर ढीट दो। उस दुष्ट इन्द्रपुत्रको रोकनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥ २१—२२ ॥

‘बुद्धिमान् भागवान् नृसिंहका यह वर्षन सुनकर मात्तो जाग उठा और उसने निर्माल्य लाकर उनके कथनानुसार यहाँ छोट दिया। जबक्त भी पहलेके ही समान अलक्षित रथसे आया और उससे उतारकर फूल तोड़ने लगा। उसी समय अपका अनिष्ट करनेवाला इन्द्रपुत्र वहाँ भूमिपर पहे हुए निर्माल्यको स्वीकृत गया। इससे उसमें रथपर चढ़नेकी शक्ति नहीं रह गयी। तब सारथिने उससे कहा—‘नृसिंहका निर्माल्य स्वीकृत आनेके जरूर अब तुम्हें इस रथपर चढ़नेकी चोरबत्ता नहीं रह गयी है। ये तो स्वर्गलोकको लौटता है, किंतु तुम यहाँ भूतलपर ही रहो; रथपर न चढ़ो’ ॥ २३—२७ ॥

‘सारथियोंके इस प्रकार चढ़नेपर मतिमान् इन्द्रकुमारने उससे कह—‘सारथे! जिस कर्मसे यहाँ मैं चापका निवारण हो, उसे बताकर तुम जीव स्वर्गलोकको जाओ’ ॥ २८ ॥

सारथि योस्ता—‘कुरुक्षेत्रमें परशुरामजीके एक यज्ञ हो रहा है, जो चारही वर्षोंमें समाप्त होनेवाला है। उसमें जाकर तुम प्रतिरिदिन ग्राहणोंका जूठा साक करो; इसमें तुम्हारी शुद्धि होगी।’ यो कहकर सारथि देवतानेत्र स्वर्गलोकको चालत गया ॥ २९—३० ॥

‘इधर इन्द्रपुत्र जबक्त कुरुक्षेत्रमें सरसवीतीके तटपर आया और परशुरामजीके यज्ञमें ग्राहणोंकी जूठन साक करने लगा। जब चारहीं वर्ष पूर्ण हुआ, तब ग्राहणोंने जूँड़ित होकर उससे पूछा—‘महाभाग! तुम कौन हो? जो नित्य जूठन साक करते हुए भी हमारे यज्ञमें भोजन नहीं करते। इससे हमारे मनमें महान् संदेह हो रहा है।’ उनके इस प्रकार पूछनेपर इन्द्रकुमार क्रमान्वयः अपना सप्त जूत्तन्त ऊँक-ऊँक बताकर तुरंत रथसे स्वर्गलोकको छला गया ॥ ३१—३२ ॥

‘इमलिये, हे भूपाल! तुम भी परशुरामजीके द्वादशवार्षिक यज्ञमें आदरपूर्वक ग्राहणोंकी जूठन साक करो। ग्राहणोंसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो पाथोंका अपहरण कर सके। महीपाल! इस प्रकार ग्रायक्षित कर लेनेपर तुम्हें देवताओंके दिये हुए रथपर चढ़नेकी शक्ति ज्ञात हो जायगी। महामते! आजमें तुम भी श्रीनृसिंहदेवका तथा अन्य देवताओंके भी निर्माल्यका उल्लंघन न करना’ ॥ ३४—३७ ॥

इत्युक्तः शांतनुस्तेन द्वाहाणोच्छिष्टमार्जनम्।
कृतवान् द्वादशाब्दं तु आरुरोह रथं च तम् ॥ ३८
एवं पूर्वमशक्तिः स्याद् रथारोहे महीक्षितः।
पश्चात् तस्यैव विप्रेन्द्र शक्तिरेवमज्ञायत ॥ ३९
एवं ते कथितो विप्र दोषो निर्माल्यलहुने।
पुण्यं तथा द्विजानां तु प्रोक्तमुच्छिष्टमार्जने ॥ ४०

भक्त्या द्विजोच्छिष्टमिहापमार्जये-
च्छुचिनरो यः सुसमाहितात्मा।
स पापबन्धं प्रविहाय भुक्ते
गवां प्रदानस्य फलं दिवि स्थितः ॥ ४१

नामदब्जीके ऐसा कहनेपर शांतनुने बारह वर्षोंतक द्वाहाणोंको जूठन साफ की। इसके बाद ये शक्ति पाकर उस रथपर चढ़नेमें समर्थ हुए। विप्रवर! इस प्रकार पूर्व-कालमें राजाकी उस रथपर चढ़नेकी शक्ति जाती रही और फिर उक्त उपाय करनेसे उनमें पुनः वह शक्ति आ गयी ॥ ३८-३९ ॥

ब्रह्म! इस प्रकार मैंने निर्माल्य लाउनेमें जो दोष है, वह बताया तथा द्वाहाणोंका जूठा साफ करनेमें जो पूर्ण है, उसका भी वर्णन किया। जो मनुष्य इस लोकमें पवित्र होकर, अपने चित्रको एकाग्र करके, भक्तिपूर्वक द्वाहाणोंका जूठा साफ करता है, वह पापबन्धनसे मुक्त हो स्वर्गमें निवास करता और गौओंके दानका फल भोगता है ॥ ४०-४१ ॥

अति श्रीकरसिंहपुराणे शांतनुपर्वतं नमस्कारित्वा इत्याच ॥ २८ ॥

उस प्रकार श्रीकरसिंहपुराणे 'शांतनुपर्वत' कषक अनुसारत्वं अभ्याप्त पृष्ठ हुआ ॥ २८ ॥

प्राप्तवान् त्वं तपामः

उन्तीसवाँ अध्याय

शांतनुकी संततिका वर्णन

श्रीसूत उवाच

शांतनोर्योजनगच्छायां विचित्रवीर्यः। स तु
हस्तिनापुरे स्थित्वा प्रजाः स्वधर्मेण पालयन् देवाङ्गु
यागः पितृंश्च आद्यैः संतप्यं संजातपुत्रो
दिवमारुरोह ॥ १ ॥ विचित्रवीर्यस्याभ्वालिकायां
पाण्डुः पुत्रो जड़े। सोऽपि राज्यं धर्मतः कृत्वा
भुनिशापाच्छरीरं विहाय देवलोकमवाप। तस्य
पाण्डोः कुनितदेव्यापर्वुनः ॥ २ ॥ स तु महता तपसा
शंकरं तोषयित्वा पाशुपतमस्त्रापवाप्य त्रिविष्टपाधिपते-
शत्रून् निवातकवचान् दानवान् हत्वा खाण्डववन-
मयेर्यथारुचि निवेद्य तृप्ताग्नितो दिव्यान् वगानवाप्य

श्रीसूतजी कहते हैं—शांतनुके योजनगच्छाये 'विचित्रवीर्य' नामक पुत्र हुआ। यज्ञा विचित्रवीर्य हस्तिनापुरमें रहकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहे और यज्ञोङ्गारा देवताओंको तथा आद्यके द्वारा पितरोंको गृह फरके पुत्र पैदा होनेपर स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। विचित्रवीर्यके अव्यालिकाके गर्भसे 'पाण्डु' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पाण्डु भी धर्मपूर्वक राज्यपालन करके मुनिके शापसे लातीर त्यागकर देवलोकको चले गये। उन राजा पाण्डुके कुनीदेवीके गर्भसे 'अर्जुन' नामक पुत्र हुआ। अर्जुनने बड़ी भारी तपस्या करके शंकरजीको प्रसन्न किया, उनसे 'पाण्डुपत' नामक अस्त्र प्राप्त किया और स्वर्गलोकके अधिपति इन्द्रके शत्रु 'निवातकवच' नामक दानवोंका वध करके अग्निदेवको उनकी रुचिके अनुसार खाण्डववन समर्पित किया। खाण्डववनको जलाकर, तृप्त हुए अग्निदेवसे अनेक दिव्य वर प्राप्त कर,

मुयोधनेन हतराज्यो धर्मभीमनकुलसहदेव-
द्रीपदीसहितो विराटनगरेऽज्ञातवासम् चरित्वा गोप्रहे
च भीष्मद्रोणकृपदुर्योधनकणादीन् जित्वा
समस्तगोषणडलं निवर्तयित्वा भातुभिः सह
विराटराजकृतपूर्वो वासुदेवसहितः कुरुक्षेत्रे
धार्तराहृष्टवृद्धलैर्युद्धं कुर्वन् भीष्मद्रोणकृपशत्य-
कणादीदिभिर्भूरिपाक्षमैः शत्रियैर्नानादेशागतेस्तेकैरपि
राजपुत्रैः सह दुर्योधनादीन् धार्तराष्ट्रान् हत्वा स्वराज्यं
प्राप्य धर्मेण राज्यं परिपाल्य भातुभिः सह मुदितो
दिव्यमारुरोह ॥ ३ ॥

अर्जुनस्य मुभद्रायामभिमन्युः । येन भारतपुर्वे
चक्रव्युहं प्रविश्यानेकभूमिजो निधने प्राप्तिः ॥ ४ ॥
अभिमन्योक्तरायां परीक्षितः । सोऽप्यभिषितो वनं
गच्छता धर्मपुरोण राज्यं कुल्या राजपुत्रो नाकं सम्प्राप्य
रेते ॥ ५ ॥ परीक्षितान्यानुवत्यां जनमेजयः । येन
ब्रह्महत्याकारणार्थं पहाभारते व्यासगिर्या-
द्वैश्चायायनात् साधनं शुतम् ॥ ६ ॥ राज्यं च धर्मतः
कृत्वा दिव्यमारुरोह । जनमेजयस्य पुर्ववत्यां
शतानीकः ॥ ७ ॥ स तु धर्मेण राज्यं कुर्वन्
संसारदुखाद्विरकः शौनकोपदेशेन क्रियायोगेन
सकललोकनाथं विष्णुमाराय निष्काषो वैष्णवं
पदमवाप । तस्य शतानीकस्य फलवत्यां
सहस्रानीकः ॥ ८ ॥ स तु बाल एवाभिषितो
नरसिंहेऽत्यनं भक्तिमानभवत् । तस्य चरितपुष्परिष्ठाद्
भविष्यति ॥ ९ ॥ सहस्रानीकस्य मुग्धत्यामुदयनः ।
सोऽपि राज्यं कृत्वा धर्मतो नारायणमाराय
तत्पुरमवाप ॥ १० ॥ उदयनस्य वासवदत्तायां
नरवाहनः । स तु यथान्यायं राज्यं कुल्या दिव्यमवाप ।

द्वायोधनद्वाय अपना राज्य छिन जानेपर उन्होने (अपने भाई)
भर्म (कुर्भिडिर), भीम, नकुल, तहदेव और (पाली) द्रौपदीके
साथ विराटनगरमें अज्ञातवास किया । वहो जब शत्रुओंने
आक्रमण करके विराटको गौआओंको अपने अधिकारमें कर
लिया, तब अर्जुनने भीष्म, द्रौण, कृष्ण, दुर्योधन और कर्ण
आदिको हताकर समस्त गौआओंको वापस द्युमाया । फिर
विराटराजके द्वारा भाइयोंसहित सम्भासित होकर कुरुक्षेत्रमें
भगवान् वासुदेवको साथ से अत्यन्त चालशाली
भूतराष्ट्रपुत्रोंके साथ युद्ध किया और भीष्म, द्रौण, कृष्ण,
कर्ण आदि महापराक्रमी क्षत्रियों तथा नाना
देशोंसे जाये हुए अनेकों राजपुत्रोंसहित दुर्योधनादि
भूतराष्ट्रपुत्रोंका उन्होंने भीष्म आदिके सहयोगसे यस करके
अपना राज्य प्राप्त कर लिया । फिर भाइयोंसहित वे धर्मके
अनुसार (अपने सबसे बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिरकी
राज्यके पदपर अधिष्ठेत करके) राज्यका पालन करके अन्तमें
सबके साथ द्राशुमारायुर्वक्त स्वर्गलोकमें जाने गये ॥ १-३ ॥

अर्जुनको मुभद्राके गर्भसे 'अभिमन्यु' नामक पुत्र प्राप्त
हुआ, जिसने महाभारत-युद्धमें चक्रव्युहों भीतर प्रवेश
करके अनेक रुक्मिङ्गोंको मृत्युक घाट उठाया था । अभिमन्युके
उत्तराके गर्भसे परीक्षितका जन्म हुआ । धर्मवदन पुरिष्ठिर
जब जनप्रसाद धर्मीक उन्मुक्तसार वनमें जाने लगे, तब उन्होंने
परीक्षितको राज्यके पदपर अधिष्ठित कर दिया । तब वे भी
धर्मपुर्वक राज्यका पालन करके उन्हमें विकुलशशमये जाकर
अनुप सुखके भागी हुए । परीक्षितसे महामुक्तोंके गर्भसे मुक्त
होनेके लिये व्यासगिर्या वैश्वमन्दनके मुखसे सम्पूर्ण महाभारत
आदिसे अन्तर्का मुक्त था । वे भी धर्मपुर्वक राज्यका पालन
करके अन्तमें स्वर्गवासी हुए । जनमेजयको अपनी पली
पुण्यतीके गर्भसे 'शतानीक' नामक पुत्र प्राप्त हुआ । उन्होंने
धर्मपुर्वक राज्यका पालन करते हुए संसार-दुःखसे विमुक्ति
हो, शौनकके उपदेशसे यशोदा कर्मांकि द्वारा समस्त लोकोंकि
अधीक्षा भगवान् विष्णुकी निष्कामभावसे आराधना की
और अन्तमें वैष्णवधारको प्राप्त कर लिया । शतानीकके
फलवतीके गर्भसे महस्रानीकको उत्पत्ति हुई । महस्रानीक
ब्रह्मावस्थामें हो रहाके पदपर अधिष्ठित हो भगवान्
नृसिंहके प्रति अत्यन्त भक्तिभाव रखने लगे । उनके
चरित्रका आगे वर्णन किया जायगा । महस्रानीकके मृगवतीसे
उदयन हुए । वे फौजाम्भीर्यं धर्मपुर्वक यशस्वी पालन करके
नरवाहनको आराधना करते हुए वैकुण्ठशशमयको प्राप्त हुए ।
उदयनके कासवदत्ताके गर्भसे नरवाहन नामक पुत्र हुआ ।
वह भी न्यायतः राज्यका पालन करके स्वर्गको प्राप्त हुआ ।

नरवाहनस्याश्वमेघदत्तायां क्षेपकः ॥ ११ ॥ स च
राज्यस्थः प्रजाः परिपाल्य म्लेच्छाभिभूते जगति
ज्ञानबलात् कलापग्राममाक्षितः ॥ १२ ॥

यः अहधानः पठते भृणोति वा
हरी च भक्तिं चरितं पद्मीभूताम्।
स संतति ग्राव्य विशुद्धकर्मकृद्
दिवं समाप्ताय वसेच्चिरं सुखी ॥ १३ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे शोकनुसारेऽविवरं इति शक्तीश्चित्तोऽध्यायः ॥ २६ ॥
इति प्रकाश श्रीनरसिंहपुराणे 'शोकनुसारी शोकाश्रय वर्णनं' नामक उत्तीर्णवर्ती अध्याय पूरा द्वितीय ॥ २६ ॥

शोकनुसारी शोकाश्रय

तीसवाँ अध्याय

भूतोत्त तथा स्वर्गालोकका वर्णन

शोकनुसारी

अतः परं प्रवक्ष्यामि भूतोत्त द्विजसत्तमाः।
संक्षेपात् पर्वताकीर्णं नदीभिरुपं समन्वतः ॥ १ ॥

जम्बुप्लक्षशाल्यलकुशक्रीडाशाकपुष्करमंडः।
सप्त द्वीपाः। लक्ष्योजनप्रमाणाज्ञाम्बुद्धीपादुत्तरोत्तर-
द्विगुणाः ॥ लक्षणोऽसुरसुरासर्पिंदिपिदुग्धस्वच्छोदक-
संज्ञैः परम्परं द्विगुणैः सप्तसप्तद्विविषयाकोरसे द्वीपाः
परिधिष्ठिताः ॥ २ ॥ योऽसौ मनुपुत्रः प्रियदत्तो नाम
स समद्वीपाधिपतिर्भूतः। तस्य अग्नीधाटयो दश पुत्रा
बभूतः ॥ ३ ॥ त्रयः प्रद्यनिताः। शिष्टानां सप्तानां
समद्वीपाः पित्रा दत्ताः। तत्र जम्बुद्वीपाधिपतेरनीधाल्य
नवं पुत्रा जाताः ॥ ४ ॥

नाभिः किम्बुकश्चैव हरिवर्णं इलावृतः।
रम्यो हिरण्मयश्चैव कुरुभंद्रक्षं केतुमान् ॥ ५ ॥

नरवाहनके अहवमेघदत्ताके गर्भसे क्षेपक नामक पुत्रका
जन्म हुआ। क्षेपक राजा के पदपर प्रतिष्ठित होने के पश्चात्
प्रजाकाल भर्मपूर्वक पालन करने लगे। उन्हीं दिनों म्लेच्छाओं का
जाग्रत्तमण हुआ और सम्पूर्ण जगत् उनके हात पददलित
होने लगा। तब वे ज्ञानके बलसे जलापग्राममें चले
आये ॥ ४—१२ ॥

जो उपर्युक्त राजाओंकी हरिपालि तथा चरित्रका
बद्धमन्त्रवक्त चल या क्रयण करता है, वह विशुद्ध कर्म
करनेवाला पुरुष संतति ग्रास करके अन्तमें स्वर्गालोकमें
पहुँचकर वहां सुरोर्यं कालसाक सुखी रहता है ॥ १३ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे शोकनुसारेऽविवरं इति शक्तीश्चित्तोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इति प्रकाश श्रीनरसिंहपुराणे 'शोकनुसारी शोकाश्रय वर्णनं' नामक उत्तीर्णवर्ती अध्याय पूरा द्वितीय ॥ २६ ॥

श्रीसुतजी बोले— द्विजवरो! आव मैं सब और नदी
तथा पर्वतोंसे ज्यात भूतोत्त (भूमिभण्डल)-जा संधेष्ठाने
यार्णव बहुते ॥ १ ॥

इस पृष्ठोपर जम्बु, प्लक्ष, शाल्यसिं, कुरु, औदृ,
साक और पुष्कर नामके सात द्वीप हैं। इनमें जम्बुद्वीप
तो सप्तवृक्षोंसे उत्तोत्तर द्वारा बोला है और एक आदि
जम्बुद्वीपसे उत्तोत्तर द्वारा बोला है। ये द्वीप क्रमशः
अवस्थेसे दूरे प्रामाण्यवाले लक्षण, इश्वरम्, सुरा, षुट, दीपि,
दुष्प और शुद्धोदक नामसे विख्यात सात बलवाकार
समुद्रोंसे पिरे हुए हैं। मनुके जो 'प्रियदत्त' नामक पुत्र
है, वे ही सत्त द्वीपोंके अधिपति हुए। उनके अग्नीध आदि
दस पुत्र हुए। इनमेंसे तीन तो सर्वत्यागी संन्यासी हो गये
और शेष सत्तोंको उनके पिताने एक एक द्वीप बैठ
दिया। इनमें जम्बुद्वीपके अधिपति 'अग्नीध' के नीं पुत्र
हुए। उनके नाम हैं—नाभि, किम्बुक, हरिवर्ण, इलावृत,
रम्य, हिरण्मय, कुरु, भद्र और केतुमान् ॥ २—५ ॥

नववर्षः विभव्य पुत्रेभ्यः पित्रा दत्ता वर्णं प्रविशता । अग्नीश्चीय हिमाहृयम् । यस्याधिपतिनांभः ऋषभः पुत्रो वभूव ॥ ६ ॥

ऋषभाद् भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण पालितत्वादिदं भारतं वर्षमभूत् । इलावृतस्य मध्ये भेठः सुवर्णमयश्चतुरशीतिसहस्राणि योजनानि तस्योच्छायः । षोडशसहस्रमण्यस्तादवगाढः । तद्द्विगुणो मूर्धि विस्तारः ॥ ७ ॥ तन्मध्ये छहाणः पुरी । ऐन्द्रियमिन्द्रस्य चामरावती । आग्नेय्यामनेस्तेजोवती । याम्यां यमस्य संघमनी । नैक्षेत्र्यां निर्वितेर्भवकरी । वारुण्यां वरुणस्य विश्वावती । वायव्यां वायोर्गच्छवती । उटीच्यां सोमस्य विभावरीति । नववर्षान्वितं जम्बुदीपे पुण्यपर्वते । पुण्यनदीभिरन्वितम् ॥ ८ ॥ किञ्चुरुपादीन्यष्टुपर्षाणि पुण्यवतां भोगस्थानानि साक्षाद् भारतवर्षमेकं कर्मभूमिश्चातुर्वर्णयुतम् ॥ ९ ॥

तत्रैव कर्मेभिः स्वर्गं कृतैः प्राप्यन्ति मानवाः । मुक्तिक्षात्रैव निष्कार्यैः प्राप्यते ज्ञानकर्मेभिः । अधोगतिभितो विष्र यान्ति वै पापकारिणः ॥ १० ॥

ये पापकारिणस्तान् विद्धि पातालतत्त्वे नरके कोटिसप्तन्वितान् ॥ ११ ॥

अथ सप्त कुलपर्वताः कल्यन्ते । महेन्द्रो मलयः शुक्लियान् ऋष्यमूर्कः सहृपर्वतो विभव्यः पारियाऽः इत्येते भारते कुलपर्वताः ॥ १२ ॥ नर्मदा सुरसा ऋषिकुल्या भीमरथी कृष्णा वेणी चन्द्रभागा ताप्रपणी इत्येताः सप्त नद्यः । गङ्गा यमुना गोदावरी तुङ्गभद्रा कावेरी सरयूरुगित्येता महानदाः पापच्यः ॥ १३ ॥

जम्बुनाम्ना च विष्ण्यातं जम्बुदीपमिदं शुभम् । लक्ष्योजनविस्तीर्णमिदं श्रेष्ठं तु भारतम् ॥ १४ ॥

राजा अश्वोप्र जब (भर त्यागकर) वनमें जाने लगे तब उन्होंने जम्बुदीपको उसके नी खाण करके अपने पुत्रोंको खौट दिया । हिमालय पर्वतसे मिला हुआ वर्ष अश्वोप्र (नाभि) को मिला था । इसके अधिपति राजा नाभिसे 'ऋषभ' नामक पुत्र हुआ ॥ ६ ॥

ऋषभसे भरतका जन्म हुआ, जिनके द्वाय चिरकालताक धर्मसूक्ष्मक पालित होनेके कारण हस्त देशका नाम 'भारतवर्ष' पड़ा । इलावृत वर्षके बीचमें भेठ नामक सुवर्णमय पर्वत है । उसकी ऊंचाई चौरासी हजार योजन है । वह ज्ञोलह हजार योजनतक चौंचे ज्ञोलतचे गढ़ है और इससे दूनी (बतीस हजार योजन) इसकी चौटीकी चौड़ाई है । इसके मध्यभागमें चालाजीको पुरी है, पूर्वभागमें इन्द्रकी 'अमरावती' है, अष्ट्रियोंमें अष्ट्रियकी 'तेजोवती' पुरी है, दक्षिणमें यमराजको 'संयमनी' है, नैक्षेत्र्यकोणमें निर्वहितिकी 'भवेकरी' नामक पुरी है, पश्चिममें वरुणकी 'विश्वावती' है, यामवर्षकोणमें यामुको 'गच्छवती' नामी है और उत्तरमें चन्द्रमाको 'विभावती' पुरी है । नी छण्डोंसे युक्त यह जम्बुदीप पुण्य पर्वतों तथा पुण्य नदियोंसे युक्त है । किञ्चुरुप आदि आठ वर्ष पुण्यवानेके भोगस्थान हैं, केवल एक भारतवर्ष ही यारों कर्त्तव्ये युक्त कर्मशील है । भारतवर्षमें ही कर्म करनेमें मनुष्य स्वर्गं प्राप्त करेंगे और वहाँ ही ज्ञान-साधकको निष्काम कर्माण्ये मुक्ति भी प्राप्त होती है । विष्णव ! पाप करनेवाले पुण्य यहाँसे अधोगतिको प्राप्त होते हैं । जो चापी है, उन करोड़ों मनुष्योंको पातालस्थ नरकमें रहे हुए समझिये ॥ ७—११ ॥

अब सात कुलपर्वतोंका वर्णन किया जाता है— महेन्द्र, मलय, शुक्लियान्, ऋष्यमूर्क, सहा, दिन्य और पारियाऽः ये ही भारतवर्षमें कुलपर्वत हैं । नर्मदा, सुरसा, ऋषिकुल्या, भीमरथी, कृष्णवेणी, चन्द्रभागा तथा ताप्रपणी— ये सत नदियाँ हैं तथा गङ्गा, यमुना, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, कावेरी और सरयू—ये सह महानदियाँ सब यापींको नष्ट करनेवाली हैं ॥ १२—१३ ॥

यह सुन्दर जम्बुदीप जम्बु (जामुन) के नामसे विख्यात है । इसका विस्तार एक लाख योजन है । इस द्वीपमें यह भारतवर्ष ही सबसे श्रेष्ठ स्थान है ॥ १५ ॥

ऋक्षद्वीपादिपुण्या जनयदा: । निष्कामा ये
स्वधर्मेण नरसिंहे यजनि ते तत्र निवसन्ति ।
अधिकारक्षयान्मुक्तिं च प्राज्ञवन्ति ॥ १५ ॥ जम्बवाद्या:
स्वादूदकान्ताः सप्त पथोधयः । ततः परा हिरण्यमयी
भूषिः । ततो लोकालोकपर्वतः । एष भूलोकः ॥ १६ ॥

अस्योपरि अन्तरिक्षलोकः । खेच्चराणां
रथस्तदूधरे स्वर्गलोकः ॥ १७ ॥

स्वर्गस्थानं महापुण्यं प्रोच्यमानं निवोधत ।
भारते कृतपुण्यानां देवानामपि चालयम् ॥ १८ ॥

मध्ये पृथिव्यामद्रीन्द्रो भास्वान् मेरुहिरण्यमयः ।
योजनानां सहस्राणि चतुराशीतिमुच्छृङ्गः ॥ १९ ॥

प्रविष्टः योडशाधस्ताद्वरण्यां धरणीधरः ।
तावत्प्रमाणा पृथिवी पर्वतस्य समन्तः ॥ २० ॥

तस्य शृङ्गत्रयं मूर्छिन् स्वर्गो यत्र प्रतिष्ठितः ।
नानाशूमलताकीर्णं नानापुण्योपशेभितम् ॥ २१ ॥

मध्यमं पश्चिमं पूर्वं मेरोः शृङ्गाणि दीणि वै ।
मध्यमं स्फटिकं शृङ्गं वैदूर्यमणिकामयम् ॥ २२ ॥

इन्द्रनीलमयं पूर्वं माणिकयं पश्चिमं स्मृतम् ।
योजनानां सहस्राणि नियुतानि चतुर्दशः ॥ २३ ॥

उच्छ्रितं मध्यमं शृङ्गं स्वर्गो यत्र त्रिविष्टः ।
अप्रभान्तरितं शृङ्गं मूर्छिन् छत्राकृति स्थितम् ॥ २४ ॥

पूर्वमुत्तरशृङ्गाणामन्तरं मध्यमस्य च ।
त्रिविष्टये नाकपृष्ठे हृप्सरा: सन्ति निर्वृताः ॥ २५ ॥

आनन्दोऽथ प्रमोदश्च स्वर्गशृङ्गे तु मध्यमे ।
श्वेतश्च पौष्टिकश्च उपशोभनमन्मध्यी ॥ २६ ॥

शृङ्गद्वीप आदि पुण्य देश हैं । जो सोग निष्कामभावसे
अपने-अपने वर्णधर्मका आचरण करते हुए भगवान् नृसिंहका
यजन करते हैं, ये ही उन पुण्य देशोंमें निवास करते हैं
तथा कर्माधिकारका क्षय हो जानेपर मोक्ष भी प्राप्त कर
लेते हैं । जम्बुद्वीपसे लेकर 'शुद्धोदक' संज्ञक समुद्रपर्यन्त
सात द्वीप और सात समुद्र हैं । उसके बाद स्वर्णमयी भूमि
है । उसके आगे लोकालोक पर्वत है—यह सब 'भूलोक' का
बर्जन हुआ ॥ १५—१६ ॥

इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है, जो अन्तरिक्षचारी
प्राणियोंके लिये परम रमणीय है । इसके ऊपर स्वर्गलोक हैं ।
अब महापुण्यमय स्वर्गलोकका वर्णन किया जाता है,
उसे आपलोग मुझसे सुनें । जिन्हेंने भारतवर्षमें रहकर
पुण्यकर्म किये हैं, उनका तथा देवताओंका वहाँ निवास है ।
भूमण्डलके बीचमें पर्वतोंका राजा मेरु है, जो सुवर्णमय
होनेके कारण अपनी प्रभासे उद्घासित होता रहता है ।
वह पर्वत चौरासी हजार योजन कीचा है और सोलह
हजार योजनतक पृथ्वीमें नौरेकी ओर धैसा हुआ है ।
साथ ही उसके चारों ओर उत्तरे ही प्रमाणवाली पृथिवी
है ॥ १७—२० ॥

मेरुगिरिके ऊपरी भागमें जीन शिखर है, जहाँ स्वर्गलोक
समा हुआ है । मेरुके ये स्वर्णीय शिखर नाना प्रकारके
शृङ्ग और लकड़ोंसे आयुत तथा भौति-भौतिके पुण्योंसे
सुशोभित हैं । मध्यम, पश्चिम और पूर्व—ये ही तीन
मेरुके लिखर हैं । इनमें मध्यम शृङ्ग स्फटिक तथा
वैदूर्यमणिमय हैं, पूर्व शृङ्ग इन्द्रनीलमय और पश्चिम
शिखर माणिकयमय कहा जाता है । इनमेंसे मध्यम शृङ्ग
चौटह लाख चौटह हजार योजन कीचा है, जहाँ 'त्रिविष्ट'
नामका स्वर्गलोक प्रतिष्ठित है । पूर्व शृङ्ग मेरुके ऊपर
छत्राकर स्थित है । मध्यम शृङ्ग और उसके बीच अन्धकारका
व्यवधान है । वह मध्यम शृङ्ग और उसके बाटवाले पश्चिम
शिखरके बीचमें स्थित है । नाकपृष्ठ—त्रिविष्टमें आनन्दमयी
अप्सराएँ निवास करती हैं ॥ २१—२५ ॥

मेरुके मध्यवत्ती शिखरपर विराजमान स्वर्गमें
आनन्द और प्रमोदका वास है । पश्चिम शिखरपर
छेत, पौष्टिक, उपशोभन और काम

आहादः स्वर्गराजा वै स्वर्गश्रुद्धे तु पश्चिमे ।
निर्ममो निरहंकारः सौभाग्यश्रातिनिर्मलः ॥ २७

स्वर्गश्चीव द्विजश्रेष्ठ पूर्वश्रुद्धे समाप्तितः ।
एकविंशतिः स्वर्ग वै निविष्टा मेरुमूर्धनि ॥ २८

अहिंसादानकतर्गे यज्ञार्ण तपसां तथा ।
तत्त्वेषु निवासन्ति स्म जनाः क्रोधविवर्जिताः ॥ २९

जलप्रवेशे चानन्दं प्रमोदं बहिसाहस्रे ।
भृगुप्रपाते सीख्यं च रणं चैवास्य निर्मलम् ॥ ३०

अनाशके तु संन्यासे मृतो गच्छेत्रिविष्टपम् ।
क्रन्तुयार्जी नाकपृष्ठपरिहोत्री च निर्वृतिम् ॥ ३१

तडागकृपकर्ता च लभते पीठिकं द्विज ।
सुवर्णदायी सौभाग्यं लभन् स्वर्गं तपःफलम् ॥ ३२

शीतकाले महावहिं प्रच्छालयति यो नरः ।
सर्वसत्त्वहितार्थाय स्वर्गं सोऽप्यसर्वं लभेत् ॥ ३३

हिरण्यगोप्रदाने हि निरहंकारमाणुयात् ।
भूमिदानेन शुद्धेन लभते ज्ञानिकं पदम् ॥ ३४

रीप्यदानेन स्वर्गं तु निर्मलं लभते नरः ।
अशुद्धानेन पुण्याहं कन्यादानेन मङ्गलम् ॥ ३५

द्विजेभ्यस्तर्पणं कृत्वा दस्या वस्त्राणि भक्तिः ।
इवेतं तु लभते स्वर्गं यत्र गत्वा न शोचते ॥ ३६

कपिलागोप्रदानेन परमार्थं महीयते ।
गोवृष्टस्य प्रदानेन स्वर्गं मन्यथमाणुयात् ॥ ३७

माध्यमासे सरित्त्रायी तिलधेनुप्रदस्तथा ।
छत्रोपानहदाता च स्वर्गं यात्युपशोभनम् ॥ ३८

एवं स्वर्गके राजा आहाद निवास करते हैं । द्विजश्रेष्ठ ! पूर्व शिखरपर निर्मम, निरहंकार, सौभाग्य और अतिनिर्मल नामक स्वर्गं मुश्चोभित होते हैं । मेरु पर्वतकी चोटीपर कुल इक्षुस लक्ष्यं यसे हुए हैं । जो अहिंसाप्रभावका चालन करनेवाले और दानों हैं तथा जो यज्ञ और तपका अनुष्ठान करनेवाले हैं, वे ज्ञोभरहित मनुष्य इन स्वर्गोंमें निवास करते हैं ॥ २६—२९ ॥

जो धर्मपालनके लिये जलमें प्रविष्ट होकर प्राण स्वास करते हैं, वे 'आनन्द' नामक स्वर्गको प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार जो धर्मरक्षक हो लिये अश्रिये जलनेका साहस करते हैं, उन्हें 'प्रमोद' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है और जो धर्मार्थं पर्वतशिखरारे कृदकर प्राण देते हैं, उन्हें 'सीतान' संज्ञक स्वर्गं प्राप्त होता है । संदामको मृत्यु-से 'निर्मल' (या अतिनिर्मल) नामक स्वर्गकी उपलब्धि होती है । उपचास-ध्रुत एवं संन्यासावस्थामें मृत्युको प्राप्त होनेवाले सोग 'त्रिविष्ट' नामक स्वर्गोंमें जाते हैं । शीत यज्ञ करनेवाला 'नक्षत्रु' भैं और अश्रिहोत्री 'निर्वृति' नामक स्वर्गोंमें जाते हैं । द्विज ! योखण और कुर्जी बनवानेवाला मनुष्य 'पीठिक' स्वर्गको पाता है, सोना दान करनेवाला मूरुष तपस्याके फलभूत 'सौभाग्य' नामक स्वर्गको जाता है । जो शोतुकालमें लक्ष प्रतिष्ठोंके हितके लिये लकड़ियोंके लिएको जलाकर बढ़ी भारी अश्रिराशि प्रज्ञलित करता और उन्हें नरमो पहुँचाता है, वह 'अप्यरा' संज्ञक स्वर्गको उपलब्ध करता है । मुख्यं और गोदान करनेपर दाता 'निरहंकार' नामवाले स्वर्गको पाता है और मुद्दधारसे भूमिदान करके मनुष्य 'शानिक' नामसे प्रसिद्ध स्वर्गधारको उपलब्ध करता है । चौदो दान करनेसे मनुष्यको 'निर्मल' नामक स्वर्गको प्राप्ति होती है । अशुद्धानसे दाता 'पुण्याह'का और कन्यादानसे 'मङ्गल'का लाभ करता है । चाहाणोंको तृष्ण करके उन्हें भक्तिपूर्वक तस्य दान करनेसे मनुष्य 'केत' नामक स्वर्गको पाता है, जहाँ जाकर वह कभी शोकका भागी नहीं होता ॥ ३०—३६ ॥

कपिला गीका दान करनेसे दाता 'परमार्थ' नामक स्वर्गमें नूजित होता है और उनम सौंदर्का दान करनेसे उसे 'मन्यथ' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है । जो माधवके महानेमें नित्य नदीमें स्नान करता, तिलमयी धेनु देता

देवतायतनं कृत्वा द्विजशुशूषकसनथा ।
तीर्थयात्रापरश्चैव स्वर्गराजे महोयते ॥ ३९

एकान्नभोजी यो मर्त्यो नक्तभोजी च नित्यशः ।
उपवासी त्रिरात्रादीः शान्तः स्वर्गं शुभं लभेत् ॥ ४० ॥

सरित्कायी जितक्रोधो ब्रह्मचारी दुखवतः ।
निर्मलं स्वर्गमाप्नोति यथा भूतहिते रतः ।

विद्यादानेन पेथावी निरहंकारमाप्नुयात् ॥ ४१ ॥

येन येन हि भावेन यद्यहानं प्रयच्छति ।
तत्तत्स्वर्गमवाप्नोति यद्यदिच्छति भावः ॥ ४२ ॥

चत्वारि अतिदानानि कन्या गीर्भः सरस्वती ।
नरकादुद्धरनयेते जग्यवाहनदोहनात् ॥ ४३ ॥

यस्तु सर्वाणि दानानि ब्राह्मणोऽथः प्रयच्छति ।
सम्प्राप्य न निवर्तेत स्वर्गं शान्तमनामयम् ॥ ४४ ॥

श्रुते तु पश्चिमे यत्र ब्रह्मा तत्र स्थितः स्वयम् ।
पूर्वश्रुते स्वयं विष्णुः मध्ये चैव शिवः स्थितः ॥ ४५ ॥

अतः परं तु विप्रेन्द्र स्वर्गाध्यानपिम् श्रुणु ।
विष्पलं विपुलं शुद्धमुपर्युपरि संस्थितम् ॥ ४६ ॥

प्रथमे तु कुमारस्तु द्वितीये मातरः स्थिताः ।
तृतीये सिद्धगन्धवर्वास्तुवै विद्याधरा द्विज ॥ ४७ ॥

पञ्चमे नागराजश्च षष्ठे तु विनतासुतः ।
सप्तमे दिव्यपितरो धर्मराजस्तथाष्टमे ।

नवमे तु तथा दक्ष आदित्यो दशमे पथि ॥ ४८ ॥

भूलोकाच्छतसाहस्रादूर्ध्वं चरति भास्करः ।
योजनानां सहस्रे द्वे विष्णुभ्यं समन्वतः ॥ ४९ ॥

और उत्र तथा जूतेका दान करता है, वह 'उपसोभन' नामक स्वर्गमें जाता है। जिसने देवमन्दिर बनवाया है, जो द्विजोंको सेवा करता है तथा सदा तीर्थयात्रा करता रहता है, वह 'स्वर्गराज' (आहाद)-में प्रतिष्ठित होता है। जो मनुष्य नित्य एक ही अन्न भोजन करता, जो प्रतिदिन केवल रातमें ही खाता तथा त्रिरात्र आदि द्वातोंके द्वारा उपवास किया करता है, वह 'शुभ' नामक स्वर्गको पाता है। चटीमें स्नान करनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला एवं हृदयापूर्वक ऋतका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी सम्पूर्ण जीवोंके हितमें लापर रहनेवाले पुरुषके समान 'निर्मल' नामक स्वर्गको पाता है। मेधावी पूरुष विद्यादान करके 'निरहंकार' नामक स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ३७—४१ ॥

मनुष्य जिस-जिस भावनासे जो-जो दान देता है और उससे जो-जो फल जाहता है, तदनुसार ही विभिन्न स्वर्गलोकोंको पाता है। कान्ता, गी, भूमि तथा विद्या—इन चारोंके दानको 'अतिदान' कहा गया है। ये चार वस्तुएं दान की जानेपर दाताका नरकसे उद्धार कर देती हैं। इकना ही नहीं, बैलपर शक्तारी करने और गायको दुहनेमें जी दोष होता है, उससे भी मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो ब्राह्मणोंकी सब प्रकारके दान अर्पित करता है, वह जान एवं निरामय स्वर्गलोकको प्राप्त होकर फिर वहाँसे नहीं छौटता है। मेरुगिरिके चक्षिम लिखरपर, जहाँ सर्वय ब्रह्माजी विराजमान हैं, वहाँ वह स्वयं भी वास करता है। पूर्वशृङ्खलपर माश्चान् भगवान् विष्णु और मध्यम शृङ्खलपर शिवजी विराजमान हैं ॥ ४२—४५ ॥

तिप्रेन्द्र! इसके बाद आप स्वर्गके इन 'निर्मल' तथा 'विद्यात्' मार्गका जर्णन सुनें। स्वर्गलोकके दस मार्ग हैं। ये सभी एकके ऊपर दूसरेके क्रमसे स्थित हैं। प्रथम मार्गपर कुमार कार्तिकेय और दूसरेपर मातुकालै रहती हैं। द्वितीयसे मार्गपर सिद्ध-गन्धर्व, चौथेपर विद्याधर, पाँचवेंपर नागराज और छठेपर विनतानन्दन गरुडजी विराजमान हैं। सातवेंपर दिव्य पितृगण, आठवेंपर धर्मराज, नववेंपर दक्ष और दसवें मार्गपर आदित्यकी स्थिति है ॥ ४६—४८ ॥

भूलोकसे एक लाख दो हजार योजनकी केचाईपर सूदेव विचरते हैं। उस ऊचाईपर सब और उनके रुकनेके लिये आधार हैं

त्रिगुणं परिणाहेन सूर्यविष्वं प्रमाणतः ।
सोमपुर्यां विभावर्यां मध्याहे चार्यमा यदा ।
महेन्द्रस्यामग्रवत्यां तदा तिष्ठति भास्करः ॥ ५०

मध्याहे त्वप्रावत्यां यदा भवति भास्करः ।
तदा संयमने याप्ये तत्रोद्याम्नु प्रदृश्यते ॥ ५१

मेरुं प्रदक्षिणां कुर्वन् भात्येव सविता सदा ।
भूवाधारसतयोनिषुभूत्वालिङ्गल्यादिभिः स्तुतः ॥ ५२

तथा उस ऊचाईसे तीन गुने प्रमाणमें सूर्यमण्डलका दीर्घ विस्तार है। जिस समय सूर्य चन्द्रमाकी विभावरीपुरीमें दोपहरके समय रहते हैं, उस समय इन्द्रको अमरावतीमें उदय होते-से प्रतीत होते हैं। जिस समय अमरावतीपुरीमें मध्याहके समय सूर्य रहते हैं, उस समय यमकी संयमनी पुरीमें उदित होते दीर्घ पहुंचते हैं। भगवान् सूर्य सदा मेहगिरिकी पक्किमा करते हुए ही सुशोधित होते हैं। ये पुरुषोंके आधारपर स्थित हैं। उनके उदय होते समय बालशिवलयादि ऋषि उनकी शुभता करते हैं ॥ ४९—५२ ॥

उत्ति औन्तरिक्षमिषुर्हर्षे पूर्णोत्तरकर्मे विश्वेऽस्यादः ॥ ३४ ॥

इति प्रकार औन्तरिक्षमिषुर्हर्षमें 'भूगोलकर्म' विषयक तीर्तशब्द आवाय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

त्रिविष्वं विष्वां विष्वां

इकतीसवाँ अध्याय

भूत-चरित्र तथा ग्रह, नक्षत्र एवं पातालका संक्षिप्त वर्णन

भूत्वा उत्तर

कोऽसी भूवः कस्य सूतः सूर्याधरोऽभवत् कथम् ।
विचिन्त्य कथयाशु त्वं सूत जीव समाः शतम् ॥ १

सूत उत्तर

पनोः स्वायम्भुवस्यासीदुत्तानचरणः सूतः ।
तस्य क्षितिपतेर्विष्वं द्वौ सूतौ सम्बभूवतुः ॥ २

सुरुच्यामुनमो न्येषुः सुनीत्यां तु धुवोऽपरः ।
मध्येसभं नरपतेकपविष्टुस्य चैकदा ॥ ३

सुनीत्या राजसेवाय नियुक्तोऽलङ्कृतः सूतः ।
धुवो धात्रेयिकापुत्रैः सम्ब विनयतत्यरः ॥ ४

स गत्वोत्तानचरणं क्षोणीशं प्रणनाम ह ।
दृष्टोत्तमं तदुत्पङ्के निविष्टं जनकस्य वै ॥ ५

प्राप्य सिंहासनस्थं च नृपतिं बालचापलान् ।
आरुक्षुमवेक्ष्याम् सुरुचिर्धुवमश्रवीत् ॥ ६

भरहुजाजीने पूछा—सूतलो ! भूव कौन है ? किसके पुत्र है ? जब ये सूर्यके आधार कैसे हुए ? ये सब जाने भलीभीति सोम विचारकर बताइये । हमारे यह कामना है कि आप हमें कहा गुनाहे हुए सैकड़ों वर्षोंतक जीवित रहें ॥ १ ॥

सूतजी बोले—लिप्तवर ! स्वायम्भुव मनुके एक पुत्र है राजा उत्तरपाद । उन भूपालके दो पुत्र हुए । एक तो सुरुचिने गर्भसे उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम उत्तम था । वह न्येषु वा और दूसरा पुत्र 'भूव' था, जो सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । एक दिन जब राजा राजसभामें बैठे हुए थे, सुनीतिने अपने पुत्र धुवकी वस्त्राभूषणमें विपुणित करके राजाकी सेवाके लिये भेजा । विनयशोल धुवने धारके पुत्रोंके साथ राजसभामें जाकर राजा उत्तमपादको प्रणाम किया । वहीं उत्तमको पिताकी नीढ़में बैठा देख धुव सिंहासनपर आसोन राजाके पास जा पहुंचा और जालीचित चपलताके कारण राजाकी गोदमें चढ़नेकी इच्छा करने लगा । यह देख सुरुचिने धुवसे कहा ॥ २—६ ॥

सुरचितकथा

दीर्घगेय किमारोदुमिच्छेन्द्रङ्गे महीपतेः ।
बाल वालिशावुद्दित्वादभाग्याजाठोद्भवः ॥ ७
अस्मिन् सिंहासने स्थातुं सुकृतं किं त्वया कृतम् ॥ ८
यदि स्यात् सुकृतं तत्किं दुर्भाग्योदारगोऽभवः ।
अनेनैवानुमानेन युद्धस्व स्वल्पपुण्यताम् ॥ ९
भूत्वा राजकुमारोऽपि नालंकुर्यां ममोदरम् ।
सुकुक्षिजमम् पश्य त्वमुत्तममनुलमप् ॥ १०
अधिजानु धराजान्योमनिन परिवृहितम् ।

सुर उक्ताच

प्रथ्येराजसभं बालस्तयेति परिभर्तितः ॥ ११
निपत्नेप्रवाप्याम्बुद्धीर्यत् किञ्चित्त्र चोक्तवान् ।
उचितं भोचितं किञ्चित्प्रोचितवान् सोऽपि पार्थिवः ॥ १२
नियन्तितो महिष्याशु तस्याः सौभाग्यगौरवान् ।
विभजितसभालोकं शोकं संहृत्य चेष्टितैः ॥ १३
शैशवैः स शिशुर्वत्या नृपं स्वसदनं यद्या ।
सुनीतिनीतिनिलयमवलोक्याथ बालकम् ॥ १४
मुखलक्ष्यैव चाज्ञासीद् धूर्वं राज्ञायमानितम् ।
अथ दृष्टा सुनीतिं तु रहोऽन्तःपुरायासिनीम् ॥ १५
आलिङ्ग्य दीर्घं निःक्षुप्य मुक्तकण्ठं रुरोद ह ।
सान्त्वयित्वा सुनीतिसं बदनं परिपार्व्य च ॥ १६
दुकूलाङ्गलसप्तकैर्वीञ्य तं मृदुपाणिना ।
पप्रच्छ तनयं माता बद रोदनकारणम् ॥ १७
विद्यमाने नरपती शिशो केनापमानितः ।

मुख उक्ताच

सम्पृच्छे जननि त्वाहं सप्तकं त्रिंसं ममाप्रतः ॥ १८
भार्यात्वेऽपि च सापान्ये कथं सा सुरचिः प्रिया ।
कथं न भवती मातः प्रिया क्षितिपत्तेरसि ॥ १९

सुरचिं बोली—अभागिनीके बचे ! क्या तु भी महाराजकी गोदमें बहना चाहता है ? आलक ! मूर्खतावश ही ऐसी चेष्टा कर रहा है । तु इसके योग्य कदाचिं नहीं है ; ब्योकि तु एक भाग्यहीना स्त्रीके गर्भसे पैदा हुआ है । बता तो सही, तूने इस सिंहासनपर चैठेनेके लिये कौनसा प्राप्यकर्म किया है ? यदि पुण्य ही किया होता तो क्या अभागिनीके गर्भसे जन्म सेता ? राजकुमार होनेपर भी तु भी उदाहकी शोभा नहीं चढ़ा सका है । इसी बातसे जान से कि तेरा पुण्य बहुत कम है । उत्तम कोखासे पैदा हुआ है—कुमार ‘उत्तम’ जो तर्वर्षेषु है ; देखो, यह कितने सम्मानके साथ पूज्यीनाथ महाराजके दोनों पुटनोंपर पैदा है ॥ ७—१० ॥ ॥

सुतजी कहते हैं—राजसभाके बीच सुरचिके द्वारा इस प्रकार शिळके जानेपर बालक धूरकी और्जाओंसे अमुचिन्दु उत्तरे लगे; किंतु यह धैर्यपूर्वक कुछ भी न बोला । इपर राजा भी रानीके रीभाष्य-गौरप्रसे आवद्ध हो, उसका कहाँ उचित था या अनुचित, कुछ भी न कह सके । जब सभासद्यगण चिदा हुए, तब अपनी शैशवोचित चेहराओंसे नीकओं देखकर वह बालक राजस्वों प्रणाम करके अपने घरको गया ॥ ११—१३ ॥ ॥

सुनीतिने अपने जीविके खुलाने बालकको देखकर उसके मुखकी कानिसे हो जान लिया कि धूरका यज्ञके द्वारा अपमान किया गया है । माता गुनीतिको अन्तःपुरके एकान्त स्थानमें देखकर धूर अपने दुर्घटके आवेगको न रोक सका । वह माताके गलेसे लगाकर लग्जो सौंस खोंचता हुआ कृट-कृटकर रोने लगा । सुनीतिने उसे सान्त्वना देकर कोमल हाथसे उसका मुख चोला और साढ़ीके अङ्गालसे हड्डा करती हुई माता अपने लहरासे पूछने लगी—‘येरा ! अपने रोनेका कारण बताओ । राजा के रहते हुए किसने तुम्हारा अपमान किया है ?’ ॥ १४—१७ ॥ ॥

धूर बोला—मौ ! मैं तुमसे एक याता पूछता हूँ, मेरे जाने तुम टीक-टोक चक्कओ । जैसे सुरचि राजाकी घर्मपत्नी है, वैसे हो तुम भी हो ; पिर उन्हें सुरचि ही क्यों ज्याही है ? माता, तुम उन नरेशको क्यों प्रिय नहीं हो ?

कथमुत्तमतां प्राम उत्तमः सुरुचेः सुतः।
कुमारत्वेऽपि सामान्ये कथं चाहमनुत्तमः॥ २०
कथं त्वं मन्दभाग्यासि सुकृशिः सुरुचिः कथम्।
कथं नुपासनं योग्यमुत्तमस्य कथं न मे॥ २१

कथं मे सुकृतं तुच्छमुत्तमस्योत्तमं कथम्।
इति श्रुत्या बद्धस्तस्य सुनीतिनीतिपञ्चिशोः॥ २२
किञ्चिद्वृच्छस्य शनकैः शिशुशोकोपशान्तये।
स्वभावमधुरां वाणीं बहुं सम्पुच्छकमे॥ २३

सुनीतिस्काण्ड

अथ तात महायुद्धे विशुद्धेनान्तरात्मना।
निवेदयामि ते सर्वे मावमाने पतिं कृथाः॥ २४
तथा यदुर्तं तत्सर्वं तथ्यमेव न चान्यथा।
यदि मा महिषी राज्ञो राजीनामनिवलभा॥ २५
महासुकृतसम्भारैरुत्तमश्वोत्तमोदरे।
उवास तस्याः पुण्याद्या नृपसिंहासनोचितः॥ २६
आतपत्रं च चन्द्राभं शुभे चापि हि चापरे।
भद्रासनं तथोच्चं च सिंह्युराश्च भटोत्कटाः॥ २७
तुरंगमाश्च तुरगा अनाधिव्याधि जीवितम्।
निःसप्तं शुभं राज्यं प्राप्य विष्णुप्रसादतः॥ २८

सूत उकाण

इत्याकर्ण्य सुनीत्यास्तन्मातुर्वाक्यपनिन्दितम्।
सीनीतेयो थ्रुवो वाचमाददे बहुमुत्तरम्॥ २९

धूत उकाण

जनयित्रि सुनीते मे शृणु वाक्यमनाकुलम्।
उत्तानचरणादन्यत्रासीति मे पतिः शुभे॥ ३०
सिद्धार्थोऽस्याप्य यद्यस्ति कश्चिदाश्रितकामधुक्।
अदीर्घ सकलाराध्यं तमाराध्य जगत्पतिम्॥ ३१
तत्तदासादितं विद्धि पटमन्यैर्दुरासदम्।
एकमेव हि साहाय्यं मातर्मे कर्तुमहंसि॥ ३२
अनुज्ञां देहि मे विष्णुं यथा चाराध्याप्यहम्।

सुरुचिका पुत्र उत्तम क्यों लेते हैं? राजकुमार होनेमें तो हम दोनों एक समान हैं। फिर क्या कारण है कि मैं उत्तम नहीं हूँ? तुम क्यों मन्दभागिनी हो और सुरुचि क्यों उत्तम कोखवाली है? राजसिंहासन क्यों उत्तमके ही योग्य है? और योग्य क्यों नहीं है? मेरा पूण्य तुच्छ और उत्तमका पूण्य उत्तम कैसे है?॥ १८—२१॥

सुनीति अपने पुत्रके इस नीतिसुख वचनको सुनकर भीरमें थोड़ी लम्ही सौंस खींच चालकका दुःख शब्द करनेके लिये मन्दभावतः मधुर वाणीमें बोलने लगी॥ २२—२३॥

सुनीति खोली—लाल! तुम बहे बुद्धिमान् हो। तुमने जो कुछ पूछा है, वह सब शुद्ध हृदयसे मैं निवेदन करती हूँ; तुम अपमानज्ञो आत मवमें न लगओ। सुरुचिने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक हो है, अन्यथा नहीं है। यदि वह पटरानो है तो मध्मी रानियोंसे लढ़कर राजाको ज्ञानी हो ही। राजकुमार उत्तमने बहुत बहे पुष्टियोंका संघर्ष करके उस पुण्यवती रानीके उत्तम गर्भमें निवास किया था, अतः वही राजसिंहासनपर बैठनेके योग्य है। बन्दुमारोंके समान निर्मल शेत छत्र, सुन्दर युगल चैवर, ढच्छ सिंहासन, मन्दभाव गजराज, शीषगामी तुरंग, आभिर-जापियोंसे रहित चौकन, शकुरीहित मुन्दर राज्य—ये वस्तुएँ भगवान् विष्णुकी कृपासे प्राप्त होती हैं॥ २४—२८॥

सूतजी खोले—माता सुनीतिके इस उत्तम वचनको सुनकर सुनीतिकुमार धूतने उन्हें उत्तर देनेके लिये खोलना आरम्भ किया॥ २९॥

धूत खोला—जन्मदायिनी माता सुनीते! आज मेरे शान्तापूर्वक काहे हुए वचन सुनी। शुभे! आजतक मैं यही समझता था कि पिता उत्तमपादसे बहुकर और कुछ नहीं है। परंतु अन्य! यदि अपने आकृतजननोंको कामना पूर्ण करनेवला कोई और भी है तो यह जानकर आज मैं कृतार्थ हो गया। मौं! तुम ऐसा समझो कि उन सर्वाराध्य जगदीकरकी आराधना करके जो—जो स्थान दूसरोंके लिये दुर्लभ है, वह सब मैंने आज ही प्राप्त कर लिया। माता! तुम्हें मेरी एक ही सहायता करने चाहिये। केवल आज्ञा दे दो, जिससे मैं भगवान् विष्णुकी आराधना करूँ॥ ३०—३२॥

मुनीतिकथ

अनुज्ञातुं न शब्दोमि त्वापुन्नानशयाङ्गज ॥ ३३
 समाप्तवर्थदेशीयः क्रीडायोग्योऽसि पुत्रक ।
 त्वदेकतनया तात त्वदाधारिकजीविता ॥ ३४
 लब्धोऽसि कतिभिः कष्टैरिषः सम्पार्थ्य देवता ।
 यदा यदा बहिर्यासि रनुं त्रिचतुरं पदम् ।
 तदा तदा परम प्राणस्तात त्वापुषगच्छति ॥ ३५

भूत उक्त

अहा यावत् पिता माता त्वं चोत्तानपदो विभुः ।
 अद्य प्रभृति मे माता पिता विष्णुर्न संशयः ॥ ३६

मुनीतिकथ

विष्णोराराधने नाहं चारये त्वां सुपुत्रक ।
 जिह्वा मे शतधा यातु यदि त्वां यारयामि भोः ॥ ३७
 इत्यनुज्ञाभित्र प्राप्य जननीचारणाम्बुजी ।
 परिकल्प्य प्रणप्याथ तपसे च ध्रुवो ययी ॥ ३८
 तथापि धैर्यसृष्टेण मुनीत्या परिगृप्य च ।
 तत्रेन्दीयरजा पाता भूवस्योपायनीकृता ॥ ३९
 मात्रा तन्यार्गरक्षार्थं तदा तदनुगीकृताः ।
 परेरवायेप्रसरा: स्वाशीर्वादाः परिशशताः ॥ ४०
 सर्ववाक्यतु ते पुर शङ्खचक्रगदाधरः ।
 नारायणो जगद्गुणापि प्रभुः कारुण्यवारिष्ठः ॥ ४१

भूत उक्त

स्वसौधात् स विनिर्गत्य बालो बालपाकमः ।
 अनुकूलेन मरुता दर्शितात्याविशद्गुनम् ॥ ४२
 स मातुदेवतोऽभिज्ञः केवलं राजवर्त्मनि ।
 न वेद काननाध्यानं क्षणं दद्यौ नृपात्मजः ॥ ४३
 पुरोपवनमासाद्य चिनयामास सोऽर्थकः ।
 किं करोमि क्व गच्छत्यि को मे साहस्र्यदो भवेत् ॥ ४४
 एवमुर्माल्यं नयने यावत् पश्यति स ध्रुवः ।
 तावद्दर्श सप्तर्णी अतकिंतगतीन् वने ॥ ४५
 अथ दृष्टा स सप्तर्णीं सप्तसप्ततितेजसः ।
 भाग्यमूर्त्रिरिवाकृष्णोपनीतान् प्रमुपोद ह ॥ ४६

मुनीति बोली— येता ! उत्तानवादनन्दन ! मैं तुम्हें आज्ञा नहों दे सकतीं मेरे चब्बे ! इस समय तुम्हारी सात-आठ वर्षकी आवश्यक है। अभी तो तुम खेलने-कूदनेके योग्य हों। तात ! एकमात्र तुम्हीं मेरी संतान हो; मेरा जीवन एक तुम्हारे ही आधारपर टिका हुआ है। कितने ही कष्ट उठाकर, अनेक इष्ट देवो-देवताओंकी प्रार्थना करके मैंने तुम्हें पाया है। तात ! तुम जब-जब खेलनेके लिये भी होन-चार छात्र चाहर जाते हों, तब-तब मेरे प्राण तुम्हारे पांछे ही-पौछे लगे रहते हैं ॥ ३३—३५ ॥

धूत बोला — मौं ! अकलक तो तुम और यसा उत्तानवाद हो मेरे भात-पिता थे; परंतु आजसे मेरे भाता और पिता दोनों भगवान् विष्णु हो हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥ ३६ ॥

मुनीति बोली— मैं सुयोग्य पुस्त ! मैं भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे तुम्हें रोकती नहीं । यदि रोकूँ तो मेरी जिहाँके सिकड़ों ट्रकड़े हो जायें ॥ ३७ ॥

इस प्रकार आज्ञा-सी पाकर धूत भातके चरणकमलोंकी परिकल्पना और उन्हें प्राप्ताम करके तपस्याके लिये प्रसिद्धत हुआ । तुम्हींतरे पैरेपूर्वक नूड्से नील कामलकी भाला गैखुकर दुखको उपहार दिया । मार्गमें पुत्रकी रथाके लिये भालाने अपने जात-जात आस्तीर्णद, जिनका प्रभाव शब्द भी नहीं रोक सकते थे, उसके पांछे लगा दिये ॥ ३८—४० ॥

[यह बोली—] 'पुत्र ! शहु, चक्र और गदा भारत भरनेवाले दण्डसांगर जगद्गुणाते भगवान् नारायण नवांत्र तुम्हारो रहने करें' ॥ ४१ ॥

मूलतो बोले— बालोचित पराक्रम करनेवाले बालक धूतने अपने महारासे निकलकर अनुकूल बायुके द्वारा दिखायी हुई रह पकड़कर उपवनमें प्रवेश किया । भालाको हो देवल भाननेबाला और बेवल राजमार्गको ही जानेवाला वह रातकुमार बनके यार्गको नहीं जानता था, अतः एक कालाक औरें चट्ठ करके कुछ सोचने लगा ॥ ४२—४३ ॥

नगरके उपवनमें आकर बालक धूत इस प्रकार पिता करने लगा— 'अग्र कहै ? कहाँ जाऊँ ? कौन मुझे रहायता देनेवाला होगा ?' ऐसा विचार करते हुए उसने ज्ञों ही औरें छोलकर देखा, ज्ञों ही उस उपवनमें उद्दलयाशित नविनवाले सप्तर्णि उसे दिखायी दिये । उन सूर्यसून्दर लेजस्त्री सास्त्रियोंको, जो मानो भाग्यसूत्रसे हीं छिंगकर ले आये गये थे, देखकर धूत बहुत प्रसन-

तिलकाङ्कितसद्गालान् कुशोपग्नहिताङ्गुलीन्।
कृष्णाजिनोपविष्टांशु ब्रह्मसूत्रैरलंकृतान्॥ ४७

उपगम्य विनामांसः प्रबद्धकरसम्पुटः।
धूवो विज्ञापयांचक्रे प्रणम्य ललितं वचः॥ ४८

धूव उक्तव्य

अवैत मां पुनिवरा: सुनीत्युदरसम्प्रवम्।
उत्तानपादतनयं धूवं निर्विणमानमम्॥ ४९

सूत उक्तव्य

ते दृष्टोजीव्यते चालं स्वभावमभुराकृतिम्।
अनर्थ्यनयनेपथ्यं मुदुगम्पीरभाविणम्॥ ५०

उपोपवेश्य शिशुकं प्रोचुस्ते विस्मिता भृशम्।
तवाद्यापि न जानीमो वत्स निर्वेदकारणम्॥ ५१

अनवामाभिलापाणां वैराग्यं जायते नुणाम्।
सप्तद्वीपपते रात्रः कुमारस्त्वं तथा कथम्॥ ५२

किमस्याभिरहो कार्यं कस्तवासित यनोरथः।

धूव उक्तव्य

मुनयो मम यो व्यपुरुत्तमश्चोत्तमोत्तमः॥ ५३

पित्रा प्रदत्तं तस्यास्तु तद्व्रासनमुत्तमम्।
भवत्कृतं हि साहाय्यं एतदिच्छामि सुवत्ता:॥ ५४

अनन्यनुपभुक्तं यद् यदन्येभ्यः समुच्छितम्।
इन्द्रादिदुर्बापं यत् कथं लभ्येत तत्पदम्॥ ५५

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनयो चालकस्य तु।
यथार्थमेव प्रत्यूचुर्मरीच्याद्यासतदा धूवम्॥ ५६

मरीचिकलन

अनास्वादितागोविन्दपदाम्बुजरचोरसः।
मनोरथपथ्थातीतं स्फीतं नाकलयेत् फलम्॥ ५७

हुआ। उनके सुन्दर ललाटमें तिलक लगे थे। उन्होंने अंगुलियोंमें कुशकी पवित्री पहन रखी थी तथा यज्ञोपवीतोंसे विभूषित होकर वे काले मूर्खमेंपर बैठे हुए थे। उनके पास जाकर भूजने गर्दन रुका दी, दोनों हाथ जोड़ लिये और प्रणाम करके भूजर बाणीमें उन्हें अपना अभिप्राय विशेषित किया॥ ४४—४८॥

धूव बोला—मुनिवरो! आप मुझे सुनीतिके गर्भसे उत्तम राजा उत्तानपादका पुत्र धूव जानें। इस समय मेरा चित्र जगद्वाक्षी भ्रांतसे विरह है॥ ४९॥

सुतजी कहते हैं—अमृत्यु नीति ही जिसका भूषण है—ऐसे मधुर और गम्भीर भावण करनेवाले एवं स्वभावातः मनोहर आकृतिवाले उस तेजस्वी चालकको देखकर झींघियोंने आवाज विस्मित हो उसे अपने पास चिनाया और कहा—‘चल्म! अभीतक तुम्हारे वैराग्य या निर्विदका कारण हम नहीं जान सके। वैराग्य तो उन मनुष्योंको होता है, किनको ननःकामनाएँ मूर्ख नहीं हो पाती। तुम तो मातों द्वार्योंके अधीक्षर सम्मानके पुत्र हो; तुम अपूर्णमनोरथ किसे हो सकते हो? हमसे तुम्हें क्या काम है? तुम्हारी मनोलाप्ता क्या है’॥ ५०—५२॥

धूव बोला—‘मुनिगण! मेरे जो उत्तमोत्तम चन्द्र उत्तमकुमार हैं—उनके ही लिये पिताज्ञ दिया हुआ शुभ सिंहासन रहे। उत्तम चालक चालन करनेवाले मुरी छारे! मैं आपलोंगोंसे इतनी ही सहायता चाहता हूँ कि जिस स्थानका किसी दूसरे गजाने डपभोग न किया हो, जो अन्य सभी स्थानोंसे उत्कृष्ट हो और इन्द्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो, वह स्थान मुझे किस उपायसे प्राप्त हो सकता है, यह चला दें।’ उस समय उस चालककी ये बातें सुनकर मरीचि आदि झूँझियोंने उसे यथार्थ ही उत्तर दिया॥ ५३—५६॥

मरीचि बोले—जिसने गोविन्द-चरणारविन्दोंके परागके रसका उत्तम्यादन नहीं किया, वह मनोरथ-पथसे अनीत (स्थानमें भी न आ सकनेवाले) परमोज्ज्वल फलको नहीं प्राप्त कर सकता॥ ५३॥

अंतिमकथा

अनर्चिताच्युतपदः पदमासादयेत् कथम्।
इन्द्रादिदुरवाप्तं यन्मानवैः सुदुरामदम्॥ ५८

अंकित उक्तव्य

न हि दूरे पदे तस्य सर्वासां सम्पदामिह।
कमलाकानकानाऽधिकमलं यः सुशीलयेत्॥ ५९

पुलस्त्य उक्तव्य

यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसंततिः।
परमान्तकमाप्नोति स विष्णुः सर्वदो धूवः॥ ६०

पुलस्त्य उक्तव्य

यदाहुः परमं चाह्य प्रधानपुरुषात् परम्।
यन्मायथा कृतं सर्वं स विष्णुः कीर्तिर्तोऽर्थदः॥ ६१

अनुस्तुति

यो यज्ञपुरुषो विष्णुर्वेदवेष्टो जनादेनः।
अन्तरात्मास्य जगतः संतुष्टः किं न यच्छ्रुतिः॥ ६२

नविन्द्र उक्तव्य

यदभूनर्तनवर्तिन्यः सिद्धयोऽस्ती नृपात्मजः।
तमाराध्य हुणीकेशं चतुर्वर्णं न दूरतः॥ ६३

धूव उक्तव्य

सत्यमुक्तं द्विजेन्ना वो विष्णोराराधनं प्रति।
कथं स भगवानिन्यः स विष्णिक्षोपदिश्यताम्॥ ६४

प्रभूतदो भवेष्टो वै दुराराध्यतयो भवेत्।
बालोऽहं राजपुत्रोऽहं दुःखं नैव मया क्षमम्॥ ६५

मुनय उक्तुः

तिष्ठता गच्छता वापि स्वपता जाग्रता तथा।
शशानेनोपविष्टेन वेदो नारायणः सदा॥ ६६

पुत्रान् कलत्रं मित्राणि राज्यं स्वर्गार्पवर्गकम्।
वासुदेवं जपन् मत्वं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ ६७

अत्रि बोले—जिसने अच्युतके चरणोंकी अर्चना नहीं की है, वह पुरुष उस पदको, जो इन्द्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ और मनुष्योंके लिये तो अत्यन्त दुष्प्राप्य है, कैसे या सकता है? ॥ ५८ ॥

अंकिता बोले—जो भगवान् कमलाकानकके कमनीय चरणकमलोंका अनुशोलन (चिन्तन) करता है, उसके लिये विष्वदनकी शरीर सम्पदाओंका स्थान दूर (दुर्लभ) नहीं है ॥ ५९ ॥

पुलस्त्य बोले—धूव! जिनके स्मरणमात्रसे महापातकोंकी पराप्यरा अत्यन्त नाशकी प्राप्त हो जाती है, वे भगवान् विष्णु ही सब कुछ देनेवाले हैं ॥ ६० ॥

पुलह बोले—जिनें प्रधान (इकृति) और पुरुष (जीव) से विलक्षण चरमप्रहृष्ट कहते हैं, जिनकी मायासे समस्त प्रपञ्च रक्षा की जा सकती है, उन भगवान् विष्णुका यदि कीर्तन किया जाय तो वे अपने भक्तके अभीष्ट मनोरथको पूर्ण कर देते हैं ॥ ६१ ॥

ऋग्यु बोले—जो यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य है तथा जो जनादेन द्वारा समस्त जगत् के अन्तरात्मा है, वे प्रसन्न हों तो क्या नहीं है सकते? ॥ ६२ ॥

वासिष्ठ बोले—राजकुमार! जिनकी भौहंकि नर्तनमात्रमें अठों मिदिरों वर्तमान है, उन भगवान् हृषीकेशकी आशाधना करनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहते ॥ ६३ ॥

धूव बोले—द्विजवरो! भगवान् विष्णुकी आराधनाके सम्बन्धमें आपलोगोंने जो विचार प्रकट किया, वह सत्य है। अब मुझे यह बताइये कि उन भगवानकी पूजा कैसे करनी चाहिये? उसकी विभिन्न मूर्ति उपदेश कीजिये। जो यज्ञत कुछ है सकते हैं, उनकी आराधना भी कठिन हो होगी। मैं राजकुमार हूं और आत्मक हूं; मुझसे विशेष जट नहीं सहा जा सकता ॥ ६४-६५ ॥

मुनिनां बोले—स्वाहे होते-चलते, सोते-आगते, लेटते और बैठते हुए प्रतिक्षण भगवान् नाशयणका स्वरूप करना चाहिये। भगवान् बासुदेवके नामका जप करनेवाला अनुष्ठ पुज, स्तो, मित्र, राज्य, सर्वा तथा बोल—सब कुछ या लेता है—इसमें संशय नहीं है।

द्वादशाभ्यरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च।
व्यायंशतुभूजं विष्णुं जप्त्वा सिद्धिं न को गतः ॥ ६८
पितामहेन चाप्येष महामन्त्र उपासितः।
मनुना राज्यकामेन वैष्णवेन नृपात्मज ॥ ६९
त्वमप्येतेन मन्त्रेण वासुदेवपरो भव।
यथाभिलिप्तिमृद्धिं क्षिप्रं प्राप्यसि सत्तम ॥ ७०

सूत उक्ताच

इत्युक्त्वान्तर्हिताः सर्वे महात्मानो मुनीश्वराः।
वासुदेवमना भूत्वा धूयोऽपि तपसे यत्त्वा ॥ ७१
धूवः सर्वार्थदं मन्त्रं जपन् मधुवने तपः।
स चक्रे यमुनातीरे मुनिदिष्टेन चत्वर्णा ॥ ७२
अद्वान्वितेन जपता च तपःप्रभावात्
साक्षादिवाज्ञनयनं दद्धो हृदीशम्।
दिव्याकृतिं सप्तदि तेन ततः स एव

हर्षात् पुनः स प्रज्ञाप्य नृपात्मभूतः ॥ ७३

क्षुतर्वर्धनवात्महोष्यातादि-
शारीरदुखकुलपत्य न किञ्चनाभूत ।
मन्त्रे मनस्यनुपमेयसुखाम्बुद्धाशी
राजः शिशुनं च विवेद शरीरवातीम् ॥ ७४
विष्णाक्ष तस्य किल शङ्कुतदेवसुष्ठा
बालस्य तीव्रतपसो विफला वभूतु ।
शीतातपादिरिव विष्णुमयं मुनि हि
प्रादेशिका न खलु धर्षयितुं श्रमन्ते ॥ ७५

अथ भक्तजनप्रियः प्रभुः
शिशुना व्यानवलेन तोषितः।
वरदः पतगेन्द्रवाहनो
हरिरागात् स्वजनं तपीश्चितुम् ॥ ७६
मणिपिण्डकमौलिगणितो
विलसद्रवमहायनच्छविः ।
स व्रभावुदयाद्रिपत्सरा-
द्वृतवालाकं इद्यासिताचलः ॥ ७७

वासुदेवस्वरूप द्वादशाभ्यर मन्त्र (३० नमो भगवते वासुदेवाय)-के द्वारा चार भुजाभारी भगवान् विष्णुका ध्यान और जप वज्रके किसने सिद्धि नहीं प्राप्त कर सी ? राजकुमार ! पितामह (ब्रह्माजी)-ने भी इस महामन्त्रकी उपासना की थी । विष्णुभक्त मनुने भी राज्यकी कामनासे इस मन्त्रद्वारा भगवान्को आराधना की थी । सत्पुरुषशिरोमणे ! तुम भी इस मन्त्रद्वारा भगवान् वासुदेवको आराधनामें लग जाओ । इससे बहुत शीघ्र ही अपनी मनोवाज्ञित ममृद्धि प्राप्त कर लोगे ॥ ६६—७० ॥

सूतजी कहते हैं—यों कहकर वे सभी महात्मा मनोभर वहाँ अन्तर्हित हो गये और धूव भी भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर तपस्याके लिये चला गया । द्वादशाभ्यर मन्त्र सर्वार्थं मनोरथोंको देनेवाला है । धूव मधुवनमें यमुनाके हठपर मुनियोंकी जहाजी हुई पद्मलिसे उस मन्त्रका जप करने लगा । जद्गापूर्वक उस मन्त्रका जप करते हुए राजकुमार धूवके तपके प्रभावसे तकाल ही हठमें भगवान् कमलनयनको प्रकट प्रत्यक्षबल् देखा । उनकी अनुकूलि बड़ी दिव्य थी । भगवान्के दर्शनसे उसका हृषि बढ़ गया । अब तो वह राजपुत्र पुनः बड़े उत्साहसे उस मन्त्रका जप करने लगा । उस समय धूख, प्यास, चांस, औरी और अधिक गर्भी आंदे दैहिक दुःखोंमें सोई भी उसे नहीं ज्यापा । उस राजकुमारका मन अनुपम अनन्द महासागरमें नोंता लगा रहा था । अतः उस समय उसे अपने शरीरको भी सुध नहीं रह गयी थी । कहते हैं, उसकी तपस्यासे शङ्कुत हुए देवताओंने कितने ही विष्ण रुद्रे किये; चंद्रु उस लोक तपस्यी बालकके लिये ये सभी निष्कर्ष हो मिल दृष्ट हैं । शीत और धूप आदिकी ही तरह ये एकदेहीय विष्ण भी उस विष्णुस्वरूप मुनिको व्यथित नहीं कर पाते थे ॥ ७१—७५ ॥

कुछ समयके बाद भक्तजनकि प्रियतम खरदाता भगवान् विष्णु बालक धूवके ध्यान बलसे संतुष्ट होकर पश्चिमांग गहडपर स्थाप्त हो, अपने उस भक्तको देखनेके लिये आये । मणिसमृद्धाय निर्मित मुकुटसे मणिडत और शोभाशाली कीसनुभवसे समसंकृत, महामेघके समान श्यामकानिवाले वे भगवान् श्रीहरि ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो उदयाचलके झाति डाह रखनेके कारण अपने शूद्रपर बालरातिको धारण किये स्वाक्षरता कर्माण्डित प्रकाशित हो रहा हो ।

स राजमनुं तपसि स्थितं ते
धृवं धुवस्तिनाधदुग्नित्युवाच।
दन्तांशुसंज्ञेमितप्रवाहः।

प्रक्षालयन् रेणुमिवास्य गावे॥ ७८

वरं वरं यत्तम् वृणाथ्य यस्ते
मनोगतस्त्वत्पसास्मि तुष्टः।

व्यागेन ते चेन्द्रियनिश्चिह्नेण
मनोनिरोधेन च दुष्करेण॥ ७९

भृणवन् यच्चस्तत्सकलं गम्भीर-
मुमीलिताक्षः सहसा ददर्श।

स्वे चिन्त्यमानं त्विदमेव मूर्ते
पुरामिथां यहा चतुर्भुजं सः॥ ८०

दृष्टा क्षणं राजमनुः सुपूर्व्ये
पुरस्त्रयीशं किमिह द्वयीयि।

किं वा करोमीति सप्तम्भवः स तु
न चाक्षवीत् किंचन नो चकार॥ ८१

हपांशुपूर्णः पुलकाङ्गिताङ्ग-
दिव्यलोकनाथेति यदत्रयोर्थ्यः।

दण्डप्रणामाय पपात भूमी
प्रवेपमानभु हरे: पुरः सः हि॥ ८२

दण्डवत् प्रणिपत्याथ परितः परिलुप्त्य च।
करोद हर्येण चिरं दृष्टा ते जगतो गुरुम्॥ ८३

नारदेन सनदेन सनकेन च संक्षुतम्।
अन्यैः सनत्कुमाराण्योगिभिर्योगिनां वरम्॥ ८४

कारुण्यबाप्यनीरादै पुण्डरीकविलोचनम्।
धुवमुत्थापयांचक्षे चक्री धृत्वा करेण तम्॥ ८५

हरिस्तु परिपर्यर्णा तद्वां धृतिपूर्सम्।
कराभ्यां कोपलाभ्यां स परिव्यन्याह ते हरिः॥ ८६

वरं वरय भो व्याल यस्ते यनसि यत्तंते।
तददामि न सदेहो नादेवं विद्युते तत्य॥ ८७

निष्ठान और स्नेहपूर्वे हाइवाले वे भगवान् अपने दोनोंकी किरणकल जलके अमित प्रवाहद्वाय तपस्यामें लगे हुए राजकुमार धृवके द्वारकाको धूलिको भोते हुए-से उत्तरसे इस प्रकार चोले॥ ७६—७८॥

‘वस्य! मैं तुम्हारी तपस्या, ध्यान, इन्द्रिय-निश्चय और दुस्ताथ्य मनःसंगमसे तुमपर चहूत प्रसक्त हैं। आज तुम्हारे मनमें जो अधीर हो, वह उत्तम वर मुझसे माँग लो॥ ७९॥

भगवान् को वह राम्पूर्ण गम्भीर जाणी सुनते ही धृवने सहसा अंखें खोल दीं। उस समय उन्हीं चतुर्भुज चक्रको, जिनका वह अपने हृष्टपर्वे चिन्तन कर रहा था, उसने सामने पूरीमान् होकर खड़ा देखा॥ ८०॥

उन परम त्रूपनीय त्रिपुत्रपतिको सहसा सामने देख वह राजकुमार भक्तपक्ष गया और ‘मैं यही इनसे ज्ञा कहूँ? क्या कहै? इत्यादि याते सोचता हुआ कल्पत न तो कुछ बोला और न कुछ कर ही सका। उसके नेत्रोंमें आनन्दके असुख भरे थे, जारीरके रोई खड़े हो गये थे। वह भगवान्के सामने उन्दास्यारे ‘हे त्रिपुत्रननाथ!’ यों कहता हुआ दण्डपत्-प्रणाम करनेके सिवे दुखोंपर यह गया। उस समय उसकी भींहें छाय रही थीं। दण्डको भींहें इत्याम उसके जगदगृह भगवान्की ओर एकटक हृष्ट लगाये यह आनन्दातिरिक्तसे यारों और होट-पोट होकर दैरतक रोका रहा। नारद, सनन्दन, सनक और लक्ष्मीमाम आदि तथा अन्य योगी जिन योगीकरण का उत्तम-कर्तीतम एवं सत्त्वन किया फरते हैं और जिनके नेत्र करणाकां औंसुभीसे भीरे हुए थे, उन्हीं कलमभृतोदान भगवान्को आज धृवने प्रत्यक्ष देखा। उस समय चक्रधर भगवान् अपने हाथसे पकड़कर धृवको उठा लिया। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने दोनों कोमल हाथोंसे उसके धूलिपूर्मित शरीरको सब ओरसे पांछा और उसे हृष्टपर्वे लगाकर कहा॥ ८१—८६॥

‘वस्य! तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा है, उसके अनुसार यह मौग लो। मैं निस्संदेह वह सब तुम्हें दे दूँगा। तुम्हारे लिये कोइ भी बलु अदेय नहीं है॥ ८७॥

ततो वरं राजशिशुवयाचे
विष्णुं वरं ते स्तवशक्तिमेव।
तं मूर्तीविज्ञाननिभेन देवः
पस्यग्न शङ्केन मुखेऽमलेन ॥ ८८
अथ सुरभुनिदत्तज्ञानचन्द्रेण सप्तग्.
विमलितमिव चितं पूर्णमेव ध्रुवस्य।
त्रिपुत्रनगुरुशङ्कस्यर्जज्ञानभाना-
नुदयति नितरातः साधु तुष्टाव हृष्टः ॥ ८९

ध्रुव तत्त्व

अग्निलमुचिजननिवहनमितचरणः। खारकदन-
करः। चपलयरितः। देवाराधितपादजलः।
सजलजलधरप्रयामः शमितस्मीभपतिशास्त्रधामा।
अभिरामरामातिविनयकृतनवरभरभापहतेन्द्रिय-
सुररमणीविहितान्तःकरणानन्दः। अनादिनिधनः।
अधननिजद्विजमित्रोद्धरणधीरः। अवधीरितसुरनाथ-
नाथितविपक्षपक्षः। ब्रह्मराजविलप्रयोगापहन-
स्यमनकापमाजितनिजापवाददुरितहृतवैलोक्यभारः।
द्वारकावासनिरतः। स्वरितप्रधुरवेणुवादनभ्रवणामृत-
प्रकटितार्तीन्द्रियज्ञानः। यमुनातटचरः। द्विजधेनुभृत-
गणीस्त्यक्तनिजनिजाहारः। संसारदुस्तरपारावार-
समुन्नारणाद्विषयोतः। स्वप्रतापानलहृतकालयवनः।
वनमालाधरवरमणिकुण्डलालंकृतश्रवणः। नाना-
प्रसिद्धाभिधानः। निगमविवृथमुनिजनवचन-
मनोऽग्नोचरः। कनकपिशङ्ककोशेयवासोभगवान्
भगुपदकोस्तुभविभूषितोरःस्थलः। स्वदयिता-

तव यजकुमारने भगवान् विष्णुसे यही वर माँगा कि 'मुझे आपको स्तुति करनेकी शक्ति प्राप्त हो।' यह सुनकर भगवान्ने मूर्तिभूमि विज्ञानके समान निर्मल शङ्केसे ध्रुवके मुखको छुआ दिया। मरीचि आदि देवविद्योंके दिवे हुए ज्ञानस्त्री चन्द्रमाकी विरणोंसे लालित होकर ध्रुवका चित्त पूर्णतया निर्मल हो गया था। किर त्रिपुत्रनगुरु भगवान्नके शङ्क-स्पर्शसे उसके अन्तःकरणमें ज्ञानलक्षी मूर्त्यका उदय हो जानेपर उसमें पूर्ण प्रकरण हो गया। इससे वह आनन्दित होकर भगवान्नको सुन्दर स्तुति करने लगा ॥ ८८-८९ ॥

ध्रुव योगा — समान सुविगत जिनके चरणकमलोंको बदना करते हैं, जो सुर राजस अथवा गर्भधारा धेनुकामुरका संहार करनेवाले हैं, जिनकी आललीलाएं चरणतासे दूर्ण हैं, देवगण जिनके चरणोदक (गङ्गाजी)-को आराधना करते हैं, सजात मेघके समान जिनका शयम लक्ष है, सीध विमानके अधिपति शाल्वके धाम (तेज)-को जिन्होंने लदाके लिये शान्त वर दिया है, जिन्होंने सुन्दर गोपविनाशीके अस्त्रना विनगवश नृत्य प्रेमरमण रामलीलाको प्रकट किया और उससे मोहित होनेवाली देवतानिताओंके अन्तःकरणमें भी अनन्दका संचार किया, जिनका आदि और अन्त नहीं है, जिन्होंने अपने निर्भव प्रिय मुदामा नामक ब्राह्मणका भीरतपूर्वक दृश्य-उम्मे उद्धार किया, देवताज इन्द्रकी प्रार्थनासे जिन्होंने उनके सञ्चुपक्षको पाराजित किया, ऋभुराज जायवानायी गुहामें उत्तेज करके खोदी हुई स्वरमनक भणिको लाकर जिन्होंने अपने ऊपर लगे हुए कलाकूरुप दुरितको दूर कराके त्रिपुत्रका भार हस्तका किया है, जो द्वारकापुरीमें विष्य निवास करते हैं, जो अपनी मधुर मूरली वज्राकर शुल्कमधुर असीन्द्रिय-ज्ञानको प्रकट करते तथा यमुनातटपर विचारते हैं, जिनके वंशोनादको मुननेके लिये पक्षी, गौ और भृगुगण अपना-अपना आहार त्याग देते हैं, जिनके चरणकमल दुसर रस्मार-सागरसे पाप करनेके लिये जहाजरूप हैं, जिन्होंने अपनी प्रतापाग्रिमें कालयवनको होम दिया है, जो वममालाधारी हैं, जिनके श्रवण सुन्दर भणिमय कुण्डलोंसे अलंकृत हैं, जिनके अनेक प्रसिद्ध नाम हैं, जो वेष्याणी तथा देवता और मुनियोंके भी मन ज्ञानीके अगोचर हैं, जो भगवान् सूर्यणोंके समान दोत रेखामें उसक ज्ञान करते हैं, जिनका वक्त वस्त्रस्थल धृगुजीके चरण-विहृ तथा कोस्तुभमणिसे अलंकृत है,

कृ गनिजजननीगोकुलपालकचतुर्भुजशङ्खचक -
गदापद्मतुलसीनवदलदामहारकेयूरकटकमुकुटा-
लंकृतः । सुनन्दनादिभागवतोपासितविश्वरूपः ।
पुराणपुरुषोत्तमः । उनपश्लोकः । लोकावासो
वासुदेवः । श्रीदेवकीजठरसम्भूतः । भूतपतिविरचित्तु-
नतचरणारविन्दः । वृन्दावनकृतकेलिगोपिकाजन-
श्रामापहः । सततं सम्पादितसुजनकामः । कुन्दनिभ-
शङ्खधरमिन्दुनिभवकवं सुन्दरसुदर्शनपुदारतहासं
विद्वज्जनवन्दितपिंदं ते रूपपतिहृष्टमखिलेश्वरं
नतोऽस्मि ।

स्थानाभिकामी तपसि स्थितोऽहं
त्वा दृष्टवान् साधुभूनीन्द्रगुहाम् ।
काचं विचिन्बन्निव दिव्यरत्नं
स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वराज्ञ याचे ॥ १० ॥

अपूर्वदृष्टे तव पादपद्मे
दृष्टा दुर्दं नाथ नहि त्यजापि ।
कामान् न याचे म हि कोऽपि मूढो
यः कल्पवृक्षात् तुष्मान्नमिच्छोत् ॥ ११ ॥

त्वा मोक्षबीजं शरणं प्रपञ्चः
शक्वनोभि भोक्तुं न वहिः सुखानि ।
रत्नाकरे देव सति स्वनाथे
विभूषणं काचमर्यं न युक्तम् ॥ १२ ॥

अतो न याचे वरमीश युष्मन्-
पादाक्षभक्तिं सततं ममास्तु ।
इमं वरं देववर प्रयच्छ
पुनः पुनस्त्वामिदपेव याचे ॥ १३ ॥

श्रीसूत उवाच
इत्यात्मसंदर्शनलब्धिदिव्य-
ज्ञानं गदनं भगवान्मुगाद ॥ १४ ॥

जो अपने प्रिय भक्त अङ्गूर, माला देवकी और गोकुलके
पालक हैं तथा जो अपनी चारों भुजाओंमें शङ्ख, चक्र,
गदा, पद्म धारण किये नूतन तुलसीदलकी माला, मुकुटाहार,
केयूर, कड़ा और मुकुट आदिसे विभूषित हैं, सुनन्दन
आदि भगवद्ग्रन्थ जिन विश्वरूप हरिकी उपासना करते
हैं, जो पुराण-पुरुषोत्तम हैं, पुण्यवशाले हैं तथा समस्त
लोकोंके आत्मास-स्थान वासुदेव हैं, जो देवकीके उदरसे
प्रकट हुए हैं, भूमाय लिख तथा ब्रह्मलोने जिनके चरणाविन्दोंपर
मस्तक कुदाया है, जो वृन्दावनमें को गयो लीलासे थको
हुए गोपियोंके श्रमको दूर करनेवाले हैं, मज्जनोंके मनोरथोंको
जो सर्वदा पूर्ण किया करते हैं, ऐसी महिमावाले हैं सर्वेश्वर !

जो कुन्टके समान उल्लत झङ्कु धारण करते हैं, जिसका
चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है, सुन्दर नेत्र हैं तथा अत्यन्त
मनोहर मुस्कान है, ऐसे अत्यन्त हृदयहारी आपके इन
स्पष्टते, जो ज्ञानियोंहांग बन्दित है, मैं प्रणाम करता हूँ ।

मैं उत्तम स्थान प्राप्त करनेकी इच्छासे तपस्यार्थं प्रवृत्त
हुआ और यहें यहें मुनोभरोंके लिये भी जिनका दर्शन
पक्षा असम्भव है, उन्हों आप परमेश्वरका दर्शन पा गया—
टीक उसी तरह, जैसे कौचिकी खोज करनेवाला कोई
मनुष्य भाग्यवश लिया रख हस्तगत कर ले । स्वामिन् । मैं
कृतार्थ ही यथा, अब मैं कोई वर नहीं माँगता । हे नाथ !
जिनका दर्शन अपूर्व है—पहले कभी उपलब्ध नहीं हुआ
है, उन आपके चरणकमलोंका दर्शन पाकर अब मैं इन्हें
छोड़ नहीं सकता । मैं अब भोगीको याचना नहीं करूँगा;
ऐमा कोई मूर्ख ही हाँगा,जो कल्पवृक्षसे केवल भूसी पाना
चाहेगा ? देव ! आज मैं मोक्षके कारणभूत आप परमेश्वरकी
हारणमें आ पड़ा हूँ, अब लाहू विषय-सुखोंको मैं नहीं
भोग सकता । जब रत्नोंकी खान समुद्र अपना भालिक हो
जाय, तब कौचिका भूपाणा परहनता कभी उचित नहीं हो
सकता । अतः ईश ! अब मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता;
आपके चरण-कमलोंमें मेरी सदा भक्ति बनी रहे,
देववर ! मुझे यही वर दीजिये । मैं चारंबार आपसे यही
प्रार्थना करता हूँ ॥ १०—१३ ॥

श्रीसूतबीज कहते हैं—इस प्रकार अपने दर्शनमात्रसे
दिव्य ज्ञान प्राप्त करके स्तुति करते हुए ध्रुवको देखकर
भगवान् ने उससे कहा ॥ १४ ॥

श्रीभगवान् बोले—

आराध्य विष्णुं किमनेन लब्धं
मा भूजने अपीत्यमसाधुवादः।

स्थानं परं प्राप्नुहि यन्मतं ते
कालेन मां प्राप्त्यसि शुद्धभावः॥ १५

आधारभूतः सकलग्रहाणां
कल्पत्रुपः सर्वजनैश्च वन्दः।

मम प्रसादान्तरं सा च माता
ममान्तिके या च सुनीतिरायां॥ १६

वर्णना उक्तं

ते साधयित्वेति वर्तमुकुन्दः
स्वभालयं दुश्यत्वपुर्जगाम।

त्यक्त्वा शनैर्दिव्यवपुः स्वभक्तं
मुः परावृत्य समीक्षमाणः॥ १७

तावच्च ममः सुरसिद्धसंप्रः
श्रीविष्णुतद्वक्तसमागम्य तम्।

दृष्ट्वा वर्षन् सुरपुर्षवृष्टि
तुष्टव इषांद पुवमव्ययं च॥ १८

श्रियाभिमत्या च सुनीतिसुन्-
विभाति देवैषपि वन्दमाणः।

योऽयं नृणां कीर्तनदर्शनाभ्या-
मायुर्यशो वर्धयति श्रियं च॥ १९

इत्थ भुवः प्राप्त यदं दुरायं
हरे: प्रसादान्त्रं च चित्रमेतत्।

तस्मिन् प्रसन्ने द्विजराजपते
न दुर्लभं भक्तजनेषु किंचित्॥ २००

सूर्यमण्डलमानान् द्विगुणं सोममण्डलम्।

पूर्णं शतसहस्रे द्वे तस्मात्रक्षत्रमण्डलम्॥ २०१

द्वे लक्षेऽपि बुधस्यापि स्थानं नक्षत्रमण्डलात्।

तावत्प्रामाणभागे तु बुधस्याप्युशाना स्थितः॥ २०२

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तावन्माने व्यवस्थितः।

लक्ष्मद्वयं तु भीमस्य स्थितो देवपुरोहितः॥ २०३

सौरिवृहस्यतेषोऽप्य द्विलक्षे तु व्यवस्थितः।

तस्माच्छुनैश्चरादृष्ट्वं लक्षे सप्तर्षिमण्डलम्॥ २०४

सप्तर्षिमण्डलादृष्ट्वंयेकं लक्षं भुवः स्थितः।

मेढीभूतः सप्तस्तस्य ज्योतिश्चक्षुस्य सत्तमः॥ २०५

‘भुवने विष्णुकी आराधना करके क्या या लिये?’ इस उक्तका अपवाह सोगोंमें न पैसा जाय। इसके लिये तुम अपने अभीष्ट सर्वोत्तम स्थानको ग्रहण करो, पुनः समय अनेपर शुद्धभाव हो तुम मुझे प्राप्त कर सकोगे। मेरे प्रसादसे समस्त ग्रहोंके आशारभूत, कल्पकृत और सब लोगोंके वन्दनोंये होकर तुम और तुम्हारी माता आयी सुनोति मेरे निकट निवास करोगे॥ १५—१६॥

श्रीसूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रकट हो, उपर्युक्त वरदानोंसे भूषका मनोरथ पूर्ण करके, भगवान् मुकुन्द श्रीरसे अपना यह दिव्य रूप लिपा, भावावार शूषकर उस भक्तकी ओर देखते हुए अपने वैकुण्ठभागको छहे गये। इसी शीर्षमें देवताओंका समुदाय भगवान् विष्णु और उनके भक्तके उस समागमको देख इर्षके यो तत्त्वान् दिव्य पूर्ण वरदाने और उस अविनाशी पूरका सलवन भी करते लगा। सुनीतिकुमार भूष आज भी और समान—दीनोंसे सम्पन्न होकर देवताओंका भी वन्दनोंये हो, जोधा पा रहा है। यह अपने दर्शन तथा गुणकीर्तनसे मनुष्योंको आयु, यस तथा रक्षणीकी भी वृद्धि करता रहेगा॥ १७—१९॥

इस प्रकार भुव भगवान् विष्णुके प्रसादसे दुर्लभ पद का गया—यह कोई आक्षयकी यात नहीं है। उन गरुड़वाहन भगवान्के प्रसाद ही जानेपर भक्तोंके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। सूर्यमण्डलका जितना मान है, उससे दुना चन्द्रमण्डलका मान है। चन्द्रमण्डलसे पूरे दो लाख योजन दूर ऊपर नक्षत्रमण्डल है, नक्षत्रमण्डलसे भी दो लाख योजन कँवे चुपका स्थान है और चुपके भी रुद्धानमे उतनी ही दूरीपर नुकसी स्थिति है। नुकसे भी दो लाख योजन दूर महाल है और महालसे दो लाख योजनपर देवपुरोहित वृहस्पतित निवास है। वृहस्पतिसे भी दो लाख योजन उत्तर शनैरक्षरका स्थान है। उन हनैरक्षरमे दो लाख योजन उत्तर सप्तरिष्योंका महाल है। सप्तरिष्य-मण्डलसे एक लाख योजन ऊपर भुव मूल स्थित है। साधुशिरोमणे। यह समस्त ज्योतिर्मण्डलका निन्द है॥ २००—२०५॥

स्वभावत् तपति किमेन्द्र अथशोष्य च गिर्भिः ।
 कालसंख्यां त्रिलोकस्य स करोति युगे युगे ॥ १०६
 जनस्तपस्तथा सत्यमेतांश्चोकान् द्विजोत्तम ।
 ब्रह्मणा मुनिशार्दूल विष्णुभक्तिविवर्धितः ॥ १०७
 ऊर्ध्वगतेद्विजश्चेष्टु रश्मभिस्तपते रविः ।
 अधोगतेश्च भूलोकं ह्योतते दीर्घदीर्घितः ॥ १०८
 सर्वपापहरः सूर्यः कतां त्रिभुवनस्य च ।
 छत्रवत् प्रतिपश्येत मण्डलामण्डलं परम् ॥ १०९
 आदित्यमण्डलाधस्ताद् भूवलोकं प्रतिष्ठितम् ।
 वैसोक्यस्योश्चरत्वं च विष्णुदत्तं शतकातोः ॥ ११०
 लोकपालैः स महितो स्तोकान् रक्षति धर्मतः ।
 वसेत् स्वर्णं महाभाग देवेन्द्रः स तु कीर्तिमान् ॥ १११
 ततोऽथस्तान्मुने वेदं पातालं विद्धु सप्तभाग् ।
 न तत्र तपते सूर्यो न रात्रिं निशाकरः ॥ ११२
 दिव्यस्वरूपमास्थाय तपति सततं जनाः ।
 पातालस्था द्विजश्चेष्टु दीर्घमात्राः स्वतेजसा ॥ ११३
 स्वलोकान् महलोकः कोटिमात्रे व्याप्तिस्थितः ।
 ततो योजनयात्रेण द्विगुणो मण्डलेन तु ॥ ११४
 जनलोकः स्थितो विष्णु पञ्चमो मुनिसेवितः ।
 तत्रोपरि तपोलोकश्चनुभिः कोटिभिः स्थितः ॥ ११५
 सत्यलोकोऽष्टकोटीभिस्तपोलोकोपरिस्थितः ।
 सर्वे छाप्राकृतिज्ञेया भूवनोपरिसंस्थिताः ॥ ११६
 ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोको द्विगुणश्च व्यवस्थितः ।
 वाराहे तस्य माहात्म्यं कथितं लोकचिनातः ॥ ११७
 ततः परं द्विजश्चेष्टु स्थितः परमपूरुषः ।
 ब्रह्माण्डात् परमः साक्षात्प्रिलोपः पुरुषः स्थितः ॥ ११८
 पशुपाशीर्विमुच्येत् तपोऽनान्मयन्वितः ।
 इति ते संस्थितिः प्रोक्ता भूगोलस्य मयानप ।
 यस्तु सम्यगिमां वेत्ति स याति परमां गतिम् ॥ ११९

लोकस्य संस्थानकरोऽप्रमेयो
 विष्णुनृसिंहो नरटेवपूजितः ।
 युगे युगे विष्णुरनादिमूर्तिपा-
 नास्थाय विश्वं परिपाति दुष्टहा ॥ १२०

विप्रबरः स्वयंदेव स्वभावतः अपनी किरणोद्दारा नीचे
 तथा उपराके लोकोंमें ताप पहुँचाते हैं । वे ही प्रत्येक युगमें
 त्रिभुवनको क्षत्संख्या निरिचत करते हैं । द्विजोत्तम ।
 मुनिशेष्ट । ब्रह्मादीके द्वारा विष्णुभक्तिसे अभ्युदयको प्राप्त
 होकर मूर्त्त अपनी ऊर्ध्वगति किरणोंमें उपराके जन, तप
 तथा सत्य लोकोंमें गमी पहुँचाते हैं और अधोगत किरणोंसे
 भूलोकको प्रकाशित करते हैं ॥ १०६—१०८ ॥

सप्तम वाङ्मेवे हरनेष्वाते सूर्येण त्रिभुवनको सूर्य
 करते हैं । वे छत्रके भौति स्थित हो एक मण्डलसे दूसरे
 मण्डलको दर्शन देते और प्रकाशित करते हैं । सूर्यमण्डलके
 नीचे भूलोक जातिसु इनको दे रखा है । वे सप्तम
 लोकपालोंके साथ धर्मपूर्वक लोकोंकी रक्षा करते हैं । महाभाग ।
 वे चतुर्वर्षी देवेन्द्र स्वपालोकमें निवास करते हैं । मुने । इन
 तत्त्व लोकोंमें जीवे वह प्रभुपूज्य प्राकाश लोक स्थित है, ऐसा
 अहं जाने । वहाँ व सूर्यक ताप है, व चन्द्रघातका प्रकाश,
 [न दिन है] न रह । द्विजसेष्ट । पातालाध्यात्मी जन दिव्यरूप
 भक्त्या रक्षक सदा अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए तपते हैं ।
 स्वर्णलोकात्मे करोड़ वोकन उपर भूलोक स्थित है । हे विष्णु !
 उससे दूर दो करोड़ योजनपर मुनिसेवित जनलोक, जो
 कोरकी लोक है, स्थित है । उससे चार करोड़ योजन ऊपर
 तपोलोकको स्थित है । लोकोंकसे ऊपर आठ करोड़
 योजनपर मानसोक (चातुर्वर्षी) स्थित है । ये सभी भूमि
 एक दृश्येभे उपर उत्तरी भौति स्थित है । ब्रह्मलोकसे
 मोलह करोड़ योजनपर विष्णुलोकको स्थिति है ।
 लोकस्थितिकान्ते यात्राहयुत्तममें उसके माहात्म्यका वर्णन
 किया है । द्विजसेष्ट । इसके अग्रे परम प्रकाशकी स्थिति है,
 जो ऋषाणामें विलक्षण मात्रात् परमात्मा है । इस प्रकाश
 जननेजाता भवन्त्य तप और ज्ञानसे युक्त होकर पशुपाश
 (अविद्या चक्षन) -से मुक्त हो जाता है ॥ १०९—११८ ॥

अनन्त ! इस प्रकाश मैंने तुम्हें भूगोलकी स्थिति बतायी ।
 जो पुरुष सम्पूर्ण प्रकाशसे इसका ज्ञान रखता है, वह परम
 वातिको प्राप्त होता है । मनुष्यों और देवताओंसे पूजित
 नृसिंहस्वरूप अङ्गमेय भगवान् विष्णु लोककी रक्षा करनेवाले
 हैं । वे अनन्दि मूर्तिमान् परमेश्वर प्रत्येक युगमें शारीर भारणकर
 तुष्टोक तम करके विष्णुका पालन करते हैं ॥ ११९—१२० ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

सहस्रानीक-चरित्र; श्रीनृसिंह-पूजनका माहात्म्य

भद्राज उकाल

सहस्रानीकस्य हेरेवतारांशु शार्ङ्गिणः।
माप्नते श्रोतुमिच्छापि तम्भे वद महामते॥ १

सुर उकाल

हन ते कथयिष्यामि चरितं तस्य धीमतः।
सहस्रानीकस्य हेरेवतारांशु मे शृणु॥ २
सहस्रानीकोऽभिधिको निजरात्म्ये द्विजोन्मते।
पालयामास धर्मेण राज्यं स तु नुपात्मजः॥ ३
तस्य पालयतो राज्यं राजपुत्रस्य धीमतः।
भक्तिर्व्यभूव देवेशो नरसिंहे सुरोनमे॥ ४
ते द्रष्टुमागतः साक्षाद्विष्णुभक्तं भृगुः पुरा।
अर्थपाद्यासनै राजा तम्भ्यच्याद्विवीदिदम्॥ ५
पवितोऽहं सुनिश्चेष्ठ साम्प्रते तत्व दर्शनात्।
त्वाहर्णनमपुण्यानां कलावम्भिन् सुदुर्लभम्॥ ६
नरसिंहं प्रतिष्ठाप्य देवदेवं सनातनम्।
आराधयितुमिच्छापि विद्यानं तत्र मे वद॥ ७
अवतारानशेषांशु देवदेवस्य चक्रिणः।
श्रोतुमिच्छापि सकलांसान् पुण्यानपि मे वद॥ ८

भृगुलाल

शृणु भृपालपुत्र त्वं न हि कश्चित् कलौ युगे।
हरी भक्ति करोत्पत्र नृसिंहे चानिभक्तिमान्॥ ९
स्वभावाद्यस्य भक्तिः स्याप्ररसिंहे सुरोनमे।
तस्यारथः प्रणश्यन्ति कार्यसिद्धिश्च जायते॥ १०
त्वमतीव हेरभक्तः पाण्डुवंशेऽपि सत्तमः।
तेन ते निखिलं वक्ष्ये शृणुर्व्यक्ताग्रमानसः॥ ११
यः कुर्याच्छोभनं वेशम नरसिंहस्य भक्तिमान्।
स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ १२
प्रतिमां लक्षणोपेतां नरसिंहस्य कारयेत्।
स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ १३

भद्राजजी बोले—सूलजो! अब मैं सहस्रानीकका चरित्र और भगवान् विष्णुके अवतारोंकी कथा सुनना चाहता हूँ, महामते! कृपा करके वह मुझसे कहिये॥ १॥

मूलजीने कहा—ब्रह्मन्! बहुत अच्छा, अब मैं चुदिमान् सहस्रानीकके चरित्रका और भगवान् विष्णुको अवतारोंका वर्णन करेंगा, सुनिये॥ २॥

राजकुमार सहस्रानीकको अब उसम विष्णुओंने उसके राज्यपर अधिकार कर दिया, तब वे धर्मपूर्वक राज्यका पालन करने लगे। राज्यके पालनमें लगे हुए चुदिमान् राजकुमारको देवेश, देवदेव भगवान् नृसिंहमें भक्ति हो गयी। पूर्वकालमें एक यार उन विष्णुभक्त नरेशका दर्शन करनेके लिये स्वयं भृगुजी आये। राजाने अर्थ, पादा और आमनादिके द्वाया भृगुजीका सम्मान करके उनसे यह जाहा—‘मूलिकेह।’ इस समय मैं आपके दर्शनमें परिव्रंत हो गया। जिन्होंने पूण्य नहीं किया है, ऐसे मनुष्योंके लिये इस कलियुगमें आपका दर्शन परम दुर्लभ है। मैं सबातन देवदेव नरसिंहको स्थापना करके उनकी आराधना करना चाहता हूँ, आप कृपया मुझे इसका लिधान द्यायें। तथा मैं देवदेव श्रीहरिके सम्पूर्ण अवतारोंको भी सुनना चाहता हूँ; अतः आप उन सभी पुण्यावतारोंकी कथा मुझसे कहिये॥ ३—८॥

भृगुजी बोले—राजकुमार! सुनो; इस कलियुगमें कोई भी भगवान् नृसिंहके प्रति अन्यतः भक्तिभाव रुक्षकर उनकी आराधना नहीं कर रहा है। देवदेव भगवान् नृसिंहमें जिसकी स्वभावतः भक्ति ही जानी है, उसके सारे जन्म नह हो जाते हैं और उसे प्रत्येक कार्यमें सिद्धि प्राप्त होती है। इस पाण्डुवंशमें तुम ही श्रेष्ठ पुरुष और भगवान् के अवतार भक्त हो; अतः तुमसे मैं तुम्हारी पूछी हुई सब चतों बताऊँगा; एकाग्रचित होकर सुनो॥ ९—११॥

जो भक्तिपूर्वक नृसिंहदेवका सुन्दर मन्दिर निर्माण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें स्थान पाता है। जो भगवान् नृसिंहकी सुन्दर लक्षणोंसे युक्त प्रतिमा बनवाता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पाकर विष्णुलोकको जाता है।

प्रतिष्ठां नरसिंहस्य यः करोति यथाविधि।
निष्कापो नरशार्दूल देहवाधात् प्रमुच्यते ॥ १४
नरसिंहं प्रतिष्ठाप्य यः पूजापाच्ये भ्रः।
तस्य कामा: प्रसिद्ध्यन्ति परमं पदमानुयात् ॥ १५
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे विष्णुपाराध्य ते पुरा।
स्वं स्वं पदमनुप्राप्ताः केशवस्य प्रसादतः ॥ १६
ये ये नृपत्वरा राजन् माधातुप्रमुखा नृपाः।
ते ते विष्णुं सप्ताराध्य स्वर्गलोकमितो गताः ॥ १७
यस्तु पूजयते नित्यं नरसिंहं सुरेश्वरम्।
स स्वर्गमोक्षभागी स्याद्वात्र कार्या विद्यारणा ॥ १८
तस्मादेकमना भूत्वा यावर्जीवं प्रतिज्ञया।
अर्थनाम्नरसिंहस्य प्राप्त्यसे स्वाभिद्यामित्तम् ॥ १९
विधिवत्स्थापयेष्टम् कारयित्वा जनादेनम्।
न तु निर्गमने तस्य विष्णुलोकाद् भवेत्पृष्ठ ॥ २०
नरो नृसिंहं तमनत्विकामं
सुरासुरैर्वितपादपद्मजम्।
संस्थाप्य भवत्या विधिवच्य पूजयेत्
प्रयाति साक्षात् परमेश्वरं हरिम् ॥ २१

१५ ओमसिंहपुराणे स्वरूपस्तिवर्त्तिं द्विविक्षुप्रसादः ॥ १४ ॥

इति प्रज्ञात ओमसिंहपुराणे स्वरूपस्तिवर्त्तिं द्विविक्षुप्रसादः ॥ १५ ॥

प्राप्त उत्तरं तदात् ॥ १६—२१ ॥

तींतीसवाँ अध्याय

भगवान्के मन्दिरमें इतादृ देने और उसको सौपनेका महान् फल—राजा जयधवाकी कथा

उत्तराखण्ड

हेररचाविधि पूण्यां श्रोतुपिच्छमि तत्त्वतः।
त्वत्प्रसादाद्विशेषेण भगवन् प्रद्ववीहि मे ॥ १
सम्पार्जनकरो चक्षु नरसिंहस्य मन्दिरे।
यत्पुण्यं लभते तद्विपलेषनकृत्रः ॥ २
शुद्धोदकेन यत्पुण्यं स्वापिते केशवे भवेत्।

नरसिंह! जो निष्कापभावसे नृसिंहटेवको विधिवत् प्रतिष्ठा करता है, वह दैहिक दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। जो भगवान् नृसिंहको स्थापना करके सदा उनको पूजा करता है, उसके सब भनोरथ पूर्ण होते हैं तथा वह परम पदको प्राप्त कर लेता है। ओमादि सभी देवता पूर्वज्ञालमें भगवान् विष्णुकी आराधना करके उनके प्रसादसे अपने-अपने सोकको प्राप्त हुए थे। राजन्! मांधारा अर्दि और जो प्रधन नरेश हो गये हैं, वे सभी भगवान् विष्णुकी आराधना उसके यहाँसे स्वर्गलोकको लाए गये। जो मुरेश्वर नृसिंहका प्रतिदिन पूजन करता है, वह सर्व और मोक्षका भागी होता है—इसमें अन्यथा लिचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। इस्में सुम भी प्रतिज्ञापूर्वक एकर्त्तव्य हांकर जीवनपर्यन्त भगवान् नृसिंहको पूजा करते हुए, अपना भनोरथ प्राप्त करोगे। नुव! जो भगवान् जनार्दनकी प्रतिष्ठा बनवाकर विधिवत् उसकी स्वापना करता है, उसका विष्णुलोकसे कभी विज्ञापण नहीं होता। यदि मनुष्य उन अनन्त विक्रमशाली भगवान् नरसिंहको, जिनके चरण-कमलोंकी देवता तथा असुर, दोनों ही पूजा करते हैं, विधिवत् स्वापना करके भक्तिपूर्वक पूजा करे तो वह साक्षात् दरमेश्वर भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ १६—२१ ॥

राजा ओमे—भगवन्! मैं आपके प्रसादसे भगवान्के नृपत्वको पालन विभिन्नों विशेषरूपसे यथावत् सुनना चाहता हूँ; कृपया आप मुझे विस्तारसे बतायें। भगवान् नृसिंहके पन्दिरमें जो शादृ देता है वह, तथा जो उसे सीपता-पीतता है, वह पुण्य किस पुण्यको प्राप्त करता है? केशवको शुद्ध उससे स्वान करनेपर कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है?

क्षीरस्तानेन यत्पुण्यं दद्वा च मधुना तथा ।
घृतस्नानेन यत्पुण्यं पञ्चगव्येन यद्वद्वेत् ॥ ३
क्षालिते चोष्टातोयेन प्रतिमायां च भक्तिः ।
कर्पूरागुरुतोयेन पिश्रेण स्नापितेन च ॥ ४
अर्घदानेन यत्पुण्यं पाण्डाचमनदानके ।
पन्नेण स्नापिते वच्च वस्त्रदानेन यद्वद्वेत् ॥ ५
श्रीखण्डकुद्धमाभ्यां तु अर्चिते कि फलं भवेत् ।
पुर्वैरभ्यर्चिते यच्च यत्फलं धूपदीपयोः ॥ ६
नैवेद्यीर्थत्फलं प्रोक्तं प्रदक्षिणाकृते तु यत् ।
नमस्कारकृते यच्च फलं यत्सोप्रगीतयोः ॥ ७
तालबृन्तप्रदानेन चामरस्य च यद्वद्वेत् ।
ध्वजप्रदाने यद्विष्णोः शङ्खदानेन यद्वद्वेत् ॥ ८
एतच्चान्यच्च यत्किञ्चिदज्ञानाज्ञ प्रबोदितम् ।
तत्सर्वे कथय ब्रह्मन् भक्तस्य भग्न केशवे ॥ ९

सूत उक्तम्

इति सम्प्रेरितो विप्रस्नेन राजा भृगुसदा ।
प्रार्कण्डेयं नियुज्याथ कथने स गतो मुनिः ॥ १०
सोऽपि तस्मिन् मुदायुक्तो हरिभवत्या विशेषतः ।
राजे प्रवक्तुमारेभे भृगुणा चोदितो मुनिः ॥ ११

नार्कण्डेय उक्तम्

राजपुत्र शृणुच्चेदं हरिपूजाविधिं क्रमात् ।
विष्णुभक्तस्य वक्ष्यामि तवाहं पाण्डुवंशज ॥ १२
नरसिंहस्य नित्यं च यः सम्पार्जनमारभेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते ॥ १३
गोपयेन मृदा तोयैर्यः करोत्पुपलेपनम् ।
स चाक्षयफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥ १४
अप्रार्थं यत्पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम् ।
यच्छुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तिर्भवति सत्तम् ॥ १५
पुरा युधिष्ठिरो राजा पञ्चभिर्भार्तुभिर्युतः ।
द्रौपद्या सह राजेन्द्र काननं विचक्षार ह ॥ १६

तथा दूष, दहो, मधु, यो एवं पञ्चगव्यद्वारा स्नान करानेसे क्या पुण्य होता है ? भगवान्‌को प्रतिमाको गर्म जलसे भक्तिपूर्वक स्नान करनेपर तथा कर्पूर, और अगुन मिले हुए जलसे स्नान करानेपर कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है ? भगवान्‌को अर्च देनेसे, पाण्डा और आचमन अपर्ण करनेसे, मन्त्रोच्चारणपूर्वक नहलानेसे और वस्त्र-दान करनेसे क्या पुण्य होता है ? ॥ १—५ ॥

चन्दन और कंसरद्वारा पूजा करनेपर तथा फूलोंसे पूजा करनेपर क्या फल होता है ? तथा धूप और हीप देनेका क्या फल है ? नैवेद्य निवेदन करनेका और प्रदक्षिणा करनेका क्या फल है ? इसी प्रकार नमस्कार करनेसे एवं स्तुति और यज्ञोग्यान करनेसे कौन सा फल प्राप्त होता है ? भगवान् विष्णुके लिये पंखा दान करने, चैत्र उठान करने, भगवान्का दान करने और शङ्ख-दान करनेसे क्या फल होता है ? उठान् ! मैंने जो कुछ पूछा है, वह तथा अज्ञानवश मैंने जो नहीं पूछा है, वह सब भी मुझसे कहिये ; क्योंकि भगवान् केशवके प्रति मेरी हास्तिक भक्ति है ॥ ६—१ ॥

सुनजी बोले—राजाएं इस प्रकार पूरुषोंगर वे अहमपि भृगु मुनि मार्कण्डेयजीको उत्तर देनेके लिये नियुक्त करके रख्ये रहते गये । भृगुजीकी प्रेरणामें मूलियर भार्कण्डेयजीने राजाओं उनको हरिभक्तिसे विशेष इसलिंग हांकर उनके प्रति इस प्रकार कहना आवश्यकिया ॥ १० ११ ॥

यार्कण्डेयजी बोले—पाण्डुकुलनन्दन राजकुमार ! भगवान् विष्णुकी इस पूजा-विधिको प्रकल्पः सूतो, तुम विष्णुके भक्त हो, अतः मैं तुम्हें यह सब बताऊँगा । जो भगवान् नरसिंहके मन्दिरमें नित्य झाड़ु लगाता है, वह सब पापोंसे भृक्त होकर विष्णुलोकमें आनन्दित होता है । जो गोवर, छिंटी तथा जलसे वहाँकी भूमि लीपता है, वह अक्षय फल प्राप्त करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । मनम ! इस विषयमें एक प्राचीन सत्य इतिहास है, किसे सुनकर सब पापोंसे मुक्ति मिल जाती है ॥ १२—१५ ॥

राजेन्द्र ! यूथकालमें राजा युधिष्ठिर द्रीपदी तथा अपने पाँच भाइयोंके लाभ बनाये विचरते थे ।

शूलकण्ठकनिष्कान्तास्ततस्ते पञ्च पाण्डवाः ।
नारदोऽपि गतो नाकं जुहुंदं तीर्थमुत्तमम् ॥ १७
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रस्थितस्तीर्थमुत्तमम् ।
दर्शनं पुनिमुख्यस्य तीर्थधर्मोपदेशिनः ॥ १८
चिन्तयति च धर्मात्मा क्रोधपैशुन्यवर्जितः ।
दानवो बहुरोमा च तथा स्थूलशिरा नृप ॥ १९
पाण्डवान् गच्छनो वीक्ष्य दानवो द्रीपदीच्छया ।
कृत्वा भूप मूने रूपं बहुरोमाऽगतमतदा ॥ २०
प्रणिधानं विधायाथ आसीनः कुशविष्टे ।
विभृत् कमण्डलं पाञ्चं दर्भसूचीं तथा करे ॥ २१
अक्षमालां जपन्मनं स्वनासाग्रं निरोक्षयन् ।
स दृष्टः पाण्डवैमतत्र रेवायां बनयारिभिः ॥ २२
ततो युधिष्ठिरो राजा तं प्रणाम्य महानुजः ।
जगाद वचनं दृष्टा भाग्येनामि महामूने ॥ २३
तीर्थानि रुद्रदेहायाः सुगोप्यानि निवेदय ।
मूनीनां दर्शनं चाथ श्रुतं धर्मोपदेशकम् ॥ २४
यावत्मुनिमुवाचेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
तावत्थूलशिरा: प्राप्तो मुनिरूपधरोऽप्यरः ॥ २५
जल्पत्रित्यातुरं वाक्यं को नामास्त्वत्र रक्षकः ।
भवातुरं नरो जीवं यो रक्षोच्छरणागतम् ॥ २६
तस्याननफलं स्याद्दु किं पुनर्मा हिंजोत्तमम् ।
एकतो घेदिनोदानं मेनभूधारदक्षिणम् ॥ २७
अन्यतो ह्यात्जीवानां प्राणसंशयवारणम् ।
द्विजं धनुं स्त्रियं वालं पीड्यमानं च दुर्जनैः ॥ २८
उपेक्षेत नरो यस्तु स च गच्छति रीतवर्म ।
अथ मां हृतसर्वस्य प्राणत्यागपरायणम् ॥ २९
को रक्षति नरो वीरः पराभूतं हि दानवैः ।
गृहीत्वा चाक्षमालां मे तथा शुभकमण्डलम् ॥ ३०
निहतोऽहं करायात्मस्था खाटो यनोहरम् ।
गृहीतं पप्य सर्वस्य दानवेन दुरात्मना ॥ ३१

शूलते-शूलने वे पौत्रों पाण्डव शूल और कण्ठकमय मर्मांको पार करके एक उत्तम तीर्थकी ओर प्रस्थित हुए । उसके पहले भगवान् नारदजी भी उस उत्तम तीर्थका लेखन करके स्वर्णलोकको लौट गये थे । क्रोध और पिशुनतासे रहित भर्मात्मा राजा युधिष्ठिर उस उत्तम तीर्थकी ओर प्रस्थान करके तीर्थधर्मका उपदेश करनेवाले किसी मुनिवरके दर्शनकी बात सोच रहे थे, इसी बीचमें बहुरोमा तथा स्थूलशिरा नामक दानव वहाँ आये । भूपाल ! पाण्डवोंको जाने देख द्रीपदीका अपहरण करनेकी इच्छासे बहुरोमा नामक दानव मुनिका रूप धारण करके वहाँ आया । वह कुशके आसनपर बैठकर ध्यानमग्र हो गया । उसके पार्श्वमें कमण्डल था और हाथमें उसने कुशकी पश्चिमी पहन रखी थी । वह नासिकाके अग्रभागका अवश्योक्तन करता हुआ लक्षणको मालामें बनव जप कर रहा था । नर्योदा वटकारी बनमें ध्रुमण करते हुए पाण्डवोंने वहाँ उसे देखा ॥ १६—२२ ॥

उद्वनान-उसे देखकर यजा मुनिविरने भाईयोत्तहित प्रणाम करके उससे यह बात कही—महामुने ! भाग्यसे आप वहाँ विद्यमान हैं । इस रुद्रदेहा (रेखा)-वे समीपवर्ती परम गोपनीय तीर्थोंको हमें बताइये । नाथ ! हमने मूरा है कि मुनियोंका दर्शन धर्मका उपदेश करनेवाला होता है ॥ २३—२४ ॥

धर्मपुत्र युधिष्ठिर जगातक उस मायाको मुनिये छात कर ही हो रहे थे, उपराक ही स्थूलशिरा नामक दूसरा दानव मुनिरूप धर्म किये वहाँ आ पहुँचा । वह यहे ही अनुरभावसे इस प्रकार पुकार रहा था—अहो ! यहाँ जीव हमारी रक्षा करनेवाला है ? जो मनुष्य शरणमें आये हुए किसी भी भयपीड़ितकी रक्षा करता है, वह अनन्त पुण्यफलका भागी होता है; किर जो मुझ उत्तम ज्ञानात्मकी रक्षा करेगा, उसके पुण्यफलका तो कहना ही क्या है । एक और मनुष्यवर्तुकी दक्षिणायुवंक सम्पूर्ण पुण्यिका दान और दूसरी ओर पीड़ित प्राणियोंके प्राण-संकटका निवारण—दोनों बराबर हैं । जो पुरुष दुहोंद्वारा सताये जाते हुए आहार, गौ, स्त्री और जालकोंकी उपेक्षा करता है, वह रीतवरकमें पड़ता है । भैरा सर्वस्व लूट लिया गया है । मैं दानवोंसे अपमानित होकर प्राण त्याग देनेको उचित है । इस समय कौन ऐसा वीर पुरुष है, जो मेरी रक्षा कर सके ? दुर्ज दानवने मेरी स्फार्टिककी माला, मुन्दर कमण्डल, और मनोहर छाट होनेकर मुझे शम्भुसे मारा है और सर्वस्व लूट लिया है ॥ २५—३१ ॥

इत्याकर्ण्य चक्रः कलीयं पाण्डवा जातसम्भाप्ताः।
यानि रोपाञ्छिता भूयो विधायाग्नि च तं मुनिम् ॥ ३२
 विमुच्य श्रीपदो तत्र मुने: पाश्च महात्मनः।
ततो दूरतरं प्राप्ताः संरम्भाते च पाण्डवाः ॥ ३३
 ततो युधिष्ठिरोऽवोचत् किं च नो नाश्र दृश्यते।
कृष्णासंरक्षणार्थाय चक्र व्यावर्त्य चार्जुनः ॥ ३४
 ततोऽर्जुनो विनिष्क्रान्तो बन्धुवाक्यप्रणालितः।
ततो युधिष्ठिरो राजा सत्यां वाचमकल्पयत् ॥ ३५
 निरीक्ष्य प्रणहलं भानोस्तदा सुगहने चने।
पम सत्याच्य सुकृताद् धर्मसम्भाषणात् प्रभो ॥ ३६
 तथ्ये शंसन् त्रिदणा पम संशयभाजिनः।
ततोऽस्वरेऽभवद्वाणी तदा भूपाशीरिणी ॥ ३७
 दानवोऽयं महाराज मुनिः स्थूलशिरः स्थितः।
नासाकुपद्वृतः केन मार्येषात्य दुरात्मनः ॥ ३८
 ततो भीमः कराघातनेश्यमानं हि दानवम्।
संरम्भात्कृपितोऽत्यर्थं मौलिदेशे जघान तम् ॥ ३९
 सोऽपि रूपं निजं प्राप्य गैरं भीमपताङ्गयन्।
तत्र युद्धं प्रवचते दारुणं भीमदेत्ययोः ॥ ४०
 कष्टाद्वभद्रा भीमोऽपि तस्य स्थूलं शिरो चने।
अर्जुनोऽपि समायातो नैव पश्यति तं मुनिम् ॥ ४१
 तथा च श्रीपदो भूयः सार्थी कानां च बल्लभाम्।
ततो वृक्षे सपारहा यावत्यश्यति चार्जुनः ॥ ४२
 तावद्विपाय तां स्कन्दे शीघ्रं धावति दानवः।
संहुता याति दुष्टेन रुद्रतो कुररी यथा ॥ ४३
 कुर्याती भीमभीमेति धर्मपुत्रेति वादिनी।
तां दृष्टा स यथी वीरः शब्दः संनादयन् दिशः ॥ ४४

इस प्रकारके कठातर वचन सुनकर पाण्डव हड्डाहान्ते। ये रोमाञ्चित हो, आग जलाकर उस मुनिके पीछे चढ़े। दीपदोको उन लोगोंने पहलेवाले नहात्मा मुनिके पास ही छोड़ दिया और स्वयं रोषसे भरकर वहाँसे चहूत दूर निकल गये ॥ ३२-३३ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिरने कहा—हमें तो यहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता। अर्जुन ! तुम दीपदोकी रक्षाके लिए यहाँसे लौट जाओ। तब भाईके वचनसे ग्रेरित होकर अर्जुन वहाँमें चल दिये। राजन् ! फिर राजा युधिष्ठिरने उस गहन वनके भोजर मूर्धणहस्तकी और देखकर यह सत्य वचन कहा—मेरी साक्षात्कादिता, पूण्यकर्म तथा धर्मपूर्वक भाषण करनेसे संतुष्ट होकर देखगण संशयमें फड़े हुए मुझको सत्य चल जलाएं ॥ ३४-३६ ॥

राजन् ! युधिष्ठिरके जो कहनेपर आकाशमें इस प्रकारका शब्द हुआ, यहाँपि यहाँ बोलनेवाला कोई अस्ति नहीं था—नहात्मा ! यह (जो आपके पास रहा है, यह मूर्ति नहीं) दानव है। स्थूलशिरा चामक मुनि तो सुखपूर्वक है, उनपर किसीको दुष्ट कोई उपद्रव नहीं है। यह तो इस दुहकी भाषा है ॥ ३७-३८ ॥

तब भोजने अत्यन्त झोपधसे युक्त हो उस भाषते हुए दानवके मस्तकपर बड़े खेगांसे मुट्ठिप्रहर किया। फिर तो दानवने भी अपना रीढ़कप खाला किया और भीमको मुजा भागा। इस प्रकार भीम और दानवमें यहाँ दानव संशयमें छिड़ गया। भीमने उस बनमें बड़े काष्ठसे उसके स्थूल मस्तकका ढेटन किया ॥ ३९-४० ॥

उधर अर्जुन भी जब मुनिके आश्रमपर पहुँचे, तब वहाँ उन्हें न ली यह मूनि दिखायी दिया और न प्राणप्रिया साभी भाषी श्रीपदो ही दोष्य पड़ो। तब अर्जुनने गृक्षपर चढ़कर ज्वों हो इधर-उधर दृष्टि डाली, ज्वों हो देखा कि एक दानव श्रीपदोको अपने कंधेपर दिलाकर बहों शीघ्रतासे भागा जा रहा है और उस दुष्टके द्वारा हरी गंधी श्रीपदी कुररीको भीति 'हम धर्मपूर्ज ! हा भोम !' इत्यादि रुक्तो हुई खिलाप कर रही हैं। श्रीपदोंको उस अवस्थामें देखकर वोर अर्जुन अपनी आवाजसे दिशाओंको गुंजाते हुए चले।

पादन्यासोरुवेगेन प्रभग्नः पादपा भृशम्।
ततो दैत्योऽपि तां तन्वीं विहायाशु पलायितः ॥ ४६
तथापि चार्जुनो तस्य कोपाम्भुजिति नामुरम्।
पतितो मेदिनीपुष्टे तावदेव चतुर्भुजः ॥ ४७
पीते च वाससी विभृत् शङ्खचक्रायुधानि च।
ततः स विम्बयाक्रान्तो नत्वा पाथो बबोउवदत् ॥ ४८

अर्जुन उक्तव्य

कथं कृतैषा भगवंस्त्वया मायात्र वैष्णवी।
प्रयाप्यपकृतं नाथ तत् क्षम्यस्व नमोऽस्मु ते ॥ ४९
नूपज्ञानभावेन कर्मतदाहणं मया।
तत्क्षनतव्यं जगत्रात्र चैतन्यं मानवे कुतः ॥ ५०

चतुर्भुज उक्तव्य

नाहं कृष्णो महाकाशो यहुरोमास्मि दानवः।
उपयातो हरेदैहं पूर्वकर्मप्रभावतः ॥ ५०

अर्जुन उक्तव्य

बहुरोमन् पूर्वजातिं कर्म ये शास तत्त्वतः।
केन कर्मविपाकेन विष्णोः सारुप्यमासवान् ॥ ५१

चतुर्भुज उक्तव्य

भृष्वर्जुन महाभाग सहितो भातुभिर्विम।
चरितं चित्रप्रत्यर्थं भृष्वतां मुदवर्धनम् ॥ ५२
अहमासे पुरा राजा सोमवंशसमुद्घवः।
जयध्वज इति ख्यातो नारायणपरायणः ॥ ५३
विष्णोदेवालये नित्यं सम्मार्जनपरायणः।
उपलेपरतक्षीव दीपदाने समुद्घतः ॥ ५४
वीतिहोत्र इति ख्यात आसीन् साधुपुरोहितः।
मम तच्चरितं दृष्ट्वा विप्रो विम्बयमागतः ॥ ५५

कार्कटेन उक्तव्य

कदाचिदुपविष्टं तं राजानं विष्णुतत्परम्।
अपृच्छद्वीतिहोत्रस्तं वेदवेदाङ्गपरायणः ॥ ५६
राजन् परमधर्मज्ञ हरिभक्तिपरायण।
विष्णुभक्तिमां पुंसां श्रेष्ठोऽसि पुरुषर्वभ ॥ ५७
सम्मार्जनपरो नित्यं उपलेपरतस्तथा।
तन्मे वद महाभाग त्वया किं विदितं फलम् ॥ ५८

इस समय उनके बड़े बेगसे पैर रखनेके कारण अनेकानेक वृक्ष गिर गये। तब वह दैस्य भी उस ताङ्कड़ीको छोड़कर अपेक्षा ही बेगसे भागते तथापि अर्जुनने झोपके कारण उस असुरका पौल न छोड़ा। भागते भागते वह दानव एक बाग पृथ्वीपर गिर गड़ा और गिरते ही नार भुजाओंसे युक्त हो, शङ्ख तथा चक्र आदि भारत किन्तु पीताम्बरधारी विष्णुके रूपमें दौलत पढ़ा। तब चुनीनानन्दन अर्जुन बड़े ही विस्मित हुए और प्रणाम करके बोले ॥ ५६—५७ ॥

अर्जुनने कहा—भगवन्! अपने यहाँ वैष्णवी माया क्यों कैला रखी थी? मैंने भी जो आपका आपकार किया है, हस्तके लिये है नाथ! मेरे अपराधको क्षमा करें; आपको नमस्कार है। हे जगताथ! अज्ञानके कारण ही मैंने यह दानव कर्म किया है; इसांतर्यामे इसे क्षमा कर दें। भला, एक साधारण अपराधमें भी यहचान ले ॥ ५८—५९ ॥

चतुर्भुज बोला—महाकाशो! मैं विष्णु नहीं, यहुरोमा नामक दानव हूँ। मैंने आपने पूर्वकर्मके प्रभावसे भागवान् विष्णुका साक्ष्य प्राप्त किया है ॥ ५९ ॥

अर्जुन बोले—बहुरोमन्! तुम अपने पूर्वजन्म और कर्मका दीक्ष-दीक्ष कर्मन करो। तुमने किस कर्मके परिकालसे विष्णुका साक्ष्य प्राप्त किया है? ॥ ५१ ॥

चतुर्भुज बोला—महाभाग अर्जुन! आप अपने भाइयोंके साथ मैं अत्यन्त विचित्र वरितको सुनिये; यह क्लीवर्डके अनन्दको बहुतेकाल है। मैं पूर्वजन्ममें दानव जयध्वज नामसे विश्वात राजा था। उस समय सदा ही मैं भगवान् नारायणके भजनमें लगा रहता और उनके मन्दिरमें झाड़ लगाया करता था। प्रतिदिन उस मन्दिरको लोपका और [सत्रिमे] वहाँ दीप जलाया करता था। उन दिनों वीतिहोत्र नामक एक साधु व्राताण मेरे जहाँ पुरोहित थे। प्रभो! मैं मेरे इस कार्यको देखकर यहुत विस्मित हुए ॥ ५२—५५ ॥

मार्कंशंखजी बोले—एक दिन वेद-वेदाङ्गोंके पूर्ण विद्वान् पुरोहित वीतिहोत्रजीने बैठे हुए उन विष्णुभक्त राजासे इस प्रकार प्रश्न किया—परम भर्मज्ञ भूतात! हरिभक्तिपरायण वरत्रैष! आप विष्णुभक्त पुरुषोंमें सबसे ब्रेष्ट हैं; क्योंकि आप भगवान्के मन्दिरमें प्रतिदिन झाड़ तथा संपर्क दिया करते हैं। अतः महाभाग! आप मुझे जलाये कि भगवान्के मन्दिरमें झाड़ देने और वहाँ सोपने-पोतनेका कौन-सा उत्तम फल आप जानते हैं।

कर्माण्यवन्यानि सन्त्येव विष्णोः प्रियतराणि वै ।
तथापि त्वं महाभाग एतयोः सततोद्यतः ॥ ५९
सर्वात्मना महापुण्यं जनेश विदितं तव ।
तद्यूहि यद्यगुह्यं च प्रीतिर्मयि तवास्ति चेत् ॥ ६०

वरप्रभव उक्तव

शृणुष्व विप्रशार्दूलं पर्मेव चरितं पुरा ॥ ६१
जातिस्मरत्वान्बानामि श्रोतुणां विमायावहम् ।
पूर्वजन्यनि विप्रेन्द्रं रेवतो नाम बाढवः ॥ ६२
अयाञ्ययाजकोऽहं वै सदैव ग्रामयाजकः ।
पिशुनो निष्ठुरक्षीय अपयन्यानां च विक्षयो ॥ ६३
निषिद्धकपचिरणात् परित्यक्तः स्वयन्मुभिः ।
महापापरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषरतसतथा ॥ ६४
परदारपरद्रव्यलोलुपो जन्मुहिमकः ।
महापानरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषरतसतथा ॥ ६५
एवं पापरतो नित्यं ब्रह्मो मार्गरोधकृत् ।
कदाचित् कापचारोऽहं गृहीत्वा ब्राह्मणस्विष्टः ॥ ६६
शून्यं पूजादिभिर्विष्णोर्मन्दिरं प्राप्तवाचिशि ।
स्ववस्त्रप्रान्ततो ब्रह्मन् कियदंशः स मार्जितः ॥ ६७
प्रदीपः स्थापितसतत्र सुरतार्थाद् द्विजोन्नम् ।
तेनापि ग्रम दुष्कर्मं निःशोषं क्षयमागतम् ॥ ६८
एवं स्थितं विष्णुगृहे मया भोगेच्छया द्विज ।
तदैव दीपकं दृष्टा आगताः पुरपालकाः ॥ ६९
चीर्यार्थं परदूतोऽयमित्युक्त्वा पापपातयन् ।
खड्गेन तीक्ष्णाधारेण शिरश्चित्त्वा च ते गताः ॥ ७०
दिव्यं विमानमारुद्धु प्रभुदाससमन्वितम् ।
गन्धवीर्णीयमानोऽहं स्वर्गलोकं तदा गतः ॥ ७१

यद्यपि भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय लगानेवाले अन्य कर्म भी हैं ही, तथापि महाभाग ! आप इन्हों दो कर्मोंमें सदा सर्वथा लगे रहते हैं । नंतर ! यदि आपको इनसे होनेवाला महान् पुण्यस्वप्न फल ज्ञात हो और वह छिपानेयोग्य न हो तथा यदि आपका मुझपर ग्रेम हो तो अवश्य ही उस फलको मुझे याताइये ॥ ५६—६० ॥

जयत्वाज बोले—विष्ववर ! इस विषयमें आप मेरा ही पूर्वजन्मका चरित्र मुझे । मुझे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है, इसोंसे मैं सब जानता हूँ । मेरा चरित्र श्रीतांत्रिको जाहार्यमें डालनेवाला है । विषेन्द्र ! पूर्वजन्ममें मैं रेखत बामका ब्राह्मण था । जिनको यज्ञ करनेवा अधिकार नहीं है, उनसे भी मैं सदा ही यज्ञ कराता था और अनेकों गांधीका पुरोहित था । इतना ही नहीं, मैं दूसरोंकी चुगली खानेवाला, निर्देव और वही येष्वने योग्य वस्तुओंका विष्णुप्रसादनेवाला था । विषेन्द्र कर्मोंका आचरण करनेके कारण मेरे जाग्रत्कोने मुझे स्वयं दिया था । मैं महान् पापी और सदा ही ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाला था । परापरी स्त्री और यहाँ भवनका लोभी था, प्राणियोंकी हिंसा किया करता था । सदा ही मत्र पोता और ब्राह्मणोंसे द्वेष रखता था । इस प्रकार मैं प्रतिदिन यात्रमें लगा रहता और बहुधा लूटपाट भी करता रहा ॥ ६१—६५ ॥

एक दिन गतामें स्वेच्छान्वितारिताके गतरण में कुछ ब्राह्मण-प्राणियोंको पकड़कर एक सूने ठाकुर-मन्दिरमें ले गया । उस मन्दिरमें कभी सूजा नहीं होती थी । [ये हो रामद्वारा-सा पढ़ा रहता था ।] वहीं लिप्योंके साथ रमण करनेकी उच्छावे मैंने अपने वस्त्रोंके किनारोंसे उस मन्दिरका कुछ भाग चुहाकर साफ किया और हे द्विजोन्नम ! [प्रकाशके लिये] दीप जलाकर रख दिया । [यहाँ मैंने अपनो पाप वासना पूर्ण करनेके लिये ही मन्दिरमें झाङ लगायो और दीप जलाया था, तथापि] उससे भी मेरा सारा पापकर्म नष्ट हो गया । ब्राह्मण ! इस प्रकाश तथा मैं उस विष्णुमन्दिरमें भोगकी इच्छासे ठहरा हुआ था, उसी समय वहीं दीपक देखकर नगरके रक्षक आ पांचें और वह कहकर कि 'यह किसी शत्रुका दूत है, यहीं चोरी करने आया है' उन्होंने मुझे पृथ्वीपर गिरा दिया तथा तीखी भारकालों तलवारसे मेरा मरताक काटकर थे चले गये । तब मैं भगवान्‌के चार्यदौरासे युक्त दिव्य विमानपर आकर्ष हो, गन्धवीर्णद्वारा अपना चशोगान सुनता हुआ स्वर्गलोकको चला गया ॥ ६६—७१ ॥

क्षुभुज उत्तम

तत्र स्थित्वा द्वाहकल्पे शतं साग्रं द्विजोत्तमः ।
दिव्यभोगसमायुक्तो दिव्यकृपसमन्वितः ॥ ७२
जातोऽहं पुण्ययोगादि सोमवंशसमुद्घवः ।
जयध्वज इति ख्यातो राजा राजीवलोचनः ॥ ७३
तत्रापि कालवशातो मृतः स्वर्गमवासवान् ।
इन्द्रलोकमनुप्राप्य रुद्रलोकं ततो गतः ॥ ७४
रुद्रलोकाद्वाहलोकं गच्छता नारदो मुनिः ।
दृष्टश्च नमितो नैव गर्वान्म हसितश्च सः ॥ ७५
कुपितः शसवान् मां स राक्षसो भव भूपते ।
इति शापं समाकर्ण्य दत्तं तेन द्विजमना ॥ ७६
प्रसादितो मया भूप प्रसादं कृतवान् मुनिः ।
यदा रेवामठे राजन् धर्मपुत्राय धीमतः ॥ ७७
भार्यापहारं नयतः शापमोक्षो भविष्यति ।
सोऽहमर्जुन भूपाल धर्मपुत्र युधिष्ठिर ॥ ७८
विष्णोः साक्षात्प्रभगमं यामि वैकुण्ठमद्य च ।

मार्कंडेय उत्तम

इन्द्र्युक्त्वा गरुडाकृदो धर्मपुत्रस्य पश्यतः ॥ ७९
गतवान् विष्णुभवनं यत्र विष्णुः धिया मह ।
सम्मार्जनोपलेपाभ्यां पहिमा तेन वर्णितः ॥ ८०
अवशेनापि चत्कर्म कृत्वेषां धियमागतः ।
भक्तिपद्धिः प्रशान्तेश्च किं पुनः सम्यग्दर्शनात् ॥ ८१

सूत उत्तम

मार्कंडेयवचः श्रुत्वा पाण्डुवंशसमुद्घवः ।
सहस्रानीकभूपालो हरिपूजारतोऽभवत् ॥ ८२
तस्माच्छुपुत्र विप्रेन्द्र देवो नामयणोऽव्ययः ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पूजकानां विमुकिदः ॥ ८३
अर्चयथ्वं जगद्वायं भूयो भूयो वदाम्यहम् ।
तर्तुं यदीच्छथ द्विजा दुम्नारं भवसागरम् ॥ ८४
येऽर्चयन्ति हरिं भक्ताः प्रणतातिहरं हरिम् ।
ते वन्द्यास्ते प्रपून्याश्च नमस्याश्च विशेषतः ॥ ८५

द्वारा ओनरसिंहपुराणे महालक्षणीक वृत्तीर्थे देवोऽप्यद्विष्णुप्रसादाद्यनिष्ठां लक्ष्म ऋगसिंहोऽप्यदः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार ओनरसिंहपुराणके अन्तर्गत रुद्रलोक-वरिष्ठके प्रमुखत्वे महालक्षणीकपूजाकृतिकृष्टा उत्तमः 'महिमासं लक्ष्म देवे' और उसके तीनोंके अहिमासं लक्ष्म देवे द्वारा पूजा हुम्हा ॥ ३३ ॥

चतुर्भुज वोला—इस प्रकार मैंने दिव्यरूप धारणकर दिव्य भोगसे सम्पन्न होकर स्वर्गलोकमें सौ कल्पोंसे भी अधिक कालताक निवास किया । किंतु उसी पुण्यके भोगसे चान्द्रवशमें उत्पन्न जयध्वज नामसे विष्णवात कमलाके समान नैवेद्य में स्वर्णरूपाकमें आया । किंतु वहाँसे रुद्रलोकको जाते समय मैंने नारदमुनिकी देखा, परंतु देखनेपर भी उन्हें प्रणाम नहीं किया और उन्होंकी हीसे उद्धाने लगा । इससे कुपित होकर उन्होंने शप दिया—'राजन् ! तु राक्षस हो जा ।' उन ब्राह्मणके दिये हुए इस शपको दुनकर मैंने क्षमा मांगकर (किसी तरह) उन्हें प्राप्त किया । तब मैंने मुहमपर शापानुग्रहके रूपमें कृपाकरो । [उन्होंने कहा—] 'राजन् ! जिस समय चुदिमान् धर्मपुत्र युपितिरका भावांका हरण करके तुम रेवा-तटवर्ती मठमें चले जाओगे, उस समय तुम्हें शापसे मुक्ति मिल जाएगी ।' भूषाल । धर्मपुत्र युपितिर ! अर्जुन । मैं अहीं राजा जयध्वज हूँ । इस समय भगवान् विष्णुके साक्षर्यको प्राप्त हुआ हूँ । अब मैं नित्य ही वैकुण्ठभास्मको जाऊंगा ॥ ७२—८१ ॥

मार्कंडेयवची वोले—यह कालकर धर्मपुत्र युपितिरके देवते-ही-देवते ऐ राजा जयध्वज गहडपर आकर हो विष्णुप्रसादको खले गये, जहाँ स्वस्मीजीके साथ भगवान् विष्णु सदा विराजमान रहते हैं । इसीसे विष्णुप्रसादके प्रहरने और लीपनेमें बहुत महत्ता आस होनेका वर्णन किया गया है । [राजा जयध्वजने पूर्वजन्ममें] कामकं पत्तोभूत होकर भी जिस कर्मको करनेसे ऐसो दिव्य सम्पत्ति प्राप्त कर ली, उसीको यदि धक्षिणान् और ज्ञान पुरुष करे तथा भलोंभीलों भगवान्मृता पूजन करे तो उनको प्राप्त होनेवाले फलसके लियामें क्या कहना है ? ॥ ७९—८१ ॥

मूलवी वोले—मार्कंडेयवचीके उपर्युक्त वचन सुनकर पाण्डुवशमें उत्पन्न राजा सहस्रानीक भगवान्मृते पूजनमें संलग्न हो गये । इसलिये विष्णुन् ! आपलोग यह सुन ले कि अविनाशी भगवान् नामयण जागरूक अथवा अनजानमें भी पूजा करनेकाले धर्मने भलोंको मुक्ति प्रदान करते हैं । दिलो ! मैं यह जारीकर कहता हूँ कि यदि आपलोग दुसर भगवान्मृत विष्णुका पूजन करते हैं, वे चन्द्रनीय, पूजनीय और विशेषरूपसे नमस्कार करनेवाले हैं ॥ ८२—८५ ॥

चाँतीसवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुके पूजनका फल

श्रीरामानन्दीक उक्ताय

पुनरेव द्विजश्चेष्ट मार्कंडेय महापते।
निर्माल्यपनयाद्विष्णोर्यत्पुण्यं तद्वदस्य मे॥ १

मार्कंडेय उक्ताय

निर्माल्यपनयीयाथ तोयेन स्नाप्य केशवम्।
नरसिंहाकृति राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २

सर्वतीर्थफलं प्राप्य यानारुदो दिवं चर्जेत्।
श्रीविष्णोः सदनं प्राप्य मोदते कालमङ्गयम्॥ ३

आगच्छ नरसिंहेति आवाहाक्षतपुण्यकैः।
एतावतापि राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४

दत्त्वा ५४ सनमध्याध्यं च पाद्यमाचमनीयकम्।
देवदेवस्य विधिना सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५

स्नाप्य तोयेन पथसा नरसिंहं नराधिप।
सर्वपापविनिर्मुको विष्णुलोके महीयते॥ ६

स्नाप्य दध्ना सकृद्यस्तु निर्मलः प्रियदर्शनः।
विष्णुलोकमवाप्नोति पून्यमानः सुरोत्तमैः॥ ७

यः करोति हरेरच्च मधुना स्नापयन्नः।
अग्निलोके स मोदित्वा पुनर्विष्णुपुरे वसेत्॥ ८

युतेन स्वप्नं वस्तु स्नानकाले विशेषतः।
नरसिंहाकृते: कुर्याच्छङ्खभरोनिनादितम्॥ ९

पापकञ्जकमन्युच्य यथा जीर्णामहिस्त्वचम्।
दिव्यं विमानमास्थाय विष्णुलोके महीयते॥ १०

पञ्चगच्छेन देवेशं यः स्नापयति भक्तिः।
मन्त्रपूर्वं महाराज तस्य पुण्यमनन्तकम्॥ ११

यश्च गोधूमकैश्चर्णीरुद्धत्योष्णोन बारिणा।
प्रक्षाल्य देवदेवेशं वारुणं लोकमाणुवान्॥ १२

श्रीसहस्रानीकने पूछा—महामते श्रीराम
मार्कंडेयजी! अब पुनः यह बताइये कि भगवान्
विष्णुके निर्माल्य (चन्दन-पुण्य आदि) को हठानेसे कौन-
सा पुण्य प्राप्त होता है॥ १॥

मार्कंडेयजी बोले—राजन्! नृतीहल्यरूप भगवान्
केशवको निर्माल्य हठाकर जलसे स्नान करानेसे मनुष्य
सब जापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण तीर्थोंके
सेवनका फल प्राप्तकर, विमानपर आरुद्ध ही स्वर्गको
जला जाता है और वहाँसे श्रीविष्णुभासको प्राप्त होकर
अस्त्रकालपर्यन्त आनन्दका उपभोग करता है। 'भगवन्
नरमिंह! आप यहाँ पधारें'—इस प्रकार अक्षत और
पुम्पोंके द्वारा यदि भगवान्का आवाहन करे तो राजेन्द्र!
इतनेसे भी वह मनुष्य सब जापोंसे मुक्त हो जाता है।
देवटेष नृसिंहको विधिवृक्षक आसन, याद (ऐर भोगेके
लिये जल), अर्च (हाथ भोगेके लिये जल) और
आचमनीय (कुम्भ करनेके लिये जल) अर्पण करनेसे
भी वह जापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो
एक जल भी भगवान्का दहाँसे स्नान करता है, वह
निर्मल एवं सुन्दर जारीर धारणकर सूखरोंसे पूजित होता
हुआ विष्णुलोकको जाता है। जो मनुष्य मधुसे भगवान्को
नहलाता हुआ उनकी पूजा करता है, वह अग्निलोकमें
आनन्दोपभोग करके पुनः विष्णुपुर (वैकुण्ठधाम) में
निवास करता है। जो स्नानकालमें श्रीरामसिंहके विष्णुको
शङ्ख और नाशरेका शब्द करते हुए विशेषरूपसे जीसे
स्नान करता है, वह पुण्य पुराणी केशुलको छोड़नेवाले
साँपकी भौंति पाप-कञ्जुकाको त्यागकर दिव्य विमानपर
आरुद्ध हो, विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ २—१०॥

महाराज! जो देवेशर भगवान्को भक्तिपूर्वक मन्त्रपाद
करते हुए पञ्चगच्छसे स्नान करता है, उसका पुण्य
अस्त्रय होता है। जो गेहैके आठदंशे देवतेशेश्वर
भगवान्को उष्टुप लगाकर गरम जलसे उन्हें
नहलाता है, वह लक्षणानीकको प्राप्त होता है।

पादपाठं तु यो भक्त्या विल्वपत्रैर्निष्पितम् ।
 उच्चाम्बुद्धा च प्रक्षाल्य सर्वपापेः प्रमुच्यते ॥ १३
कुशपुष्पोदकेः स्नात्या ग्रहणलोकभवानुयात् ।
 रत्नोदकेन सावित्रे कौव्येरे हेमवारिणा ।
नरसिंहं तु संखाय कपुणगुरुवारिणा ॥ १४
 इन्द्रलोके स मोदित्या पञ्चाद्विष्णुपूर्णे वसेत् ।
 पुण्योदकेन गोविन्दं स्नाय भक्त्या नरोत्तम ॥ १५
सावित्रे लोकमासाद्य विष्णुलोके महीयते ।
 वस्त्राभ्यामर्चनं भक्त्या परिधाप्य हरि हरे ॥ १६
 सोमलोके रमित्वा च विष्णुलोके महीयते ।
कुद्धुमागुरु श्रीगुणदक्टदंभरच्युताकृतिम् ॥ १७
 आलिष्य भक्त्या राजेन्द्र कल्यकोटि खसेत्विति ।
 मविकामालतीजातिकेतक्यशोकच्यप्यकैः ॥ १८
पूनागनागब्रह्मुलैः पर्वीरुत्पलजातिभिः ।
 तुलसीकरवीरिष्य पालाशैः सामुक्ष्यकैः ॥ १९
एतेरन्यैष्य कुसुमैः प्रशस्तैरच्युतं चरः ।
 अर्चयेहशमुखण्ठस्य प्रत्येकं फलमाप्नुयात् ॥ २०
 माला कृत्या यथालाभयेतेषां विष्णुमर्चयेत् ।
कल्यकोटिसहस्राणि कल्यकोटिशतानि च ॥ २१
 दिव्यं विमानयास्थाय विष्णुलोके स मोदते ।
नरसिंहं तु यो भक्त्या विल्वपत्रारुणिडते ॥ २२
निश्छिरैः पूजयेद्यस्तु तुलसीभिः समन्वितम् ।
सर्वपापविनिर्घुकः सर्वभूषणभूषितः ॥ २३
 काञ्जनेन विमानेन विष्णुलोके महीयते ।
 माहिषासुरं गुणगुलं च आन्ययुक्तं सशक्तरम् ॥ २४
 धूपं ददाति राजेन्द्र नरसिंहस्य भक्तिमान् ।
धूषितैः सर्वदिव्यस्तु सर्वपापविनिर्घुकः ॥ २५
 अप्सरोगणसंकीर्णविमानेन विराजते ।
 वायुलोके स मोदित्या पञ्चाद्विष्णुपूर्णे वसेत् ॥ २६

जो भगवान् के वादपाठ (ऐरे रखनेके थोड़े चीको या चरणस्तुपाण) को भक्तिपूर्वक विल्वपत्रसं रगड़कर गरम जलसे धोता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। कुरा और पुण्यमिश्रित जलसे भगवान् को खान कराकर मनुष्य ग्राहलोकको प्राप्त होता है, रथयुक्त जलमें खान करनेपर मूर्खलोकको और सूक्ष्माद्युक्त जलसे नहलनेपर कुद्धुमालोकको प्राप्त करता है। जो कम्पुर और अगुरुभिक्रित जलसे भगवान् नृसिंहको नहलता है, वह पहले इन्द्रलोकमें तुख्योपभोग करके फिर विष्णुभाष्यमें निवास करता है। जो उत्तरक्षेत्र तीयोंके पवित्र जलसे गोविन्दको भक्तिपूर्वक साव करता है, वह आदित्यलोकको प्राप्त करके पुनः विष्णुलोकमें पूजित होता है। जो भक्तिपूर्वक भगवान् को पुण्यत वल पालाकर उनको पूजा करता है, वह अन्द्रलोकमें मूर्खभोग चरणके पुनः विष्णुभाष्यमें सम्मानित होता है ॥ १२—१६ ॥

राजेन्द्र (जो कुहकुम (केमर), अगुह और अन्द्रलोक अनुसंधनसे भगवान् के विश्रामके भक्तिपूर्वक अनुशिष्ट करता है, वह कठोरों वस्त्रपीतक स्वर्गलोकमें विवास करता है। जो मनुष्य मालाका, मालाती, जाती, गेताती, अरोक, चम्पा, धूमल, नाराजेमर, चकुल (चौलभीरी), उत्पल जातिके बज्जल, तुलसी, बज्जेर, जलजल—इनसे तथा अन्य उत्तम पुष्टीसे भगवान् को पूजा करता है, वह प्रत्येक उपर्युक्त वदाते दस मूर्ख नृदा दान करनेका फल प्राप्त करता है। जो यथारात्र उपर्युक्त पुष्टीकी माला बनाकर उससे भगवान् विष्णुओं पूजा करता है, वह मैकड़ी और हजारों कठोर झट्टकोलक दिव्य विमानपर आरुक हो विष्णुलोकमें अनन्दित होता है। जो छिद्ररहित अद्यन्दिरा विमानपर्कों और तुलसीदलोंसे भक्तिपूर्वक नृसिंहका पूजन करता है, वह सब जातेंमें सर्वोदय मुक्त हो, सब प्रकारके भूषणोंसे भूषित होकर रसेनेके विमानपर आरुक हो विष्णुलोकमें सम्मान पाता है ॥ १७—२५ ॥

राजेन्द्र (जो माहिष मुण्डुल, यो और शक्तरसे तैयार की हुई धूपको भगवान् नरसिंहके लिये भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, वह सब दिव्यदोमें धूप करनेसे सब पापोंसे रहित हो अपमानज्ञोंसे पूले विमानद्वारा वायुलोकमें विमानपर होता है और तात्त्व आकर्णोपभोगके पश्चात पुनः विष्णुभाष्यमें जाता है।

घतेन वाथ तैलेन दीपं प्रञ्चालयेव्रः ।
विष्णवे विधिवद्वक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २७
विहाय पापकलिलं सहस्रादित्यसप्तभः ।
ज्योतिष्पता विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २८
हविः शाल्योदनं विद्वानान्ययुक्तं मशकरम् ।
निवेद्य नरसिंहाय यावकं पायसं तथा ॥ २९
समाप्तन्दुलसंख्याया यावतीसतावतीर्णपृष्ठ ।
विष्णुलोके महाभोगान् भुद्वत्रास्ते स वैष्णवः ॥ ३०
बलिना वैष्णवेनाथ नृष्णः सनो दिवीकसः ।
शान्तिं तस्य प्रयच्छन्ति श्रियमारोग्यपेत्य च ॥ ३१
प्रदक्षिणोन चौकेन देवदेवस्य भक्तिः ।
कृतेन यत्कलं नृणां तच्छृणुच्च नृपात्यज ॥ ३२
पृथ्वीप्रदक्षिणफलं प्राप्य विष्णुपुरे वसेत् ।
नमस्कारः कृतो येन भक्त्या वै माधवस्य च ॥ ३३
धर्मार्थकामपोक्षाख्यं फलं तेवाममञ्जसा ।
स्तोत्रैर्जपेश्व देवाये यः स्तौति प्रधुमूदनम् ॥ ३४
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।
गीतयादादिकं नाटयं शङ्खनूर्यादिनिःस्वर्णः ॥ ३५
यः कारयति वै विष्णोः स याति यन्दिरं नरः ।
पर्वकाले विशेषेण कामगः कामरूपवान् ॥ ३६
सुसंगीतविट्ठीय सेव्यमानोऽप्सरोगणीः ।
महार्हपणिचित्रेण विमानेन विराजता ॥ ३७
स्वर्गात् स्वर्गमनुप्राप्य विष्णुलोके महीयते ।
ध्वजं तु विष्णवे यस्तु गरुडेन समन्वितम् ॥ ३८
दद्यात्सोऽपि ध्वजाकीर्णविमानेन विराजता ।
विष्णुलोकपवाजोति सेव्यमानोऽप्सरोगणीः ॥ ३९
सुवर्णाभरणीदिव्यैहारकेष्यूकुण्डलैः ।
मुकुटाभरणादैश्च यो विष्णुं पूजयेत्पृष्ठ ॥ ४०
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः ।
इन्द्रलोके वसेद्वामान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ४१

जो मनुष्य विष्णुपूर्वक भक्तिके साथ वै अथवा तेलसे भगवान् विष्णुके लिये दीपं प्रञ्चलित करता है, उस पुण्यका फल सुनिष्टये । वह पाप-पूर्वसे मुक्त होकर हजारों शूलके समाप्त करना धर्मज्ञव ज्योतिष्मंत्र विमानसे विष्णुलोकको जाता है । जो विद्वान् हविष्य, पी-शक्तरसे मुक्त अग्रहनीका चालन, औंकी लप्तसी और द्वीप भगवान् नरसिंहको निषेदन करता है, वह वैष्णव चावलोंकी संख्याके बराबर वर्णोत्तम विष्णुलोकमें महान् भोगोंका उपभोग करता है । भगवान् विष्णुसप्तष्ठी बलिसे सम्पूर्ण देवता तृष्ण होकर पूजा करनेवालेको शान्ति, लक्ष्मीं तथा आरोग्य प्रदान करते हैं ॥ ३८—३९ ॥

उत्तमकुमार । भक्तिपूर्वक देवदेव विष्णुकी एक वार प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्योंको जो फल मिलता है, उसे सुनिष्टये । वह सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करनेका फल प्राप्त करके शङ्खपूर्णधर्ममें निवास करता है । विस्ते कभी भक्तिप्राप्तसे भगवान् लक्ष्मीपतिको नमस्कार किया है, उसने अनाश्रय ही भर्त, अर्थ, काम और मोक्षालय कल प्राप्त कर दिया । जो स्तोत्र और जपके द्वारा मधुसूदनकी दृग्में समझ होता भूति करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूरित होता है । जो भगवान् के भवित्वमें लक्ष्मी आदि धारोंके प्रसादसे युक्त गाना-वज्राना और नाटक करता है, वह मनुष्य विष्णुपूर्णमको प्राप्त होता है । विशेषतः पवित्र समय उत्क उत्तमस फरनेसे मनुष्य कामसूक्ष्म होकर सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है और नूनदर संगोत जानेवाली अपवाहाओंसे शोभायमान बहुमूल्य भवित्वोंसे जाहे हुए देवीवर्मान विमानके द्वारा एक स्वर्णसे दूसरे स्वर्णको प्राप्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । जो भगवान् विष्णुके लिये गणहृषिकेसे युक्त शक्त अर्पण करता है, वह भी ध्वजामणिङ्गत जगमगाने हुए विमानपर अरुण हो, अप्सराओंसे सेवित होकर विष्णुलोकको जान होता है ॥ ३२—३९ ॥

नरेश्वर । जो सुखर्णिक बने हुए दिव्य हार, केयूर, कुण्डल और मुकुट आदि आभरणोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह बुद्धिमान् सब यात्रीसे मुक्त और सब आभूषणोंमें भूषित होकर जगतक चौदह इन्द्र राज्य करते हैं, जगतक (अथवा पूर्ण एक अस्त्रक) इन्द्रलोकमें निवास करता है ।

यो गां पथस्विनों विष्णोः कपिलो सम्प्रवच्छति ।
आराध्य तपथाग्रे तु वल्किंचिद्बुधमुत्तमम् ॥ ४२
तहत्त्वा नरसिंहाय विष्णुलोके महोदये ।
पितरस्तस्य पोदन्ते श्वेतद्वीपे विरे नृप ॥ ४३
एवं यः पूजयेद्राजन् नरसिंहं नरोत्तमः ।
तस्य स्वर्गापवर्गं तु भवतो नात्र संशयः ॥ ४४
यत्रैवं पूज्यते विष्णुर्नरसिंहो नैर्नृप ।
न तत्र व्याधिदुर्धिद्वाराजचौरादिकं भवयम् ॥ ४५
नरसिंहं समाराध्य विधिनानेन माधवम् ।
नानास्वर्गसुखं भूकर्त्ता न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ४६
नित्यं सर्विस्तर्लहोमो ग्रामे वस्त्रिन् प्रवत्तते ।
न भवेत्तस्य ग्रामस्य भवं वा तत्र कुत्रचित् ॥ ४७
अनावृष्टिर्घट्टामारी दोषा नो दाहका नृप ।
नरसिंहं समाराध्य द्वाहणीर्वेदधारणीः ॥ ४८
कारयेदलक्ष्मीहोमं तु ग्रामे वत्र पुराधिपः ।
कृते तस्मिन्नयोक्ते तु आगच्छति न तद्वयम् ॥ ४९
दृष्टोपमर्गमरणं प्रजानामात्मनक्षुं हि ।
सम्यगाराधनांयं तु नरसिंहस्य भविन्द्रे ॥ ५०
शङ्खराधयतने चापि कोटिहोमं नराधिप ।
कारयेत् संयतीर्विष्टः सभोजनसदक्षिणीः ॥ ५१
कृते तस्मिन्नुपश्चेष्ट नरसिंहप्रसादतः ।
उपसर्गादिमरणं प्रजानामुपशाम्यति ॥ ५२
दुःस्वप्नदशने धोरे ग्रहपीडाम् चात्मनः ।
होमं च भोजनं चैव तस्य दोषः प्रणश्यति ॥ ५३
अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।
नरसिंहं समाराध्य लक्ष्मीहोमं तु कारयेत् ॥ ५४
शान्तिर्भवति राजेन्द्र तस्य तत्स्थानवासिनाम् ।
एवमादिफलोपेतं नरसिंहार्चनं नृप ॥ ५५
कुरु त्वं भूपते: पुत्र यदि वाज्ञायि सद्गतिम् ।
अतः परतरं नास्ति स्वर्गापोक्षफलप्रदम् ॥ ५६

जो विष्णुको आराधना करके उनके लिये दुधार कपिला
गी दान करता है और उन भगवान् नृसिंहके समक्ष
उसका उत्तम दूध शोक्ता-सा भी अर्पण करता है, वह
विष्णुलोकमें सम्मानित होता है तथा राजन् । उसके पितर
चिरकालतक श्वेतद्वीपमें आनन्द भोगते हैं । भूपाल ! इस
प्रकार, जो वरत्रेष्ठ नरसिंहस्वरूप भगवान् विष्णुका पूजन
करता है, उसे स्वर्ग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं,
इसमें संशय नहीं है ॥ ५०—५४ ॥

नृप ! जहाँ पनुपृष्ठोंद्वारा इस प्रकार भगवान् नरसिंहका पूजन
होता है, वहाँ रोग, अकाल और राजा तथा चोर आदिका भय
नहीं होता । इस विधिसे लभीपति नरसिंहकी आराधना करके
मनुष्य जला प्रकारके स्वर्ग-सुख भोगता है और पुनः उसे [
संसारमें जन्म लेकर] मालाका दूध नहीं पीना पड़ता [वह
मुक्त ही जाता है] । जिस गौषधमें भगवानके भवित्वके विकट
प्रतीक्षित भी और तिलसे होम होता है, उस गौषधमें अनावृष्टि,
महामारी आदि दोष तथा अग्निदाह आदि किसी प्रकारका भय
नहीं होता । जिस गौषधमें गौमधा मालिक ऐश्वर्यता ग्राद्यामोङ्गोरा
नरसिंहकी आराधना कराकर एक लक्ष होम वरता है, वहाँ
भी उपरानुसार वह एकां यम्भल होनेपर महामारी
आदि द्वारा उपद्रवसे क्लोक्य तथा उस गौषधमें रहनेवालों
प्रजाकृत अव्याहारमन्तर नहीं होता । इसलिये भगवान् नरसिंहके
भवित्वमें भली प्रकारसे अराधना करनी चाहिये ॥ ५५—५० ॥

नरेश ! इसी प्रकार शङ्खालीके भवित्वमें भी संयमशील
ग्राद्यामोंकि द्वारा उन्हें भोजन और दधिणा देकर एक
करोड़की संख्यामें हवन कराना चाहिये । नृप ! उसके
करनेपर भगवान् नरसिंहके प्रसादसे प्रजाकरणका आकर्षणका
उपयोग तथा मनुष्यभूत शान्त हो जाता है । और दुःस्वप्न
देखनेपर और अपने कपर ग्रहजन्य ब्रह्म आनेपर होम
और जाइलाभोजन करनेमें उसका दोष मिट जाता है ।
दधिणाद्यन या उत्तराध्य आराध्य होनेपर, विषुवकालमें,
आवश्य यन्मास तथा सूर्यका ग्रहण होनेपर भगवान् नरसिंहकी
आराधना करके लक्ष्मीहोम कराना चाहिये । राजेन्द्र ! यों
करनेमें उस स्थानके विषासियोंके विष्णुकी शान्ति हो
जाती है । नरेश ! भगवान् नरसिंहको पूजाके ऐसे अनेकों
फल हैं । भूपालनन्दन ! यदि तुम सदृश चाहते हो तो
नरसिंहका पूजन करो । इससे वहकर कोई भी कार्य ऐसा
नहीं है, जो स्वर्ग और मोक्षरूप फल देनेवाला हो ।

* विष दिन दिन-रात वरापर होते रहे विषुवकाल कहा जाता है । ऐसा यम्भल कलमें दो बार आता है ।

नरेन्द्रः सुकरं कर्तुं देवदेवस्य पूजनम्।
सन्न्यरण्ये ह्यमूल्यानि पत्रपुष्पाणि शाखिनाम्॥ ५७
तोयं नदीतडागेषु देवः साधारणः स्थितः।
मनो नियमयेदेकं विद्यासाधनकर्मणि ॥ ५८
मनो नियमितं येन मुक्तिसत्तम्य करे स्थिता ॥ ५९

मार्कंडेय उल्लङ्घन

इत्येवमुक्तं भृगुचोदितेन
भया तदेहाच्चनमच्युतस्य।
दिने दिने त्वं कुरु विष्णुपूजां
वदस्य चान्यत्कथयामि किं ते ॥ ६०

इति श्रीनरसिंहसुराणे सहस्रवीकरणात् श्रीविष्णवः पूजाविधिर्वाच श्रूतिभास्त्रशब्दः ॥ ३४ ॥

इति प्रकार श्रीनरसिंहसुराणे सहस्रवीकरण-वाचिकां श्रूतिभास्त्रशब्द-विष्णुपूजा कृतिशब्दान् श्रीनरसिंहसुराणे श्रूतिभास्त्रशब्द-विष्णुपूजा कृतिशब्दान् श्रीनरसिंहसुराणे श्रूतिभास्त्रशब्द-विष्णुपूजा कृतिशब्दान् ॥ ३४ ॥

देवदेव नृसिंहका पूजन राजाओंके लिये तो अहुत ही सुकर है। परंतु जो अरण्यमें रहते हैं, उन्हें भी भगवान्-की पूजाके लिये तृष्णोंके पत्र-पुष्प विद्या मूल्य प्राप्त हो सकते हैं। जल नदी और तडाग आदिमें सूलभ है ही और भगवान् नृसिंह भी सबके लिये समान है; केवल उन टपासनाके साधनभूल कर्ममें मनकी एकाग्रता चाहिये। जिसने मनका नियमन कर लिया है, मुक्ति उसके हाथमें ही है ॥ ५१—५५ ॥

मार्कंडेयजी बोले—इस प्रकार भृगुजीकी आज्ञामें मैंने तुमसे यहीं भगवान् विष्णुके पूजनका शर्णन किया है। तुम प्रतिदिन भगवान् विष्णुका पूजन करो और योलो, अब मैं तुम्हें और क्या बाताकै? ॥ ६० ॥

पैंतीसवाँ अध्याय

तदावदाच
अहो महत्त्वया प्रोक्तं विष्वाराधनं फलम्।
सुप्राप्ते मुनिशार्दूल ये विष्णु नार्चयन्ति वै ॥ १
त्वत्प्रसादाच्युतं होतप्रसिंहाच्चनकम्।
भक्त्या तं पूजयिष्यामि कोटिहोमफलं चद ॥ २

मार्कंडेय उल्लङ्घन

इममर्थं पुरा पृष्ठः शीनको गुरुणा नृप ।
यत्तस्यै कथयामास शीनकस्तद्वदामि ते ॥ ३
शीनकं तु सुखासीनं पर्यपञ्चद वृहस्पतिः ।

भृहस्पतिवाच

लक्ष्मीहोमस्य या भूमिः कोटिहोमस्य या शुभा ॥ ४
तां मे कथय विप्रेन्द्र होमस्य चरिते विधिम् ।

मार्कंडेय उल्लङ्घन

इत्युक्तो गुरुणा सोऽथ लक्ष्मीहोमादिके विधिम् ॥ ५
शीनको वक्त्वमारेभे यथावत्प्रपसन्तम् ।

ताजा बोले—अहो! आपने श्रीविष्णुकी आराधनासे हीनेकाले यहुत चढ़े फलका शर्णन किया। मुनिषेष्ठ! जो भगवान् विष्णुको पूजा नहीं करते, वे अवश्य ही [मोहनियमें] सोने द्युए हैं। मैंने आपको कृपासे भगवान् नृसिंहके पूजनका यह क्रम सुना; अब मैं भक्तिपूर्वक उनको पूजा करूँगा। आप कृपा करें (लक्ष्मीहोम तथा) कोटिहोमका फल चालाइये ॥ १—२ ॥

मार्कंडेयजी बोले—नृप! पूर्वकालमें इसी विद्यको चृहस्पतिजीने शीनक श्रूतिमें पूछा था, इसके उत्तरमें उनमें शीनकजीने जो कुछ यताया, यही मैं तुमसे कह रहा हूँ। सुखपूर्वक चैठे द्युष शीनकजीसे चृहस्पतिजीने इस प्रकार प्रश्न किया ॥ ३५ ॥

चृहस्पतिजी बोले—विप्रेन्द्र! लक्ष्मीहोम और कोटिहोम-के लिये जो भूमि प्रशसन हो, उसको मुझे बताइये और होमकर्मको विधिका भी बताइये ॥ ४१ ॥

मार्कंडेयजी बोले—नृपनर! चृहस्पतिजीके इस प्रकार कहनेपर शीनकजीने लक्ष्मीहोम आदिकी विधिका चरणवान् वर्णन आरम्भ किया ॥ ४२ ॥

अनेक द्वाष
प्रवक्ष्यामि यथावते शृणु देवपुरोहितः ॥ ६
लक्ष्मीमहाभूमि तद्विशुद्धिं विशेषतः।
यज्ञकर्मणि शस्ताया भूमेर्लक्षणमुत्तमम् ॥ ७
सुसंस्कृतां सप्तां स्त्रियां पूर्वपूर्वमधोत्पाम्।
ऋग्मात्रं खनित्वा च शोधयेत्तां विशेषतः ॥ ८
बहिरच्छतया तत्र मृदाच्छाद्य प्रलेपयेत्।
प्रमाणं बाहुमात्रं तु सर्वतः कुष्ठलक्षणम् ॥ ९
चतुरस्त्रं चतुष्कोणं तुल्यमूत्रेण कारयेत्।
उपरि पेखलां कुर्याच्यतुरस्त्रां सुविस्तराम् ॥ १०
चतुरहूलमात्रं तु उच्चितां मूत्रसुत्रिताम्।
आहाणान् चेदसम्प्रान् आहाकर्मसमन्वितान् ॥ ११
आमन्त्रयेद् यथान्यायं यजमानो विशेषतः।
द्रह्याचर्यव्रतं कुर्यास्विरात्रं ते द्विजातयः ॥ १२
अहोरात्रपुषोद्याय गायत्रीमयुतं जपेत्।
ते शुक्लवाससः राता गन्यस्वकपुष्यपारिणः ॥ १३
शुचयश्च निराहाराः संतुष्टाः संयतेन्द्रियाः।
कौशमासनपासीना एकाग्रमनमः पुनः ॥ १४
आरभेयुश्च ते यत्वात्तो होममतन्त्रिताः।
भूमिमालिख्य चाभ्युक्ष्य चत्रादग्निं निधापयेत् ॥ १५
गृहोक्तेन विधानेन होषं तत्र च होपयेत्।
आयारावान्यधारी च जुहुयात्पूर्वमेव तु ॥ १६
यवधान्यतिलैमिश्रां गायत्र्या प्रथमाहुतिम्।
जुहुयादेकचित्तेन स्वाहाकारान्वितां वृथः ॥ १७
गायत्री छन्दसां माता द्रह्यायोनिः प्रतिष्ठिता।
सविता देवता तस्या विश्वामित्रस्तथा त्र्यपि: ॥ १८

जीनकर्त्ता वोले—देवपुरोहित! मैं लक्ष्मीमहाभूमि के उपयुक्त विस्तृत भूमि और उसको सुदिका विशेषतासे यथावत् वर्णन करूँगा, आप सुनें। यज्ञकर्मणे के लिये प्रशस्त भूमिका उत्तम लक्षण (संस्कार) इस प्रकार है ॥ ६—७ ॥

जो भूमि अच्छी तरह संस्कार की हुई हो, ब्रह्मवर हो और विकनो हो [वे सभी चाहें हों तो परम उत्तम भूमि हैं; सभी चाहें न संविदित हों तो] पूर्व-पूर्वकी भूमि उत्तम है। [अर्थात् विकनोहो अपेक्ष ब्रह्मवर भूमि अरहो है और उससे भी सुसंस्कृत भूमि उत्तम है।] ऐसी उत्तम भूमिको ज्ञ (कर) -पर्वत इंद्रियकर उसका विशेषतापरे [गङ्गाजल एवं पश्चात्याटि दिव्यकल] शोधन करें और कुण्डके बाहर स्वच्छताके लिये विद्वि [तथा गोपाल] इंद्रियकर लिपायें। युग्म सब ओरमेएक लाभ लाया और उतना ही भीड़ होना चाहिये—यही कुण्डका संस्कृत है। एक इंद्रियकर सूता लेकर उसीमें मध्य करके भाईं ओरमेचरावर और चौकोर कुण्ड करना चाहिये। कुण्डको उसमें भी चर अंगुलकी ही हो और वह सूतमेपरिवृत हो ॥ ८—१० ॥

इसके बाद यजमानजो चाहिये कि वह आहाणीयित कर्मका प्राप्तन करनेवाले योद्येता आहाणोंको शास्त्रोक्त गीतिये आमन्वित करें। यजमान और उन आहाणोंको तीन गीतिक विशेषतापरे प्रत्यक्ष्यप्रत्यक्षका प्राप्तन करना चाहिये ॥ ११—१२ ॥

विद्वान् एक दिन और एक रात्रि उपवास करके दस हजार गायकोंका लग करें। [हृष्ण आरम्भ होनेवें दिन] विद्वान् भी यान करके सुन्द एवं खेत वस्त्र धारण करें। फिर गन्य, पुरुष और माता भारत लकरके पवित्र, संतुष्ट और जितेन्द्रिय होकर, भोजन किये बिना ही कुशके बने हुए आमनवर एकाग्राचित्तमें बैठें। तदनन्तर वे यज्ञपूर्वक निरालग्नधारसे हवन आरम्भ करें। पहले गुह्यसुत्रोक्त विधिसे भूमिपर [कुशोंसे] रेणु करके उसे सींचे और बहों यहसे अष्टी-स्नानप्रयोग करें। फिर उस अष्टीमें हवनीय पदार्थोंका होम करें। सर्वाप्रथम आपार और आपाभाग—वे दो होम करने चाहिये। विद्वान् पुरुष जी, चावल और तिल [एवं धूत अदिसे] मिक्ति प्रथम आहुतिका गायत्री-गन्यद्वाषा [अन्तर्म] स्वाहाके उच्चारणपूर्वक एकाग्राचित्तसे हवन करें। मायत्री उन्दोंकी माता और ब्रह्म (येद)-की योनिरूपसे प्रतिष्ठित हैं। उसके देवता सविता हैं और त्र्यपि विश्वामित्रही हैं। (इस प्रकार गायत्रीका विनियोग बताया गया) ॥ १३—१८ ॥

ततो व्याहुतिभिः पश्चाज्जुहुयात्य तिलान्वितम्।
यावत्प्रपूर्वते संख्या लक्ष्मे वा कोटिरेव वा ॥ १९
तावद्दोषं तिलैः कुर्यादच्युतार्चनपूर्वकम्।
दीनानाथजनेभ्यस्तु यजमानः प्रयत्नतः ॥ २०
तावच्य भोजनं दद्याद् यावद्दोषं समाचरेत्।
समासे दक्षिणां दद्याद् ऋत्विष्यः श्रद्धयान्वितः ॥ २१
यथाहंता न लोभेन ततः शान्त्युदकेन च।
प्रोक्षयेद् ग्राममध्ये तु व्याधितास्तु विशेषतः ॥ २२
एवं कुते तु होमस्य पुरस्य नगरस्य च।
राष्ट्रस्य च महाभाग राज्ञो जनपदस्य च।
सर्वबाधाप्रशामनी शान्तिर्भवति सर्वदा ॥ २३

गायत्रेय उक्ताय

इत्येतच्छानकप्रोक्तं कथितं नृपतन्दनं।
लक्ष्महोमादिकविधिं कार्यं राष्ट्रे सुशान्तिदम् ॥ २४
ग्रामे गृहे वा पुरवाह्यदेशे
द्विजीरयं यद्यकृतः पुरोविधिः।
तत्रापि शान्तिर्भविता नराणां
गया च भूत्यैः सह भूपतेश्च ॥ २५

इति शीर्णसिंहपूर्वम् 'तद्यत्येतिर्भविता वर्द्धं' नामक दीनसर्वा अस्याच पूरा हुआ ॥ ३६ ॥
इस प्रकार शीर्णसिंहपूर्वम् 'तद्यत्येतिर्भविता वर्द्धं' नामक दीनसर्वा अस्याच पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

प्राप्ति ॥ तत्त्वम्

छत्तीसवाँ अध्याय

गायत्रेय उक्ताय
अवतारानहं वक्ष्ये देवदेवस्य चक्रिणः।
ताव्युष्णुष्व महीपाल पवित्रान् पापनाशनान् ॥ १
यथा भत्येन रूपेण दत्ता वेदाः स्ववाम्बुद्वे।
पधुकैटभी च निधनं प्रापितौ च महात्मना ॥ २
यथा कौर्मेण रूपेण विष्णुना मन्दरो धृतः।
तथा पृथ्वी धृता राजन् वाराहेण महात्मना ॥ ३

केवल गायत्रोंसे हवन कर लेनेके पश्चात् ['भूर्पूर्वः स्वः'—इन] तीन व्याहुतियोंसहित गायत्री-मन्त्रसे केवल तिलका हवन करे। जबतक हवनको संख्या एक लाख वा एक करोड़ न हो जाय, तबतक भगवान् विष्णुके पूजनपूर्वक तिलदारा हवन करते रहना चाहिये और जपकर हवन करे, तबतक यजमानको चाहिये कि वह यजपूर्वक सोनों और अनाधीनोंको भोजन दे। हवन समाप्त होनेपर अहितजोंको लक्ष्मपूर्वक लोभ त्यागकर गायत्रीचित दर्शिता है। तत्पत्तात् [प्रथम स्थापित किये हुए] शान्ति-कमलके जलसे उस ग्राममें रहनेवाले सभी मनुष्यों—किसेप्त: रीतियोंको अभिवेद करे। महाभाग ! इस प्रकार विधिवत् होमका अनुष्ठान करनेपर युर (गांव), परार, जनपद (प्रान्त) और समस्त राष्ट्रकी सारी बाधाओं दूर करनेवाला शान्ति विरक्त बनी रहती है ॥ १९—२५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—नृपतन्दन ! इस प्रकार शीर्णक मूर्तिका बताया हुआ रक्षसोम-विधिका अनुष्ठान जो वर्षात् राष्ट्रमें शूष्ट शान्ति प्रदान करनेवाला है, मैंने तुम्हें बताया । वैद वाह्यलोक्ताः यह पूर्वोक्त होम-विधि ग्राममें, ग्राममें अथवा युरके बाहर प्रयत्नपूर्वक करवायी जाय तो त्वहों भी मनुष्योंको, गौओंको और अनुचरोंसहित राजाको पूर्णतया शान्ति प्राप्त हो सकती है ॥ २६—२८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—महोपाल ! अब मैं देवदेव भगवान् विष्णुके पवित्र एवं पापनाशक अवतारोंका वर्णन करूँगा; उन्हें सुनो ॥ १ ॥

भगवान् विष्णुने जिस प्रकार महस्यरूप भारतका [प्रलयकालीन समुद्रमें खोये हुए] वैद साकर ब्रह्माजीको अपित किये और मधु तथा कैटभ नामक दैत्योंको भीतके घास उत्ताल, फिर उन भगवान् विष्णुने जिस प्रकार कूर्मस्वरूपसे मन्दरात्म यर्कत भारण किया और महाकाय बराह-

तेनेव निधनं प्राप्तो यथा राजन् महाबलः।
हिरण्याशो महावीरो दितिपुत्रो महात्मः॥ ५
यथा हिरण्यकशिपुस्त्रिवदशानामरि: पुरा।
नरसिंहेन देवेन प्रापितो निधनं तुप॥ ६
यथा बृद्धो बलिः पूर्वं वामनेन महात्मना।
इन्द्रस्त्रिभुवनाध्यष्ठः कृतस्तेन नृपात्मजः॥ ७
रामेण भूत्वा च यथा विष्णुना राघवो हनः।
सरगणाक्षादभुता राजन् राघवसा देवकण्टकाः॥ ८
यथा परशुरामेण क्षत्रमुत्सादितं पुरा।
बलभद्रेण सरमेण यथा देत्यः पुरा हनः॥ ९
यथा कृष्णेन कंसाद्या हता देत्याः सुरद्विषः।
कली प्राप्ते यथा बृद्धो भवेश्वराराघवः प्रभुः॥ १०
कलिकलयं समाप्त्वा यथा म्लेच्छा निपतिताः।
समाप्ते तु कली भूयसत्त्वा ते कथयामयहम्॥ ११
हरेरनननय पराक्रमं च;
भृणोति भूपाल समाहितात्मा।
मयोच्यगानं स विमुच्य पापं
प्रयाति विष्णोः पदमत्पुदारम्॥ १२

अवतार सेवक [अप्तो दाढ़ीपर] इस पृष्ठीको उठाया तथा राजन्। उन्होंके हाथसे जिस प्रकार भावली, महापराक्रमी और भवाकाय दितिकुमार हिरण्याश मारा गया; राजन्। किं उन भगवान्ने नृसिंहप भारणकर पूर्वकालमें जिस प्रकार देवताओंके शशु हिरण्यकशिपुका यथा किया; और रावकुमार! जिस प्रकार उन महाभाने वामनात्म होकर पूर्वकालमें राजा बलिको यौथा तथा इन्होंको (फिरसे) विभुवनात्म अधीक्षर बना दिया; और राजन्। भगवान् विष्णुने श्रीरामपरमात्मा अवतार भारणकर लिया उक्तार दवणको माय एवं देवताओंके लिये काटकलप अद्भुत राखातोका उनके गांगोंसहित संहार कर दिया; फिर पूर्वकालमें परमात्मा-अवतार है, जिस प्रकार शत्रियकुलका उपर्युक्त किया तथा बलभद्रस्त्रपते जिस प्रकार प्रलभ्यादि देवताओंका यथा किया; कृष्णकाय होकर कंस आदि देवताओंका लक्षण किया हुह संहार किया; इसे इकात्तर कालिमुग्र रूप होनेपर जिस प्रकार भगवान् वाराणसि चुदाहय भारण करेंगे; फिर कलिमुग्र समयसे होनेपर जिस प्रकार वे कलिकलयं भारणकर म्लेच्छाओंका नाश करेंगे, वह सब पूर्वान्त दसी प्रकार में तृप्तसे बहूणा॥ २—१०॥

भूपाल। जो एकात्तरविसं होकर भैरवारा बताये जानेकाले अवन भगवान् विष्णुके इन परमात्मोंका द्रवण करेंग, वह सब चाहोंसे मुक्त होकर भगवान्के अवन उदार परमपदको प्राप्त होया॥ ११॥

ॐ श्रीकर्तिकपुराणे हरे: शुद्धिर्भूत्यक्षये कृतिर्विष्णोऽप्यप्यः॥ २५॥

२५ एवं श्रीकर्तिकपुराणे 'कृतिर्विष्णोऽप्यप्यः' श्रीकर्तिकपुराणे 'शुद्धिर्भूत्यक्षये कृतिर्विष्णोऽप्यप्यः' (पाठक) विष्णुक सत्तीर्थोऽप्यप्यप्यः पूरा हुआ॥ २५॥

सेतीसवाँ अध्याय

मत्स्यावतार तथा मधु-केटभ-वध

मालेश्वर भगवान्
नानात्वादवताराणामच्युतस्य महात्मनः।
न शक्यं विस्तराद् वकुं तान् द्वयीमि समाप्ततः॥ १
पुरा किल जगत्कृष्णा भगवान् पुरुषोत्तमः।
अनन्तभोगशब्दे योगनिद्रां समाप्तः॥ २

माकेण्डेश्वरी छोले—महाभाव भगवान् अच्युतके बहुत मे अवतार हैं, मूलर्ण उनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता, इसलिये मैं उन्हें संक्षेपमें ही कहता हूँ। यह प्रसिद्ध है कि पूर्वकालमें जगत्कृष्णी सुहि क्षमेवासे भगवान् पुरुषोत्तम 'अनन्त' नामक सेवनामांके शरीरकी शम्भवापर

अथ तस्य प्रसुप्तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः।
ओत्राभ्यामपतन् तोये स्वेदविन्दुद्युयं नृप॥ ३
मधुकैटभनामानी तस्पाज्ञाती महाबली।
महाकार्यी महार्दीर्घी महाबलपराक्रमी॥ ४
अच्युतस्य प्रसुप्तस्य महत्यन्तमजायत।
नाभिमध्ये नृपश्चेष्ट तस्मिन् ब्रह्माभ्यजायत॥ ५
स चोक्तो विष्णुना राजन् प्रजाः सुज महामते।
तथेत्युक्त्वा जगत्राथं ब्रह्मापि कमलोद्धवः॥ ६
वेदशास्त्रवशाद्यावत् प्रजाः स्वरूपं समुद्धतः।
तावत्तत्र समायाती तावुभी पथुकैटभी॥ ७
आगत्य वेदशास्त्रार्थविज्ञानं ब्रह्मणः क्षणात्।
अपहृत्य गती घोरी दानवी अलदर्पिती॥ ८
ततः पश्चोद्धवो राजन् ज्ञानहीनोऽभवत् क्षणात्।
दुरिखतश्चिन्तयापास कर्त्तव्यं स्वरूप्यामि वै प्रजाः॥ ९
चोदितस्त्वं सुजस्वेति प्रजा देवेन तत्कथम्।
स्वरूपेऽहं ज्ञानहीनस्तु अहो कष्टमुपस्थितम्॥ १०
इति संचिन्त्य दुःखाती ब्रह्मा लोकपितामहः।
यत्तो वेदशास्त्राणि स्मरन्नपि न दृष्टवान्॥ ११
ततो विष्णुनिधये नमो तदेवं पुरुषोत्तमम्।
एकाप्रमनसा सम्यक् शास्त्रेण स्तोतुपारभत्॥ १२

ब्रह्माभ्य

योगनिद्राका आश्रय लेकर सोये हुए थे। नृप! कुछ कालके बाद उन गहरों दोनोंमें सोये हुए देवदेव शार्ङ्गिण्या विष्णुके कानोंसे पसीनेको दो बूँदें निकलकर जलमें गिरी। उन दोनों बूँदोंसे मधु और कैटभ नामके दो दैत्य उत्पन्न हुए, जो महाबली, महान् शक्तिशली, भगवान्क्रमो और महाकाय थे। नृपश्चेष्ट! इसी समय उन सोये हुए भगवान्की नाभिके बीचमें महान् कमल प्रकट हुआ और उससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए॥ ६—१२॥

राजन्! भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे कहा—‘महामते! तुम प्रजाजनोंकी सुष्ठि करो।’ यह सुन उन कमलोद्धव ब्रह्माजीने ‘तथास्तु’ कहकर भगवान् जगत्राथकी आज्ञा स्वीकार कर ली तथा येदों और जास्तोंकी महायतासे नै ज्ञान हो सुष्ठि-रक्षनाके लिये उत्थात हुए, त्यों हो उनके पास वे दोनों दैत्य—मधु और कैटभ आये। आते ही वे ब्रह्माभिमानी घोर दानव शरणभरमें ब्रह्माजीके वेद और शास्त्र-ज्ञानको स्वेकार खले गये। राजन्! तब ब्रह्माजी एक ही ज्ञानमें ज्ञानशून्य हो दुःखी हो गये और सोचने लगे—“हाव! अब मैं कैसे प्रजाकी सुष्ठि करेंगा? भगवान्से मुझे ज्ञान दी कि ‘तुम प्रजाकी सुष्ठि करो।’ परंतु अब तो मैं सुष्ठिविज्ञानमें रहित हो गया, अतः किस प्रकार सुष्ठिरक्षना करेंगा? अहो! मुश्किल यह बहुत अदा करना आ गहूँचा॥” स्वेकारपितामह ब्रह्माजी इस प्रकार चिन्ता करते-करते शीरक्षे कातर हो गये। वे प्रयत्नपूर्वक वेद-शास्त्रोंका स्मरण करने लगे, तथापि उन्हें उनकी स्मृति नहीं हुई। तब वे मन-हो-मन अस्वस्त दुःखी हो, एकाप्रचित्तसे भगवान् पुरुषोत्तमकी ज्ञानवानुकूल विधिसे मनुषि करने लगे॥ ६—१२॥

ब्रह्माजी बोले—जो वेद, शास्त्र, विज्ञान और कर्मोंकी विधि हैं, उन द्वेष्कार-प्रतिषाद्य परमेश्वरको मेरा बार बार नमस्कार है। समस्त विद्याओंको धारण करनेवाले वाणीपति भगवान्को प्रणाम है। अचिन्त्य एवं सर्वज्ञ परमेश्वरको वित्य बारेबार नमस्कार है। महावाहो! अशोक्षज! आप निराकार एवं वज्रस्वरूप हैं। आप ही सामर्पीत एवं सदा सर्वरूपधारी हैं। अच्युत! आप सर्वज्ञनमय हैं; आप सबके हृदयमें ज्ञानरूपसे विराजमान हैं। देवदेव! आप मुझे सब प्रकारका ज्ञान दोजिये; आपको बारेबार नमस्कार है॥ १३—१६॥

मर्त्त्यवौद्य उक्तं

इत्यं स्वतस्तदा तेन शङ्खचक्रगदाधरः ।
ब्रह्माणमाह देवेशो दास्ये ते ज्ञानमुन्नमम् ॥ १७

इत्युक्त्वा तु तदा विष्णुक्षिन्तयामास पार्थिव ।
केनास्य नीतं विज्ञाने केन रूपेण चादधे ॥ १८

मधुकैटभक्तं सर्वमिति ज्ञात्वा जनादेनः ।
मात्स्यं रूपं समास्थाय बहुयोजनमायतम् ।

बहुयोजनविस्तीर्णं सर्वज्ञानमयं नृप ॥ १९

स प्रविश्य जले तूर्णं क्षोभयामास तद्गुटः ।
प्रविश्य च स पाताले दृष्टवान्मधुकैटभी ॥ २०

ती मोहित्वा तुमुलं तम्भाने जगुहे हरिः ।
वेदशास्त्राणि पुनिभिः संसुतो मधुमूदनः ॥ २१

आनीय खहाणे दत्त्वा त्यक्त्वा तन्मात्स्यकं नृप ।
जगद्विताय स पुनर्योगनिद्रावशः गतः ॥ २२

ततः प्रद्युम्नी संकुच्छी नावुभी मधुकैटभी ।
आगत्य ददृशाते तु शयाने देवमध्यवयम् ॥ २३

अर्थं स पुरुषो धूर्तं आवां सम्प्रोह्य माप्यथा ।
आनीय वेदशास्त्राणि दत्त्वा शोतेऽत्र साप्तवत् ॥ २४

इत्युक्त्वा ती महाधोरी दानवी मधुकैटभी ।
बोधयामासतुसूर्णं शयानं केशवं नृप ॥ २५

युद्धार्थमागतावत्र त्वया सह महापते ।
आवयोदैहि संग्रामं युद्धस्वोत्थाय माप्नतम् ॥ २६

इत्युक्तो भगवांस्ताभ्यां देवदेवो नृपोत्तमः ।
तथेति चोक्त्वा ती देवः शार्ङ्गं सन्ध्यमधाकर्त्तेत् ॥ २७

न्यायोपतलघोषेण शङ्खशब्देन माधवः ।
खं दिशः प्रदिशश्वेतं पूर्यामास लीलया ॥ २८

ती च राजन् पहारीयो न्यायोपं चक्रतुमदा ।
युद्धाते पहारीयो हरिणा मधुकैटभी ॥ २९

कृष्णश्च युद्धे ताथ्यां लीलया जगतः पतिः ।
समं युद्धमभूदेवं तेषामस्त्राणि मुञ्चताम् ॥ ३०

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्वतुति करनेपर राजन्, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवेशर विष्णुपे उनसे कहा—‘मैं तुम्हें उनम ज्ञान प्रदान करूँगा।’ राजन्! भगवान् विष्णु यों कहकर तब सौतने लगे—‘कौन हसका विज्ञान हर ले गया और किस रूपसे उसने उसे धारण कर सका है?’ भूपाल! अन्तमें यह जानकर कि यह सब मधु और केनभक्तों करतूत है, भगवान् जनादेनने अनेकों योजन लंबा-चौड़ा पूर्णज्ञानमय भवनकर धारण किया। किंतु भरस्यकरपाधारी हरिने तुरंत ही जालमें प्रविष्ट होकर उसे शुरू कर दाला और भोजर-ही-भीतर जनानालोकमें चहूँचकर मधु लक्षा केनभक्तों देखा। तब युनियोद्धारा सत्यन किये जानेपर भगवान् मधुमूदनने मधु और केटप—दोनोंहों मोहितकर वह येदशास्त्रमय ज्ञान ले लिया और उसे ले आकर ब्रह्माजीको दे दिया। राजन्! ताप्तशब्दन् वे भगवान् उस मधुमूदनपाको त्यागकर जगत्कै हितके लिये पुनः योगनिद्रामें लिपत हो गये ॥ १७—२२ ॥

उद्दनवर घोड़ चिह्नित होनेपर [वेद शास्त्रवाको न देख] मधु लक्षा केटप—दोनों ही चहूत कूपित हुए और चहौरी आकर उन्होंने अविवाही भगवान् विष्णुको सोते देखा। तब वे यस्यां कहने लगे—‘यह वही भूतं पुरुष है, जिसने हम दोनोंको मायासे मोहित करके वेद-शास्त्रोंको से आकर ब्रह्माको दे दिया और अब यहीं सम्भुक्ती भीति से रहा है।’ राजन्! यों कहकर उन महाप्रोत्तर दानव मधु और केटपने वहाँ सोये हुए भगवान् केशवको लक्षण लगाया और कहा—‘महामते! हम दोनों यहाँ तुम्हारे साथ युद्ध करने आये हैं; हम हमें संप्राप्तकी भिक्षा दी और अप्ती उठकर हमसे युद्ध करो।’ २३—२६॥

तृष्णर! उनके इस प्रकार कहनेपर देवदेव भगवान्ने ‘चहूत अच्छा’ कहकर अपने शार्ङ्गं भनुपर प्राणज्ञा चहायी। उस समय भगवान् यात्यवै लीलामूर्त्यक भनुपकी टंकार और शङ्खनादसे आकाश, दिशाओं और अवान्तर-दिशाओं (कोणों) को भर दिया ॥ २३—२८॥

राजन्! किंतु उन महाप्रशान्तमी महाप्रयानक मधु और केटपने भी उस समय अपनी प्रत्यक्षाको टंकार दी और वे भगवान् विष्णुके साथ मुद्द करने लगे। जगत्पति भगवान् विष्णु भी लीलासे ही उनके साथ मुद्द करने लगे।

केशवः शाङ्कनिर्मुक्तः शैरेताशीविषोपर्ये ।
तानि शस्त्राणि सर्वाणि चित्तेष्ट तिलशास्त्रादा ॥ ३१
तौ युद्धया सुचिरं तेन दानवीं पधुक्तप्तभी ।
हतौ शाङ्कविनिर्मुक्तः शैरः कृष्णोन् दुर्पद्मी ॥ ३२
तयोस्तु मेदसा राजन् विष्णुना कल्पिता मही ।
मेदिनीति ततः संज्ञामवापेयं वसुंधरा ॥ ३३
एवं कृष्णप्रसादेन वेदांश्चित्ता प्रजापतिः ।
प्रजाः समर्ज भूपालं वेददृष्टेन कर्मणा ॥ ३४
य इदं शृणुयाग्नित्यं प्रादुर्भावं हरेन्द्रप ।
उपित्वा चन्द्रसदने वेदविद्वाहृष्णो भवेत् ॥ ३५
मात्स्यं वपुस्तमहदप्रितुल्यं
विद्यामयं लोकहिताय विष्णुः ।
आस्थाय भीयं जनलोकसंस्थैः
स्तुतोऽथ यस्ते स्मर भूमिपाल ॥ ३६

अति शोटार्थिन्दुरुदाने यस्तद्वापादो नन्द नारायणेऽप्यतः ॥ ३३ ॥
इति प्रकार अंनदिनिर्मुक्तये 'प्रात्मकात्म' नारायण नीर्मलहीं अप्यतः पुरा हृष्ण ॥ ३३ ॥

प्रकाश ४१ विष्णु

अङ्गतीसवाँ अध्याय

कृमावतार; समुद्रमन्थन और मोहिनी-अवतार

ग्रन्थांश्चेष्ट उत्तरः

पुरा देवासुरे युद्धे देवा दैत्यैः पराजिताः ।
सर्वे ते शरणं जग्युः क्षीराविद्यतनयापतिम् ॥ १
स्तोत्रेण तुष्ट्युः सर्वे समाराध्य जगत्यतिम् ।
कृताङ्गलिपुटा राजन् ब्रह्माद्य देवतागणाः ॥ २

देख ऊङः

नमस्ते पद्मनाभाय लोकनाशाय शाङ्किणो ।
नमस्ते पद्मनाभाय सर्वदुःखापहारिणो ॥ ३

इस प्रकार परस्मर अस्त्र-शस्त्रका प्रहार करते हुए उन दोनों पक्षोंमें समानरूपरूप युद्ध हुआ। भगवान् विष्णुने अपने शाङ्क धनुषद्वय छेदे हुए सर्वके समान गोष्ठी बाणोंसे उन दैत्योंके समस्त अस्त्र-शस्त्र तिलको भीत दुकड़े-दुकड़े कर डाले। वे दोनों उम्मत दानव—मधु और कैटघ विरकालतक भगवान्के साथ लड़कर अन्तमें उनके शाङ्क धनुषरो एक हुए बाणोंद्वारा मारे गये। राजन्! हम श्रीविष्णुभगवान्ने उन दोनों दैत्योंके मेदेसे इस पृथ्वीका निर्माण किया। उसीसे इस वसुंधराका नाम 'मेदिनी' हुआ ॥ २१—३३ ॥

भूपाल! इस प्रकार भगवान् विष्णुको ब्राह्मणसे खेदोंको प्राप्तकर प्रत्यापति ब्रह्माजीने वेदांस्त विधिसे प्रजाकी सृष्टि की। नूप! जो भगवान्को इस अवतार-कथाका प्रतिदिन शब्द करता है, वह [शरीर-त्यक्तके बाद] चन्द्रसोकमें नियाम करके [नूप: इस त्याकमें] वेदवेता व्याघ्रण होता है। भूमिपाल! जो भगवान् विष्णु लोकहितके लिये पर्वतके समान भीमकालय मात्स्यस्तप भारगवकर जनलोक विविष्येद्वारा सुना हुए थे, उनका ही हुम सदा स्मरण करो ॥ ३४—३६ ॥

मार्कंषद्देवाजी बोले—पूर्वकालमें देवासुर-संघाममें जब देवगण दैत्योंद्वारा पराजित हो गये, तब ये सभी निलकर श्रीरामाग्ननन्दिनी श्रीलक्ष्मीजीके पाति भगवान् विष्णुकी जारीमें गये। राजन्! वहाँ ब्रह्मा आदि सर्व देवता जगदीश्वरकी आशाधा करके हाथ जोड़ निप्राकृत स्तोत्रसे उनको स्तुति करने लगे ॥ १-२ ॥

देवगण बोले—जिनकी नाभिसे जगत्मल प्रकट हुआ है, जो समस्त लोकोंके लक्ष्यमी है, उन शाङ्क धनुषधारी आप परमेश्वरकी नमस्कार है।

नमस्ते विश्वलयाय सर्वदेवमयाय च।
मधुकेटभनाशाय केशवाय नपो नपः॥ ४
देवैः पराजिता देव वर्यं युद्धे वलान्वितः।
जयोपायं हि नो शूहि करुणाकर ते नपः॥ ५

कर्कटेष्व उत्तरम्

इति स्तुतो तदा देवदेवदेवो जनादेनः।
तानव्रीद्विरिदेवास्तेयामेवाग्रतः स्थितः॥ ६

दीप्तग्रन्थवाच

गत्वा तत्र सुराः सर्वे संधिं कृत्वा दानवैः।
मध्यानं पन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम्॥ ७
सर्वांश्चधीः समानीय प्रक्षिप्याद्यौ त्वरान्विताः।
दानवैः सहिता भूत्वा पञ्चष्वं क्षीरमाग्रम्॥ ८
अहं च तत्र साहाय्यं करिष्यामि दिवीकसः।
भविष्यत्यभृतं तत्र तत्पानाद्वलवत्तरा:॥ ९
भविष्यन्ति क्षणादेवा अमृतस्य प्रभावतः।
यूयं सर्वे महाभागास्तेजिष्ठा रणविक्रमाः॥ १०
इन्द्राद्यास्तु महोत्पानाहास्तदेवत्वाभृतमूलम्।
ततो हि दानवाऽन्नेतुं समर्थां नात्र संशयः॥ ११
इत्युक्ता देवदेवेन देवाः सर्वे जगत्पतिम्।
प्रणम्यागत्य चिलये संधिं कृत्वाय दानवैः॥ १२
क्षीराद्येष्वन्थने सर्वे चक्रकृष्णमूलम्।
वर्तिना चोद्दृतो राजन् पन्द्रगाढ्यो महागिरिः॥ १३
क्षीराद्यौ क्षेपित्वैव तेनेकेन नुयोनम्।
सर्वांश्चांश्च प्रक्षिप्य देवदेवैः पर्योनिधी॥ १४
वासुकिश्वागतसतत्र राजव्रारायणाङ्गया।
सर्वदेवहितार्थाय विष्णुश्च स्वप्यमागतः॥ १५
तत्र विष्णुं समाप्ताय ततः सर्वे सुरासुराः।
सर्वे ते मेत्रभावेन क्षीराद्येष्टटमाश्रिताः॥ १६
मध्यानं पन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वाय वासुकिम्।
ततो मध्यितुमारब्धं नृपते तरसामृतम्॥ १७

सम्मूर्णं विष्णु और सारे देवता जिनके स्वरूप हैं, उन नमुकेटभनाशक केशवको बारंबार प्रश्नाम है। करुणाकर! भगवन्। हम सभी देवता वलवान् दैत्योंद्वारा युद्धमें हरा दिये गये हैं, हमें विजय प्राप्त करनेका कोई उपाय यत्तताद्वये; आपको नमस्कार है॥ ३—५॥

मार्कण्डेयजी बोले—देवताओंद्वय इस प्रकार सत्यन किये जानेपर देवदेव भगवान् जनादेनाने उनके समक्ष प्रकट होनकर कहा॥ ६॥

श्रीभगवान् बोले—देवगण! तुम सब लोग वहाँ (चमुड लटपर)जाकर दानवोंके साथ संधि कर लो और मन्दराजलको माशन कर, जासुकि नामसे रसमीका जाय लो। फिर श्रीप्रतापूर्वक समस्त ओषधियोंको लकड़ समुद्रमें डालो और दानवोंके साथ मिलकर ही खोलसाराजव जन्मन करो। देवताजो! इस कार्यमें मैं भी तुम लोगोंको महायता करौंगा। समुद्रसे अमृत प्रकट होगा, जिसको पान करके उसके प्रभावसे देवता क्षणभरमें ही अत्यन्त घलघलाली हो जायेंगे। यहाँभागो! उस उत्तम अनुकूलों प्राप्तकर इन्द्रादि तुम सभी देवता अत्यन्त रोजस्वी, स्वयं पराक्रम दिव्यानेत्राले और महान् उत्तराहम्बे समझ ही जाओगे। तदनन्तर तुम लोग दानवोंको जीतनेमें समर्पि हो मङ्गोगे—इसमें संक्षय नहीं है॥ ७—११॥

देवदेव भगवान्के द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सभी देवता उन जगदीश्वरको प्रणाम करके अपने भगवन्पर आये और दानवोंके साथ संधि करके श्रीरसागरके मन्दिरके लिये उत्तम उशोग करने लगे। राजन्! बलिने अक्षले ही 'मन्द' नामक महान् वर्षांको डखाकर समुद्रमें डाल दिया तथा नृपोलम्। देवता और देव्योंने यसस्त्र ओषधियोंको लाकर समुद्रमें डाला। राजन्! भगवान् चारापलकी आळासे वासुकि नाम वहाँ आये और समस्त देवताओंका हित-साधन करनेके लिये स्वयं भगवान् विष्णु भी वहाँ पथारे॥ १२—१५॥

तदनन्तर सभी देवता और असुरगण वहाँ भगवान् विष्णुके पास आये और सब लोग मित्रभावसे एकत्र होकर श्रीरसागरके तटपर उपस्थित हुए। तुम! उस समय मन्दराजलको मध्यानी और जासुकि नामको रसों बनाकर अमृत निकालनेके उद्देश्यसे अत्यन्त वैग्रहक समुद्रका मन्थन आरम्भ हुआ।

विष्णुना पुखभागे तु योजिता दानवासंसदा ।
देवताः पुच्छभागे तु मथनाय नियोजिताः ॥ १८
एवं च मथनात्तत्र मन्दरोऽथः प्रविश्य च ।
आधारेण विना राजन् तं दृष्ट्वा सहसा हरिः ॥ १९
सर्वलोकहितार्थाय कृपसुपर्पापारयत् ।
आत्मानं सम्प्रवेश्याथ मन्दरस्य गिरेऽथः ॥ २०
प्रविश्य धृतवान् शैलं मन्दरं भयमूदनः ।
उपर्यक्तान्वास्त्रैलं पृथग्युपेण केशबः ॥ २१
चक्रघं नागराजं च देवैः साध्य जनार्दनः ।
ततस्ते स्वरया युक्ता यमन्तुः क्षीरसागरम् ॥ २२
यावच्छक्त्या गृणेष्ठ यत्कृतः सुरामुराः ।
पर्यपानान्तस्तास्मात् क्षीराव्येरभवत्पूर्व ॥ २३
कालकृटपिति रुपात् विष्पमत्यन्तदुसमहम् ।
तं नागा जग्नुः सर्वे तच्छेष्ठ शङ्खोऽग्रहीत् ॥ २४
नारायणाङ्गया तेन नीलकण्ठत्वपास्त्वान् ।
ऐरावतश्च नागेन्द्रो हरिश्चोच्चैःक्षयाः पुनः ॥ २५
द्वितीयावर्तनाद्राजन्तुप्राविति नः श्रुतम् ।
तुर्तीयावर्तनाद् राजप्रपापाशु सुशोभना ॥ २६
चतुर्थांत् पारिजातश्च उत्पद्भः स महादूषः ।
पञ्चमाद्विं हिमांशुस्तु प्रोत्थितः क्षीरसागरात् ॥ २७
तं भवः शिरमा धत्ते नारोवत् स्वस्तिकं नृप ।
नानाविधानि दिव्यानि रक्षान्याभरणानि च ॥ २८
क्षीरोदपेकरित्यताश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः ।
एतान् दृष्ट्वा तथोत्प्रानत्याश्चर्यसमन्वितान् ॥ २९
अभवत्तातहर्षास्ते तत्र सर्वे सुरामुराः ।
देवपक्षे ततो मेषाः स्वल्पं यर्थन्ति संस्थिताः ॥ ३०
कृष्णाङ्गया च वायुश्च सुखं वाति सुरान् प्रति ।
विषपनिःश्वासयानेन वासुकेश्वापरं हताः ॥ ३१

परामान् विष्णुने उस समय समुद्रमन्तरके लिये दानवोंको बासनाके मुखालो और और देवताओंको पुच्छ भागकी ओर नियुक्त किया। राजन् । इस प्रकार मन्थन आरम्भ होनेपर नीचे कोई आश्वार न होनेके कारण मन्दराचल जलके धोकर प्रविष्ट होकर ढूँढ़ गया। पर्वतको दृश्य देख भगवान् भयमूदन विष्णुने समस्त लोकोंके हितके लिये सहस्र कृपसुप धारण किया और उस क्षम्यमें अपनेहो मन्दराचलके नीचे प्रविष्ट जारी, आधाररूप हो। उस मन्दर पर्वतको भूरग किया तथा दूसरे क्षम्यमें वे भगवान् केशव पर्वतको ऊपरसे भी दबाये रहे और एक अच्छक्षणमें वे भगवान् जलार्दन देवताओंके राघ राघर जलार्दन वासुकिको छोड़ते भी रहे। तब वे भगवान् देवता उस असुर पूर्णशक्ति लगाकर बड़े बेगसे भीरसागरका बनव करने लगे ॥ १६—२२ ॥ ॥

त्रुपेष्ठ! उद्दननर उस मध्ये जाते हुए क्षीरसागरमें अल्पत दुर्माह 'क्षलाहृष्ट' नामक विष प्रकट हुआ। उस विषको जपी सर्वोन्मुखयां बात किया। उससे बचे हुए विषको भगवान् विष्णुकी अतामे लक्ष्मीर्वीने भी किया। इससे कालमें काला दान पह जानेके कारण उनकी 'जीवकृष्ण' संज्ञा हुई। इसके बाद द्वितीय आर्द्धे पर्यवर्तनमें ऐरावत गजसंक और उत्त्वेशवा थोहा—ये दोनों प्रकट हुए, यह जल हमरे भूतनिमें आयी है। द्वितीय आधुनिकमें परमगुन्डो अपार (उक्तेशी)-का आविर्भाव हुआ और चौथी आर महान् शूक्ष पारिजात प्रकट हुआ। चौथी आधुनिकों क्षीरसागरमें जलम्भाप्रकट हुए। चौथी आधुनिकों क्षीरसागरमें नाना प्रकारके दिव्य वस्त्र आभूत और हजारों गन्धर्व प्रकट हुए। इन अल्पत विस्मयमन्तक वसुओंको उत्तर प्रकार उत्तम देख भधे देवता और अमुर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३—२९ ॥ ॥

उद्दननर भगवान् विष्णुकी अज्ञाने भेदगत देवताओंके दानमें भित्त हो बन्द भन्द वाले जाने लगे और देव सून्दरको सुख देनेवाली वायु बहने लगे। [इस कारण देवता भद्रे जाते ।] किन्तु महामने! वासुकिके विषप्रभावश्रित कालमें वज्रसे छिनने ही दैव भर गये और जो बने,

निस्तेजसोऽभवन् दैत्या निर्वायाशु महामते ।
 ततः श्रीरुत्थिता तस्मात् क्षीरोदाद्युतपद्मजा ॥ ३२
 विभाजमाना राजेन्द्र दिशः सर्वा: स्वतेजसा ।
 ततस्तीर्थोदकं स्वाता दिव्यवस्त्रैरलंकृता ॥ ३३
 दिव्यगच्छानुलिपाङ्गी सुमनोभिः सुभूषणीः ।
 देवपश्चं सप्तासाद्य मिथ्यत्वा ब्रह्ममर्तिदम् ॥ ३४
 हरिवक्षः स्थले प्राप्ता ततः सा कमलालया ।
 ततोऽप्युत्थटं पूर्णं दुष्क्वा तु पयसो निधेः ॥ ३५
 धन्वन्तरि: समुत्तस्थी ततः प्रीताः सुरा नुप ।
 दैत्याः श्रिया परित्यक्ता दुःखितास्तेऽभवत्रूप ॥ ३६
 नीत्याप्युत्थटं पूर्णं ते च जग्मुवैथासुखम् ।
 ततः स्त्रीरूपमकरोद् विष्णुदेवहिताय वै ॥ ३७
 आत्मानं नुपशार्दूलं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
 ततो जगाम भगवान् स्त्रीरूपेणासुरान् प्रति ॥ ३८
 दिव्यरूपां तु तां दृष्टा मोहितास्ते सुरद्विषः ।
 सुधापूर्णधटं ते तु मोहैः संस्थाप्य सन्तम ॥ ३९
 कायेन पीडिता ह्यासद्वसुरासन्त तत्प्रणात् ।
 प्रोहयित्वा तु तानेवमसुरानवनीपते ॥ ४०
 अपुतं तु समादाय देवेभ्यः प्रददी हरिः ।
 तत्पीत्वा तु ततो देवा देवदेवप्रसादतः ॥ ४१
 बलवन्तो महावीर्या रणे जग्मुस्ततोऽसुरान् ।
 जित्वा रणोऽसुरान् देवाः स्वानि राज्यानि चक्रिते ॥ ४२
 एतत्ते कथितं राजन् प्रादुर्भयो हरेरथम् ।
 कूर्माण्डिः पुण्यदो नृणां शृणवतां पठतामपि ॥ ४३
 आविष्कृतं कौर्यपनन्तवचंसं
 नारायणोनाद्युतकर्मकारिणा ।
 दिवीकसानां तु हिताय केवलं
 रूपं पां पावनमेव कीर्तितम् ॥ ४४

ये भी तेज एवं पराक्रमसे होन हो गये॥ ३०-३१/।।

तत्पश्चात् उस समुद्रसे हाथमें कमल धारण किये हुए
क्षीलधमीजो प्रकट हुईं। राजेन्द्र! ये अपने तेजसे सम्पूर्ण
दिशाओंको प्रकाशमान कर रही थीं। शत्रुघ्नि! उन्होंने
तीर्थके जलसे स्नान किया, शरीरमें दिव्य गम्यका अनुलेप
लगाया और ये कमलालय लक्ष्मी दिव्य वस्त्र, पुष्पहार
और सुन्दर भूषणोंसे विभूषित हो देवपक्षमें जाकर क्षणभर
खड़ी रहीं। किर भगवान् विष्णुके वक्षः मथुरामें विराजमान
हुई ॥ ३२-३४/।।

बेरेखर ! इसके बाद क्षीरसागरसे अमृतपूर्ण घटका
दोहन करके हाथमें लिये भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए।
उनके प्रकल्पसे देवता बहुत प्रसन्न हुए। किंतु राजन् !
लहमीद्वारा त्याग दिये जानेके कारण आसुरगण बहुत दुःखी
हुए और उस भी हुए अमृतघटको लेकर इच्छानुसार चल
दिये। नृपतर ! तथा भगवान् विष्णुने देवताओंका हित
करनेके लिये अपनेको सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त स्वीकृतपूर्ण
प्रकट किया। इसके बाद भगवान् उस नारीलापसे ही
असुरोंकी ओर गये। उस दिव्य कृपवाली नारीको देख
देवतागत मोहित हो गये। साधुशिरोमणि ! वे अमृत तत्काल
मोहके लक्षणभूत हो कामपीड़ित हो गये और उन्होंने
मोहवज यह अमृतका महा भूमिपर रख दिया। अवधीनपाते।
इस प्रकार असुरोंको मोहित करके भगवान्ने वह अमृत
ले देवताओंको दे दिया। देवदेव भगवान्की कृपासे अमृत
पीकर चली और महाशीयवत् हो देवता संग्राममें आ डटे
और असुरोंको युद्धमें जीतकर उन्होंने अपने राज्यपर
अधिकार कर लिया। राजन् ! भगवान्के इस 'कूम' नामक
अवतारको कथा मैंने तुमसे कह दी। यह पढ़ने और
मननेवाले मनव्योंको पाण्ड देवताली है ॥ ३५—४३ ॥

अद्भुत कर्म करनेशाले भगवान् नारायणने कैबल
देवताओंकि हितके लिये अनन्त तेजस्वी परमपात्रन कूर्मरूप
प्रकट किया था, सो इस प्रसङ्गका वर्णन मैंने तुमसे कर
दिया ॥ ३५ ॥

संगीत विज्ञान के अन्तर्गत विद्या का अध्ययन। ३५८

२५ विद्या विद्यार्थी 'विद्यार्थी' विद्या विद्यार्थी विद्या विद्या ॥ ३८ ॥

उन्नालीसवाँ अध्याय

वाराह-अवतारः हिरण्याक्षवध

महाराष्ट्र उक्ताव

अतः परं होः पुण्यं प्रादुर्भावं नराधिप ।
वाराहं ते प्रवक्ष्यामि समाहितमनाः श्रणु ॥ १

अवान्तरलये प्राप्ते छह्यणस्तु दिनहये ।
त्रैलोक्यप्रद्युम्निं व्याप्त्य तिष्ठन्त्यभास्ति सत्तम् ॥ २

त्रैलोक्येऽखिलसत्त्वानि यानि राजेन्द्र तानि वै ।
ग्रस्त्वा विष्णुस्ततः शेते तस्मिन्नेकाणीवै जले ॥ ३

अनन्तापोगशयने सहस्रफणशोभिते ।
गतिं पुगमहस्यानां छह्यरूपी जगत्यतिः ॥ ४

दितेः पुत्रो महानासीत् कश्यपादितिः नः श्रुतम् ।
हिरण्याक्षं इति ख्यातो महाबलपराक्रमः ॥ ५

पाताले निवसन् देत्यो देवानुपरोध सः ।
यन्विनामपकाराय यतते स तु भूतले ॥ ६

अथ भूम्युपरि स्थित्वा पत्त्वा यस्यनिन देवताः ।
तेन तेषां चलं वीर्यं तेजश्चापि अविद्यति ॥ ७

इति मत्वा हिरण्याक्षः कृते सर्गे तु छह्यणा ।
भूमेया धारणाशक्तिस्तां चीत्वा स महासुरः ॥ ८

विवेश तोयमध्ये तु रसातलतलं नुप ।
विना शक्त्या च जगती प्रविवेश रसातलम् ॥ ९

निद्राबसाने सर्वात्मा क्व स्थिता मेदिनीति वै ।
संचिन्त्य ज्ञात्वा योगेन रसातलतलं गताम् ॥ १०

अथ वेदमयं रूपं वाराहं वपुरास्थितम् ।
वेदपादं यूपदंष्ट्रं चितिवक्त्रं नराधिप ॥ ११

मार्कंषडेपजी कहते हैं—नरेश्वर! इसके बाद मैं भगवान् विष्णुके 'वाराह' नामक प्रथम अवतारका वर्णन करूँगा—तूम एकात्मित होकर सुनो ॥ १ ॥

सत्तम् । ब्रह्माजीका दिन चीत जानेपर जब आवान्तर प्रातः जल होता है, वब सम्मूली खिलोकीको व्याप्त करके केवल जल हो-जल रह जाता है। रात्रेन्द्र! उस समय विभूत्यनमें जो भी प्राणी है, उन सबका प्राप्त करके ब्रह्मस्वरूप जगदीश्वर भगवान् विष्णु उस एकार्णव जलके पीछा यहरों फौजोंसे सुशोभित रोपनागकी रूप्यापर सहस्र पुरोंका चलनेवाली रात्रिमें लायन करते हैं। पूर्वकालमें कहपवारोंसे दितिके गुप्तस्थानों 'हिरण्याध' नामक भानु देव्य उपवास हुआ था, ऐसी जल हमने सुनी है। वह भानु यज्ञान् और पराक्रमी था। वह देव्य चालतलमें निवास करता था और स्वर्गके देवताओंपर आक्रमण करके उनकी पुरोंपर ऐसा छाल देता था। इतना ही नहीं, वह पुरोंका यह चलनेवाले मनुष्योंका भी आपकार करके लिये सदा प्रदाहील रहता था ॥ २—६ ॥

एक बार उसने सोचा—‘मर्त्यालोकमें रहनेवाले पुरुष पुर्णोदय रहकर ऐकात्मिका यजन करेंगे, इससे उनका जल, गंगा और तेज चढ़ जायगा।’ यह सोचकर महान् असुर हिरण्याक्षने ब्रह्माजीद्वारा सूष्टि-रक्षणा को जानेपर उसे धरण करनेके लिये भूमिकी जो धारणा-शक्ति थी, उसे लेकर जलके भीतर ही-भीतर रसातलमें चला गया। आपारशान्तिसे रोकत होकर यह पुर्णी भी रसातलमें ही गयी गयी ॥ ७—९ ॥

बोगचिद्वाका अन्त होनेपर जब सर्वात्मा ब्रह्मिने विचार किया कि ‘पुर्णी कहाँ है?’, तब उन्होंने बोगचलमें यह जान लिया कि ‘वह रसातलको चलो नयो है’, नरापित! तब उन्होंने वेदमय लम्बा चौड़ा दिव्य वाराह शरीर ध्यान किया, जिसके चारों ओर ही चरण थे, यूप (पशु-बन्धनके) लिये बना हुआ कालस्तम्भ) ही दाढ़ था और चिति (श्वेतनित् आदि) मुख।

व्यूढोरस्कं महावाहुं पृथुवक्त्रं चराधिप।
अग्निजिह्वं स्तुते तुण्डं चन्द्राक्नयनं महत्॥ १२
पूर्तेष्टिथर्यश्वरणं दिव्यं तं सामनिःस्वनम्।
प्राग्बंशकायं हविनांसं कुशदभ्तनुरुहम्॥ १३
सर्वं वेदमये तत्त्वं पृथ्यमूलमहासदम्।
नक्षत्रताराहारं च प्रलयावतंभूपणम्॥ १४
इत्थं कृत्वा तु वागहं प्रविवेश वृथाकपि:।
रसातलं नृपञ्चेषु सनकाद्यरभिष्ठूः॥ १५
प्रविश्य च हिरण्याक्षं युद्धे जित्वा वृथाकपि:।
दंष्ट्रायेण ततः पृथ्वीं समुद्रत्य रसातलात्॥ १६
स्तुयमानोऽमरणीः स्थापयामाम पूर्वचत्।
संस्थाप्य पर्वतान् सर्वान् यथास्थानमकल्पयत्॥ १७
विहाय रूपं वागहं तीर्थं कोकेतिविश्रुते।
वैष्णवानां हितार्थाय क्षेत्रं तदग्रमपुनमप्म्॥ १८
द्वाहुरूपं समास्थाय पुनः सुष्टुप्तं चकार सः।
विष्णुः पाति जगत्सर्वमेवम्भूतो युगे युगे।
हनिं चान्ते जगत्सर्वं रुद्ररूपी जनार्दनः॥ १९
वेदान्तवेद्यस्य हरेवृषाकपे:
कथापिमां यश्च शृणोति मानवः।
दृढां मतिं यज्ञतनीं विवेश्य वै
विहाय पापं च नरो हरिं द्वजेत्॥ २०

इति श्रीनरामेष्टपुराणं कारणप्रदार्थकोषं सर्व एकोनश्लक्षिणीऽध्यायः ४ ३९ ३
इस प्रकार श्रीनरामेष्टपुराणे "जगत्कला" क्रमक उन्नतासंकरं व्यक्षम् पूर्य हुत्वा ॥ ३९ ४

प्राप्तिः संतुष्टः

चालीसवाँ अध्याय

नृसिंहावतार; हिरण्यकशिपुकी वरदान- प्राप्ति और उससे सताये हुए देवोद्वाग भगवान् की सुति

महाराष्ट्र उद्घाट

वाराहः कथितो ह्येवं प्रादुभिवो हरेस्तव।
साप्ततं नारसिंहं तु प्रवक्ष्यामि निवोध मे॥ १

मुखमाडल स्थूल और छाती चौड़ी थी, भुजाएं बड़ी बड़ी थीं, अंगी ही जिह्वा और लुक (लुचा) ही पृथुन थीं। चन्द्रमा और सूर्य विश्वस नेत्र थे, चूर्ण (बललो आदि खुदवाना) और इष्ट-धर्म (यज्ञ यागादि) उनके करन थे, साम ही स्वर था। प्राणवेश (पलीजाना या यजमान गृह) ही शरीर था, हवि ही नामिका था, कुश दंपे ही रोमावलियाँ थीं। इस प्रकार उनका समूल शरीर वेदमय था, पवित्र धैर्यिक सूक्त ही उनके चहे-बहे अवाल थे। नक्षत्र और तारे उनके हार से तथा प्रलयकालीन आवर्त (भैरव) ही उनके लिये भूपतिष्ठ राम हो रहे थे॥ ३०—३१॥

इति भगवान् विष्णुने ऐसे वाराहकृपको भारणकर रसातलमें प्रवेश किया। उस समय सनकादि योगीजन उनको स्तूपि करते थे। वहाँ जाकर भगवान् ने युद्धमें हिरण्यकशिपु को मारकर उसपर विजय पायी और अपनी दाढ़ीके अंदरभासे पृथ्वीको डाकार, वे रसातलमें उपर ले आय। फिर देखनाम उनकी स्तूपि करने लगे और उन्हाँने पूर्वचत् पृथ्वीको स्वापित किया। पृथ्वीको स्थिर करनेके वक्ताएँ उसपर यथास्थान गवर्तीका संनिवेश किया। तदूनन्तर चैत्रवार्षिक हितके लिये जोकामुख तीर्थमें याराहतपूर्वक रथाय किया। वह वाराह-क्षेत्र उत्तम पूर्व मृत नीर्व है। फिर जायाजीका रूप भारणकर उन्हाँने सुष्टुप्त-रथना की। इस प्रकार भगवान् विष्णु युग-युगमें अवतार संकर सम्युक्त जगत्की रक्षा करते हैं। फिर वे जनार्दन लद्धात्म लारजाकर उन्नतकालमें समस्त लोकोंका संहार करते हैं॥ ३५—३६॥

ओ मनुष्य जेतानवेद्य भगवान् विष्णुको इस कथाको व्रजन करता है, वह भगवान् यज्ञमूलियं अपनी सुदृढ़ सुंदर लगाकर समस्त पापोंसे मुक्त हो, उन भगवान् हरिकी हो जात जरता है॥ ३० ॥

पाक्कार्णदेवती शोले—राजन्। इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् विष्णुके बराह अवतारका वर्णन किया। अब 'नृसिंहावतार' का वर्णन करूँगा। सुनो॥ १॥

दितेः पुत्रो महानासीद्विरप्यकशिष्यः पुरा ।
तपस्तेषे निराहारो ब्रह्मवर्षसहस्रकम् ॥ २
तपतस्तस्य संतुष्टो ब्रह्मा तं प्राह दानवम् ।
बरं वरय दैत्येन्द्र यस्ते मनसि वर्तते ॥ ३
इत्युक्तो ब्रह्मणा दैत्यो हिरण्यकशिष्यः पुरा ।
उवाच नत्या देवेशं ब्रह्माणां विनयान्वितः ॥ ४

(त्रिमहायतारः)

यदि त्वं वरदानाय प्रवृत्तो भगवन्मम ।
यद्यदवृणोम्यहं ब्रह्मस्तत्त्वम् दानुमहीसि ॥ ५
न शुद्धेण न चार्देण न जलेन न बहिना ।
न काष्ठेन न कीटेन पापाणेन न बायुना ॥ ६
नायुधेन न शूलेन न शैलेन न मानुषः ।
न सूररसुरवर्गापि न गन्धवर्वनं राक्षसः ॥ ७
न किंनरेन यज्ञेभ्यु विद्यापरभुजंगमैः ।
न बानरमुंगवर्गापि नैव मातुगणीरपि ॥ ८
नाभ्यन्ते न ब्राह्मे तु नान्यैर्मरणहेतुभिः ।
न दिने न च नक्ते मे त्वत्प्रसादाद् भवेभृतिः ॥ ९
इति वै देवदेवेशं यत्र त्वत्तो वृणोम्यहम् ।

(त्रिमहायतारः)

इत्युक्तो दैत्यराजेन ब्रह्मा तं प्राह पार्थिव ॥ १०
तपसा तत्वं तुष्टोऽहं पहता तु वरानिमान् ।
दुर्लभानपि दैत्येन्द्र ददामि परमाद्दुतान् ॥ ११
अन्येषां नेतृशं दत्तं न तैरित्वं तपः कृतम् ।
त्वत्तार्थितं मया दत्तं मर्यं ते चाम्नु दैत्यप ॥ १२
गच्छ भूहक्ष्य महावाहो तपसामूर्मितं फलम् ।
इत्येवं दैत्यराजस्य हिरण्यकशिष्योः पुरा ॥ १३
दत्त्वा वरान् यदी ब्रह्मा ब्रह्मलोकमनुजमम् ।
सोऽपि सत्यवरो दैत्यो बलवान् बलदर्पितः ॥ १४
देवान् सिंहान् रणं जित्वा दिवः प्राच्यावयद् भुवि ।
दिवि राज्यं स्वयं चक्रं सर्वशक्तिमन्वितम् ॥ १५

पूर्वकालमें दितिका पुत्र हिरण्यकशिष्य महान् प्रतापी हुआ । उसने अनेक सहस्र वर्षोंतक निराहार रहते हुए तपस्या की । उसकी तपस्यासे संतुष्ट हो ब्रह्माजीने उस दानवसे कहा—‘दैत्येन्द्र । तुम्हारे मनकी जो प्रिय लगे, वही चर भाग लो ।’ दैत्य हिरण्यकशिष्यने ब्रह्माजीक इस प्रकार कहनेवार उन देवेश्वरसे विनयपूर्वक प्रशान्त करके कहा ॥ ६—८ ॥

हिरण्यकशिष्य बोला—ब्रह्मन् ! भगवन् ! यदि आप मुझे चर देनेको उचित है तो मैं जो-जो माँगता हूँ वह सब देनेको कृपा करें । मैं न मूर्खी लगानुसे नहै न गोलोसे, न जलसे न आगमे, न कालसे न कीड़ोंसे और न एत्यर या हातारी ही भेड़ी मूल्य हौं । न मूर्ख अथवा किसी और जानसे न परेतासे; न भनुव्योंसे न देवता, अप्यु, गन्धर्व अथवा राक्षसोंसे ही मर्ही । न किंनरोंसे न गरु, किंदाधर अथवा भुजंगोंसे; न बाहर तथा अन्य चक्रांतोंसे और न दुर्गां आदि मातुगणोंसे ही मर्ही मूल्य हौं । मैं ज एरके भौतर भौंके न बाहर; न दिनमें भौंके न रात्रें तथा भावकी कृपासे मूल्यके हेतुभूत अन्य कामोंसे भौंके मर्ही मूल्य न हो । देवदेवेश्वर ! मैं आपमें यही चर माँगता हूँ ॥ ६—९ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजा ! दैत्यराज हिरण्यकशिष्यके यों जहनेपर ब्रह्माजीने उससे कहा—‘दैत्येन्द्र । तुम्हारे महान् तपसे संतुष्ट होकर मैं इन परम अनुदान दर्शको दुर्लभ होनेपर भौंके तुम्हें दे रहा हूँ । दूसरे किसीको भौंके ऐसा चर नहीं दिया है और न दूसरोंने ऐसो तपस्या ही की है दैत्यज्ञते । तुम्हारे भौंके हुए सभी चर मैंने दून्हें दे दिये; ले मर्य तुम्हें प्राप्त हों । महाबाहो ! अब चालो और अपने तपके यहुँ दृष्ट उत्कृष्ट बलकी भौंको ।’ इस प्रकार पूर्वकालमें दैत्यराज हिरण्यकशिष्यकी अभोग चर देनेकर ब्रह्माजी अपने परम उभम लोकको चले गए । उम बलवान् दैत्यने भौंके चर पक्कर बलमें उम्मत हो किंठ देवताओंओं युद्धमें जीतकर उनके स्वर्गमें पृथ्वीपर गिरा दिया तथा वह स्वयं स्वर्गलोकमें रहकर वहोंका सर्वशक्तिसम्पन्न राज्य भोगने लगा ॥ १०—१५ ॥

देवा अपि भयात्तस्य कुर्वाश्चीवर्यो नुप।
विचेरवदनो सर्वे विभाणा मानुषो तनुम् ॥ १६
प्राप्तैलोक्यराज्योऽसी हिरण्यकशिषुः प्रजाः ।
आहूय सर्वा गजेन्द्र वाक्यं चेदमभाषत ॥ १७
न यष्टव्यं न होतव्यं न दातव्यं सुरान् प्रति ।
युध्याभिरहमेवाच्य त्रैलोक्यापिपतिः प्रजाः ॥ १८
मपेव पूजां कुरुत यज्ञदानादिकर्यणा ।
ताश्च सर्वास्तथा चक्रदैत्येन्द्रस्य भयानृप ॥ १९
यत्रैव क्रियमाणेषु त्रैलोक्यं सर्वराचारम् ।
अपर्युक्तं सकलं वभूव नुपसत्तम् ॥ २०
स्वपर्युक्तं सर्वोपात् सर्वोपापे मतिरचायत ।
गते काले तु महति देवाः सेन्द्रा बृहस्पतिम् ॥ २१
नीतिं चर्वशास्त्रं प्रपञ्चुर्विनयान्विताः ।
हिरण्यकशिष्योरस्य विनाशं मुनिसत्तम् ॥ २२
त्रैलोक्यहारिणः श्रीघं वधोपायं चदस्य चः ।

प्राप्तिः ४०

भृणुखं मम वाक्यानि स्वपदप्राप्तये सुराः ॥ २३
प्रायो हिरण्यकशिषुः क्षीणभागो महासुरः ।
शोको नाशयति प्रज्ञां शोको नाशयति श्रुतम् ॥ २४
शोको मतिं नाशयति नास्ति शोकसमो रिषुः ।
सोदुःशक्योऽप्रिसम्बन्धः शास्त्रस्पर्शश्च दारणः ॥ २५
न तु शोकभवं दुःखं संसोद्धुं नुप जाक्षयते ।
कालात्रिमिताच्य वयं लक्ष्यापस्तत्त्वयं सुराः ॥ २६
युधाश्च सर्वे सर्वत्र स्थिता वक्ष्यन्ति नित्यशः ।
अचिरादेव दुष्टोऽसी नश्यत्येव परस्परम् ॥ २७
देवानां तु परापुद्दिं स्वपदप्राप्तिलक्षणाम् ।
हिरण्यकशिष्योनांशं शकुनानि चदन्ति मैः ॥ २८
यत एवमतो देवाः सर्वे गच्छत माचिरम् ।
क्षीरोदस्योत्तरं तीरं प्रसुमो यत्र केशवः ॥ २९
युध्याभिः संस्तुतो देवः प्रसन्नो भवति क्षणात् ।
स हि प्रसन्नो देव्यस्य वधोपायं चदिष्यति ॥ ३०

नो श्वर ! इन्द्रादि देवता, लद तथा त्रृष्णगण भी उसके भयसे मनुष्यरूप भासकर पृथ्वीपर विचरते थे । राजेन्द्र ! त्रिभुवनका राज्य प्राप्त कर लेनेपर हिरण्यकशिषुने समस्त प्रजाओंको बुलाकर उनसे यह वाक्य कहा—‘प्रजागण ! तुम लोग देवताओंके लिये यज्ञ, होम और दान च करो । अब मैं ही त्रिभुवनका अभीश्वर हूँ अतः यज्ञ और दानादि कर्मोंहारा मेरी ही पूजा करो ।’ राजन् । यह मनुष्यकर ये सभी प्रजाएं उसके भयसे बैसा ही करते लगते । नुपब्रेष्ट ! वहाँ ऐसा व्यवहार चालू होनेपर चराचर प्रश्नावैलिङ्ग समस्त त्रिभुवन अधर्मपरायण हो गया । स्वाधर्मजा लोप हो जानेसे ताकी चुड़ि पापमें प्रवृत्त हो गयी । इस तरह यहुत समय बीतनेपर इन्द्रसहित सब देवताओंने मिलकर समस्त जात्योंके ज्ञात लक्ष नीतिवेत्ता युहस्पतिलोंसे विचर्ष्यते थे । पूजा—‘मृग्निब्रेष्ट ! त्रिलोकोंका राज्य हीनेकामे इस हिरण्यकशिषुके विनाशका समय और उसका उपाय हमें शोध लेताये ॥ १६—२२ ॥ ॥

यहस्पतिजी शोरे—देवताओं ! तुम लोग अपने व्यापकी शालिके लिये मेरे ये वाक्य मूलो—‘हय महान् अप्य हिरण्यकशिषुके पूज्यका अंज प्राप्त, शोप ही चुका है । इसे अपने भई हिरण्यकशिषुकी भृत्यसे यहुत शोक हुआ है ।’ यह शोक चुदिको नष्ट और शास्त्रज्ञानको भीपट कर दिया है, विचारशिल्पकी भी शीण कर डालता है; अतः शोकके भमान कोई भ्रष्ट नहीं है । बोशपर ! अपने शोरपर अग्रिका न्यस्त और दाहय शर्व-प्रहार भी सहा जा सकता है, इसु शोषज्ञान्य दृश्यका सहन नहीं किया जा सकता । देवताओं ! इस शोकमें उत्ता कालहृषि निमित्तसे हम हिरण्यकशिषुका नाल निकट देखा रहे हैं । इसके अतिरिक्त उभी विद्वन् सर्वत्र भरस्यर यही कहा करते हैं कि दुष्ट हिरण्यकशिषु अब शोष ही नष्ट होनेवाला है । मेरे शकुन भी यही चताते हैं कि देवताओंको अपने पट—सर्वा-मात्राज्ञकी प्राप्तिरूप यहाँ समुद्दिष्ट निमित्वाली है और हिरण्यकशिषुका नाल होना चाहता है । चौंक ऐसा ही होनेवाला है, इसलिये तुम सभी देवता शोरमानके ठबठटपर, यहाँ भगवान् विष्णु लक्षण करते हैं, शोष हो जाओ । तुम सोनोंके भलीभौति स्तवन करनेपर ये भगवान् क्षणभरमें ही प्रसन्न हो जायेंगे और प्रसन्न होनेपर वे हो उस देव्यके वरका उपाय लेतायेंगे ॥ २३—३० ॥

इत्युक्तास्तेन देवाम्ने साधु साध्यत्पदायुक्तम् ।
 प्रीत्या च परया युक्ता गन्तुं चक्रुरधोषम् ॥ ३१
 पुण्ये तिथी शुभे लम्ने पुण्ये स्वस्ति च मङ्गलम् ।
 कारवित्ता मुनिवैरः प्रस्थितास्ते दिवीकासः ॥ ३२
 नाशाय दुष्टदत्यस्य स्वभूत्ये च नृपोनम् ।
 ते शर्वप्रग्रहः कृत्या क्षीराव्योरुत्तरं तटम् ॥ ३३
 तत्र गत्या सुराः सर्वे विष्णुं जिष्णुं जनार्दनम् ।
 अस्तुवन् विविधः स्तोर्त्रः पूजयन्तः प्रतिस्थिरे ॥ ३४
 भवोऽपि भगवान् भक्त्या भगवन्तं जनार्दनम् ।
 अस्तुवत्रामभिः पुण्यंकाग्रप्रणसा हरिप् ॥ ३५

लोकान्तर उत्तर

विष्णुर्जिष्णुर्विभूदेवो यद्गेशो यज्ञपालकः ।
 प्रभविष्णुर्प्रसिष्णुर्स्तोकात्मा लोकपालकः ॥ ३६
 केशयः केशिहा कल्पः सर्वकारपाकारणम् ।
 कर्मकृद् वामनाधीशो वासुदेवः पुरुषुतः ॥ ३७
 आदिकत्तो वराहक्षु पाप्यो मधुमृदनः ।
 नारायणो नरो हंसो विष्णुमेनो हुताशनः ॥ ३८
 अतिष्ठान द्युतिमान् श्रीभानायुष्मान् पुरुषोत्तमः ।
 वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः ॥ ३९
 नरसिंहो महाभीमो यज्ञदंष्ट्रे नखायुधः ।
 आदिदेवो जगत्कत्तो योगेशो गरुडायजः ॥ ४०
 गोविन्दो गोपतिर्गोपा भूषितर्भवेश्वरः ।
 पशुनाभो हर्षीकेशो विभुदीयोदरो हरिः ॥ ४१
 त्रिविकृपस्त्रिलोकेशो ब्रह्मणः प्राणिवर्धनः ।
 वामनो दुष्टदम्नो गोविन्दो गोपवद्धभः ॥ ४२
 भक्तिप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यकीतिपूर्वः शुचिः ।
 कारुण्यः करणो व्यासः पापहा शान्तिवर्धनः ॥ ४३
 संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञो मन्दारगिरिकेतनः ।
 बद्रीनिलयः शान्तसत्पात्मा वैद्युतप्रभः ॥ ४४
 भूतावासो गुहावासः अंनिवासः श्रियः पतिः ।
 तपोवासो दमो वासः सत्यवासः मनातनः ॥ ४५
 पुरुषः पुष्कलः पुण्यः पुष्करगश्चो महेश्वरः ।
 पूर्णः पूर्णिः पुराणः पुण्यः पुण्यवर्द्धनः ॥ ४६
 शाङ्की चक्री गदी शाङ्की लाङ्कली मुशली हली ।
 किरोटी कुण्डली हारा मेखली कबची घ्यनी ॥ ४७
 जिष्णुर्जीता महाबीरः शश्रुः शश्रुतापनः ।
 शान्तः शान्तिकरः शासना शङ्करः शंतनुमृतः ॥ ४८

शंकुहस्तिबीके इस प्रकार कहनेपर सभी देवता
 कहने लगे—‘भगवन्! आपने बहुत अच्छा कहा, यहाँ
 अच्छा कहा।’ और ये अद्यता उमसलापूर्वक वहाँ आनेक
 उद्योग करने लगे । नृपतर । वे देवगण किसी पुण्यतिथिको
 शुभ लम्नमें मूलिकोद्धारा पुण्याहवानन, स्वस्तिवाचन
 और मङ्गलकल करकर दृष्ट दैन्य (हिरण्यकशिपु) । वे
 विकल और अपनी ऐश्वर्य-चृदिके लिये भावादेवजीको
 आगे करके श्रीरामामारे तत्त्व लटको और प्रस्तुत हुए ।
 वहाँ पहुँचकर सभी देवता विजयशोल जनार्दन भगवान्
 विष्णुका नाम प्रकारके श्लोकोद्धारा भवत्त-पूजन करने
 हुए वहाँ रहे रहे । भगवान् शङ्कर भी भक्तिपूर्वक
 एकाग्रचित्तसे भगवान् जनार्दनके चरित्र नामोद्धारा उनकी
 स्मृति करने लगे ॥ ३१—४८ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—विष्णु, जिष्णु, विष्णु, देव,
 यज्ञोऽस, यज्ञपालक, प्रभविष्णु, द्रविष्णु, शोकात्मा,
 लोकपालक, विष्णु, विष्णु, यज्ञ, सर्वेकारणवाचन,
 कर्मकृत, वामनाधीश, वामुदेव, पुरुषुत, आदिकार्ता, वराह,
 माघव, मधुमृदन, नारायण, वर, हंस, विष्णुर्धीन, तुलाशन,
 लोकिष्वन्, द्युतिमान्, श्रीमान्, भगवुमान्, पुरुषोदाम, वैकुण्ठ,
 पुण्डरीकाक्षः, कृष्ण, सूर्य, सुरार्चित, नरभिंह, महाधीय,
 वज्रदट्ट, न्यूनाय, आदिदेव, जगत्कत्तो, योगेश, गरुडायज,
 सोनिन्द, गोपीनी, गोत्र, भृगो, भृगोभर, पद्मावत, हर्षीकेश,
 विष्णु, दमोदर, हारी, विविक्षण, त्रिलोकेश, ब्रह्मस, प्रीतिवर्धन,
 वामन, दुष्टदम्न, गोपाल, गोपालवाभ, भक्तिप्रिय, अन्तर्मु,
 सत्य, सत्यकीर्ति, भूष, रुचि, कारुण्य, करण, व्यास
 पापहा, शक्तिवर्धन, संन्यासी, शास्त्रतत्त्वज्ञ, मन्दारागरिवेण्य,
 बद्रीनिलय, शत्रु, तपस्यो, वैद्युतप्रभ, भूतावास, गुहावास,
 अंनिवास, द्रिष्ट-पति, तपोवासम, दम, वास, सत्यवास,
 मनातन पूरुष, पुष्कल, पुण्य, पुष्कराश, महेश्वर, पूर्ण,
 पूर्णि, पुराण, पुण्यत, पुण्यवर्द्धन, जानु, चक्री, गदी,
 शाङ्की, लाङ्कली, मूलिकी, दमो, किरोटी, कुण्डली, हारी,
 मेखली, कबची, घ्यनी, विष्णु, जेता, महाबीर, शश्रु,
 शश्रुतापन, जान्त, शान्तिकर, शासन, शङ्कर, शंतनुस्तुत

सारथि: सात्त्विकः स्वामी सामवेदप्रियः समः ।
 सावनः साहस्री मत्त्वः सम्पूर्णाशः समुद्दिमान् ॥ ४९
 स्वर्गदः कामदः श्रीदः कीर्तिदः कीर्तिनाशनः ।
 मोक्षदः पुण्डरीकाक्षः क्षीराच्चिकृतकेतनः ॥ ५०
 स्तुतः सुरासुरीरीश प्रेरकः पापनाशनः ।
 त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोक्तारस्त्वमग्रयः ॥ ५१
 त्वं स्वाहा त्वं स्वधा देव त्वं सूधा पुरुषोत्तम ।
 नमो देवादिदेवाय विष्णवे शाश्वताय च ॥ ५२
 अनन्तायाप्रभेयाय नमस्ते गणडब्बज ।

वार्तार्थिय उक्ताच

इत्येतनामभिर्दिव्यैः संस्तुतो मध्यसूदनः ॥ ५३
 उक्ताच प्रकटीभूत्वा देवान् सर्वानिदं वचः ।

वीरभगवानुकाच

युध्याभिः संस्तुतो देवा नामभिः केवलैः शुभैः ॥ ५४
 अत एव प्रसत्रोऽस्मि किमर्थं करवाणि च ।

देवक उक्तुः

देवदेव हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ॥ ५५
 त्वमेव जानासि हरे किं तस्मात् परिपृच्छसि ।

वीरभगवानुकाच

युध्यदागमनं सर्वं जानाय्यसूरसूदनाः ॥ ५६
 हिरण्यकविनाशार्थं स्तुतोऽहं शङ्खरेण तु ।

पुण्यनामशतेनैव संस्तुतोऽहं भवेन च ॥ ५७
 एतेन यस्तु मा नित्यं त्वयोक्तेन महामते ।

तेनाहं पृजितो नित्यं भवामीह त्वया यदा ॥ ५८
 प्रीतोऽहं गच्छ देव त्वं कैलासशिखरं शुभम् ।

त्वया स्तुतो हनिष्यामि हिरण्यकशिपुं भव ॥ ५९
 गच्छध्यमधुना देवाः कालं कंचित् प्रतीक्षताम् ।

यदास्य तनयो धीमान् प्रह्लादो नाम वैष्णवः ॥ ६०
 तस्य द्वाहं यदा दैत्यः करिष्यति सुरांसदा ।

हनिष्यामि वर्णमप्यजेयं देवदानवैः ।
 इत्युक्त्वा विष्णुना देवा नत्वा विष्णुं यवुन्तप ॥ ६१

सारथि, मात्त्विक, स्वामी, सामवेदप्रिय, सम, सावन, साहस्री, सत्त्व, सम्पूर्णांश, समुद्दिमान्, स्वर्गद, कामद, श्रीद, कीर्तिद, कीर्तिनाशन, मोक्षद, पुण्डरीकाक्ष, क्षीराच्चिकृतकेतन, सुरासुरी-सूत्र, प्रेरक और पापनाशन आदि नामोंसे कहे जानेवाले परमेश्वर ! आप ही यज्ञ, वषट्कार, अंकार, तथा आहवनीयादि अधिकृत हैं । पुरुषोत्तम ! देव ! आप ही स्वहा, स्वधा और सुधा हैं, आप सनातन देवतेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है । गणडब्बज ! आप प्रमाणोंके अधिष्ठय तथा अनन्त हैं ॥ ३६—५२ ॥

पार्कं एषोपजी खोले—इन दिव्य नामोंद्वारा सुनिति किये जानेपर भगवान् असुम्भूतने प्राप्यक्ष प्रकट होकर सम्पूर्ण देवताओंसे यह वचन कहा ॥ ५३ ॥

श्रीभगवान् खोले—देवगण ! तुम लोगोंने केवल कल्पाणकारी नामोंद्वारा मेरा स्ववन किया है, अतः मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; कहो, तुम्हारा क्या कार्य मिल जाए ? ॥ ५४ ॥

देवता खोले—हे देवदेव ! हे हृषीकेश ! हे कमलनयन ! हे लक्ष्मीपते ! हे हरे ! आप तो सब कुछ जानते हैं; किस हमसे क्यों पूछ रहे हैं ? ॥ ५५ ॥

श्रीभगवान् खोले—असुरनाशक देवताओं ! तुम लोगोंके आनेका भारा कारण मुझे ज्ञात है । जगत्का कल्पाण करनेवाले महादेवजीने तथा तुमने हिरण्यकशिपु दैत्यका जात करानेके लिये मेरे एक सी पुण्यनामोंद्वारा मेरा स्ववन किया है । महामठे लिख ! तुम्हारे कहे हुए इन सी नामोंसे जो मेरा विष्व स्ववन करेगा, उस पुण्यद्वारा मैं उसी प्रकार प्रतिटिन पूजित होऊँगा, जैसे इस समय तुम्हारे हाथ द्वारा हुआ है । देव शम्भो ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, अब तुम अपने शुभ कैलासशिखरको जाओ । तुमने मेरी सुनिति की है, अतः तुम्हारी प्रसादताके लिये मैं हिरण्यकशिपुका वध करौँगा । देवताओं ! अब तुम भी जाओ और कुछ कालक व्रतीका करो । जब इस हिरण्यकशिपुके प्रह्लाद नामक सुदिमान् विष्णुपत्न पुत्र होगा और जिस समय यह देव व्रहादसे घोर करेगा, उस समय वहाँसे रक्षित होकर देवताओं और दानवोंसे भी नहीं जीते जा सकनेवाले इस असुरजा मैं अवश्य वध कर डालौँगा । राजन् ! भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर देवगण उन्हें प्रणाम करके चले गये ॥ ५६—६३ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोदामकल्पोऽन्तं चतुर्वर्षार्थोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इति प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'विष्णुका समवय लक्षण' जगत् जातीजन्मवान् अध्याय पृष्ठा हुआ ॥ ५० ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादकी उत्पत्ति और उनकी हरि-भक्तिसे हिरण्यकशिपुकी उद्धिग्रता

सहस्रानीक उत्तर

मार्कण्डेय महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
प्रादुर्भावं नुसिंहस्य यथावद्वकुमर्हसि॥ १
बद प्रह्लादचरितं विस्तोरण ममानघ।
धन्या वयं महायोगिंस्वतप्रसादामहामुने॥ २
सुधां पिबामो दुर्लभ्यां धन्या: श्रीशक्तधापिधाम्।

लीभार्ण्डेय उत्तर

पुरा हिरण्यकशिपोस्तपोऽर्थं गच्छतो वनम्॥ ३
दिग्दाहो भूयिकम्पश्च जातसत्स्य महात्मनः।
वारितो बन्धुभिर्भृत्यैर्मित्रैश्च हितकारिभिः॥ ४
शकुना विगुणा राजद्वातास्तच्च न शोभतम्।
प्रैलोक्याधिपतिस्त्वं हि सर्वे देवाः पराजिताः॥ ५
तत्वादिति न भयं सीम्य किमर्थं तथ्यते तपः।
प्रयोजनं न पश्यामो वयं युद्धया समन्विताः॥ ६
यो भवेष्यनकामो हि तपश्चर्यां करोति सः।
एवं तैर्वार्यमाणोऽपि दुर्मदो मदमोहितः॥ ७
चातः कैलासशिखरं द्वित्रैर्मित्रैः परीक्षुतः।
तस्य संतत्यमानस्य तपः परमदुखकरम्॥ ८
चिन्ना जाता यहीपाल विरिङ्गोः पराजन्मनः।
किं करोमि कथं दैत्यस्तपसो विनिवत्तते॥ ९
इति चिन्नाकुलस्यैव ब्रह्मणोऽङ्गसमुद्घवः।
प्रणम्य प्राह भूपाल नारदो मुनिसत्तमः॥ १०

नारद उत्तर

किमर्थं दिग्द्वाते तात नारावणपरायण।
येषां मनसि गोविन्दस्ते वै नार्हन्ति शोचितुम्॥ ११
अहं तं बारयिष्यामि तथ्यनं दितिनन्दनम्।
नारायणो जगत्स्वामी मतिं मे सम्प्रदास्यति॥ १२

सहस्रानीकने कहा— सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता महाप्राज्ञ मार्कण्डेयजी ! आप भगवान् नृसिंहके प्रादुर्भाविको कथा यथोचितहृष्टसे कहें । अनन्य ! धृति-ब्रह्मण्डजीका चरित्र मुझे विस्तारपूर्वक सुनायें । महायोगिन् ! महामुने ! हम लोग धन्य हैं ; क्योंकि आपको कृपासे हमें भगवान् विष्णुकी कथारूप दुर्लभ सुधाका पान करनेका अवसर मिला है ॥ १-२५ ॥

श्रीमार्कण्डेयजी बोले— पूर्वकालमें एक समय वह महाकाय हिरण्यकशिपु जब तपस्या करनेके लिये वनमें जानेको उद्घात हुआ, उस समय समस्त दिशाओंमें दाढ़ और भूकम्प होने लगा । यह देखकर उसके हितकारी बन्धुओं, मित्रों और भूत्योंने उसे मना किया—‘राजन् ! इस समय चुरे शकुन हो रहे हैं । इनका फल अच्छा नहीं है । मौर्य । आप त्रिभुवनके एकचक्रपत्र स्वामी हैं, समस्त देवताओंपर आपने विजय प्राप्त की है, आपको किसीसे भय भी नहीं है ; फिर किसलिये तप करना चाहते हैं ? हम सभी लोग जब अपनी युद्धिसे विचारते हैं, तब कोई भी प्रयोजन नहीं दिखायी देता [जिसके लिये आपको तप करनेकी आवश्यकता हो] ; क्योंकि जिसकी कामना अपूर्ण होती है, वही तपस्या करता है ॥ ३-६ ॥

आपने बन्धुओंके इस प्रकार मना करनेपर भी वह दुर्मिंद एवं मदमति दैत्य आपने दो-तीन मित्रोंको साथ लेकर (तपके लिये) कैलास-शिखरको चला ही गया । महोपाल ! वहाँ जाकर जब वह परम दुष्कर तपस्या करने लगा, तब पद्मशेनि ब्रह्माजीको उसके कारण बड़ी चिन्ना हो गयी । ये सोचने लगे—‘अहो ! अब क्या करें ? यह दैत्य कैसे तपसे निवृत्त हो ?’ भूपाल ! इस चिन्नासे ब्रह्माजी जब ल्याकृत हो रहे थे, उसी समय उनके अङ्गसे उत्पन्न मुनिवर नारदजीने उन्हें प्रणाम करके कहा— ॥ ७-१० ॥

ब्रह्मण्डजी बोले— पिताजी ! आप तो भगवान् नारायणके आश्रित हैं, फिर आप क्यों खेद कर रहे हैं ? जिनके हृदयमें भगवान् गोविन्द विराजमान हैं, उन्हें इस प्रकार सोच नहीं करना चाहिये । तपस्यामें प्रवृत्त हुए उस दैत्य हिरण्यकशिपुको मैं उससे निवृत्त करूँगा । जागदीश्वर भगवान् नारायण मुझे इसके लिये सुवृद्धि देंगे ॥ ११-१२ ॥

कर्मणेव उत्तमः

इत्युक्त्वा २५ नम्य पितरं वासुदेवं द्विदि स्मरन् ।
 प्रथातः पर्वतेनैव सार्थं स मुनिपुङ्कवः ॥ १३
 कलविद्वां तु तौ भूत्वा कैलासं पर्वतोभमप् ।
 यत्रास्ते दितिजशेषो द्वित्रैर्मित्रैः परोवृतः ॥ १४
 कृतस्मानो मुनिसतत्र वृक्षशाखासमाभितः ।
 शृण्वतस्तस्य दैत्यस्य प्राहु गम्भीरत्वा गिरा ॥ १५
 नमो नारायणायेति पुनः मुनहादारधीः ।
 शिवारं प्रजपित्वा वै नारदो मीनमाभितः ॥ १६
 तच्छ्रुत्वा ब्रह्मनं तस्य कलविद्वस्य सादरम् ।
 हिरण्यकशिपुर्दीत्यः कुञ्जशार्पं समाददे ॥ १७
 याणं धनुषि संधाय यावन्मुद्भुति तौ प्रति ।
 तावदुद्धीय तौ भूप गती नारदपर्वती ॥ १८
 सोऽपि क्रोधपरीताङ्गो हिरण्यकशिपुसतदा ।
 त्यक्त्वा तमाश्रमं भूयो नगरं स्वं याहोपते ॥ १९
 तस्यापि भार्या सुश्रोणी कथाधूर्णाम नामतः ।
 तदा रजस्वला भूत्वा स्नाताभृत्यपोगतः ॥ २०
 रात्रावेकान्तसमये तथा पृष्ठः स दैत्यराद् ।
 स्वामिन् यदा तपश्चर्यां कर्तुं गेहाद्वनं गतः ॥ २१
 तदा त्ययोक्तं व्याणामयुतं मे तपस्त्वदम् ।
 तत्किमर्थं महाराज साम्प्रतं त्यक्तव्यान् चतम् ॥ २२
 तथ्यं कथय मे नाथ स्नेहात्मुच्छामि दैत्यप ।

हिरण्यकशिपुत्वाप

शृणु चार्वद्विं पे तथां वाचं व्रतविनाशिनीम् ॥ २३
 क्रोधस्यातीव जनर्णो देवानां पुदकद्वनीम् ।
 कैलासशिखो देवि महदानन्दकानने ॥ २४
 व्याहरन्ती शुभां वाणीं नमो नारायणेति च ।
 वारद्वयं प्रयं चेति व्याहृतं वचनं शुभे ॥ २५

मार्कण्डेयजी बोले—अपने पितासे इस प्रकार कहकर मुनिशेष नारदजीने उन्हें प्रणाम किया और यम-हो-मन भगवान् वासुदेवका स्मरण करते हुए वे पर्वतमुनिके साथ बहांसे चल दिये । वे दोनों मुनि कलविद्व यशोका रूप धारकवर उस उत्तम कैलास पर्वतपर आये, जहाँ दैत्यश्रेष्ठ हिरण्यकशिपु अपने दो-तीन मित्रोंके साथ रहता था । वहाँ स्थान करके नारदमुनि वृक्षको ताढ़ापर बैठ गये और उस दैत्यके सूनों-सुनते गम्भीर लालोंमें भगवानामका उच्चारण करने लगे । उदारबुद्धि नारद लगातार तीन बार 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका उच्च रूपरूपे उच्चारण कर भौत हो गये । भूपात ! कलविद्वके द्वारा किये गये उस आदरयुक्त नामकोर्तनको सूनकर हिरण्यकशिपुने कुपित हो भूषुप उत्तरा और उत्तर पर लालाका संभान करने क्यों ही उन दोनों परिवर्णोंके प्रति छोड़ने लगा, त्वं हो नारद और पर्वतमुनि उड़कर अन्यत्र चले गये । महापते ! तब हिरण्यकशिपु भी छोभसे भर गय और उसी समय वह उस आकामकी त्वागकर अपने नगरको छला आया ॥ १३—१५ ॥

वहाँ उसी समय उसकी कथाम् नामकी सुन्दरी पाली देवयोगसे रजस्वला होकर जल-स्नाना हुई थी । शुक्रिये एकान्तनामसके समय कथाम्भूने दैत्यराजसे पूछा—'कथामित् । आप जिस समय तप करनेके लिये घरसे बनको गये थे, उस समय तौ आपने यह कहा था कि 'मेरी यह तपस्या दस हजार बर्षोंतक चलेगी ।' फिर महाराज ! आपने अभी क्यों उस द्रुतको त्वाग दिया ? स्वामिन् ! दैत्यराज ! मैं त्रेयपूर्वक आपसे यह प्रश्न करता हूँ, कृपया मुझे सच-सच बताइये ॥ २०—२२ ॥ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—सुन्दरि ! सुनो, मैं वह जात तुम्हें सच-सच सुनाता हूँ, जिसके कारण मेरे ग्रन्थका भङ्ग हुआ है । वह जात मेरे क्रोधको अत्यन्त बढ़ानेवाली और देवताओंकी आनन्द देनेवाली थी । देवि ! कैलासशिखउपर जो महान् आनन्द-कानन है, उसमें दो पक्षे 'ॐ नमो नारायणाय'—इस शुभकानीका उच्चारण करते हुए आ गये । शुभे ! उन्होंने [मुझे सुना-सुनाकर] दो बार, तीन बार उक्त बचनको दुहराया ।

तेन मे मनसि क्रोधो जातोऽतीव वरानने।
कोदण्डे शरमाधाय यावन्मुङ्गामि भामिनि॥ २६

तावत्ती पश्चिणौ भीती गती देशान्तरं त्वहम्।
त्यक्त्वा त्रतं समायातो भाविकार्यवलेन वै॥ २७

गार्हण्डेय उत्तर

इत्युच्यमाने वचने वीर्यद्वावोऽभवतदा।
प्रह्लादकाले तु सम्पादे जातो गर्भस्तदैव हि॥ २८

पुनः प्रवर्धमानस्य गर्भं गर्भस्य धीमतः।
नारदस्योपदेशेन वैष्णवः समज्ञायत॥ २९

तदग्रे कथयिष्यामि भूप श्रद्धापरो भव।
तस्य सूनुरभूद्धकः प्रह्लादो जन्मवैष्णवः॥ ३०

सोऽवर्धतासुरकुले निर्वलो मलिनाद्वये।
यथा कली होरभक्तिः पाशसंसारमोचनी॥ ३१

स वद्धमानो विरराज वालैः
सह ब्रदीनाथपदेषु भक्त्या।
बालोऽल्पदेहो महती महात्मा
विस्तारयन् भाति स विष्णु भक्तिम्॥ ३२

यथा चतुर्थं युगमासधर्मं—
कामाद्यमोक्षं किल कीर्तिंदं हि।
स बाललीलासु सहान्युद्दिष्ट्ये:
प्रहेलिकाकीडनकेषु नित्यम्॥ ३३

कथाप्रसङ्गेषु च कृष्णमेव
प्रोवाच यस्मात् स हि तत्स्वभावः।
इत्थं शिशुत्वेऽपि विचित्रकारी
व्यवद्धतेशस्मरणामृताशः॥ ३४

तं पश्यवक्त्रं दैत्येन्द्रः कदाचित्स्वीवृतः खलः।
बालं गुरुगृहायातं ददर्श स्वायतेष्ठणम्॥ ३५

वरानने! पश्चियोंके उस शब्दको सुनकर मेरे मनमें बड़ा क्रोध हुआ और भामिनि! उन्हें मारनेके लिये भनुपर बाय चढ़ाकर ज्यों ही मैंने छोड़ना चाहा, त्यों ही वे दोनों पक्षी भवभोत हो उड़कर अन्यत्र चले गये। तब मैं भी भावीकी प्रबलताये अपना त्रत त्यागकर यहाँ चला आया॥ २३—२७॥

माकंण्डेयजी कहते हैं—[हिरण्यकशिष्य अपनी पत्नीके साथ] जब इस प्रकार बातें कर रहा था, उसी समय उसका बोयं स्खलित हुआ; पल्लीका प्रह्लादकाल तो ज्ञात था ही, उसकाल गर्भ स्थापित हो गया। माताके उदारमें बढ़ते हुए उस गर्भसे बुद्धिमान् नारदजीके उपदेशके कारण विष्णुभक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। भूप! इस प्रलङ्घको आगे कहाँगा; इस समय जो प्रसङ्ग चल रहा है, उसे श्रद्धापूर्वक सुनो। हिरण्यकशिष्यका वह भक्त पुत्र प्रह्लाद जन्मसे ही वैष्णव हुआ। जैसे यापपूर्ण कलियुगमें संसार-जन्मनसे मुक्त करनेवाली भगवान् श्रीहरिकी भक्ति बढ़ती रहती है, उसी प्रकार उस मरिन कार्म करनेवाले अमृत-वंशमें भी प्रह्लाद विर्मल भावसे रहकर दिनोंदिन बढ़ने लगा। वह बालक त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णुके चरणोंमें बढ़ती हुई भक्तिके साथ ही स्वयं भी बढ़ता हुआ शोभा पा रहा था। शरीर छोटा होनेपर भी उस बालकका हृदय महान् था; वह विष्णुभक्तिका प्रसार करता हुआ उसी तरह शोभा पाता था, जैसे यौवा युग (कलियुग) [महर्षमें सब युगोंमें छोटा होकर भी] भगवद्गीतासे धर्म, अर्थ, ज्ञान और मोक्षको देनेवाला तथा यसका विस्तार करनेवाला होता है। प्रह्लाद अन्य बालकोंके साथ खेलते, पहेली बुझते और खिलीने जादिसे मनोरञ्जन करते समय तथा बालधीनके प्रसङ्गमें भी सदा भगवान् विष्णुकी ही चर्चा करता था; क्योंकि उसका स्वभाव भगवन्मय ही गया था। इस प्रकार शैशव-कालमें भी विचित्र कार्य करनेवाला वह प्रह्लाद भगवत्स्मरणरूपी अमृतका यान करता हुआ दिन-दिन बढ़ने लगा॥ ३८—३४॥

एक दिन बहुत सी स्त्रियोंके बीचमें चैठे हुए दुष्ट दैत्यराज हिरण्यकशिष्यने गुरुजीके घरसे आये हुए कमल-से मुखवाले अपने बालक पुत्र प्रह्लादको देखा; उसकी

गृहीत्वा तु करे पुत्रं पट्टिका या सुजोभना ।
मूर्जिन् चक्राद्विता यदी कृष्णनामाद्विताऽऽदरान् ॥ ३६

तमाहूय मुदाविष्टो लालयन् प्राह पुत्रकम् ।
पुत्रं ते जननी नित्यं सुधीमें त्वा प्रशंसति ॥ ३७

अथ तदुद यत्किञ्चिद् गुरुवेशमनि शिक्षितम् ।
विद्यार्थीनन्दजननं सम्प्रगायाति तदुद ॥ ३८

अथाह पितरं हर्षान् प्रह्लादो जन्मदीर्घावः ।
गोविन्दं त्रिजगद्गुर्वान् प्रभुं नत्वा द्विवीर्मि ते ॥ ३९

इति शब्दोः सत्वं भूत्वा पुत्रोक्तं सर्वाख्यतः खलः ।
कुञ्जोऽपि ते वज्रायितुं जहासोच्चैः प्रहृष्टवत् ॥ ४०

आलिङ्ग्य तनयं प्राह शृणु यात्त हितं चत्वः ।
राम गोविन्दं कृष्णोति विष्णो माधवं शोषते ॥ ४१

एवं चदनिति ये सर्वे ते पुत्रं च य वैरिणः ।
शाश्विताम् च परेदार्थं त्वयेदं क भूतं चत्वः ॥ ४२

पितुर्वचनपाकार्यं धीयानभयसंयुतः ।
प्रह्लादः प्राह हे आर्यं मैवं द्रूयाः कदाचन ॥ ४३

सर्वैभृत्यप्रदं भवत्यं धर्मादिपरिकर्त्यनम् ।
कृष्णोति यो नरो द्रूयात् मोऽभ्यं विन्दते पदम् ॥ ४४

कृष्णनिन्दासमुत्थस्य अघस्यानो न विद्यते ।
राम माधवं कृष्णोति स्मर भवत्याऽत्मशुद्धये ॥ ४५

गुरवेऽपि द्विवीर्म्येतद्यतो हितकरं परम् ।
शरणं द्वजं सर्वेशं सर्वं पापक्षयं करम् ॥ ४६

अत्येचं चढ़ी-बड़ी और सुन्दर वो तथा वह हाथमें रही
लिये हुए था। उसकी एही बड़ी सुन्दर थी, उसके सिरेपर
चक्रका विह बना हुआ था और पटोपर आदरपूर्वक
श्रीकृष्णज्ञान नाम लिखा गया था। उसे देख हिरण्यकशिंगुको
बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने पुत्रको पक्ष मुलाकर उसे
प्याज करती हुए कहा—‘वेटा! तुम्हारी बुद्धिमती भाता मुहसे
तुम्हारी बड़ी प्रशंसा किया करती है। अतः तुमने गुरुबीके
पर जो कुछ सीखा है, वह मुझमें कहो। चहले सोच लो,
जो तुम्हें यहुत अनन्ददायी प्रतीत होता हो और भलीभीत
याद हो, वहाँ पाठ सुनाओ’ ॥ ३५—३६ ॥

यह सुनकर जन्मसे ही विष्णुकी भक्ति करनेवाले
प्रहृष्टने प्रसन्नतापूर्वक प्रियासे कहा—‘त्रिपुत्रनके बन्दीन्य
भगवान् गोविन्दको प्रणाम करके मैं अपना पदा हुआ
पाठ आपको सुनाता हूँ।’ अपने पुत्रके मुखसे इस प्रकार
भृत्यों सुनकर विष्णोसे पिया हुआ यह दुष्ट दैत्य
विष्णुपि यहुत कुँद हुआ, उच्चापि प्रह्लादसे उस जोशको
हितानेहो लिये वह प्रसन्न पुरुषको ‘भीति जोर-जोरसे
हीमने लगा। फिर पुत्रको गलेरे लगाकर छोला—‘दत्ता!
मेरा हितकर चत्वन मूलो—वेटा। जो लोग ‘राम, कृष्ण,
गोविन्द, विष्णु, माधव, शोषते!’ इस प्रकार कहा करते
हैं, वे सभी मेरे शत्रु हैं; ऐसे लोग मेरे हाथा लाभित—
दाष्टित हुए हैं। तुमने यह हरिनामकोर्त्तन इस अगस्त्यामें
कहीं चुन लिया?’ ॥ ३७—४२ ॥

विष्णोकी जात सुनकर बुद्धिमान् प्रह्लाद निर्भय होकर
योला—‘आर्य! आपको कभी ऐसो यात नहीं कहनी
चाहिये। जो भनुप्य सरम्पूर्ण ऐश्वर्योंको होनेवाले तथा धर्म
आदिकी बुद्धि करनेवाले ‘कृष्ण’ इस मन्त्रका उच्चारण
करता है, वह अभ्य वटको प्राप्त कर सकता है। भगवान्
कृष्णही विन्दते होनेवाले यापका कहाँ अन्त नहीं
है; अतः उच्च आप अपनी शुद्धिके लिये भक्तिपूर्वक
‘राम, माधव और कृष्ण’ इत्यादि नाम सेते हुए
भगवान्का स्मरण करें। जो यात मैं आपसे कह रहा हूँ,
वह सभसे बड़ुकर हितसाधक है, इसीलिये मेरे गुरुजन
होनेवाले भी आपसे मैं विन्दन करता हूँ कि आप समस्त
पापोंका सम्य करनेवाले सर्वेक्षर भगवान् विष्णुकी शरणमें
जावे।’ ४३—४६ ॥

अथाह प्रकटकोऽधः सुरारिभत्सयन् सुतम् ।
केनाद्य बालको नीतो दशामेतां सुमध्यमाम् ॥ ४७

धिग् धिग्धाहेति दुष्प्रत्र किं मे कृतमयं पद्मत् ।
याहि याहि दुराचार पापिष्ठ पुरुषाधाम ।
उक्तवेति परितो वीक्ष्य पुनराह शिशोर्गुरुम् ॥ ४८
बद्ध्वा चानीयतां दैत्यैः कूरैः कूरपराक्रमैः ।

इति श्रुत्वा ततो दैत्यास्तमानीय न्यवेदयन् ।
धीमानूचे खलं भूपं देवान्तक परीक्षताम् ॥ ४९

लीलयैव जिते देव वैलोक्यं निखिलं त्वया ।
असकृप्त हि रोधेण किं कृद्दस्यात्पके मर्यि ॥ ५०

इति सामवचः श्रुत्वा द्विजोक्तं प्राह दैत्यराद ।
विष्णुस्तवं मम सुतं पाप बालमपीपठः ॥ ५१

उक्तवेति तनयं प्राह राजा साम्नामलं सुतम् ।
ममात्पत्त्वय किं जाङ्घ्यं तव चैतद्विजैः कृतम् ॥ ५२

विष्णुपक्षेभूते भूतैर्मृदं नित्यं परित्यज ।
त्वज द्विजप्रसङ्गे हि द्विजसङ्गो चशोभनः ॥ ५३

अस्मत्कुलोचितं तेजो थैर्द्विजैस्तु तिरोहितम् ।
यस्य यत्संगतिः पुंसो मणिवत्स्यात्म तद्गुणः ॥ ५४

स्वकुलद्वयं ततो धीमान् स्वयूशानेव संश्रयेत् ।
मत्सुतस्योचितं स्यक्त्वा विष्णुपक्षीयनाशनम् ॥ ५५

स्वयमेव भजन् विष्णुं मन्द किं त्वं न स्वयसे ।
विश्वनाथस्य मे सूनुभूत्वान्यं नाथमिच्छसि ॥ ५६

शृणु वत्स जगत्तत्त्वं कश्चित्प्राप्ति निजः प्रभुः ।
यः शूरः स श्रियं भूद्वके स प्रभुः स महेश्वरः ॥ ५७

प्रह्लादके यों कहनेपर देवशतु हिरण्यकशिषु अपने ब्रोथको रोक न सका, उसने रोपको प्रकट करके पुत्रको फटकारते हुए कहा—‘हाय! हाय! किसने इस बालकको अत्यन्त मध्यम कोटिकी अवस्थाको पहुंचा दिया? रे दुष्ट पुत्र! तुझे पिछार है, पिछार है। तुने क्यों मेरा महान् अपराध किया? ओं दुरचारी नीच पुरुष! औं पापिष्ठ! तू यहाँसे चला जा, चला जा।’ यों कहकर उसने अपने चाहें और निहारकर फिर कहा—‘नूरांस पराक्रमी कूर दैत्य जायें और इसके गुरुको बांधकर यहाँ से आवें’॥ ४७-४८ ॥

यह सुन दैत्योंने प्रह्लादके गुरुको बहाँ लाकर उपस्थित कर दिया। चुदिमान् गुरुने उस दुष्ट दैत्यराजसे विनश्यपूर्वक कहा—‘देवान्तक! थोड़ा विचार तो कीजिये। आपने समस्त विभूतिको अनायास ही अनेकों बार पराजित किया है, खेल-खेलमें ही सबको जीता है, रोपसे कभी काम नहीं लिया। फिर मुझ-जैसे तुच्छ प्राणीपर क्रोध करनेसे क्या लाभ होगा?’॥ ४९-५० ॥

आहारणके इस शान्त वचनको मुनकर दैत्यराज बोला—‘ओं पापी! तुमे मेरे बालक पुत्रको विष्णुका लोक पढ़ा दिया है।’ गुरुसे यों कहकर राजा हिरण्यकशिषुने अपने निर्दोष पुत्रके प्रति सान्देशपूर्वक कहा—‘वेदा! तू मेरा आत्मज है, तुझमें यह जड़-चुदि कैसे जा सकती है? यह तो इन ब्राह्मणोंकी ही करतूल है। मूर्ख बालक! आजसे तू सदा विष्णुके पक्षमें रहनेवाले भूत ब्राह्मणोंका साथ छोड़ दे, ब्राह्मणमात्रका सङ्ग त्वया दे; ब्राह्मणोंकी संगति अच्छी नहीं होती; क्योंकि इन ब्राह्मणोंने ही तेरे उस तेजको छिपा दिया, जो हमारे कुलके लिये सर्वधा उचित था। जिस पुरुषको जिसकी संगति मिल जाती है, उसमें उसीके गुण आने लागते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे मणि कोचड्हमें पढ़ी हो तो उसमें उसके दुर्गम्भ आदि दोष जा जाते हैं। अतः चुदिमान् पुरुषको उचित है कि यह अपने कुलकी समृद्धिके लिये आत्मीय जनोंका ही आश्रय ले। चुदिहीन बालक। मेरे पुत्रके लिये तो उचित कर्तव्य यह है कि वह विष्णुके पक्षमें रहनेवाले लोगोंका नाश करे; परंतु तू इस उचित कार्यको स्वयमकर इसके विपरीत स्वयं ही विष्णुका भजन कर रहा है! बता तो सही, क्या यों करते हुए तुझे लक्ष्य नहीं आते? अरे! मुझ सम्पूर्ण जगत्के सम्प्राप्तका पुत्र होकर तू दूसरोंको अपना स्वामी बनाना चाहता है? वेदा! मैं तुझे संसारका तत्त्व बताता हूँ, सुन; यहाँ कोई भी अपना स्वामी नहीं है। जो शूरवीर है, वहाँ लक्ष्मीका उपभोग करता है तथा वही प्रभु है, वही महेश्वर है॥ ५१-५२ ॥

स देवः सकलाध्यक्षो यथाहं त्रिजगजयी।
त्यज जाङ्गमतः शौर्यं भजस्व स्वकुलोचितम् ॥ ५८

अन्येऽपि त्वां हनिष्यन्ति विद्युतिं जनास्तिवदम्।
असूरोऽयं सुरान् स्तौति मार्जरं इव पूषकान् ॥ ५९

देव्यान् शिखीय फणिनो दुर्बिमितमिदं भूवम्।
लब्ध्यापि महदेश्वर्यं लाघवं यान्त्यवुद्धयः ॥ ६०

यथायं मत्सुरः स्तुतः स्तावकप्रान् स्तौति भीचवत्।
रे मूढं दुष्टाध्येश्वर्यं मम दूषे पुरो हरिम् ॥ ६१

असदुशस्य तु हरेः स्तुतिरेषा विडम्बना।
इत्युक्त्या तनयं भूपं जातकोधो भयानकः ॥ ६२

जिह्वं निरीक्ष्य च प्राह तदगुणं काम्ययन् रुषा।
याहि याहि द्विजपश्चो साधु शाधि सुतं यम् ॥ ६३

प्रसाद इत्येष वदन् स विद्वा
जगाम गेहं खलाराजसेषी।
विष्णुं विमुन्यान्वसरच्छ दैत्यं
किं या न कुर्याद्भैरणाय लुभ्या: ॥ ६४

श्री श्रीनरसिंहपुराणे श्रीनरसिंहपुराणे एकान्तर्वर्तीसोऽभ्यासः ॥ ६४ ॥
इति इति श्रीनरसिंहपुराणे 'नरसिंहावत्तम्' लापक इकालसीराकां अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

—८८—

बयालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादपर हिरण्यकशिपुवत्र कोप और प्रह्लादकल्प यथ कानेके लिये इसके द्वारा किये गये अनेक प्रयत्न

मार्कंडेय उक्तव
सोऽप्याशु नीतो गुरुवेश्य दैत्य-
दैत्येन्द्रसुनहरिभक्तिभूषणः।
अशेषविद्यानिवहेन साकं
कालेन कौपारमवाप योगी ॥ १

"यही मनका अध्यक्ष देवता है, जैसा कि तीनों लोकोंपर विजय पानेवाला मैं हूँ। इसलिये तू अपनी यह जड़ता त्याग दे, और अपने कुलके लिये उचित बालताका आक्रम ले। तेरे यह कामरता देखकर दूसरे लोग भी तुम्हे मारेंगे और कहेंगे कि 'ओर! यह असूर होकर भी देवताओंकी उसी प्रकार स्तुति करता है, जैसे विज्ञानहेतु करे और पौर अरने द्वेषपात्र संघोंकी प्रार्थना करे। ऐसा करना अवश्य ही अनिष्टका सूचक है। मूर्ख प्रजों महान् ऐक्षर्य पाकर भी [अपने खोटे कमोंके द्वारा] नींदे निर जाते हैं, जैसे मेरा पुत्र प्रह्लाद, जो स्वयं स्तुतिके बोध था, आज नींद जानेकी खोति उन लोगोंकी स्तुति कर रहा है, जो स्वयं हमारी स्तुति करनेवाले हैं। तेरे मूर्ख! तू मेरा ऐसर्य देखकर भी मेरे सामने ही हरिका नाम ले रहा है? यह हरि इस सम्बन्धके बोध नहीं है, उसकी स्तुति विद्म्बनामात्र है" ॥ ५८—६१ ॥

भूप! अपने तुम्हसे इस प्रकार कहकर वह इतना कुपित हुआ कि उसका लब्धय भयानक हो गया; फिर प्रह्लादके गुरुको टेढ़ी नजरसे देखकर उन्हें अपने ऐससे कैफला हुआ बोला—'मूर्ख ज्ञानात्! यहाँसे चला जा, चला जा। अथको बार मेरे पुत्रको अच्छी शिक्षा देना।' दुष्ट राजकी सेवा करनेवाला वह ज्ञानात् 'बहू फूपा हुई' यों कहता हुआ भर चला गया और विष्णुका भजन रूपानकर दैत्यराज (हिरण्यकशिपु)-का अनुसारण करने लगा। मत्त है, सोभी शक्ति अपना पेट पालनेके लिये क्या नहीं भर सकते? ॥ ६२—६४ ॥

मार्कंडेयजी कहते हैं—भगवान् विष्णुकी भक्ति ही जिनका भूषण है, वे दैत्यराजकुमार योगी प्रह्लादजी जीव ही सार्थिके साथ गुरुके भर भेजे गये। वहाँ वे कालक्रमसे सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञानके साथ कुमारावस्थाको प्राप्त हुए।

**प्रायेण कीमारपवाप्य त्वोकः
पुण्याति नास्तिकव्यमसद्गतिं च।
तस्मिन् वयःस्थस्य बहिर्विरक्ति-
भवत्यभूच्छिव्रमजे च भक्तिः॥ २**

**अथ सम्पूर्णविद्वां तं कदाचिदितिजेश्वरः।
आनाय्य प्रणातं प्राह प्रह्लादं विदितेश्वरम्॥ ३**

**साध्यज्ञाननिधेवात्पानमुक्तोऽसि सुरमूदन।
इदानीं भाजसे भास्वान् नीहारादिव निर्गतः॥ ४**

**बाल्ये वर्य च त्वपिव द्विजैर्जाङ्घाय योहिताः।
वयसा वर्धमानेन पुत्रकैवं सुशिखिताः॥ ५**

**तदद्य त्वयि पुर्येऽहं संसकण्टकताश्वरम्।
विन्यस्य स्थां जिरधृतां सुख्यो पश्यन् द्वियं तव॥ ६**

**यदा यदा हि नैपुण्यं पिता पुत्रस्य पश्यति।
तदा तदाऽऽधित्यकला नु महतीख्यप्रयाप्युक्ता॥ ७**

**गुरुक्षातीव नैपुण्यं प्रपागेऽवर्णयत्वः।
न चित्रं पुत्र तच्छ्रोतुं किं नु मे वाज्ञतः श्रुती॥ ८**

**नेत्रयोः शशुदारिद्रव्यं ओत्रयोः सुतमूक्तयः।
युद्धदण्डं च गात्रेषु मायिनां च महोत्तरवः॥ ९**

**श्रुत्वेति निकृतिप्रज्ञं दैत्याधिपवचस्ततः।
जगाद योगी निशशङ्कं प्रह्लादः प्रणतो गुरुम्॥ १०**

**सूक्तयः ओत्रयोः सत्यं महाराज महोत्तरवः।
किंतु ता वैष्णवीर्वाचो मुक्त्वा नान्या विचारयेत्॥ ११**

**नीतिः सूक्तिः कथाः आव्याः श्राव्यं काव्यं च तदुच्चः।
यत्र संसुतिदुःखीयकक्षाग्रिगीयते हरिः॥ १२**

संसारके अन्य लोग कीमार अवस्थाको पाकर प्रायः नास्तिक विचार और ये आचार-व्यवहारके पोषक बन जाते हैं, परंतु उसमें प्रह्लादको बाहा विवरोंसे वैराग्य हुआ और भगवान्ने उनको भक्ति हो गयी—यह अनुदृत बात है। तदनन्तर जब प्रह्लादने गुरुके यहाँ अपनी पढाई समाप्त कर ली, तब एक दिन दैत्यराजने उन्हें अपने पास बूलवाया और इंधर-तल्लके जाता प्रह्लादको अपने साथने प्रयाम करके लाके देख उनसे कहा— ॥ १—३ ॥

सुरमूदन ! तुम ऋजुनकी निपिलसा वाल्यवास्तव्यसे मुक्त हो गये—यह बहुत अच्छा हुआ। इस समय तुम कुहिरेसे निकले हुए सूर्योंकी भीति अपने लौजसे प्रकाशित हो रहे हो। पुत्र ! वयसनमें तुम्हारी हो तरह हमें भी जाह्नुद्धि सिरानेपरे लिये जाइएगें मीठित कर रखा था; किंतु अवस्था बदलेपर जब हम सम्भादन हुए, तब इन प्रकार अपने कुहिरें अनुभ्य सुन्दर लिखा ग्रहण कर सके थे। अतः जात्रकों कोटीसेरे युक्त इस राज्य शालेके भासको, जिसे मैंने बहुत दिनोंसे धारण कर रखा है, अब तुम समाजीकृत्युपरांत पुरुषों रखकर मैं तुम्हारी राज्य-लक्षणीयोंको देखते हुए सुख्यो होना चाहता हूँ। पिंडा जब-जब अपने पुत्रकी नियुक्ता देखता है, तब-तब अपनी मानसिक चिन्ता त्यागकर महान् सुरक्षका अनुभव करता है। तुम्हारे गुरुने भी मैं समझ तुम्हारी योग्यताका जड़ा बद्धान किया है। यह तुम्हारे लिये कोई अतिरिक्तीकरण नहीं है। आज मेरे बहन तुम्हारी कुछ चीजोंसुनना चाहते हैं। नेत्रोंके साथने शशुको दरिद्रता देखना, कानोंमें पुत्रको तुन्द्र चारीकर पहना और अङ्गोंमें युद्धके भाजातम्हे चाह दीना—यह सब ऐश्वर्यवान् वृक्षों अथवा माणावी दैत्योंके लिये महान् तत्त्ववके समान है॥ ४—९ ॥

उस समय दैत्यराजके ये शशुदारियून चचन सुनकर योगी प्रह्लादने पितृको प्रणाम करके निर्भीकनामुर्कं कहा— ॥ १० ॥

‘प्रह्लाद ! आपका यह कथन सत्य है कि अपनी चारों सुनका ज्ञानेको लिये महान् उत्तरायके समान है; किंतु मैं अपनी भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाली हों, तभी ऐसा होता है। उनको छोड़कर दूसरी चारों सुननेका विचार भी नहीं करना चाहिये। जो संसारके दुःखसुदायरूपी तुग्नोंको भर्यम करनेके लिये अस्तिकरणान है, उन भगवान् विष्णुका जिसमें गुणगाल किया जाता है, वही वचन नोतियुक्त है, वहीं सूक्ति (सुन्दर वक्त्र) है, वही सुनने योग्य वक्ता और क्रवण करने योग्य अस्त्र है।

अचिन्त्यः स्तूयते यत्र भक्त्या भक्तेषितप्रदः ।

अर्थशास्त्रेण किं तात यत्र संसूतिसंततिः ॥ १३

शास्त्रश्रमेण किं तात येनात्मेव विहंस्यते ।

वैष्णवं वाइमयं तस्माच्छ्रव्यं सेव्यं च सर्वदा ॥ १४

मुपुक्षुभिर्भवक्त्वेशान्नो चेत्रैव सुखी भवेत् ।

इति तस्य चत्वः शृण्वन् हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ १५

जन्माल दैत्यराद् तस्मपिरद्विरियाधिकम् ।

प्रहादस्य गिरं पृथग्यां जनसंसूतिनाशिनीम् ॥ १६

नामृष्यतासुरः क्षुद्रो घूको भानुप्रभापिव ।

परितो वीक्ष्य सप्ताह कुद्धो दैत्यभटानिदम् ॥ १७

हन्यतामेष कुटिलः शस्त्रपातैः सुभीषणैः ।

उत्कृत्योलकृत्य मर्माणिं रक्षितास्तु हरिः स्वयम् ॥ १८

पश्यत्विदानीषेवैष हरिसंस्तवजं फलम् ।

काकोलककुण्डप्रेष्यो हास्याङ्गं संविभन्यताम् ॥ १९

अधोद्वृतास्या दैतेयास्तर्जयनः प्रणवितैः ।

अच्युतस्य प्रियं भक्तं तं जग्नुः परिनोदिताः ॥ २०

प्रहादोऽपि प्रभुं नत्वा ध्यानवर्जं समाददे ।

अकृतिपरसं भक्तं तमित्यं ध्याननिक्षलम् ॥ २१

ररक्ष भगवान् विष्णुः प्रहादं भक्तदुःखदत् ।

अथालन्धपदान्यस्य गात्रे शस्त्राणि रक्षसाम् ॥ २२

नीलाक्षजकलानीव पेतुशिष्ठान्यनेकधा ।

किं प्राकृतानि शस्त्राणि करिष्यन्ति हरिप्रिये ॥ २३

तापत्रयमहास्त्रीषः सर्वोऽप्यस्याद् विभेति वै ।

पीडियन्ति जनांस्नावद् व्याधयो राक्षसा ग्रहाः ॥ २४

यावद् गुहाशयं विष्णुं सूक्ष्मं चेतो न विन्दति ।

ते तु भग्नास्त्रशक्तैः प्रतीपोत्थैरितस्ततः ॥ २५

हन्यमाना न्यवर्तनं सद्यः फलदैरिव ।

न चित्रं विष्णुधानां तदज्ञानां विस्मयावहम् ॥ २६

जिसमें भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाले अचिन्त्य परमेश्वरका भक्तिपूर्वक स्तवन किया जाता हो, वही शास्त्र है । तात उस अव्यंशास्त्रसे क्या लाभ, जिसमें संसार-चक्रमें कालनेवाली ही जातें कही गयी हैं । पिताजी ! उस शास्त्रमें परिक्रम करनेसे क्या मिळ होगा, जिससे जात्माका ही हनन होता है; इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको जटा वैष्णव शस्त्रोंका ही श्रवण और स्वन करना चाहिये । अन्यथा सांसारिक कष्टसे छुटकाय नहीं मिलता और न प्रत्यक्ष सुखी हो हो पाता है ॥ ११—१४ ॥

जिस प्रकार तापाय हुआ थी जलके छाँट पहुँचेसे और अधिक प्रश्नलिल हो उठता है, वैसे ही दैत्यराज हिरण्यकशिपु प्रहादकी उपर्युक्त जातें सुनकर क्रोधसे जल उठा । जैसे उम् सूर्यको प्रभा वहीं देख सकता, उसी प्रकार वह धूम असुर जीवके संसार-जन्मनको नष्ट करनेवाली प्रहादकी पांचित वाणीं न सह सका । उस क्रोधीने जारी और देखकर दैत्य जीरोंसे बहा— ॥ १५—१७ ॥

‘ओर ! इस कुटिलको शस्त्रोंके भवंकर आपातसे मार डालो, इसके मर्मस्त्रानोंके दुकड़े-दुकड़े कर दो; आज इसका भगवान् स्वयं आकर इसकी रक्षा करे । विष्णुकी सहुति करनेका फल यह आज इसी समय अपनी जीर्णोंसे देखो । इसका अङ्ग-अङ्ग काटकर कौआं, कौकों और गिर्दोंको आंट दो’ ॥ १८—१९ ॥

तब अपने स्वामी हिरण्यकशिपुद्वारा प्रेतिं दैत्यगण अपनी विकट शर्कनासे ढारते हुए, काशमें शस्त्र लेकर भगवान् के प्रिय भक्त उन प्रहादोंको मारने लगे । प्रहादने भी भगवान् को नमस्कर करके ध्यानकी रक्षा ग्रहण किया । उब भक्तोंके दुःख दूर करनेवाली भगवान् विष्णु स्वभावतः प्रेम करनेवाले भक्त प्रहादको इस प्रकार ध्यानमें स्थिर देख उसकी रक्षा करने लगे । फिर तो रक्षकोंके चलाये हुए अस्त-शस्त्र प्रहादके शरीरमें स्थान किये जिन्होंनी नील-कमलके दुकड़ोंकी भौंति खण्ड-खण्ड होकर गिर जाने लगे । भला, ये प्राकृत शस्त्र भगवान्के प्रिय भक्तका क्षमा कर सकते हैं । उससे तो सम्भूत जितापर्णी भगवान् अस्त्रसमूह भी भय मानता है । व्यापि, राक्षस और ग्रह—ये तमीतक मनुष्योंको पीड़ा पहुँचाते हैं, जबतक उनका जित हृदय-गुहामें सूक्ष्मलक्ष्यसे स्थित भगवान् विष्णुको नहीं प्राप्त कर लेता । भक्तके अपमानका मानो तत्काल फल देनेवाले ये भग्न अस्त्रखण्ड डलटे चलकर दैत्योंका संहार करने लगे । इनसे पीडित होनेके कारण ये दैत्य इधर-उधर भाग गये । चिंडियोंकी दृष्टिमें ऐसा होता है कोई आहसनकी जात नहीं है, अज्ञानीज्ञानोंको ही इस घटनासे जित्यमय हो सकता है ॥ २०—२६ ॥

वैष्णवं बलमालोक्य राजा नूनं भयं दध्ये।
 पुनस्तस्य वयोपायं चिन्तयन् स सुदुर्भीतिः ॥ २७
 समादिशत् समाहृय दंटशूकान् सुदुर्विवान्।
 अशस्त्रवधयोग्योऽयमस्मयो हरितोषकृत् ॥ २८
 तस्माद् भवद्विद्वचिगाद् हन्यतां गरलायुधाः।
 हिरण्यकशिष्ठोः श्रुत्वा वचनं ते भुजंगमाः।
 तस्याज्ञां जग्गुह्मूर्खां प्रहपदिशवर्तिनः ॥ २९
 अथ ज्वलहशनकरालदृष्टिण
 स्फुटस्फुरहशनस्त्वभीषणाः ।
 अकर्षका हरिमहिस्वकर्वका
 हरिप्रियं दृततरमापतनुया ॥ ३०
 गरायुधास्त्वचमपि भेष्मूषलिपकां
 यपुष्यजस्मृतिवलदुर्भिदाकृतेः ।
 अलं न ते हरिवपुं तु केवलं
 विदश्य ते निजदशविविना कृताः ॥ ३१
 ततः स्त्रबत्कृतजविष्पणामूर्तयो
 द्विधाकृताद्दृतदशनां भुजंगमाः।
 समेत्य ते दितिजपतिं लवजिज्ञपन्
 विनिः श्वसत्प्रचलफणा भुजंगमाः ॥ ३२
 प्रभो महीशानपि भस्मणोर्धा-
 स्तस्मिन्द्रशकास्तु तदैव वध्याः।
 महानुभावस्य तवात्मजस्य
 वधे नियुक्त्वा दशविविना कृताः ॥ ३३
 इत्थं द्विजिह्वाः कठिनं निवेद्य
 ययुर्विसृष्टाः प्रभुणाकृताधार्थाः।
 विविनतयना: पृथुविस्पवेन
 प्रह्लादसामर्थ्यनिदानमेव ॥ ३४
 अथासुरेशः सधिविविचार्य
 निश्चित्य सूनुं तमदण्डसाम्यम्।
 आहृत्य साम्ना प्रणातं जगाद
 वाक्यं सदा निर्भलपुष्यचिन्तम्।
 प्रह्लाद दुष्टोऽपि निजाङ्गजातो
 न वध्य इत्यद्य कृपा ममाभृत् ॥ ३५

वैष्णवोंका बल देखकर राजा हिरण्यकशिष्ठुको अवश्य हो महान् भय हुआ; किंतु उस दुर्घटिने पुनः प्रह्लादके वधका उपय सोचते हुए, अस्त्रत भव्यकर विवकाले सर्वोंको चुलाकर उन्हें आदेश दिया—'गरलायुधो'! विष्णुको संतुष्ट करनेवाला यह निश्चाकु चालक; किसी शस्त्रसे नहीं मारा जा सकता; अतः तुम सभी मिलकर इसे अति शोष्र मार डालो।' हिरण्यकशिष्ठुको यह बात सुनकर उसकी जाज्ञा माननेवाले सभी सर्वोंने उसके आदेशको हर्षपूर्वक शिरोधार्य किया ॥ २७—२९ ॥

तदनन्तर जिनके दौत विषयसे जल रहे हैं तथा जिनकी दाढ़े विकराल हैं, जो स्फुट दिव्यादी देनेवाले हजारों चमकोंसे दौतोंके जारण भयानक जान पड़ते हैं, ऐसे सर्वगत क्रोधसे फुककारते हुए बड़े वैगम से उस हरिभक्तके कापर टूट चाहे। भगवान्के स्मरणके चलसे जिनका आकार दुर्भेद ही गया था, उन प्रह्लादजीके शरीरका भौंडा-सा चमड़ा भी कठानेमें ये विषयधर मर्याद समर्थ न हो सके। इतना हो चहों, जिनका जरीर भगवन्वय हो गया था, उन प्रह्लादजीको केवल उम्मेदमात्रसे ने मर्य अपने सारे दौत लो चैते। तदनन्तर रक्षाकी भारा बहनेमें जिनका आकार विकादप्रस्त हो रहा है, जिनके अद्भुत दौतोंके दो-दो द्रुकड़े हो गये हैं तथा शार-बार उच्छ्वास होनेके जारण जिनके फल चबूत हो रहे हैं, उन भुजंगमें वरस्तर मिलकर दैत्यराज हिरण्यकशिष्ठुको सूचित किया— ॥ ३०—३२ ॥

'प्रथे! हम पर्वतोंको भी भस्म करनेमें समर्थ हैं, यदि उनमें हमारी ज़खि न चले तो आप हत्यात्म हमारा वध कर सकते हैं। परंतु आपके महानुभाव पुक्का वध करनेमें लगाएं जाकर तो हम अपने दौतोंसे भी हाथ थो चैते।' इस प्रकार यही कठिनाईसे निवेदन करके स्वार्थी हिरण्यकशिष्ठुके अद्देन देनेवर भी अपने कठर्यमें असरकर दूर ने सर्व अस्त्रत आकाशके साथ प्रह्लादके अद्भुत सामर्थ्यका कथा कारण है, इसका विचार करते हुए चले गये ॥ ३३—३५ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इसके बाद असुरराज हिरण्यकशिष्ठु मन्त्रियोंके साथ विचारकर अपने पुत्रको दण्डसे अजेय मानकर उसे शान्तिपूर्वक अपने पास बुलाया और जब वह आकर प्रणाम करके ग़ज़ा हो गया, तब उस निर्मल श्वर पवित्र हृदयवाले अपने पुत्रसे कहा—'प्रह्लाद! अपने जरोरते यदि दुष्ट पुत्र भी उत्पन्न हो जाय तो वह वधके योग्य नहीं है, यह सोचकर अब तुमपर नुहे दया आ गयो है' ॥ ३५ ॥

* विषय हो जिनका रास्त है, उन्हें 'गरलायुध' (स्वर्य) कहा है।

ततस्तूर्णं समागत्य देत्यराजपुरोहिताः ।
मृढाः प्राञ्जलयः प्राहुर्द्विजाः शास्त्रविशारदाः ॥ ३६
त्रैलोक्यं कम्पते देव भृशं त्वय्यभिकाशक्षिणि ।
प्रह्लादस्त्वां न जानाति कुरुदं स्वल्पो महावलम् ॥ ३७
तदस्तं देव रोषेण दयां कर्तुं त्वमर्हसि ।
पुत्रः कुपुत्रतामेति न मातापितरी कदा ॥ ३८

उवत्त्वेति कुटिलप्रज्ञं देत्य देत्यपुरोहिताः ।
आदाय तदनुजातं प्रह्लादं धीधरं चयुः ॥ ३९

तत्प्रकाशं तुरंत ही वहाँ दैत्यराजके पुरोहित आये। शास्त्रविशारद होनेपर भी ये नृृ ही रह गये थे। उन ब्राह्मणोंने हाथ जोड़कर कहा—‘देव! तुम्हारी पुद्दविषयक इच्छा होते हो सारा त्रिभुवन वरधर कोपने लगता है। यह अत्य बलवाला प्रह्लाद कुपित हुए आप महान् बलवालीको नहों जानता। अतः देव! आपको क्रोधका परिस्पाग वारके इसपर दया करनी चाहिये; क्योंकि पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय, परंतु माता-पिता कभी कुमारा अथवा कुपिता नहों होते’॥ ३६—३८॥

दैत्यराजके पुरोहितोंने उस दुर्बुद्धि दैत्य हिरण्यकशिरपुत्रे यों कहकर उसको जाह्नवीसे प्रह्लादको माथ लेकर आपने भवनको छले गये॥ ३९॥

ॐ शीतासिंहपुराणे नामिनेऽनुष्ठाने द्विष्टकालीने ॥४२॥

इति प्रकाश शीतासिंहपुराणे ‘नामिनेऽनुष्ठाने द्विष्टकालीने’ अन्तर्गत पृष्ठ ४२॥

तैतालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादजीका दैत्यपुत्रोंको उपदेश देना; हिरण्यकशिरपुकी आज्ञासे प्रह्लादका समुद्रमें डाला जाना
तथा वहाँ उन्हें भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन होना

शब्दार्थानुसार

| | | |
|-----------------|----------|--|
| अथ | स | गुरुगृहेऽपि वर्तमानः सकलविद्युतसकलपुण्यचेताः । |
| जड | इव | विच्चार बाह्यकृत्ये सततमनन्तर्यां जगत्प्राप्यन् ॥ १ |
| सहगुरुकुलवासिनः | कदाचि- | च्छुतिविरता द्विवदन् समेत्य वालाः । |
| तव | चौरितमहो | विचित्रमेतत् क्षितिपतिपुत्र यतोऽस्य भोगलुक्यः । |
| हृदि | किमपि | विचिन्त्य द्विष्टरोमा भवसि सदा च वदाङ्ग यद्यगुणम् ॥ २ |
| इति | गदितवतः | स मन्त्रिपुत्रा- नवददिदं नुप सर्ववल्सलत्वात् । |
| शृणुत | सुमनसः | सुरारिपुत्रा यदहमनन्वरतिर्वदामि पृष्ठः ॥ ३ |

मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर सकल शास्त्रोंके जाता प्रह्लादजी गुरुके घरमें रहकर भी आपने पवित्र मनको भगवान् विष्णुमें लागाये रहनेके कारण सम्पूर्ण जगत्को नारायणका स्वरूप समझकर बाहु—लौकिक कर्मोंमें जहाँकी भौति व्यवहार करते हुए विचरते थे। एक दिन, उनके साथ ही गुरुकुलमें विवास करनेवाले छात्र-बालक चाठ-छवल बंद करके, एकत्र हो, प्रह्लादसे कहने लगे—‘राजकुमार! अहो! आपका चरित्र बड़ा ही विचित्र है; क्योंकि आपने विषय-भोगोंका लोभ त्याग दिया है। त्रिष्ण! आप आपने हठगम्ये किसी अनिर्वचनीय वस्तुका चिन्तन करके सदा पुलकित रहते हैं। यदि वह वस्तु डिपानेवोग्य न हो तो हमें भी बताइये’॥ १-२॥

नुप! प्रह्लादजी सबपर भ्लेह करनेवाले थे, अतः इस प्रकाश पूछते हुए मन्त्रिकुमारोंसे ये यों बोले—“हे दैत्यपुत्रो! एकमात्र भगवान्-में अनुराग रखनेवाला मैं तुम्हरे पूछनेपर जो कुछ भी बता रहा हूँ उसे तुमलोग प्रसन्नचित्त होकर

धनजनतकणीविलासरम्यो

भवविभवः किल भाति यस्तयेनम् ।

विपृश्ट सुवृथैरतैष सेव्यो

हुतमध्य वा परिवर्ज्य एव दूरात् ॥ ४

प्रथममिह विचार्यतां यदम्या-

जठरगतैरनुभूयते सुदुःखम् ।

सुकुटिलतनुभिलदाग्नितस्मी-

विविधपुराजननानि संस्मरद्धिः ॥ ५

काराग्नेह दस्युरिकास्मि बद्धो

जरायुणा विद्कृपिमृग्नेहे ।

पश्यामि गधेऽपि सकृन्मुकुन्द-

पादाभ्ययोरस्मरणेन कष्टम् ॥ ६

तस्मात्सुखं गर्भशयस्य नास्ति

बाल्ये तथा यीवनवाद्यके वा ।

एव भद्रो दुःखमयः सदैव

सेष्यः कथं दैत्यसुताः प्रवुद्देः ।

एव भवेऽस्मिन् परिमृश्यमाणा

बीक्षाप्नेह नैव सुखांशलेशम् ॥ ७

यथा यथा साप्तु विचारयाम-

सत्था तथा दुःखतरं च विद्यः ।

तस्माद्ववेऽस्मिन् किल चारुक्षये

दुःखाकरे नैव पतन्ति सन्तः ॥ ८

पतन्त्यथोऽतस्यविदः सुमूढा

वह्नी पतंगा इव दर्शनीये ।

यद्यस्मि नान्यच्छारणं सुखाय

युक्तं तदैतत्पतनं सुखाभे ॥ ९

अविन्दतामन्नमहो कृशानां

युक्तं हि पिण्याकतुषादिभक्षणम् ।

अस्ति त्वजं श्रीपतिपादपत्य-

द्वन्द्वार्चनप्राप्यमनन्तमाश्यम् ॥ १०

सुनो । यह जो धन, जन और स्त्री-विलास आदिसे अत्यन्त रमणीय प्रतीत होनेवाला सांसारिक वैभव दृष्टिगोचर हो रहा है, इसपर विचार करो । यह यह लोक-वैभव विद्वानोंके सेवन करने योग्य है या जल्दी-जल्दी दूरसे ही त्याग देनेवार्य ? अहो ! जिनके अङ्ग मध्यांशमें टेढ़े-मेढ़े पड़े हैं, जो जठरगतको ज्वालामें संतप्त हो रहे हैं तथा जिन्हें अपने अनेक पूर्वजन्मोंका स्मरण हो रहा है, वे भासाके गर्भमें पड़े हुए जीव जिस महान् कष्टका अनुभव करते हैं, पहले उसपर तो विचार करो ॥ ३—५ ॥

'गर्भमें पड़ा हुआ दुःखी जीव कहता है—'हाय ! कारागारमें बैठे हुए चोरको भाँति मैं खाला, कृमियों और मृत्युसे भरे हुए इस [देहरूपी] घरमें जाराय (जिल्ली)–से बैठा पड़ा हूँ । मैंने जो एक चार भी भगवान् मुकुन्दके भरणारथिनींका स्मरण नहीं किया, उसीके कारण होनेवाले कष्टको आज मैं इस गर्भमें भोग रहा हूँ ।' अतः गर्भमें सोनेवाले जीवको बचावन, जावानी और खुशायमें भी सुख नहीं है । दैत्यकुमारी । अब इस प्रकार यह संसार सदा दुःखमय है, तब विज्ञ पुरुष इसका सेवन कैसे कर सकते हैं ? इस तरह इस संसारमें दौड़नेपर हमें सुखका होशमात्र भी दिखायी नहीं देता । हम जैसे-जैसे इसपर ठीक विचार करते हैं, जैसे-हो-जैसे इस जगत्को अत्यन्त दुःखमय समझते हैं । इसलिये ऊपरसे सुन्दर दिखायी देनेवाले इस दुःखपूर्ण संसारमें साप्तु पुरुष आसक्त नहीं होते । जो तत्त्वज्ञानसे रहित अत्यन्त मृदु लोग हैं, वे ही देखनेमें सुन्दर ठीपकपर गिरकर नह होनेवाले पतंगोंकी भूति संसारिक भोगोंमें आसक्त होते हैं । यदि सुखके लिये कोई दूसरा सहारा न होता, तब तो सुखमय-से प्रतीत होनेवाले इस जगत्के आसक्त होना डरिया था—जैसे उन न जानेके कारण जो अत्यन्त दुखले हो रहे हैं, उनके लिये खली-भूसी आदि खा लेना ठीक हो सकता है; परंतु भगवान् लक्ष्मीपति के सुग्रीव भरणारथिनींकी सेवासे प्राप्त होनेवाला आदि, अविनाशी, अजन्मा एवं नित्य सुख (परमात्मा) तो है हो, फिर इस खणिक संसारका आश्रय क्यों लिया जाय ? ॥ ६—१० ॥

अकलेशतः प्राप्यमिदं विमुच्य
प्रहासुरुं योऽन्यसुखानि वाऽग्रेत्।
राज्यं करस्थं स्वप्रसी विमुच्य
भिक्षामटेहीनमनाः सुमृद्धः ॥ १२

तच्चार्थ्यते श्रीपतिपादपद्म-
दूर्घात न वस्त्रैर्न धैः अप्यैर्न।
अनन्यचित्तेन नरेण किंतु
उच्चार्थ्यते केशव माधवेति ॥ १२

एवं भवं दुखप्रयं विदित्वा
दैत्यात्मजाः साधु हरिं भजत्वम्।
एवं जनो जन्मफलं लभेत
नो चेद्वाच्चार्थी प्रपत्तेदधोऽथः ॥ १३

तस्माद्वेऽप्यिन् हृषि शङ्खचक्र-
गदाधरं देवमनन्तरीयम्।
स्मरन् नित्यं वरदं मुकुन्दं
सद्गुरुक्षियोगेन निवृत्तकामाः ॥ १४

अनासितकत्वात् कृपया भवद्वयो
बद्धामि गुह्यं भवसित्पुसंस्थाः।
सर्वेषु भूतेषु च मित्रभावं
भजन्त्वयं सर्वैर्गतो हि विष्णुः ॥ १५

दैत्यपुत्र ऋषे

प्रहाद त्वं वयं चापि चालभावान्महापते।
पण्डामर्कात्परं मित्रं गुरुं चान्यं न विद्यहे ॥ १६

त्वयैतच्छक्षितं कुप्र तथ्यं नो यद निस्तुष्टम्।

प्रहाद उक्तव

यदा तातः प्रयातो मे तयोऽर्थं काननं प्रहत् ॥ १७

तदा चेन्द्रः समागत्यं पुरं तत्प्य रुपेष्ठ ह।
मृतं विज्ञाय दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिष्ठुं तदा ॥ १८

इन्द्रो मे जननीं गृह्ण प्रयातो मन्यथाग्निना।
दह्यामानो महाभागां मार्गे गच्छति सत्वरम् ॥ १९

तदा पां गर्भं ज्ञात्वा नारदो देवदर्शनः।
आगत्येन्द्रं जगादोच्चैर्मृदं मुञ्च पतिव्रताम् ॥ २०

“जो विना कहके ही प्राप्त होनेवोम्य इस महान् सुख (परमेश्वर) -को त्वागकर अन्य तुच्छ सुखोंकी इच्छा करता है, वह दीनाहादय भूर्लं पुरुष मानो हाथमें आये हुए अपने गत्यको त्वागकर भीतु भाँगता है। भगवान् लक्ष्मीपतिके पुत्र-चाराजाविन्दोंका यथावृ पूजन वस्त्र, धन और परिव्रागमें नहीं होता; किंतु मनुष्य नदि अनन्यचित्त होकर ‘केतुम्’, ‘माधव’ आदि भगवत्तमोंका उत्तरायण करे तो वही उनको वासतीनिक पूजा है। दैत्यकुमारो! इस प्रकार गंगारामको दुखमय जातकर भगवान्का ही भलीभीति भजन करो। इस प्रकार करनेमें ही मनुष्यका जन्म सफल हो जाता है; नहीं तो (भगवद्गीता न करनेके कारण) अहानी पूरुष भवसागरमें ही नीरेमें और नीरें स्तरमें ही गिरत रहता है। इसलिये इस संसारमें समरूप कामनाओंसे रहित हो तुम यधीं लोग अपने हृष्णके भीतर विद्युत्मान राहु-चक्र गत्यपत्ति, जगदर्ज, अविकल्प स्तुतवीष्य भगवान् मुमुक्षुद्वाका सभ्ये भीतिभावसे मदा चिन्तन करो। भवसागरमें पढ़े हुए दैत्यपुत्रो! तुम हीरा नासिक नहीं हो, इसलिये दयावश में तुमसे यह गोपनीय चाल बालताता है—समरूप प्राणियोंके प्रति मिष्टय रखो; उन्नीष्य सभके भीतर भगवान् विष्णु ही विशाकमान है” ॥ ११—१५ ॥

दैत्यपुत्र ऋषे—महादुष्टिमान् प्रहादती! बचपनसे हैंकर जागतक आप और हम भी शण्डामर्कके सिवा दूसरे किसी गुरु तथा मिश्रको नहीं जान सके। फिर आपने यह जान कहाँ सीखा? हमसे यदा न रखकर सबकी चाल बनाइये ॥ १६-१७ ॥

प्रहादजी ऋषे—कहते हैं, जिस समय मेरे पिताजी उपस्थि करनेके लिये महान् यन्में चले गये, उसी समय इन्द्रने यहाँ आकर पिता दैत्यराज हिरण्यकशिष्ठुको मरा हुआ समझकर उनके इस नगरको बैर लिया। इन्द्र कामाग्रिमे योद्धित हो भेरी महाभागा माताजीको पकड़कर यहाँसे चल दिये। वे मार्गमें यहीं तेजीमें ऐर चढ़ाते हुए चले जा रहे थे। इसी समय देवदर्शन नारदजी मुझे माताजे गर्भमें विश्व जान सहसा यहाँ चहुंचे और चिक्काकर इन्द्रसे बोले—‘मूर्ख! इस चिक्कताको लोह दो।

अस्या गर्भे स्थितो योऽसौ स वै भागवतोन्मः ।
 तच्छ्रुत्वा नारदवचो मातरं प्रणिपत्य मे ॥ २१
 विष्णुभक्त्या प्रमुच्याथ गतः स्वं भुवनं हरिः ।
 नारदस्तां समानीय आश्रमं स्वं शुभवतः ॥ २२
 मामुद्दिश्य महाभागामेतद्वै कथितं तदा ।
 तथा मे विस्मृतं नैव बालाभ्यासाहनोः सुताः ॥ २३
विष्णोश्नानुग्रहेणीव नारदस्योपदेशतः ।
 नारदपुण्ड्रेय उक्तव्य
 एकदा गुपचर्यायां गतोऽसौ राक्षसाधिषः ॥ २४
 श्रुणोति राज्ञी नगरे जय रामेति कीर्तनम् ।
 अवैत्युप्रकृतं सर्वं बलवान् दानवेश्वरः ॥ २५
 अथाहृयाह दैत्येन्द्रः क्षोधान्धः स पुरोहितान् ।
 रे रे क्षुब्रद्विजा यूद्यमतिमुमूर्खतां गताः ॥ २६
 प्रह्लादोऽयं पृष्ठालापान् बक्षयन्यान् पाठयत्यथि ।
 इति निर्भत्य तान् विप्रान् श्वसन् राजाविशद् गृहम् ॥ २७
 न च पुत्रवधे चिनां जही स्ववधकारिणीम् ।
 आसन्नमरणोऽमर्यात्कृत्यमेकं विष्णुश्य सः ॥ २८
 अकृत्यमेव दैत्यादीनाहूयोपादिशत्रहः ।
 अद्य क्षपायां प्रह्लादं प्रसुप्तं दुष्टमुत्त्वणीः ॥ २९
 नागपाशीर्दृढं बद्ध्या पद्ये निक्षिपताम्बुधेः ।
 तदाज्ञां शिरसाऽऽदाय ददृशुस्तम्पुषेत्य ते ॥ ३०
 रात्रिप्रियं समाधिस्थं प्रबुद्धं सुमवत् स्थितम् ।
 संछित्ररागलोभादिमहावन्धं क्षपाचराः ॥ ३१
 बद्धन्युस्तं महात्पानं फल्गुभिः सर्परञ्जुभिः ।
 गरुडध्यजभक्तं तं बद्ध्याहिभिरबुद्धयः ॥ ३२
 जलशायिप्रियं नीत्वा जलराशी निचिभिषुः ।
 बलिनस्तेऽचलान् दैत्या तस्योपरि निधाय च ॥ ३३
 शशांसुस्तं प्रियं राज्ञे हृतं तान् सोऽप्यमानयत् ।

इसके गर्भमें जो बालक है, वह भगवद्गुरुमें लेष्ट है।' नारदजीका कथन सुनकर इन्होंने विष्णुभक्तिके कारण मेरी माताको प्रणाम करके छोड़ दिया और वे अपने लोकको छले गये। फिर शुभ सद्गुरुपवाले नारदजी मेरी माताको अपने आश्रममें ले आये और मेरे उद्देश्यसे मेरी महाभागा माताके प्रति इस पूर्वोक्त ज्ञानका व्यर्थन किया। दानवीं ! बाल्यकालके अभ्यास, भगवान्की कृपा तथा नारदजीका उपदेश होनेसे वह जान मुझे भूला नहीं है ॥ १७—२३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले— एक दिन राक्षसराज हिरण्यकशिपु रात्रिके समय गुप्तरूपसे नगरमें शूम रहा था। उस समय उसे 'जय राम' का कीर्तन सुनाया देने लगा। तब बलवान् दानवराजने वह सब अपने पुत्रकी ही करतृत समझी। तब उस दैत्यराजने ज्ञोधान्ध होकर पुरोहितोंको बुलाया और कहा—'नौच ब्राह्मणो! जान पढ़ता है, तुमलोंगे मरनेके लिये अत्यधिक उत्सुक हो गये हो। तुम्हारे देखते-देखते यह प्रह्लाद स्वयं तो व्यर्थकी बातें बताता हो है, तुमरोंको भी यही सिखाता है।' इस प्रकार उन ब्राह्मणोंको फटकारकर राजा हिरण्यकशिपु सम्मी सौंसें खीचता हुआ भाटमें आया। उस समय भी वह पुत्रवधके विषयमें होनेवाली चिनाओं, जो उसका ही नाश करनेवाली थीं, नहीं छोड़ सका। उसको मृत्यु निकट थीं; अतः उसने अमर्याश एक ऐसा काम सोचा, जो यासायमें न करने योग्य ही था। हिरण्यकशिपु दैत्यदिवकोंको बुलाया और उससे एकजन्ममें कहा—'देखो, आज रातमें प्रह्लाद जल गाढ़ी नींदमें सो जाय, उस समय उस दुष्टको भवंकर नागपाशोंहारा खूब करकर बाँध दो और बीच समूद्रमें फेंक आओ ॥' २४—२९ ॥

उसकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन दैत्योंने प्रह्लादजीके पास जाकर उन्हें देखा। वे रात्रिके ही श्रेष्ठी थे (क्योंकि यहमें ही उन्हें ध्यान लगानेकी सुविधा रहती थी)। प्रह्लादजी समाधिमें स्थित होकर जाग रहे थे, फिर भी खूब सीधे हुएके समान स्थित थे। उन्होंने राग और लोभ आदिके महान् बन्धनोंको काट डाला था, तो भी उन महात्मा प्रह्लादको निशाचरोंने तुच्छ नागपाशोंसे बाँध दिया। जिनको ध्वजामें साक्षात् गरुडजी विश्रामान हैं, उन भगवान्के भक्त प्रह्लादको उन मूर्खोंने सर्पोद्घारा बाँधा और जलशायीके प्रियजनको ले जाकर जलराशि समुद्रमें डाला। हठनन्तर उन बली दैत्योंने प्रह्लादके ऊपर पर्वतकी छटाने रख दी और तुरंत ही जाकर राजा हिरण्यकशिपुको यह प्रिय संघाट कह सुनाया। उसे सुनकर उस दैत्यराजने भी उन सबका सम्मान किया ॥ ३०—३३ ॥

प्रह्लादं चाविष्मद्यस्थं तमीवर्गिपित्रापरम् ॥ ३४
 च्छलनं तेजसा विष्णोऽग्राहा भूरिभित्यत्यजन् ।
 स चापित्रचिदानन्दसिन्धुमध्ये ममाहितः ॥ ३५
 न वेद बद्धमात्मानं स्ववणाम्बुद्धिमध्यगम् ।
 अथ ब्रह्मामृताम्भोधिमध्ये स्वस्मिन् स्थिते मुनी ॥ ३६
 यथी क्षीर्भे द्वितीयाविष्प्रवेशादिव सागरः ।
 क्लेशात् क्लेशानिवोद्दूय प्रह्लादमध्य वीचयः ॥ ३७
 निन्युस्तीरुप्लवाम्भोधे गुरुकृत्य इवामध्ये ।
 ध्यानेन विष्णुभूतं ते भगवान् यकुणालयः ॥ ३८
 विन्यस्य तीरे रक्षानि गृहीत्वा उप्टुप्तापर्यायी ।
 ताचर्द भगवताऽऽदिष्टः प्रह्लादः पञ्चगाशनः ॥ ३९
 अन्यनाहीन् समप्येत्य भक्षयित्वा पुनर्पर्यायी ।
 अथावभाषे प्रह्लादं गम्भीराद्वनिरर्णयः ॥ ४०
 प्रणाम्य दिव्यकृपापः सन् समाधिस्थं हरेः प्रियम् ।
 प्रह्लाद भगवद्भूतं पुण्यात्मप्रर्णयोऽस्म्यहम् ॥ ४१
 चक्षुभ्यामयथ मां इट्टा पावयार्थिनमागतम् ।
 इत्यव्युधिगिरः क्षुत्वा स महात्मा हरेः प्रियः ॥ ४२
 उद्भीक्ष्य सहसा देवं ते नत्वाऽऽहासुरात्मजः ।
 कदाऽऽगतं भगवता तपश्चाम्बुधिरुद्गीतः ॥ ४३
 योगिप्रज्ञातवृत्तस्त्वमपराद्दं तत्वासुरैः ।
 बद्धस्त्वमहिपिदैत्यर्पयि क्षिमोऽच वैष्णवः ॥ ४४
 तत्स्तुर्णं भया तीरे न्यस्तास्त्वं फणिनक्षु तान् ।
 इदानीमेव गुणो भक्षयित्वा गतो महान् ॥ ४५
 महात्मवनुगृहीत्व त्वं मां सत्संगमार्थिनम् ।
 गृहाणोपानि रक्षानि पूज्यस्त्वं मे हरिर्वैक्षा ॥ ४६
 यद्यप्येतैर्न ते कृत्यं रब्दादौस्याम्बुद्याप्यहम् ।
 दीपात्रिवेदयत्येव भास्करस्यापि भक्तिमान् ॥ ४७

कांच समुद्रमें पड़े हुए प्रह्लादको भगवान्के तेजसे दूसरे बहुवानलक्ष्मी भाँति प्रम्भलित देख अत्यन्त भयके कारण शाहोंने उन्हें दूसरे ही त्वाग दिया। प्रह्लाद भी अपनेसे अभिन्न चिदानन्दमय समुद्र (परमेश्वर) -में समाहित होनेके कारण यह न जान सके कि 'मैं बांधकर खार पनीके स्त्राणरम्भे डाल दिया गया हूँ।' मुनि (प्रह्लाद) जब प्रह्लानदामृतके समुद्ररूप अपने आत्मामें स्थित हो गये, उस समय समुद्र इस प्रकार धूम्य हो उठा, मानो उसमें दूसरे महाबागरका प्रवेश हो गया हो। फिर समुद्रकी तहरे प्रह्लादको भैरं भैरं कठिनाईसे ठेलकर उस नीकतरहित सागरके तटकी ओर से गयी—ठीक उसी प्रकार, जैसे जलों गुरुके बचन क्लेशोंका उच्छूलन करके शिवाको भवयागरसे पाप गूँचा देते हैं। भवानके द्वारा विष्णुसुरालय हुए उन प्रह्लादजीको तीरपर पहुँचाकर भगवान् यकुणालय (समुद्र) छूल-से रक्षा ले उनका दर्शन करनेके लिये आये। इन्हें ही भगवान्की आज्ञा पाकर सर्वभक्ती गुणदली वहाँ आ पहुँचे और अन्यनभूत सर्पोंको अत्यन्त हर्षपूर्वक खाकर जले गये ॥ ३४—३९ ॥

उत्पक्षात् गम्भीर धोपधात्रा दिव्यकृपमार्ती समुद्र ममहिपिनिष्ठ भगवद्भूतं प्रह्लादको प्रणाम करके जों कोला—‘भगवद्भूतं प्रह्लादं पुण्यात्मम्। मैं समुद्र हूँ। अपने यसमें आये हुए मुझ प्राणोंको अपने नेत्रोऽद्वारा देखकर परिचय कीजिये।’ समुद्रके ये रुचन गुरुकर भगवान्के प्रिय भक्त महात्मा आगुर चन्दन प्रह्लादने सहस्र उनकी ओर देखकर प्रणाम किया और कहा—‘श्रीमान् क्य पधारे?’ तब उनसे समुद्रने कहा—॥ ४०—४२ ॥

‘योगिन्! आपको यह जात जात नहीं है, असुरोंने आपका बड़ा अपाराध किया है। वैष्णव! आपको सौंपोंसे अधिकर दैत्योंने आज मेरे भीतर फैक दिया; तथा मैंने तुरंत ही आपको किनारे स्त्राणा और उन सौंपोंको अपी अपी महात्मा गुणदली भक्षण करके गये हैं। महात्मन्! मैं सत्सङ्गका अभिलाषी हूँ, आप मुझपर अनुप्रह करें और इन रक्षोंको भेटकूपमें स्वीकार करें। मेरे लिये आप भगवान् विष्णुके समान हो पूज्य हैं। यद्यपि आपको इन रक्षोंको कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि मैं तो उन्हें आपको हूँगा ही; क्योंकि भगवान् सूर्यका भक्त उन्हें दीप निवेदन करता ही है।

त्वमापत्तविषि घोरासु विष्णुनैव हि रक्षितः।
 त्वादृशा निर्पलात्मानो न सन्ति बहवोऽकर्कवत्॥ ४८
 बहुना किं कृतार्थोऽस्मि यत्तिष्ठापि त्वया सह।
 आलपामि क्षणमपि नेत्रे ह्येतत्फलोपमाम्॥ ४९
 इत्यविष्णवा स्तुतः श्रीशमाहात्म्यवचनैः स्वयम्।
 यद्यौ लज्जां प्रहर्षं च प्रह्लादो भगवत्प्रियः॥ ५०
 प्रतिगृह्य स रत्नानि वत्सलः प्राह वारिधिष्य।
 महात्म्यन् सुतरां धन्यः श्रोते त्वयि हि स प्रभुः॥ ५१
 कल्पान्ते इषि जगत्कृत्वं ग्रसित्वा स जगन्मयः।
 त्वव्येष्वैकार्णवीभूते श्रोते किल महात्मनि॥ ५२
 लोकनाभ्यां जगत्राचं द्रष्टुभित्तुमिष्यते।
 त्वं पश्यसि सदा धन्यस्तत्रोपायं प्रथम्भ मे॥ ५३
 उक्तव्येति पादावनतं तृणमुख्याप्य सागरः।
 प्रह्लादं प्राह योगीन् त्वं पश्यसि सदा हृदि॥ ५४
 द्रष्टुभित्तुमिष्यत्यथाक्षिभ्यां स्तुहि तं भक्तवत्सलम्।
 उक्तव्येति सिन्धुः प्रह्लादमात्मनः स जले इविश्वात्॥ ५५
 गते नदीन्द्रे स्थितव्येति कुर्वि रात्रे स दैत्यजः।
 भक्त्यास्तीदिति मन्वानस्तदर्शनमस्मभवम्॥ ५६

प्रह्लाद उक्तव्य

बेदान्तवाक्यशतमारुतसम्प्रवृद्ध-
 वैराग्यविहिणिशिखया परिताप्य चित्तम्।
 संशोधयन्ति यद्वेष्मणयोग्यतायै
 धीरः सदैव स कर्वं पम गोचरः स्यात्॥ ५७
 मात्सर्योपस्मरलोभमोह-
 मदादिभिर्वा सुदृढः सुषदिभिः।
 उपर्युपर्यावरणैः सुवद्ध-
 मन्यं मनो मे क्व हरिः क्व वाहम्॥ ५८
 यं धातृभूख्या विद्युथा भयेषु
 शान्त्यविष्णवः श्रीरनिधेनपानम्।
 गत्योत्तमस्तोत्रकृतः कथंचित्
 पश्यन्ति तं द्रुम्हो ममाशा॥ ५९

योर आपत्तियोंमें भी भगवान् विष्णुने ही आपको रक्षा की है। सूर्यकी भाँति आप-जैसे शुद्धचित्त महात्मा संसरमें अधिक नहीं हैं। बहुत क्या कहूँ? आप में कृतार्थ हो गया; क्योंकि आज मुझे आपके साथ स्थित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस समय क्षणभर भी जो आपके साथ बातचीत कर रहा है, इससे प्राप्त होनेवाले कल्पको उपमा में कहाँ नहीं देखता॥ ४८—४९॥

इस प्रकार समुद्रने साकात् भगवान् लक्ष्मीपतिके माहात्म्यसूचक वचनोंहुए जब उनकी स्तुति की, तब भगवान्सूक्ष्म प्रिय भक्त प्रह्लादजीको बड़ी लज्जा हुई और हर्ष भी। स्तेहो प्रह्लादने समुद्रके दिये हुए रस ग्रहणकर उनसे कहा—‘महात्मन्! आप विशेष धन्यवादके पात्र हैं; क्योंकि भगवान् अपके ही भीतर स्वयं करते हैं। यह प्रसिद्ध है कि जगन्मय प्रभु प्रलयकालमें भी सम्पूर्ण जगत्को अपनेमें लौन करके एकर्णीवकापमें स्थित आप महात्मा महासागरमें ही स्वयं करते हैं। समुद्र! मैं इन स्थूल नेत्रोंसे भगवान् जगत्वाधका दर्शन करना चाहता हूँ। आप धन्य हैं; क्योंकि सदा भगवान्सूक्ष्म दर्शन करते रहते हैं। कृपया मुझे भी उनके दर्शनका उपाय बताइये॥ ५०—५३॥

यों कहकर प्रह्लादजी समुद्रके वरणोंपर गिर पड़े। तब समुद्रने उनके जीव्र ही उठाकर कहा—‘योगीन्! आप तो सदा ही अपने हृदयमें भगवान्सूक्ष्म दर्शन करते हैं; तथापि यदि इन नेत्रोंसे भी देखना चाहते हैं तो उन भक्तवत्सल भगवान्सूक्ष्म स्वयं करियें।’ यों कहकर समुद्रदेश अपने जलमें प्रविष्ट हो गये॥ ५४—५५॥

समुद्रके चले जानेपर दैत्यनन्दन प्रह्लादजी रात्रिमें वहाँ अकेले ही रहकर भगवान्सूक्ष्म दर्शनको एक असम्भव कार्य मानते हुए भक्तिपूर्वक श्रीहरिको स्तुति करने लगे॥ ५६॥

प्रह्लादजी जोले—‘भी पुरुष जिनके दर्शनको गोप्यता प्राप्त करनेके लिये सदा ही सेकड़ों बेदान्त-वाच्यवलय वापुद्वारा अत्यन्त बड़ी हुई वैराग्यरूप अद्विकी ज्ञालालोके अपने चित्तको तपाकर भलीभौति शुद्ध किया करते हैं, थे भगवान् विष्णु, भला, मेरे दृष्टिपथमें जैसे आ सज्जे हैं। एकके ऊपर एकके ऊपरसे ऊपर-ऊपर जिनका आवरण पड़ा हुआ है—ऐसे मालसर्वं, झोप, काम, लौभ, मोह, मद आदि इस सुदृढ वचनोंसे भलीभौति बैधा हुआ मेरा मन अंथा (यिथेकृत्य) हो रहा है। कहाँ भगवान् श्रीहरि और कहाँ मेरे भय उपरिस्त छोनेपर उसकी जानिके लिये क्षोरसागरके तटपर जाकर प्रह्लाद देखता उत्तम रोतिस्त स्तवन करते हुए किसी प्रकार जिनका दर्शन कर पाते हैं, उन्होंने भगवान्सूक्ष्म जैसा दैत्य जाशा करे—यह जैसा आहुर्वद है॥ ५७—५९॥

अथोग्यमात्वानभितीशदर्शने

स मन्यमानस्तदनासिकातरः ।

उद्गुणदुःखार्णवप्रगमनसः:

स्मृताश्रुधारो नृप मूर्च्छितोऽपतत् ॥ ६०

अथ क्षणात्सर्वगतक्षतुर्भुजः:

शुभाकृतिर्भक्तजनैकवलभः ।

दुःस्थ तमाश्लिष्य सुधामयैर्भुजै-

स्तत्रैष भूपाविरभूयानिधिः ॥ ६१

स लब्धसंज्ञोऽथ तदहमसङ्गा-

दुन्मीलिताक्षः सहसा ददर्श ।

प्रसन्नवक्त्रं कमलादताक्षं

सुदीर्घवाहुं यमुनासवर्णम् ॥ ६२

उदारतेजोमयमप्रवेष्य

गदारिशङ्कुम्बुजचारुचिह्नितम् ।

स्थितं समालिङ्गय विभुं स दृष्टा

प्रकृप्यितो विम्मयभीतिहर्षः ॥ ६३

तत् स्वजनेवाथ स मन्यमानः

स्वप्नेऽपि पश्यामि हरिं कृतार्थम् ।

इति प्रहर्षार्णवमप्रवेष्यतः

स्वानन्दमूर्छां स पुनक्ष भेजे ॥ ६४

ततः क्षितावेव निविश्य नाथः

कृत्वा तमद्वे स्वजनैकवलयः ।

शर्नैविधुन्वन् करपद्मवेन

स्युशन् मुहूर्मतुवदालिलिङ् ॥ ६५

ततश्चिरेण प्रहादः सम्पुखोभीलितेक्षणः ।

आलुलोके जगत्राथं विम्मयाविष्टचेतसा ॥ ६६

ततश्चिरात्तं सम्भाव्य धीरः श्रीशाङ्कुशायिनम् ।

आत्मानं सहसोत्तस्थी सद्यः सभयसम्भ्रमः ॥ ६७

प्रणामायापतच्छ्रव्या प्रसीदेति वदन्मुहुः ।

सम्भ्रमात् स वहुज्ञोऽपि नान्यां पूजोक्तिमस्मरत् ॥ ६८

तथाभ्यहस्तेन गदाशङ्कुरिष्वकुं प्रभुः ।

गृहीत्वा स्थापयामास प्रहादं स दयानिधिः ॥ ६९

कराव्यस्पर्शनाहादगलदश्रुं सवेष्यन् ।

भूयोऽथाहादयन् स्वामी तं जगादेति सान्त्वयन् ॥ ७०

राजन् ! इस प्रकार अपनेको भगवान् का दर्शन पानेके बोग्य न मानते हुए प्रहादजी उनकी अप्राप्तिके दुःखसे कठत हो डठे । उनका यित उद्गुण और अनुतापके समुद्रमें डूब गया । वे नेत्रोंसे आँमुओंकी धारा बहाते हुए मृच्छित होकर गिर घड़े । भूष ! किर तो ध्वणभर्में ही भक्तजनोंके एकमात्र प्रियतम सर्वव्यापी कृपानिधान भगवान् विष्णु सुन्दर चतुर्भुज रूप धारणकर दुःखी प्रहादको अमृतके समान नूद्वाद स्वर्णबाली अपनी भुजाओंसे उठाकर गोदमें लगाते हुए वहाँ प्रकट हो गये ॥ ६०—६१ ॥

उनके आँमुओंसे होशमें आनेपर प्रहादने सहसा नेत्र खोलकर भगवान् को देखा । उनका मुख प्रसन्न था । नेत्र कमलांके समान सुन्दर और विशाल थे । भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं और लांगर यमुनाजलके समान श्याम था । वे परम तेजस्वी और अपारिभित ऐस्यर्थालाली थे । गदा, शङ्ख, चक्र और पद्म आदि सुन्दर विशेष से पहचाने जा रहे थे । इस प्रकार अपनेको उद्धुमें लगाये हुए भगवान् को खड़ा देख प्रहाद भव, विश्वय और हर्षसे कौप डठे, वे इस घटनाको स्वप्न ही समझते हुए सोचने लगे—‘अहा ! स्वप्नमें भी मुझे पूर्णकाम भगवान् का दर्शन तो मिल गया’ ! यह सोचकर उनका वित हप्ते क्षमासागरमें गोला लगाने लगा और वे पुनः स्वरूपानन्दमयो मूर्छाँको प्राप्त हो गये । तब अपने भक्तोंके एकमात्र बन्धु भगवान् पृथ्वीपर ही बैठ गये और पाणिपद्मसे धीर-धीर उन्हें हिलाने लगे । श्वेतमयी माताकी भौति प्रहादके गात्रका स्पर्श करते हुए उन्हें चार धारा छालीसे लगाने लगे ॥ ६२—६५ ॥

कुछ देरके बाद प्रहादने भगवान् के सामने और्ध्वे खोलकर विश्वस्तिविलासे उन जगदोहराको देखा । फिर यहुत देरके बाद अपनेको भगवान् स्वरूपपतिको गोदमें सोया हुआ अनुभवकर वे भव और आवेगसे युक्त हो सहसा डठ गये तथा ‘भगवन् ! प्रसन्न होइये’ यों शार-बार कहते हुए उन्हें साठाङ्क प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर गिर घड़े । बहुत होनेपर भी उन्हें दस समय घबराहटके कारण अन्य स्तुतिवाक्योंका स्मरण न हुआ । तब गदा, शङ्ख और चक्र धारण करनेकाले दयानिधि भगवान् ने प्रहादको अपने भक्तभयहारी हाथसे पकड़कर छाड़ा किया । भगवान् के कर-कमलोंका स्पर्श होनेसे अत्यन्त आनन्दके आँमु बहाते और कौपते हुए प्रहादको और अधिक आनन्द देनेके लिये प्रभुने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा ॥ ६६—७० ॥

सभयं सम्भवं वत्स मद्रौरवकृतं त्यज।
नैवं प्रियो मे भक्तेषु स्वाधीनप्रणयी भव॥ ७१

नित्यं सम्पूर्णकामस्य जन्मानि विविधानि मे।
भक्तसर्वेषु दानाय तस्मात् किं ते प्रियं वद॥ ७२

अथ व्यजिज्ञपद्गुणं प्रह्लादः प्राञ्जलिनं पन्।
सलील्यमुत्पुल्लदुशा पश्यत्रेवं च तन्मुखम्॥ ७३

नाप्ययं वरदानाय कालो नैव प्रसीद ये।
त्वद्वर्णानामृतास्वादादन्तरात्मा न तुष्टिः॥ ७४

व्रह्मादिदेवेतुर्लक्ष्यं त्वामेव पश्यतः प्रभो।
तुमिं नेष्टुति मे चित्तं कल्पायुतशतरापि॥ ७५

नैवमेतद्यतुमस्य त्वां द्विहान्यद् युणोति किम्।
ततः सिम्तसुधापूरः पूर्णन् स प्रियं प्रियात्॥ ७६

योजयन् योक्त्वलक्ष्मीय तं जगाद् जगत्पतिः।
सत्यं महर्णानादन्यद् वत्स नैवास्ति ते प्रियम्॥ ७७

किंचित्ते दातुभिष्टु मे मतिर्याथै वृणीष्व तत्।
प्रह्लादोऽथाधीनीयात् देव जन्मान्तरेष्वपि॥ ७८

दासस्तवाहं भूयासं गरुत्मानिव भक्तिमान्।
अथाह नाथः प्रह्लादं संकटं खलिवदं कृतम्॥ ७९

अहं तवात्पदानेच्छुस्त्वं तु भूत्यत्वमिष्ठसि।
वरानन्यांशु वरय धीपन् दैत्येभ्यात्पञ्ज॥ ८०

प्रह्लादोऽपि पुनः प्राह भक्तकामप्रदं हरिम्।
प्रसीद सास्तु मे नाथ त्वद्वक्तिः सात्त्विकी स्थिरा॥ ८१

'वास! मेरे प्रति गौरव-बुद्धिसे होनेवाले इस भय और अवश्याहटको त्याग दो। मेरे भक्तोंमें तुम्हारे समाज कोई भी नुस्खे प्रिय नहीं है, तुम स्वाधीनप्रणयी हो जाओ [अद्यात् यह समझो कि तुम्हारा प्रेमी मैं तुम्हारे वशमें हूँ]। मैं नित्य पूर्णकाम हूँ, तथापि भक्तोंकी समाज कामनाओंको पूर्ण करनेके लिये मेरे अनेक अवतार हुआ करते हैं; अतः तुम भी बताओ, तुम्हें कौन-सी वस्तु प्रिय है?' ॥ ७१-७२ ॥

व्रह्मान्तरा चिले हुए नैवेद्यसे भगवान्के मुख्यके सदृश्यभावसे देखते हुए प्रह्लादने हाथ जोड़ नमस्कारपूर्वक उनसे यो निवेदन किया—'भगवन्! यह वरदानका समय नहीं है, केवल मुझपर प्रसन्न होइये। इस समय मेरा मन आपके दर्शनरूपी अमृतका आस्वादन करनेसे तुम नहीं हो रहा है। प्रभो! प्रह्लादि देवताओंके लिये भी जिनका दर्शन पाना कठिन है, ऐसे आपका दर्शन करते हुए मेरा मन दस लाख वर्षोंमें भी तुम्हें न होगा। इस प्रकार आपके दर्शनसे अतुर्म रहनेवाले मुझ सेवकका दित आपके दर्शनके बाद और क्या मौग सकता है?' ॥ ७३-७४ ॥

तब मुस्कानयों मुधाका स्वेच्छ बहाते हुए उन जगदीकरने अपने परम प्रिय भक्त प्रह्लादको भोक्ष-संशयोंसे संकुच-सा करते हुए उनसे कहा—'वास! यह सत्य है कि तुम्हें मेरे दर्शनसे बढ़कर दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं है; किंतु मेरी इच्छा तुम्हें कुछ देनेकी है। अतः तुम मेरा प्रिय करनेके लिये ही मुझसे कुछ मौग सो' ॥ ७५-७६ ॥

तब बुद्धिमन् प्रह्लादने कहा—'देव! मैं जन्मान्तरोंमें भी गहराहीलों भीति आपमें हो भक्ति रखनेवाला आपका दास होऊँ।' यह सुनकर भगवान्ते कहा—'यह तो तुमने मेरे लिये कठिन समस्या रख दी—मैं तो तुम्हें सब्दं अपने आपको दे देना चाहता हूँ और तुम मेरी दासता चाहते हो! बुद्धिमान् दैत्यराजकुमार! दूसरे-दूसरे यह मौगों' ॥ ७८-८० ॥

तब प्रह्लादने भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले भगवान् विष्णुसे पुनः कहा—'नाथ! आप प्रसन्न हों; मुझे तो यही चाहिये कि आपमें मेरी सात्त्विक भक्ति सदा स्थिर रहे।

अनयाथ च त्वा नौमि नृत्यामि त्वत्परः सदा ।
अथाभितुष्टो भगवान् प्रियमाह प्रियंवदम् ॥ ८३

वत्स यद्यदभीष्टे ते तत्तदस्तु मुखी भव ।
अन्तहिते च मव्यत्र मा खिद त्वं महामते ॥ ८४

त्वच्चित्तान्नापयास्यामि क्षीराव्येरिव सुप्रियात् ।
पुनर्द्विग्रिदैनेस्त्वं मां द्रष्टा दुष्टव्योद्यतम् ॥ ८५

अपूर्वाविष्कृताकारं नृसिंहं पापभीषणम् ।
उत्कर्त्तेत्यतः प्रणामतः पश्यतश्चातिलालसम् ॥ ८६

अतुष्टस्यैव तस्येशो भायवान्तर्दधे हरिः ।
ततो हठाददृष्टा तं सर्वतो भक्तवत्सलम् ॥ ८७

हाहेत्यशुलुतः प्रोच्य वक्षन्ते स चिरादिति ।
श्रूयमाणोऽथ परितः प्रतिद्वद्यजनस्यने ॥ ८८

उत्त्यायाविष्टताद्वीपान् प्रह्लादः स्वपुरं यथी ॥ ८९

अथ दितिजसुतङ्गिरं प्रह्लः
स्मृतिवलतः परितस्तमेष पश्यन् ।
हरिमनुजगतिं त्वते च पश्यन् ।
गुरुगृहमुत्पुलकः शर्णीवाप ॥ ९०

यही नहों, इस भक्तिसे युक्त होकर मैं आपका स्तवन किया करूँ और आपके ही परायण रहकर सदा नाचा करूँ ॥ ८१ ॥

भगवान् ने संतुष्ट होकर प्रिय भाषण करनेवाले प्रिय भक्त प्रह्लादसे तब कहा—'जल्स ! तुम्हें जो-जो अभीष्ट हो, वह सब प्राप्त हो; तुम सुखी रहो। एक बात और है—महामते ! यहाँसे मेरे अन्तर्भान हो जानेपर भी तुम खोट न करना। मैं अपने पारमप्रिय स्थान क्षीरसागरकी भौमि तुम्हारे शुद्धचित्तसे कभी अलग न होऊँगा। तुम दो-ही-तीन दिनोंके बाद मुझे दुष्ट हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये उत्तम अपूर्वं शरीर भारण किये नृसिंहकरणे, जो पापियोंके लिये भयानक है, पुनः प्रकट देखोगे।' यो कहकर भगवान् हरि, अपनेको प्रणाम करके अत्यन्त ललचायी हुई दृष्टिसे देखते रहनेपर भी तुम न होनेवाले उस भक्त प्रह्लादके सामने ही मायासे अन्तर्भान हो गये ॥ ८२—८५ ॥

तत्पश्चात् ये सहस्र सब ओर दृष्टि ढालनेपर भी जब भक्तवत्सल भगवान् को न देख सके, तब और सु बहाते हुए उच्चस्वरसे हाहाकार करके बही देरतक भगवान् की बदना करते रहे। फिर जब प्रातःकाल जगे हुए, जन्मुओंकी बाली सब ओर सुनायी देने लगी, तब चुदिमान् प्रह्लाद समूद्र-कट्टसे उठाकर अपने नामको चले गये। इसके बाद दीर्घनन्दन प्रह्लादजी परम प्रसाद होकर अपने स्मरणालयसे भेजायामें सब ओर भगवान् का ही दर्शन करने हुए, तथा भगवान् एवं मनुष्यको गतिको भलीभीति समझने हुए रोमांडित होकर धीरे-धीरे गुरुके पर गये ॥ ८६—९० ॥

इति श्रीकर्तिसंहारे नारदिः समुद्रपूर्वके त्रिकालीनोऽस्मदः ॥ ९२ ॥
इस उक्ता श्रीकर्तिसंहारार्थं 'वर्तते कर्त्तव्यपूर्वक' त्रिकालीनर्थं अस्मद्य पूरा ह्याऽपि ॥ ९३ ॥

त्रिकालीनर्थं

चौवालीसवाँ अध्याय

नृसिंहका प्रादुर्भाव और हिरण्यकशिपुका वध

नारदगीच उत्तर

अथागतं ते प्रह्लादं दृष्टा देत्याः सुविस्मताः ।
शशांसुद्दत्यपतये यैः क्षितः स महार्णवे ॥ १

मार्कण्डेयजी बोले— तदनन्तर प्रह्लादको [कुशलपूर्वक समूद्रसे] लौटा देखकर, जिन्होंने ठहं यहासागरमें ढाला था, वे दैत्य बड़े विस्मित हुए और उन्होंने तुरंत यह

स्वस्थं तमागतं श्रुत्वा दैत्यराहविम्मयाकुलः ।
आहूयतां च इत्याह क्रोधान्मृत्युवशे स्थितः ॥ २
तथासूरदुरानीतः समासीनं स दिव्यदृक् ।
आसन्नमृत्युं दैत्येन्द्रं ददर्शात्युजितश्रियम् ॥ ३
नीलांशुपिश्रमाणिकपद्मुतिच्छ्रविभूषणम् ।
सधूमग्रिमिव व्यासमुच्चासनचितिस्थितम् ॥ ४
दंहोत्कट्टर्घोरतरैर्घनच्छविभिरुद्धैः ।
कुमार्गदर्शिपर्दित्यैर्यमदृतैरिवावृतम् ॥ ५
दूरात् प्रणाम्य पितरं प्राञ्जलिस्तु व्यवस्थितः ।
अथाहाकरणक्रोधः स खलो भल्लयन् सुतम् ॥ ६
भगवतिष्ठयमत्युच्चैर्मृत्युमेवा भ्रयप्रिय ।
मूढं रे शृणु मद्माक्यमेतदेवानिमं धूवम् ॥ ७
इतो न त्वा प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कुरु यथेष्यस्तम् ।
उत्कर्त्त्वेति तुत्याकृष्णं चन्द्रहासासिमद्भूतम् ॥ ८
सम्प्रपाद्विक्षितः सर्वेश्वालयश्चाह तं पुनः ।
क्रचासित मूढं ते विष्णुः स त्वाम्य प्ररक्षतु ॥ ९
त्वयोक्तं स हि सर्वत्र कस्मात्तत्परे न दृश्यते ।
यदि पश्यामि तं विष्णुमधुना स्तम्भयव्यगम् ॥ १०
तर्हि त्वा न चर्थिष्यामि भविष्यत्वसि हिरान्यन्दा ।
प्रह्लादोऽपि तथा दृष्टा दृश्यी तं परमेश्वरम् ॥ ११
पुरोक्तं तद्वचः स्मृत्वा प्रणामं कृताञ्जलिः ।
तावत्प्रस्फुटितस्तम्भो वीक्षितो दैत्यसुनुना ॥ १२
आदर्शरूपो दैत्यस्य खड्गतो यः प्रतिष्ठितः ।
तन्मध्ये दृश्यते रूपं बहुयोजनमायतम् ॥ १३
अतिरीढं महाकार्यं दानवानां भयंकरम् ।
महानेत्रं महावक्त्रं महादंष्ट्रं महाभुजम् ॥ १४
महानखं महापादं कालाग्निसदृशाननम् ।
कणान्तकृतविस्तारवदनं चातिभीषणम् ॥ १५

समाचार दैत्यराज हिरण्यकशिपुको दिया। उन्हें स्वस्थ लौटा सुन दैत्यराज विस्मयसे व्याकुल हो उत्थ और क्रोधशस्त्र मृत्युके अशीन होकर योला—‘उसे यहाँ बुला लाओ।’ असुरोंकि द्वारा शुरी तरहसे पकड़कर लाये जानेपर दिव्यदृष्टिवाले प्रह्लादने सिंहासनपर बैठे हुए दैत्यराज हिरण्यकशिपुको देखा। उसकी मृत्यु निकट थी, उसका लैज बहुत बड़ा हुआ था। उसके आभूषण नीलप्रभायुक्त नालिकाओंकी कानिसे आच्छब थे, अतएव वह धूमयुक्त फैली हुई अप्रिके समान जोधित हो रहा था। वह कैसे मिंहासन-मण्डपर बिराजमान था और उसे भेषके समान काले दाढ़ोंके कारण बिकरात, अत्यन्त भयानक, कुमार्गदर्शी एवं यमदूलोंके समान जूर दैत्य थे। १—५॥

प्रह्लादजीने दूरसे ही हाथ जोड़कर पिताको प्रणाम किया और खड़े हो गये। तब मृत्युके निकट चढ़नेवालोंकी भौति अकाशम ही क्रोध करनेवाले उस दुहरे भगवद्वक्त पुरुषों उच्चस्वरसे झौंटते हुए कहा—‘ओ मूर्ख! तू मेरा यह अविष्ट और अटल वर्षन सुन; इसके बाद मैं तुम्हासे कुछ न करूँगा; इसे सुनकर तेरी जैसी इच्छा हो, यही करना।’ यह कहकर उसने शीघ्र ही चन्द्रहास नामक अपनी अद्भुत तालवार खोंच ली। उस समय सब लोग उसकी ओर आकर्षण्यपूर्वक देखने लगे। उसने तालवार चलाते हुए पुनः प्रह्लादसे कहा—‘रे मूर्ख! तेरा विष्णु कहाँ है? आज वह तेरी रक्षा करे! तुने कहा था कि वह सर्वत्र है। किं इस खंभेमें क्यों नहीं दिखायी देता? कहि तेरे विष्णुको इस खंभेके भीतर देख लूँगा, तब तो तुम्हे नहीं मारूँगा; यदि ऐसा न हुआ तो इस तालवारसे तेरे दो दुकाहे कर दिये जायेंगे।’ ६—१०॥

प्रह्लादने भी ऐसी जल देखकर उन परमेश्वरस्तु छान किया और पहले कहे हुए उनके वचनको याद करके हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम किया। इतनेमें ही दैत्यनन्दन प्रह्लादने देखा कि वह दर्पणके समान स्वच्छ खंभा, जो अभोतक खड़ा था, दैत्यराजको तालवारके आशालसे फट पड़ा तथा उसके भीतर अनेक योजन विस्तारवाला, अत्यन्त गौर एवं महाकाय नरसिंहरूप दिखायी दिया, जो दानवोंको भयावृत करनेवाला था। उसके बड़े-बड़े नेत्र, विशाल मुख, बड़ी-बड़ी दाढ़े और लंबी-लंबी भुजाएँ थीं। उसके नद यहुत बड़े और पैर विशाल थे। उसका मुख ज्यालागिनके समान देखेष्यमान था, जबड़े कानवक फैले हुए थे और वह यहुत भयानक दिखायी देता था। ११—१५॥

कृत्वेत्यं नरसिंहं तु यथो विष्णुशिविकमः ।
नरसिंहः स्तम्भमध्याश्रिगत्य प्रणनाद च ॥ १६
निनादश्रवणादेत्या नरसिंहमवेष्टयन् ।
तान् हत्या सकलांस्तत्र स्वपीरुषपराक्रमात् ॥ १७
बभद्रं च सभां दिव्यां हिरण्यकशिपोरुपं ।
वारयामासुरभ्येत्य नरसिंहं महाभट्टाः ॥ १८
ते तु राजन् क्षणादेव नरसिंहेन वै हताः ।
ततः शास्त्राणि वर्षन्ति नरसिंहं प्रतापिनि ॥ १९
स तु क्षणेन भगवान् हत्या तद्वलमोजसा ।
ननाद च महानादं दिशः शब्देन पूर्वयन् ॥ २०
तान्मृतानपि विज्ञाय पुनरन्यामहासुरः ।
अष्टाशीतिसहस्राणि हेतिहस्तान् समादिशान् ॥ २१
तेऽप्यागत्य च तं देवं रुद्धुः सर्वतोदिशम् ।
हत्या तानखिलान् युद्धे युध्यमानो ननाद सः ॥ २२
पुनः सभां बभद्रासी हिरण्यकशिपोः शुभाम् ।
तान् हतानपि विज्ञाय कोपसंरक्षतोचनः ॥ २३
ततो हिरण्यकशिपुर्विश्वक्रामं महावलः ।
उवाच च महीपाल दानवान् बलदर्पितान् ॥ २४
हन्यतां हन्यतामेष गृह्णतां गृह्णतामयम् ।
इत्येवं बदतस्तस्य प्रमुखे तु महासुरान् ॥ २५
युध्यमानान् रणे हत्या नरसिंहो ननाद च ।
ततोऽतिद्युद्युद्दैत्या हतशेषा दिशो दश ॥ २६
तावद्वता युध्यमाना दैत्याः कोटिसहस्रशः ।
नरसिंहेन यावच्य नभोभागं गतो रविः ॥ २७
शस्त्रास्त्रवर्षचतुरं हिरण्यकशिपुं जवात् ।
प्रगृह्य तु बलाद्वाजन् नरसिंहो महावलः ॥ २८
संघ्याकाले गृहद्वारि स्थित्वोरी स्थाप्य तं रिपुम् ।
वत्रतुल्यमहोरस्कं हिरण्यकशिपुं रुद्धा ।
नखैः किसलयमिव दारयत्याह सोऽसुरः ॥ २९

इस प्रकार नरसिंहरूप धारणकर श्रिविक्रम भगवान् विष्णु खंभेके भीतरसे निकल पड़े और लगे बड़े जोर-जोरसे दहाड़ने । नरेश्वर ! यह गर्जना सुनकर दैत्योंने भगवान् नरसिंहको घेर लिया । तब उन्होंने अपने पौरुष एवं पराक्रमसे उन सबको मौतके घाट उतारकर हिरण्यकशिपुका दिव्य सभाभवन नष्ट कर दिया । राजन् ! उस समय जिन महाभट्टोंने निकट आकर नृसिंहजीको रोका, उन सबको उन्होंने क्षणधरमें मार डाला । तत्पश्चात् प्रतापी नरसिंहभगवान्पर असुर सैनिक अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ १६—१९ ॥

भगवान् नृसिंहने क्षणधरमें ही अपने लेजसे समस्त दैत्योंनेका संहार कर दिया और दिशाओंको अपनी गर्जनामे गुजाते हुए वे भव्यकर सिंहनाद करने लगे । उपर्युक्त दैत्योंको यह जान महासुर हिरण्यकशिपुने पुनः हाथमें जाप लिये हुए अद्वासी हजार असुर सैनिकोंको नृसिंहदेवसे लड़नेकी आज्ञा दी । उन असुरोंने भी आकर भगवान्को सब औरसे घेर लिया । तब युद्धमें लड़ते हुए भगवान् उन सभीका वध करके पुनः सिंहनाद करने लगे । उन्होंने हिरण्यकशिपुके दूसरे मुन्दर सभाभवनको भी पुनः नष्ट कर दिया । राजन् ! अपने भेजे हुए इन असुरोंको भी मारा गया जान क्रोधप्ते साल-लाल और्ध्वे करके महावली हिरण्यकशिपु स्वयं बाहर निकला और बलाभिमानी दानवोंसे बोला—‘ओर, इसे पकड़ो-पकड़ो; मार डालो, मार डालो । इस प्रकार कहते हुए हिरण्यकशिपुके सामने ही युद्ध करनेवाले उन सभी महान् असुरोंका रणमें संहार करके भगवान् नृसिंह गर्वने लगे । तब मरनेमें बचे हुए दैत्य दर्शों दिशाओंमें वैग-पूर्वक भाग चले ॥ २०—२६ ॥

जबतक सूर्योदय अस्तावलको नहीं चले गये, तबतक भगवान् नृसिंह अपने साथ युद्ध करनेवाले हजारों करोड़ दैत्योंका संहार करते रहे । राजन् ! किन्तु जब सूर्य इबने लगे, तब महावली भगवान् नृसिंहने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करनेमें कुशल हिरण्यकशिपुको बड़े बेगसे बलपूर्वक पकड़ लिया । किन्तु संघ्याके समय घरके दरवाजेपर जैतकर, उस वज्रके समान कठोर विशाल वक्षवाले शशु हिरण्यकशिपुको अपनी जौफ्योंपर गिराकर जब भगवान् नृसिंह रोषपूर्वक नखोंसे पतनको भौति उसे निकाले जाने लगे, तब उस महान् असुरने जोखनसे निराश होकर कहा— ॥ २७—२९ ॥

यत्राखण्डलदन्तिदन्तमुसला-
न्याखणिदतान्याहवे
धारा यत्र पिनाकपाणिवरशो-
राकुण्ठतामागमत् ।

तन्मे ताकदुरो नृसिंहकर्जे-
व्यादीर्थं साम्यतं
दैवे दुर्जनतं गते तुणमयि
प्रायोऽप्यवज्ञापते ॥ ३० ॥

एवं वदति दैत्येन्द्रे ददार नरकेसरी।
हृदयं देत्यराजस्य पद्मपत्रमिव द्विषः ॥ ३१ ॥

शकले द्वे तिरोभूते नखरन्ते महात्मनः।
ततः क्षयातो दुष्टोऽसाधिति देवोऽतिविमितः ॥ ३२ ॥

निरीक्ष्य सर्वतो राजन् वृद्धीतत्कर्म पेऽभवत्।
इति संविनय राजेन्द्र नरसिंहो महाबलः ॥ ३३ ॥

व्यभूमयत्करायुच्चैस्तत्त्वते शकले तुपः।
नखारन्धात्रिपतिते भूमी रेणुमये हरे ॥ ३४ ॥

दद्वा व्यतीतसंरोधो जहास परमेश्वरः।
पुण्यवर्णं च वर्णनो नरसिंहस्य मूर्धनि ॥ ३५ ॥

देवाः सब्रह्मकाः सर्वे आगताः प्रीतिसंयुताः।
आगत्य पूज्यामासुरसिंहं परं प्रभुम् ॥ ३६ ॥

ग्रहा च देत्यराजाने प्रह्लादमधिष्ठयत्।
धर्मे रतिः समस्तानां जनानामभवत्तदा ॥ ३७ ॥

इन्द्रोऽपि सर्वदेवैस्तु हरिणा स्वापितो दिवि।
नरसिंहोऽपि भगवान् सर्वलोकहिताय च ॥ ३८ ॥

श्रीशीलशिखरं प्राव्य विश्रुतः सुरपूजितः।
स्थितो भक्तहितार्थाय अभक्तानां क्षयाय च ॥ ३९ ॥

इत्येतत्रारसिंहस्य माहात्म्यं च एठेश्वरः।
श्रृणोति वा नृपश्रेष्ठ मुच्यते सर्वपातकः ॥ ४० ॥

'हाय! नृसिंहके समय देवराज इन्द्रके बाहन गवाराज ऐरावतके मूसल-जैसे दाँत जहाँ टकराकर दुकड़े-दुकड़े हो गये थे, जहाँ पिनाकपाणि महादेवके फरसेकी तीखी धार भी कुपित हो गयी थी, वही भेरा बक्षःस्थल इस समय नृसिंहके नखोंद्वारा कवड़ा जा रहा है। सच है, जब भाग्य खोटा हो जाता है, तब तिनका भी प्रायः अनादर करने लगता है' ॥ ३० ॥

देवराज हिरण्यकशिष्य इस प्रकार कह ही रहा था कि भगवान् नृसिंहने उसका हृदयदेश विदीर्घ कर दिया—ठीक दसी तरह, जैसे हाथी कमलके पत्तेको अनायास ही छिप-भिप फर देता है। उसके शरीरके दोनों दुकड़े महात्मा नृसिंहके नखोंके छेत्रमें धुसकर छिप गये। राजन्! तब भगवान् सब और देखकर अत्यन्त विस्मित हो गोचरने लगे—'अहो! वह दुष्ट कहाँ चला गया? जान पड़ता है, भेरा यह सारा उपाय ही व्यर्थ हो गया' ॥ ३१-३२/। ॥

राजेन्द्र! महाबली नृसिंह इस प्रकार चिन्तामें पड़कर अपने दोनों हाथीको बढ़े जोरसे झाड़ने लगे। राजन्! फिर तो वे दोनों दुकड़े उन भगवान्के नख-छिद्रसे निकलकर भूमिपर गिर जाएं, वे कुचलकर भूलिङ्गके समान हो गये थे। वह देख रोपहोन हो वे परमेश्वर हीसने लगे। इसी समय बहादूरि सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गहरी आये और भगवान् नृसिंहके अस्तकपर फूलोंको वर्षा करने लगे। पास आकर उन सबने उन परम उभ नरसिंहदेवका दूजन किया ॥ ३३-३५ ॥

उद्दनतर ग्रहाणीने प्रह्लादको देखींके राजाके पदपर अधिकृत किया। उस यमद समस्त प्राणियोंका धर्मय अनुराग हो गया। सम्पूर्ण देवताओंसहित भगवान् विष्णुने इन्द्रको स्वर्णके राम्यपर स्वापित किया। भगवान् नृसिंह भी सम्पूर्ण स्तोकोंका हित करनेके लिये श्रीशीलके शिखरपर जा पहुँचे। वहाँ देवताओंसे पूजित हो वे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए। वे भक्तोंका हित और अभक्तोंका नाश करनेके लिये वहाँ रहने लगे ॥ ३७-३९ ॥

नृपश्रेष्ठ! जो अनुष्य भगवान् नरसिंहके इस माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब शारोंमें मुक्त हो जाता

नरो वा यदि वा नारी शृणोत्यात्मानमुत्तमम्।
वैष्णवाददुःखशोकाच्च दुष्टसङ्गात्प्रभुच्यते॥ ४१
दुश्शीलोऽपि दुराचारो दुष्टजो दोषकर्मकृत्।
अथर्विष्णुऽनभोगी च शृणवन् शुद्धो भवेत्तरः॥ ४२

हरिः सुरेशो नरलोकपूजितो
हिताय लोकस्य चराचरस्य।
कृत्या विस्तरं च पुराऽत्मपायया
हिरण्यकं दुःखकरं नखिंशिष्ठनन्॥ ४३

हैः नर हो या नारो—जो भी इस उत्तम आख्यानको सुनता है, वह दुष्टोंका सङ्क करनेके दोपसे, दुःखसे, शोकसे एवं वैष्णवके कष्टसे छुटकारा पा जाता है। जो दुष्ट स्वभाववाला, दुराचारी, दुष्ट संक्षेपवाला, दूषित कर्मोक्त आचरण करनेवाला, अधर्मीना और विषयभोगी हों, वह मनुष्य भी इसका वैष्णव करनेसे शुद्ध हो जाता है॥ ४०—४२॥

मनुष्यलोकपूजित देवेश्वर भगवान् हरिने पूर्वकालमें चराचर जगत्के हितके लिये अपनी मायासे भव्यानक आकारवाला नरसिंहरूप धारण करके दुःखदायी दैत्य हिरण्यकशिष्ठुको नखोंद्वारा नष्ट कर दिया था॥ ४३॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहरूपस्तु भर्तुं तत्त्वं श्रुत्वा विष्णुऽत्मपायया॥ ४४॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'नरसिंहका अद्वैत' तत्त्वका वौकालीनमात्र अवश्य पूरा कुआ॥ ४४॥

प्राप्तिः ॥ अनुवादः ॥

पैतालीसर्वां अध्याय

खामन-अवतारकी कथा

मार्कंडेय उक्तम्

शृणु राजन् समासेन वाप्ननस्य पराक्रमम्।
बलियागे हता येन पुरा दैत्याः सहस्रशः॥ १

विरोचनसुतः पूर्वं महाबलपराक्रमः।
प्रैलोक्यं बुभुजे जित्या देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ २

ततः कृशतरा देवा बभूवुस्तेन खण्डिताः।
इन्द्रं कृशतरं दृष्ट्वा नष्टरात्मं नुपोत्तम्॥ ३

अदितिदेवमाता या सातप्यत्परमं तपः।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणिपत्य जनार्दनम्॥ ४

ततः स्तुत्याभिसंतुष्टो देवदेवो जनार्दनः।
स्थित्या तत्पुरतो वाचमुवाच प्रथुसूदनः॥ ५

तत्र पुत्रो भविष्यापि सुभगे बलिवन्धनः।
इत्युक्त्वा तां गतो विष्णुः स्वगृहं सा समाययी॥ ६

ततः कालेन सा गर्भमवाप नृप कश्यपात्।
अजायत स विश्वेशो भगवान् वामनाकृतिः॥ ७

मार्कंडेयकी कथोने—राजन्! जिन्होंने पूर्वकालमें राजा चत्विंशे यज्ञमें महासौं दैत्योंका संहार किया था, उन भगवान् वामनका चरित्र संक्षेपसे सुनो॥ १॥

पहलेकी जात है, विरोचनका पुत्र चत्वि महान् चत्वि और पाराक्रमसे सम्पन्न हो इन्द्र आदि समस्त देवताओंको जीतकर विभूतवज्ज्ञ राज्य भोग रहा था। नृपवर! उसके द्वारा खण्डित हुए देवतालोग बहुत दुर्बल हो गये थे। राज्य नष्ट हो जानेसे इन्द्र और अधिक कृष्ण हो गये थे। उन्हें इस दशामें देवकर देवमाता अदितिने बहुत चढ़ी तपस्या की। उन्होंने भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके अभीष्ट वाप्तेद्वारा उनका स्वावन किया। अदितिकी सुतिसे प्रसन्न हो देवपिंदेव मधुसूदन जनार्दन उनके सम्मुख उपस्थित हो जाते—‘सौभाग्यशालिनि! मैं चत्विको बाँधनेके लिये तुम्हारा पुत्र होकर्त्ता।’ उनसे यों रहकर भगवान् विष्णु अनन्धान हो गये और अदिति भी अपने घर चली गयी॥ २—६॥

राजन्! तदनन्तर समय अनेपर अदितिने कश्यपजीसे गर्भ परल किया। उस गर्भसे वामनरूपमें साक्षात् भगवान्

तस्मिन्द्वाते समागत्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
जातकर्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तत्र चकार वै ॥ ८
कृतोपनयनो देवो ब्रह्मचारी सनातनः ।
अदितिं चाप्यनुज्ञाय यज्ञशालां बलेदंयौ ॥ ९
गच्छतः पादविष्णेपाच्यचाल सकला मही ।
यज्ञभागान्न गृहन्ति दानवाशु बलेमर्खात् ॥ १०
प्रशान्ताक्षाग्रुषस्तत्र ऋत्विजो मन्त्रतश्चयुताः ।
विष्णरीतमिदं द्विष्टा शुक्रमाह महावतः ॥ ११
न गृहन्ति मुने कस्माद्विभागं महासुराः ।
कस्माच्य बह्यः शान्ता; कस्माद्विलति द्विज ॥ १२
कस्माच्य मन्त्रतो भृष्ट ऋत्विजः सकला अर्पी ।
इत्युक्तो वलिना शुक्रो दानवेन्द्र वर्चोऽप्नवीत् ॥ १३

शुक्र उक्तव्य

हे बले शृणु मे वाक्यं त्वया देवा निराकृताः ।
तेषां राज्यप्रदानाय अदित्यामच्युतोऽसुर ॥ १४
देवदेवो जगदोनिः संजातो वामनाकृतिः ।
म त्वागच्छति ते यज्ञं तत्पादन्यासकमित्या ॥ १५
चलतीयं मही सर्वा तेनाद्यासुरभूषते ।
तत्संनिधानादसुर न गृहन्ति हविर्मुखे ॥ १६
तत्वाग्रयोऽपि वै शान्ता वामनागमनादिद्भोः ।
ऋत्विजश्च न भासन्ते होमपन्त्रो बलेऽधुना ॥ १७
असुराणां श्रियो हन्ति सुराणां भूतिरुत्तमा ।
इत्युक्तः स वलिः प्राह शुक्रं नीतिमतां वरम् ॥ १८
शृणु ब्रह्मन् वर्चो मे त्वयागते वामने पर्खे ।
यन्मया चाद्य कर्तव्यं वामनस्यास्य धीमतः ॥ १९
तन्मे वद महाभाग त्वं हि नः परमो गुरुः ।

शुक्र-उक्तव्य

इति संचोदितः शुक्रः स राजा वलिना चृष्ट ॥ २०
तमुवाच वलिं वाक्यं ममापि शृणु साम्प्रतम् ।
देवानामुपकाराय भवतां संक्षयाय च ॥ २१
स नूनमायाति बले तव यज्ञे न संशयः ।
आगते वामने देवे त्वया तस्य महात्मनः ॥ २२

जगत्त्राय ही प्रकट हुए । वामनजीका अवतार होनेपर लोक-पितामह ब्रह्माजी बहाँ आये । उन्होंने उनके जातकर्मादिसम्पूर्ण समयोधित संस्कार सम्प्रत किये । उपनयन-संस्कारके बाद वे सनातन भगवान् ब्रह्मचारी होकर अदितिकी आज्ञा से राजा वलिकी यज्ञशालामें गये । चलते समय उनके बलेन्द्रके आवाहसे पृथ्वी कौप उठती थी । दानवगण वलिके यज्ञसे हविर्य ग्रहण करनेमें असमर्थ हो गये । वहाँकी आग चुक्ष गयी । ऋत्विजकाज मन्त्रोच्चारणमें त्रुटि करने लगे । यह विष्णरीत कार्य देवताकर महावली वलिने शुक्राचार्यसे कहा—‘मुने ! ये महान् असुराण यज्ञका भाग क्यों नहीं ग्रहण कर रहे हैं ? अग्रि क्यों जान हो रही है ? विप्रवर । यह पृथ्वी क्यों डगमगा रही है तथा ये सम्पूर्ण ऋत्विज् मन्त्रभूष क्यों हो रहे हैं ?’ वलिके इस प्रकार पूछनेपर शुक्राचार्यने उस दानवगणसे कहा— ॥ १७—१९ ॥

शुक्र ओले—असुरराज बलि ! तुम मेरी बात सुनो । तुमने देवताओंको जीतकर स्वर्गसे निकाल दिया है ; उन्हें पुनः उनका राज्य देनेके लिये जगत्के उत्पत्तिहश्यान देवदेव भगवान् विष्णु अदितिके नर्भसे वामनस्यामें प्रकट हुए हैं । असुरराज । ये ही तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं , अतः उन्होंके पादविन्यास (पौव रखने)-से कमित ही यह सारी पृथ्वी आज हिलने लगी है तथा उन्होंके निकट आ जानेके कारण असुरगण आज यज्ञमें हविर्य ग्रहण नहीं कर रहे हैं । याले ! वामनके आगमनसे ही तुम्हारे यज्ञको आग भी चुक्ष गयी है और ऋत्विज् भी श्रीहीन हो गये हैं । इस समयका होमपन्त्र असुरोंको सम्पत्तिको नहीं कर रहा है और देवताओंका उत्तम विप्रवर बढ़ रहा है ॥ १४—१७ ॥

उनके इस प्रकार बहनेपर वलिने नीतिज्ञोंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यजीसे कहा—‘ब्रह्मन् ! महाभाग ! आप मेरी वात सुने । यज्ञमें वामनजीके पथारनेपर उन चुदिमान् वामनजीके लिये भूजे ऊपा करना चाहिये, वह हमें जलाइये; क्योंकि आप मेरे पाम गुरु हैं’ ॥ १८—१९ ॥

मार्कण्डेयजी ओले—नरेश्वर ! राजा वलिके इस प्रकार पूछनेपर शुक्राचार्यजीने उनसे कहा—‘राजन् ! अब मेरी भी राय सुनो । चले ! वे देवताओंका हित करने और तुम लोगोंके विनाशके लिये ही तुम्हारे यज्ञमें पथार रहे हैं, इसमें संदेह नहीं है । अतः जब भगवान् वामन बहाँ आ जायें, तब उन महात्माके लिये

प्रतिज्ञा नैव कर्तव्या ददाम्येतत्त्वेति वै।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य बलिर्बलवतां वरः ॥ २३

उवाच तां शुभां वाणीं शुक्रपात्पुरोहितम्।
आगते वामने शुक्र यज्ञे मे मधुसूदने ॥ २४

न शक्यते प्रतिष्ठातुं दानं प्रति प्रया गुरो।
अन्येषाभिपि जन्मनापित्युक्तं ते प्रयाधुना ॥ २५

किं पुनर्वासुदेवस्य आगतस्य तु शार्ङ्गिणः।
त्वया विद्मो न कर्तव्यो वामने उप्रागते द्विज ॥ २६

यद्यद्वयं प्रार्थयते तत्तद्वयं ददाम्यहम्।
कृतार्थोऽहं मुनिश्चेषु यद्यागच्छति वामनः ॥ २७

इत्येवं वदतस्तस्य यज्ञशालां स वामनः।
आगत्य प्रविवेशाश्च प्रशशंस बलेऽर्थाम् ॥ २८

तं दृष्ट्वा सहसा राजन् राजा दैत्याधिपो बलिः।
उपचारेण सम्पूर्ण्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २९

यद्यत्प्रार्थयसे मां त्वं देवदेव धनाटिकम्।
तत्सर्वं तव दास्यामि मां याचस्वाद्य वामन ॥ ३०

इत्युक्तो वामनस्तत्र नृपेन्द्र बलिना तदा।
याचयामास देवेशो भूमेदैहि पदत्रयम् ॥ ३१

ममाग्निशरणार्थाय न मेऽर्थोऽस्ति प्रयोजनम्।
इत्युक्तो वामनेनाश्च बलिः प्राह च वामनम् ॥ ३२

पदत्रयेण चेत्तुतिर्पया दत्तं पदत्रयम्।
एवमुक्ते तु बलिना वामनो बलिमद्वीत ॥ ३३

दीयतां मे करे तोयं यदि दत्तं पदत्रयम्।
इत्युक्तो देवदेवेन तदा तत्र स्वयं बलिः ॥ ३४

'मैं आपको यह वस्तु देता हूं' यों कहकर कुछ देनेकी प्रतिज्ञा न करना ॥ २०—२२ ॥

उनकी यह बात सुनकर बलिनांमें ब्रेष्ट बलिने अपने पुरोहित शुक्राचार्यजीसे यह सुन्दर बात कही—'गुरुदेव शुक्र ! यज्ञमें मधुसूदन भगवान् वामनके पथारनेपरमे मैं उन्हें कुछ भी देनेसे इनकार नहीं कर सकता । अभी—अभी मैं आपसे कह चुका हूं कि दूसरे प्राणी भी यदि मुझसे कुछ याचना करेंगे तो मैं उन्हें वह वस्तु देनेसे इनकार नहीं कर सकता; फिर शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णु (बासुदेव) ये यज्ञमें पथारे और मैं उनकी मृणमाणी वस्तु उन्हें देनेसे इनकार कर दूँ यह कैसे सम्भव होगा ? ब्राह्मणदेव ! यहाँ भगवान् वामनके पदार्पण करनेपर आप उनके कार्यमें विष्णु न ढालियेंगे ये जो—जो द्रष्ट्व मौर्गेंगे, वही वहो मैं उन्हें दूँगा । मुनिश्चेषु यदि भवमुच्च ही यहाँ भगवान् वामन पथार रहे हैं तो मैं कृतार्थ हो गया' ॥ २३—२४ ॥

राजा बलि जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय वामनजीने आकर यज्ञशालामें प्रवेश किया और वे उनके उस बलिकी प्रश्नेसा करने लगे । राजन् । उन्हें देखते ही दैत्याधिपति राजा बलिने सहसा डठकर पूजन—सामग्रियोंसे उनकी भूमा की, फिर इस प्रकार कहा—'देवदेव ! आप धन आटि जो—जो वस्तु मौर्गेंगे, वह सब मैं आपको दूँगा; इसलिये वामनजी ! आज आप मुझसे याचना कीजिये' ॥ २८—३० ॥

'नृपेन्द्र ! बलिके यों कहनेपर उस समय देवेश भगवान् वामनने उनसे यही याचना की कि मुझे अप्रियशालाके लिये केवल तीन पग भूमि दीजिये, मुझे धनको आवश्यकता नहीं है' ॥ ३१ ॥

भगवान् वामनके यों कहनेपर बलिने उनसे कहा—'यदि तीन पग भूमिसे ही आपको संतोष है तो तीन पग भूमि मैंने आपको दे दी' ॥ ३२ ॥

बलिके द्वारा यों कहे जानेपर भगवान् वामन उनसे बोले—'यदि आपने मुझे तीन पग भूमि दे दी तो मेरे हाथमें संकल्पका जल दीजिये' ॥ ३३ ॥

कहते हैं, उस समय वहाँ देवदेव भगवान् वामनजीके

सजलं हेमकलशं गृहीत्वोत्थाय भक्तिः ।
 यावत्स वामनकरे तोर्य दातुमुपस्थितः ॥ ३५
 तावच्छ्रुकः कलशगो जलधारा रुरोध ह ।
 ततश्च वामनः कुद्धः पवित्राग्रेषा सत्तम् ॥ ३६
 उदके कलशद्वारि तच्छ्रुकाक्षिप्तेऽप्यत् ।
 ततो व्यपगतः शुक्रो विद्वैकाश्वो नरोत्तम् ॥ ३७
 तोषधारा निपतिता वामनस्य करे पुनः ।
 करे निपतिते तोये वामनो ववृप्ते क्षणात् ॥ ३८
 पादेनैकेन विक्रान्ता तेनैव सकला यही ।
 अन्तरिक्षं द्वितीयेन द्वौस्तुतीयेन सत्तम् ॥ ३९
 अनेकान् दानवान् हत्वा हत्वा त्रिभुवनं चले ।
 पुरुदराय वैलोक्य दत्त्वा वसिमुखाच ह ॥ ४०
 यस्माते भक्तितो दत्तं तोषमष्ट करे मम ॥
 तस्याते साम्प्रतं दत्तं पातालतत्तमुत्तमय् ॥ ४१
 तत्र गत्वा महाभाग भुद्धस्य त्वं पत्प्रसादतः ।
 वैष्णवतेऽन्नोऽतीते पुनरिन्द्रो भविष्यति ॥ ४२
 प्रणम्य च ततो गत्वा तर्लं भोगमवासवान् ॥ ४३
 शुक्रोऽपि स्वर्णमाठड्डा प्रसादद्वामनस्य वै ।
 समागतस्थिभुवनं राजन् देवसमन्वितः ॥ ४४
 यः स्मरेत्प्रातरुत्थाय वामनस्य कथापिमाप् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ४५
 इत्थं पुरा वामनस्तपमास्थितो
 हरिवंलेहृत्य जगत्रयं त्रुप ।
 कृत्वा प्रसादं च दिवीकसाम्पते-
 दत्त्वा त्रिलोकं स यथो महोदधिष्ठ ॥ ४६

इस प्रकार जाह्ना देनेपर स्वयं राजा बलि जलसे भेर हुए सुखर्णकलशको लेकर भक्तिपूर्वक खड़े हो गये और ज्यों ही वामनजोके हाथमें जल देनेको उद्घात हुए, त्यों ही शुक्राचार्यने [वोगवत्से] कलशमें शुस्कर गिरती हुई जलधारा रोक दी । सत्तम् ! तब वामनजीने कुद्ध होकर पवित्र (कुमा)-के अप्रभागसे कलशके छेदमें जल निकलनेके प्रारंभर रित्यत हुए शुक्राचार्यको एक आँख उट उट छाली । नरोत्तम ! एक आँख छिद जानेपर शुक्राचार्य डासमेंसे निकल भागे ॥ ३४—३७ ॥

तत्पश्चात् वामनजीके हाथमें जलकी खाए गिरी । हाथपर जल पहुंच ही वामनजी क्षणभरमें ही बहुत खड़े हो गये । सत्तम् ! उन्होंने एक पाणसे यह सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ही, द्वितीय पाणसे अन्तरिक्षलोक तथा तृतीय पाणसे स्वर्णसेनाको अवश्यक कर दिया । फिर अनेक दानवोंका संहर करके बलिसे त्रिभुवनका राज्य छोड़ दिया और यह विलोकी इन्द्रकी अर्पितकर पुनः बलिसे कहा—'तुमने भक्तिपूर्वक धारा मेरे हाथमें संकल्पका जल अर्पित किया है, इसलिये इस समय मैंने तुम्हें उत्तम पाताललोकपा राज्य दिया । महाभाग ! यहाँ जाकर तुम मेरे प्रसादतो राज्य भोगो । वैष्णवत मन्दिरात् अवृत्ति हो जानेपर तुम पुनः इन्द्र-पदपर प्रविहित होओगे' ॥ ४८—४२ ॥

तब यहिने भगवान्‌को प्रणाम करके पातालतत्त्वमें जाकर यहाँ उत्तम भोगोंको प्राप्त किया । राजन् ! शुक्राचार्य भी भगवान् वामनकी कृपासे त्रिभुवनकी राजधानी स्वर्णमें आकर सब देवताओंके साथ सुखपूर्वक रहने लगे । जो मनुष्य छालःकाल डठकर भगवान् वामनकी इस कथाका स्मरण करता है, वह सब जापोंसे भुक्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । त्रुप । इस प्रकार सूर्यकालमें भगवान् विष्णुने वामनस्य धारणकर त्रिभुवनका राज्य बलिसे ले लिया और उसे कृपापूर्वक देवराज इन्द्रको अर्पित कर दिया । तत्पश्चात् ये भोगसामग्रको चले गये ॥ ४३—४६ ॥

ज्ञाते इन्द्रसिंहपुण्ये लक्ष्मणजुहुवं एव विष्णवत्सिंहपुण्यः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुण्यमें 'वामनवत्स' विद्यक दीलोलीसर्वा अप्याय पूरा हुम्हा ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

परशुरामावतारकी कथा

गर्कंडेन उचाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरे: शुभम्।
जापदग्न्यं पुरा येन क्षत्रमुत्सादितं शृणु॥ १
पुरा देवगणीर्विष्णुः स्मृतः क्षीरोदधी नृप।
प्राणिभिक्षु महाभागीर्जमदग्ने: सुतोऽभवत्॥ २
पर्णराम इति ख्यातः सर्वलोकेषु स प्रभुः।
दुष्टानां निग्रहं कर्तुमवतीर्णो महीतले॥ ३
कृतवीर्यसुतः श्रीमान् कार्तवीर्योऽभवत् पुरा।
दत्तात्रेयं समाराध्य चक्रवर्तित्वमामवान्॥ ४
स कदाचिन्महाभागो जपदग्न्याद्वयं यती।
जपदग्निस्तु तं द्युषा चतुरहृष्टवलान्वितम्॥ ५
उत्तात्रेयं मधुरं वाक्यं कार्तवीर्यं नृपोन्मम्।
मुच्यतामप्त्र ते सेना अतिथिस्त्वं समागतः।
यन्यादिकं प्रया दत्तं भुक्तवा गच्छ महामते॥ ६
प्रपूच्य सेना मुनिवाक्यगीरवात्
स्थितो नृपसतत्र महानुभावः।
आपन्त्य राजानमलहृष्टकीर्ति-
मुनिः स धेनुं च दुदोह दोषीम्॥ ७
हस्त्यशृशाला विविधा नाशां
गृहाणि विश्राणि च तोरणानि।
सामन्तयोग्यानि शुभानि राजन्।
समिच्छतां यानि सुकाननानि॥ ८
गृहं वरिष्ठं यतुभूमिकं पुनः
सपन्तिर्तं साधुगुणीरप्तस्त्वरः।
दुध्वा प्रकल्पन् मुनिराह पार्वितं
गृहं कृतं ते प्रविशेह राजन्॥ ९
इमे च मन्त्रिप्रवरा जनास्ते
गृहेषु दिव्येषु विशन्तु शीघ्रम्।
हस्त्यशृशालात्यश्च विशन्तु शालां
भृत्याश्च नीवेषु गृहेषु सन्तु॥ १०

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! आप मैं भगवान् विष्णुके जामदग्न्य (जरशुणम्) नामक शुभ अवतारका वर्णन करता हूं, जिसने पूर्वकालमें क्षत्रियवंशका उच्छेद किया था; उस प्रसङ्गको सुनो॥ १॥

नोक्ष! पहलेकी बात है, क्षीरसागरके तटपर देवताओं और महाभाग प्रवृष्टियोंने भगवान् विष्णुकी स्तुति की; इससे मैं जमदग्नि मुनिके पुत्रके हृष्टमें अवतीर्ण हुए। मैं भगवान् सम्पूर्ण सोकोंमें 'परशुराम' नामसे विख्यात थे और दुष्ट राजाओंका नाश करनेके लिये ही इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे। उनके अवतारसे पूर्व राजा कृतवीर्यका पुत्र 'कार्तवीर्य' हुआ था, जिसने दत्तात्रेयजीकी आराधना करके सार्वधीम राज्य प्राप्त कर लिया था। एक समय वह महाभाग जोश जमदग्नि वृद्धिके आश्रमपर गया। उसके सब्द चतुरहृष्टों सेना थी। उस राजाको चतुरहृष्टीयोंनाके साथ अत्रामधर आया देख जमदग्निने नृपवर अवतीर्णयोंमें मधुर वाक्योंमें कहा—'महामते! आप मैं अतिथि होकर यहाँ पहारे हैं; अतः आज अपनी सेनाका पहार यहाँ ढालिये और मैं दिये हुए बन्य फल आदिका भोजन करके कस यहाँसे जाइयेगा'॥ २—६॥

महानुभाव राजा कार्तवीर्य मुनिके बासस्थान गौरव यात्रकर अपनी सेनाको वहाँ उहरनेका आदेश दे वहाँ रह गय। इधर अलहृष्य यशस्वाले मुनिने राजाको आमन्त्रित करके अपनी कामधेनु गौका दोहन किया। राजन्! उन्होंने अनेकनेह गजशाला, अश्वशाला, मनुष्योंके रहनेवाले विचित्र गृह और तीरण (द्वार) आदिका दोहन किया। सामन्त नीतांकि रहनेवालोंके लिये सुन्दर उद्घान थे, दोहनद्वारा प्रसन्न रहे। फिर अनेक घंजिलोंका श्रेष्ठ यहस्, जिसमें सुन्दर एवं उपर्योगी सामान संचित थे, गौदोहनके द्वारा उपलब्ध करके मुनिने भूपालसे कहा—'राजन्! आपके लिये महल तैयार है। आप इसमें प्रवेश कीजिये। आपके ये श्रेष्ठ मन्त्री तथा और सौगं भी शीघ्र ही इन दिव्य गृहोंमें प्रवेश करें। विभिन्न जालियोंके हाथी और घोड़े आदि भी गजशाला और अश्वशालामें रहें तथा भृत्यगाल भी इन द्वारे बरोंमें नियास करें'॥ ७—१०॥

इत्युक्तमात्रे मुनिना नृपोऽसी
गृहं वरिष्ठे प्रविवेश राजा।
अन्येषु चान्येषु गृहेषु सत्सु
मुनिः पुनः पार्थिवमाक्षभाषेः ॥ ११

स्वानप्रदानार्थमिदं मया ते
प्रकल्पितं स्वीशतमुन्नमं नृप।
स्वाहि त्वमद्यात्र मयाप्रकामं
यथा सुरेन्द्रो दिवि नृत्यगीतेः ॥ १२

स रातर्बास्तत्र सुरेन्द्रवन्धूपो
गीत्यादिशब्दैर्घर्षपूरुषु वार्तैः।
स्वातस्य तस्याशु शुभे च यस्मै
ददौ मुनिर्भूप विभूषिते है ॥ १३

परिधाय वस्त्रं च कृतोत्तरीयः
कृतक्रियो विष्णुपूजां चकार।
मुनिश्च दुग्धात्रमयं महागिरिं
नुपाय भूत्याय च दत्तवानसी ॥ १४

यावत्स राजा बुधुने सभूत्य-
स्तावच्य सूर्यो गतवान् नृपास्तम्।
राजी च गीतादिविनोदयुक्तः
शेते स राजा मुनिनिर्मिते गृहे ॥ १५

ततः प्रभाते विमले स्वप्नलव्यपिवाभवत्।
भूमिभागं ततः कंविद् दृष्टासी चिन्तयत्रूपः ॥ १६

किमियं तपसः शक्तिर्मुनेरस्य महात्मनः।
सुरभ्या वा महाभाग दृष्टि मे त्वं पुरोहितः ॥ १७

इत्युक्तः कार्तवीयेण तमुवाच पुरोहितः।
मुनेः सापर्थ्यमयस्ति सिद्धिक्षेयं हि गोर्नृप ॥ १८

तथापि सा न हत्याया त्वया लोभात्राधिष्ठिता
यस्त्वेतां हर्तुमिच्छेद यै तस्य नाशो धूर्वं भवेत् ॥ १९

मुनिके इस प्रकार कहते ही राजा कार्तवीयने उस वक्तम् गृहमें प्रवेश किया। फिर दूसरे लोग दूसरे-दूसरे गृहोंमें प्रविष्ट हुए। इस प्रकार सबके यथास्थान स्थित हो जानेपर मुनिने पुनः राजा कार्तवीयसे कहा—‘नरेश्वर! आपको स्वान करानेके लिये मैंने इन सी उत्तम स्वियोंको नियत किया है। जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र अप्सराओंके नृत्य-गीत सुनते हुए खान करते हैं, उसी प्रकार आप भी इन स्वियोंके नृत्य-गीतसे आनन्दित हो इच्छानुसार स्वान कीजिये’ ॥ ११—१२ ॥

भूप! (मुनिकी आज्ञासे) वहाँ राजा कार्तवीयने हड्डीकी भौंत मधुर वादों और गीत आदिके शब्दोंसे आनन्दित होते हुए खान किया। खान कर हेतेपर मुनिने उन्हें दो सुन्दर सुशोभित वस्त्र दिये। धौतवस्त्र पहन और ऊपरसे लाटर ओढ़कर राजा ने नित्य-नियम करानेके बाद भगवान् विष्णुकी पूजा की। फिर उन मुनिवरने गीते असमय महान् पर्वतका दोहन करके राजा तथा राजसेवकवृन्दको आर्पित किया। नृप! राजा तथा उनके भूत्याणोंने जयतक भोजनका शर्व सम्पन्न किया। तवाक मूर्दिय अस्तावलालको चले गये। तब उन्होंने उनको भी मुनिके बनाये हुए उस भवनमें गीत आदि विनोदोंसे आनन्दित हो शयन किया ॥ १३—१५ ॥

उद्दनकर विर्मल प्रभातकाल होते ही स्वप्नमें मिस्ती हुई सम्पत्तिके सम्बन्ध सब कुछ लुप्त हो गया। फिर वहाँ केवल कोई भूभागमात्र ही अवशिष्ट देखा राजा ने मन-ही-मन विचार किया और अपने पुरोहितसे पूछा—‘महाभाग पुरोहितजी! यह महात्मा जमदग्नि मुनिके तपको शक्ति यो या कामधेनु गीको? इसे आप मुझे बताइये।’ कार्तवीयसे इस प्रकार पुरुषोहितने उससे कहा—‘राजन! मुनिमें भी सामर्थ्य है, परंतु यह सिद्धि तो गीको ही थी। तो भी नरेश्वर! आप लोभवश उस गीका अपहरण न करें; क्योंकि जो उसे हर हेतेकी इच्छा करता है, उसका निश्चय ही विनाश हो जाता है’ ॥ १६—१९ ॥

अथ मन्त्रिवरः प्राह चाहणो चाहणप्रियः ।
राजकार्यं न पश्येद् वै स्वपक्षस्यैव पोषणात् ॥ २०
हे राजंस्त्वयि तिष्ठन्ति गृहाणि विविधानि च ।
तथा सुवर्णपात्राणि शयनादीनि च स्त्रियः ॥ २१
तां धेनुं प्राप्य राजेन्द्र लीयमानानि तत्क्षणात् ।
अस्माभिस्तत्र दृष्टानि नीयतां धेनुरुत्तमा ॥ २२
तवेऽयं योग्या राजेन्द्र यदीच्छसि महामते ।
गत्वाहमानविद्यापि आज्ञां मे देहि भूभूत ॥ २३
इत्युक्तो मन्त्रिणा राजा तथेत्याह नृपोत्तम ।
सच्चिदस्तत्र गत्वाय सुरभिः हर्तुमारभत् ॥ २४
चारयामास सचिवं जगदिग्ः समन्ततः ।
राजयोग्यापिमां ज्ञाहान् देहि राजे यहामते ॥ २५
त्वं तु शाकफलाहारी किं धेव्या ते प्रयोगतम् ।
इत्युक्त्वा तां बलाद्युत्वा नेतुं मन्त्री प्रचक्षमे ॥ २६
पुनः सभार्यः स मुनिवारियामास ते नृपम् ।
ततो मन्त्री सुदुष्टत्वा मुर्विं हत्या तु तं नृप ॥ २७
यहाहा नेतुपारेभे वायुभागेण सा गता ।
राजा च क्षुद्रगृहदयो यदी याहिष्यतीं पुरीष ॥ २८
मुनिपत्नीं सुदुःखाता रोदयन्ती भृशं तदा ।
त्रिस्समकृत्वः स्वां कुशिं ताङ्गयामास पार्थिव ॥ २९
तच्छृणवत्रागतो राष्ट्रो गृहीतपरशुस्तदा ।
पुष्पादीनि गृहीत्वा तु बनान्वातरमन्तर्वीत् ॥ ३०
अलमाम्ब प्रहारेण निपित्ताद् विदितं मया ।
हनिष्यापि दुराचारमर्जुनं दुष्टप्रिणम् ॥ ३१
त्वयैकविंशत्वारेण यस्मात्कुशिक्षु ताङ्गिता ।
त्रिस्समकृत्वस्तस्मात् हनिष्ये भृवि पार्थिवान् ॥ ३२

यह सुनकर राजाके प्रधान मन्त्रीने कहा—‘महाराज चाहण चाहणप्रिय हीं प्रेमी होता है, वह अपने पक्षका पोषण करनेके कामण राजाके कार्यको कोई परवाह नहीं करता। राजन् ! उस गीको पाकर आपके पास तत्काल गुल हो जानेवाले जाना प्रकारके घर, सोनेके पात्र, शव्यादि तथा सुन्दरी स्त्रियाँ—वे सब सामान प्रस्तुत रहेंगे, जिन्हें हम लोगोंने वहाँ प्रत्यक्ष देखा है। इस उत्तम धेनुको आप अवश्य ले चलें। महामते राजेन्द्र ! वह गी आपके ही योग्य है। भूषण ! यदि आपको इच्छा हो तो मैं स्वयं जाकर इसे ले आऊंगा। आप केवल मुझे आज्ञा दीजिये’ ॥ २०—२३ ॥

तुपर ! मन्त्रीके इस प्रकार कहनेपर राजा ने ‘यहुत अच्छा’ कहकर अनुमति दे दी। किं राजमन्त्री आश्रमपर जाकर गीको अपहरण करने लगा। तब जगदिग्ः मुनिने उसे सब ओरसे मना किया, किंतु उसने उनको बात न मानते हुए कहा—‘महामुद्दिमान् चाहण ! यह गी राजाके योग्य है; अतः इसे राजाको ही दे दीजिये। आप तो साग और फल खानेवाले हैं; आपको इस गायसे क्या काम है?’ यों कहकर मन्त्री उस गीको जलपूर्वक ले जाने लगा। राजन् ! तब उस मुनिने स्त्रीसहित आकर उसे पुनः रोका। इसपर उस दुष्टत्वा और चाहणहत्यारे मन्त्रीने उस पुनिका वध करके गीको जहाँ ही ले जाना चाहा, त्वाँ ही वह दिल्ली गी आकाशमारीसे चलते गये और राजा मन-ही-मन क्षुद्र छोकर माहिष्मती नगरीको लौट आया ॥ २४—२८ ॥

राजन् ! उस समय मुनिकी पत्नी दुःखसे पीड़ित होकर अपना विलाप करते लगी और प्राण त्वाग देनेकी इच्छासे अपनी कुशिं (उदर) -में उसने इक्कीस चार मुका मारा। माताका विलाप सुनकर परशुरामजी वनसे फूल आदि लेकर हाथमें कुलहाड़ी लिये उसी समय आये और मातासे बोले—‘मा ! इस प्रकार लाली पीटनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं सब कुछ हाकूनमें जान गया हूँ। उस दुष्ट मन्त्रीवाले दुराचारी रुजा अनुनाम में अवश्य वध करेंगा। मातः ! चौंक दुमने अपनी कुशिंमें इक्कीस चार प्रहार किया है, इसलिये मैं इस भूषणहठके खत्रियोंका इक्कीस चार संहार करेंगा’ ॥ २९—३२ ॥

इति कृत्वा प्रतिज्ञां स गृहोत्वा परशुं यद्योऽपि
माहिष्मतीं पुरीं प्राप्य कार्तवीर्यमथाद्युयत् ॥ ३३
युद्धार्थमागतः सोऽथ अनेकाक्षीहिणीयुतः ।
तद्योर्युद्धमभूतत्र भैरवं लोमहर्षणम् ॥ ३४
पिशिताशिजनानन्दं शस्त्रास्त्रशतसंकुलम् ।
ततः परशुरामोऽभूत्महाबलपराक्रमः ॥ ३५
परं ज्योतिरचिन्त्यात्मा विष्णुः कारणमूर्तिपान् ।
कार्तवीर्यबलं सर्वमनेकं क्षत्रियैः सह ॥ ३६
हत्वा निपात्य भूमीं तु परमाद्युतविक्रमः ।
कार्तवीर्यस्य बाहुनां बनं चिच्छेद रोषवान् ।
छिङ्रे बाहुवने तस्य शिरश्चिच्छेद भार्गतः ॥ ३७
विष्णुहस्तादुर्धं प्राप्य चक्रवतीं स पार्थिवः ।
दिव्यरूपधरः श्रीपान् दिव्यगन्यानुलेपनः ॥ ३८
दिव्यं विमानमारुहा विष्णुलोकमवासवान् ।
क्रोधात्परशुरामोऽपि महाबलपराक्रमः ॥ ३९
त्रिसासकृत्वो भूम्यां वै पार्थिवाश्रितायान सः ।
क्षत्रियाणां वधानेन भूमेभरोऽवतारितः ॥ ४०
भूमिश्च सकला दत्ता कश्यपाय महात्पने ।
इत्येष जामदग्न्याख्यः प्रादुर्भावो ययोदितः ॥ ४१
यक्ष तच्छृण्याद्वक्त्या सर्वपापैः प्रपुच्यते ॥ ४२
अवतीर्य भूमीं हरिरेष साक्षात्
त्रिसासकृत्वः क्षितिपाश्रित्य सः ।
क्षात्रं च तैजो प्रविभूत्य राजन् ।
रामः स्थितोऽद्यापि गिरी महेन्द्रे ॥ ४३

इति श्रीनरसिंहपुराणे परशुरामाद्युर्भवीं जन्म दक्षतारित्योऽध्यायः ॥ ४४ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणे 'परशुरामाकार' 'गुप्तक विष्णुस्त्रैस्तर्तु अस्त्वा दूरा दुर्जा ॥ ४५ ॥

प्रतिक्रिया

सेंतालीसवाँ अध्याय

श्रीरामावतारकी कथा—श्रीरामके जन्मसे लेकर विवाहतकके चरित्र

श्रीमर्कण्डेश उकाए

श्रुणु राजन् प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरे: शुभम् ।
निहतो रावणो येन सगणो देवकण्टकः ॥ १

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके फरसा लेकर वे वहाँसे चल दिये और माहिष्मतीं पुरीमें जाकर उन्होंने राजा कार्तवीर्य अर्जुनको लक्षितकरा । तब वह अनेक अक्षीहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये आया । वहाँ उन दोनोंमें महाभयानक रोमाङ्कारी युद्ध हुआ, जो सैकड़ों अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे व्याप्त तथा मांस खानेवाले प्राणियोंको आनन्द देनेवाला था । उस समय परशुरामजी अपनेमें अचिन्त्यस्त्ररूप, परम ज्योतिर्मय, कारणमूर्ति भगवान्, विष्णुकी भावना करके महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो गये । उन्होंने परम आश्वर्यमय पौरुष प्रकट करते हुए कार्तवीर्यकी असंख्य क्षत्रियोंसे युक्त सम्पूर्ण सेनाको मारकर भूमिपर गिरा दिया और रोपसे भरकर कार्तवीर्यकी समस्त भुजाएँ काट डालीं । उसके बाहुबनका उच्छेद हो जानेपर भूगुनन्दन परशुरामने उसका मस्तक भी भूमि से अलग कर दिया ॥ ३६—३७ ॥

इस प्रकार वह चक्रवतीं राज्य कार्तवीर्य श्रीभगवान् विष्णुके हाथसे वधको प्राप्त होकर दिव्यरूप भारण करके, शोभमय एवं दिव्य चन्दनोंसे अनुलिप्त होकर, दिव्य विमानपर आलम्ब हो, विष्णुधामको ग्राप्त हुआ । फिर महान् बल और पराक्रमवाले परशुरामजीने भी इस पृथ्वीके क्षत्रियोंवाल इक्षीस बार संहार किया । इस प्रकार क्षत्रियोंका वध करके उन्होंने भूमिकह भार डाला और सम्पूर्ण पृथ्वी भगवान्ना कश्यपजीको दान कर दी ॥ ३८—३९ ॥

इस प्रकार मैंने तुमसे यह 'जामदग्न्य' (परशुराम) नामक अवतारका वर्णन किया । जो भक्तिपूर्वक इसका प्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । राजन् । इस तरह पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके बाद ये साक्षात् भगवान् विष्णुस्त्रैस्तर्तु परशुरामजी इक्षीस बार क्षत्रियोंको मारकर, क्षत्रियोंजाको छिङ-भिङ करके आज भी यहेन्द्र चतुर्तपर विराजमान हैं ॥ ४१—४३ ॥

श्रीमार्कण्डेशजी जीले—राजन् ! अब मैं भगवान् विष्णुके उस शुभ अवतारका वर्णन करूँगा, जिसके द्वारा देवताओंके लिये कष्टकलस्त्रैरूप रामण अपने गणोंसहित मारा गया । तुम [ध्यान देकर] सुनो ॥ १ ॥

द्वाहणो मानसः पुत्रः पुलस्त्योऽभूम्नहामुनिः ।
तस्य यै विश्रवा नाम पुत्रोऽभूतस्य राक्षसः ॥ २
तस्माज्ञातो महावीरो रावणो लोकरावणः ।
तपसा महता युक्तः स तु लोकानुषाद्रवत् ॥ ३
सेन्द्रा देवा जितास्तेन गन्धर्वाः किंनरास्तथा ।
यक्षाश्च दानवाश्चैव तेन राजन् विनिर्जितः ॥ ४
स्त्रियश्चैव सुरूपिण्यो हुतास्तेन दुरात्मना ।
देवादीनां नृपश्चेष्ट रत्नानि विविधानि च ॥ ५
रणे कुबेरं निर्जित्य रावणो बलदर्पितः ।
तत्पुरीं जगृहे लङ्घां विपानं चापि पुष्पकम् ॥ ६
तस्यां पुर्यां दशग्रीवो रक्षसामधिष्ठोऽभवत् ।
पुत्राश्च बहवस्तस्य बभूतुरमितीजसः ॥ ७
राक्षसाश्च तमाश्रित्य महाबलपराक्रमाः ।
अनेककोटयो राजन् लङ्घायां निवसन्ति ये ॥ ८
देवान् पितृन् मनुष्यांश्च विद्यापरगणानपि ।
यक्षाश्चैव ततः सर्वे धातयनि दिवानिशम् ॥ ९
संत्रस्तं तद्वयादेव जगदासीच्चराचरम् ।
दुःखाभिभूतमत्यर्थं सम्बभूव नराधिष्ठ ॥ १०
एतस्मिन्नेव काले तु देवाः सेन्द्रा भगवंयः ।
सिद्धा विद्याधराश्चैव गन्धर्वाः किंनरास्तथा ॥ ११
गुह्यका भुजगा यक्षा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ।
द्वाहाणमयतः कृत्वा शङ्खं च नराधिष्ठ ॥ १२
ते यथुर्हतविकान्ताः क्षीराश्चेस्तटमुत्तमम् ।
नप्राराघ्य हरिं देवास्तस्युः प्राद्वलपस्तदा ॥ १३
यहा च विष्णुमाराघ्य गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ।
प्राञ्छलिः प्रणतो भूत्वा वासुदेवपथास्तुवत् ॥ १४

प्रद्योगव

नमः क्षीराच्छ्रवासाय नागपर्यकुशायिने ।
नमः श्रीकरसंस्पृष्टिद्व्यपादाय विष्णवे ॥ १५
नमस्ते योगनिद्राय योगान्तर्भाविताय च ।
ताक्ष्यसिनाय देवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ १६

द्वाहाजीके मानस पुत्र जो महामुनि पुलस्त्यजी हैं, उनके 'विश्रवा' नामक पुत्र हुआ। विश्रवाका पुत्र राक्षस रावण हुआ। समस्त लोकोंको रक्षानेवाला महावीर रावण विश्रवासे ही उत्पन्न हुआ था। वह महान् तपसे युक्त होकर समस्त लोकोंपर धावा करने लगा। राजन्। उसने इन्द्रसहित समस्त देवताओं, गन्धर्वों और किंनरोंको जीत लिया तथा चलों और दानवोंको भी अपने बशीभूत कर लिया। नृपश्चेष्ट! उस दुरात्माने देवता आदिको मुन्दरी स्त्रियाँ और नाना प्रकारके रथ भी हर लिये। बलाभिमानी रावणने मुद्दमें कुबेरको जीतकर उनकी पुरी लङ्घा और पुष्पक विमानपर भी अधिकार जमा लिया ॥ २—६ ॥

उस सङ्क्रापुरीमें दसमुख रावण राक्षसोंका राजा हुआ। उसके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपारिमित बलसे सम्पन्न थे। राजन्। लङ्घामें जो कई करोड़ महाबली और पराक्रमी राक्षस निवास करते थे, वे सभी रावणका सहारा लेकर देवता, पितर, मनुष्य, विद्याधर और यक्षोंका दिन-रात संहार किया करते थे। नराधिष्ठ। समस्त चराचर जगत् उसके भयसे भीत और अत्यन्त हुँखो हो गया था ॥ ७—१० ॥

जोरेश! इसी समय जिनका पुरुषार्थ प्रतिहत हो गया था, वे इन्द्रसहित समस्त देवता, महर्षि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, किंनर, गुह्यक, सर्प, यक्ष तथा जो अन्य स्वर्गवासी थे, वे बहु और शङ्खार्जीको आगे करके क्षीरसागरके ढत्तम टटपर गये। वहाँ उस समय देवतालोग भगवान्की आसाधना करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये। फिर द्वाहाजीने गन्ध-पुष्प आदि मुन्दर उपचारोंद्वारा भगवान् वासुदेव विष्णुकी आराधना की और हाथ जोड़, प्रणाम करके वे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११—१४ ॥

द्वाहाजी योले—जो क्षीरसागरमें निवास करते हैं, सर्पकी शव्यापर मोते हैं, जिनके दिव्य चरण भगवती श्रीलक्ष्मीजीके कर-कमलोंद्वारा सहायते जाते हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। योग हां जिनको निद्रा है, योगके द्वारा अन्तःकरणमें जिनका ध्यान किया जाता है और जो शरुद्वाजीके क्षेत्र आसीन होते हैं, उन आप भगवान् गोविन्दको नमस्कार है।

नमः श्रीराघ्विकलोलस्पृष्टमात्राय शार्दृणे ।
 नमोऽरविन्दपादाय पश्चानाभाय विष्णवे ॥ १७
 भक्ताच्चित्सुपादाय नमो योगप्रियाय वै ।
 शुभाङ्गाय सुनेत्राय प्राप्तवाय नमो नमः ॥ १८
 मुकेशाय सुनेत्राय सुललाटाय चक्षिणे ।
 सुवक्राय सुकण्ठाय श्रीधराय नमो नमः ॥ १९
 सुवक्षसे सुनाभाय पश्चानाभाय वै नमः ।
 मुभुवे चारुदेहाय चारुदन्ताय शार्दृणे ॥ २०
 चारुजङ्गाय दिव्याय केशवाय नमो नमः ।
 सुग्राय सुशानाय सुविद्याय गदाभूते ॥ २१
 धर्मप्रियाय देवाय वामनाय नमो नमः ।
 असुरज्ञाय चोग्राय रक्षोज्ञाय नमो नमः ॥ २२
 देवानामार्तिनाशाय भीमकर्मकृते नमः ।
 नमस्ते लोकनाथाय रावणानकृते नमः ॥ २३

गार्वपूर्वक उक्ताच

इति स्तुतो हृषीकेशस्तुतोष परमेष्ठिना ।
 स्वरूपं दर्शयित्वा तु पितामहमुकाच ह ॥ २४
 किमर्थं तु सुरः सार्थगागतस्त्वं पितामह ।
 यत्कार्यं सूर्ये मे व्रह्मन् यदर्थं संस्तुतस्त्वया ॥ २५
 इत्युक्तो देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
 सर्वदेवगणीः सार्थं व्रह्मा प्राह जनार्दनम् ॥ २६

उक्ताच

नाशितं तु जगत्सर्वं रावणेन दुरात्पना ।
 सेन्द्राः पराजितास्तेन व्यहुशो रक्षसा विभो ॥ २७
 राक्षसैर्भक्षिता मर्त्या यज्ञाङ्गापि विदूषिता ।
 देवकन्या हृतास्तेन ब्रलाच्छतसहस्रशः ॥ २८
 त्वामृते पुण्डरीकाक्ष रावणस्य वर्धं प्रति ।
 न समर्था यतो देवास्त्वमतस्तद्वर्धं कुरु ॥ २९

क्षोत्सामरकी सहरे जिनके शरीरका स्पर्श करती हैं, जो 'जार्ह' नामक धनुष भारण करते हैं, जिनके चरण कमलके समान हैं तथा जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जिनके सुन्दर चरण भरतोद्धार पूजित हैं, जिनहें योग प्रिय है तथा जिनके अङ्ग और नेत्र सुन्दर हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको बालंघर नमस्कार है। जिनके चेहरा, नेत्र, लक्षण, मुख और कान बहुत ही सुन्दर हैं, उन चक्रपाणि भगवान् शीधरको प्रणाम है। जिनके वक्षःस्थल और नाभि मनोहर हैं, उन भगवान् पश्चानाभको नमस्कार है। जिनकी भींहें सुन्दर, शरीर मनोहर और दौत दग्धाल हैं, उन भगवान् शार्दृधन्वाको प्रणाम है। रुचिर विद्वतियोवाले दिव्यकृपधारी भगवान् केशवको नमस्कार है। जो सुन्दर नखोवाले, परमशाना और सदिद्वाभोके आकृत्य हैं, उन भगवान् गदाभरको नमस्कार है। धर्मप्रिय भगवान् यामनको बालंघर प्रणाम है। अमुर और राघवोंके हन्त उत्तर (मृसिंह)-राष्ट्रधारी भगवान्को नमस्कार है। देवताओंकी पौष्टि हरनेके लिये भवेत् कर्म करनेवाले तथा एवजाके संहारक आप भगवान् जगत्रायको प्रणाम है ॥ २५—२९ ॥

पार्कपूर्वककी कहते हैं—प्रह्लादीके हारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर भगवान् हृषीकेश प्रसन्न हो गये और अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाकर वे भगवान् प्रह्लादीसे बोले—'पितामह! तुम देवताओंके साथ किसलिये यहाँ आये हो? व्रह्मन्! जो कार्य आ पढ़ा हो और जिसके लिये तुमने मेरी स्तुति की है, वह बताओ।' समस्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले भगवान् विष्णुके हारा इस प्रकार दृष्टि किये जानेपर सम्पूर्ण देवगणोंके साथ विराजमान व्रह्माजीने उन उनार्दनसे कहा ॥ २५—२६ ॥

व्रह्माजी बोले—लिभो! दुरात्पा रावणने यमपात्र जगत्में भीषण संहार मचा रखा है। उस राक्षसने इन्द्रसहित देवताओंको कई बार चारस्त किया है। रावणके पार्थ्यती राहसोंने असंख्य मनुष्योंको लालिया और उनके बड़ोंको दूषित कर दिया है। स्वयं रावणने सैकड़ों हजारों देवकन्याओंका अपहरण किया है। कमलनयन! चौंक आपको छोड़कर दूसरे देवता रावणका वध करनेमें समर्थ नहीं हैं, अतः आप ही उमस्त वध करें ॥ २७—२९ ॥

इत्युक्तो ब्रह्मणा विष्णुद्वयाणमिदमद्वयोत्।
 शृणुच्चावहितो ब्रह्मन् यद्वदापि हितं वचः ॥ ३०
 सूर्यसंक्षेपद्वः श्रीमान् राजाऽऽसीद्वय वीर्यवान्।
 नास्त्रा दशरथज्ञातस्तस्य पुत्रो भवाम्यहम् ॥ ३१
 रावणस्य वधार्थाय चतुर्धीशेन सत्तम्।
 स्वांशैर्यान्वररूपेण सकला देवतागणाः ॥ ३२
 वतार्थीन्तां विश्वकर्तः स्यादेवं रावणाक्षयः।
 इत्युक्तो देवदेवेन ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३३
 देवाश्च ते प्रणम्याथ मेलपुष्ठं तदा यथुः।
 स्वांशैर्यान्वररूपेण अवतेरश्च भूतले ॥ ३४
 अथापुत्रो दशरथो मुनिभिर्वेदपाराहैः।
 इस्मिं तु कारवायाम सुत्रप्राप्तिकर्तीं नृपः ॥ ३५
 ततः सौवर्णीपात्रस्यं हविरादाय पायसम्।
 वद्धिः कुण्डात् समुत्तस्थी नूने देवेन नोदितः ॥ ३६
 आदाय मुनयो मन्त्राच्चकुः पिण्डद्वयं शुभम्।
 दत्ते कीरणाल्पकेच्छ्योद्दृं पिण्डे मन्त्रमन्तिते ॥ ३७
 ते पिण्डप्राप्तेन काले सुमित्राया भावाप्तेः।
 पिण्डाभ्यामल्पमत्यं तु सुभागिन्याः प्रयच्छतः ॥ ३८
 ततस्ताः प्राशयामास्य राजपत्न्यो यथाविधि।
 पिण्डान् देवकृतान् प्राशय प्रापुर्गर्भनिनिदितान् ॥ ३९
 एवं विष्णुद्वयरथाज्ञातस्तस्यविष्यु त्रिषु।
 स्वांशैर्लोकहितार्थेव चतुर्धी जगतीपते ॥ ४०
 रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतः शत्रुघ्न एव च।
 जातकर्मादिकं प्राप्य संस्कारं मुनिसंस्कृतम् ॥ ४१
 मन्त्रपिण्डवशाश्चोगं प्राप्य चेन्द्रवधार्घकाः।
 रामश्च लक्ष्मणश्चैव सह नित्यं विचरतुः ॥ ४२
 जन्मादिकृतसंस्कारी पितुः श्रीतिकरी नृप।
 ववृथाते महावीर्यो श्रुतिशब्दातिलक्षणी ॥ ४३
 भरतः कैक्यो राजन् भाग्रा सह गृहेऽवसत्।
 वेदशास्त्राणि वृथुदे शस्त्रशास्त्रं नृपोत्तम ॥ ४४

ब्रह्माजोके इस प्रकार कहनेपर भगवान् विष्णु उनसे यों बोले—‘ब्रह्मन्! मैं तुम लोगोंके हितके लिये जो बात कहता है, उसे ध्यान देकर सुनो। पृथ्वीपर सूर्यवंशमें उत्तर श्रीमान् दशरथ नामसे प्रसिद्ध जो पारकमी राजा है, मैं उन्होंका पुत्र होऊँगा। सत्रम्! रावणका वध करनेके लिये मैं अंशतः चार स्वरूपोंमें प्रकट होऊँगा। विष्णुष्टा ब्रह्माजो! आप सभी देवताओंको आदेश दें कि वे अपने-अपने अंशसे बानरकरणमें अवतीर्ण हों। इस प्रकार करनेरहे ही रावणका संहार होगा।’ देवदेव भगवान्के यों कहनेपर लोक-पितामह ब्रह्माजो तथा अन्य देवता उनको प्रणाम करके मैराशिखरपर जाले गए और पृथ्वीतलपर अपने-अपने अंशसे बानरकरणमें अवतीर्ण हुए ॥ ३०—३४॥

तदनन्तर पुत्रहीन राजा दशरथने लेटके पारगामी मुनियोंद्वारा पुत्रकी प्राप्ति करानेवाले ‘पुत्रेष्टि’ नामक यज्ञका अनुस्थान कराया। तब भगवान्की प्रेरणारो अग्रिदेव सुवर्णसामने रथों हुए होमको खोर हाथमें लिये कुण्डहसे प्रकट हुए। मुनियोंने वह खोर से ली और मन्त्र पढ़ते हुए उसके दो सुन्दर पिण्ड बनाये। उन्हें मन्त्रसे अभिमन्तित कर उन दोनों पिण्डोंको कोसल्या तथा कैकेयीके हाथमें दे दिया। महामते! पिण्ड-भोजनके समय उन दोनों रानियोंने दोनों पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा निकालकर शौभाग्यकी मुमिक्षाको दे दिया। फिर उन दोनों रानियोंने विभिन्नरूप उन थोड़पिण्डोंका भोजन किया। उन देवविर्जित पिण्डोंका भक्षण करनेके कारण उन सभी रानियोंने उत्तम रर्ख भाज किये ॥ ३५—३९॥

पृथ्वीनाथ! इस प्रकार भगवान् विष्णु लोकहितके लिये ही राजा दशरथसे उनकी दोनों रानियोंके गर्भसे अपने चार अंशोंद्वारा वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामक चार रूप धारण करके प्रकट हुए। मुनियोंद्वारा जातकर्मादि संस्कार ही जानेपर वे मन्त्रयुक्त पिण्डके अनुसार दो-दो एक साथ रहते हुए सामान्य बालकोंकी भौत विवरणे लगे। इनमें राम और लक्ष्मण सदा एक साथ रहते थे। नरवाल। जातकर्मादि संस्कारोंसे सम्प्रेर हो, वे दोनों महान् राजिशब्दी भाई पिताकी प्रसन्नता बढ़ाते हुए बढ़ने लगे। उनके शुभ लक्षण अक्षुतपूर्व एवं वर्णनातीत थे। अथवा वे बेद और व्याकरणादि शास्त्रोंमें पारंगत होनेके शुभलक्षणसे सुशोभित थे। राजन्! कैकेयीनन्दन भरत अपने अनुज शत्रुघ्नके साथ प्रायः घरपर ही रहते थे। नृपोत्तम! उन्होंने वेदशास्त्र और अस्त्रविद्या भी सोख ली थी ॥ ४०—४४॥

एतस्मिन्नेव काले तु विश्वामित्रो महातपाः।
यागेन यष्टुप्तारेभे विधिना मधुमूदनम्॥ ४५
स तु विज्ञेन यागोऽभूद्राक्षसंबृहुशः पुरा।
नेतृं स यागरक्षाद्यै सम्प्राप्तो रामलक्ष्मणी॥ ४६
विश्वामित्रो नृपश्चेष्ठ तत्पितृमन्दिरं शुभम्।
दशरथस्तु तं दृष्टा प्रत्युत्थाय महामतिः॥ ४७
अर्ज्यपाण्डादि विधिना विश्वामित्रमपूजयत्।
स पूजितो मुनिः प्राह राजानं राजसनिधी॥ ४८
शृणु राजन् दशरथ यदर्थमहमागतः।
तत्कार्यं नृपशार्दूल कथयामि तवाग्रतः॥ ४९
राक्षसैर्नाशितो यागो बहुशो मे दुरासदैः।
यज्ञस्य रक्षणार्थं मे देहि त्वं रामलक्ष्मणी॥ ५०
राजा दशरथः श्रुत्वा विश्वामित्रवचो नृप।
विषण्णवदनो भूत्वा विश्वामित्रमुवाच ह॥ ५१
बालाभ्यां प्रम पुत्राभ्यां किं ते कार्यं भविष्यति।
अहं त्वया सहागत्य शक्त्या रक्षामि ते मरणम्॥ ५२
राजस्तु वचनं श्रुत्वा राजानं मुनिरक्षवीत्।
रामोऽपि शक्त्वा नृनं सर्वात्राशयितुं नृप॥ ५३
रामेणीव हि ते शक्त्या न त्वया राक्षसा नृप।
अतो मे देहि रामं च न विन्तां कर्तुमर्हसि॥ ५४
इत्युक्तो मुनिना तेन विश्वामित्रेण धीमता।
तूष्णीं स्थित्वा क्षणं राजा मुनिवर्यमुवाच ह॥ ५५
यद्वीपि मुनिश्चेष्ठ प्रसन्नस्त्वं निवोध मे।
राजीवलोचनं राममहं दास्ये सहानुजम्॥ ५६
किं त्वस्य जननी अह्यन् अहृष्टेन मरिष्यति।
अतोऽहं चतुरङ्गेण बलेन सहितो मुने॥ ५७
आगत्य राक्षसान् हन्मीत्येवं मे मनसि स्थितप्।

इन्हों दिनों महातपस्ती विश्वामित्रजीने यज्ञविधिसे भगवान् भूमूदनका यज्ञन आरम्भ किया। परंतु पहले उस वज्रमें बहुत बार रक्षसोंद्वारा विघ्न ढाला गया था, नृपश्चेष्ठ! इसलिये इस बार विश्वामित्रजी यज्ञकी रक्षाके लिये राम तथा लक्ष्मणको ले जानेके निमित्त उनके पिताके सुन्दर महलमें आये। महाचुद्धिमान् दशरथजी उन्हें देखकर उठ खड़े हुए और अर्ज्य-पाण्डादि उपचारोंद्वारा उन्होंने विधिवत् उनकी शृणा की। इस प्रकार उनके द्वाय सम्पादित हो, मुनिने अन्य राजाओंके निकट विश्वामान राजा दशरथसे कहा—'राजसिंह महाराज दशरथ! मुनो— मैं जिस कार्यके लिये आया हूं, वह तुम्हारे सामने निवेदन करता हूं। मेरे यज्ञको दुर्धर्ष रक्षसोंने अनेक बार नह किया है; अतः उसकी रक्षाके लिये तुम राम और लक्ष्मणको मुझे दे दो'॥ ५४—५०॥

नरेश्वर! विश्वामित्रजीकी जात सुननेपर राजा दशरथ-के मुखपर विषाद छा गया। वे उनसे बोले—'भगवन्! मेरे से दोनों पुत्र अभी जालक हैं। इनसे आपका कौन-सा कार्य सिद्ध होगा? मैं स्वयं आपके साथ चलकर यज्ञस्तिं यज्ञकी रक्षा करूँगा।' राजाकी जात सुनकर मुनि उनसे बोले—'मरपाल! राम भी उन सब राक्षसोंका नाश कर सकते हैं, इसमें संशय नहीं है। सच तो यह है कि रामके द्वारा ही वे राक्षस मारे जा सकते हैं, तुम्हारे द्वाय नहीं; अतः राजन्! तुम्हें रामकी ही मुझे दे देना चाहिये और किसी प्रकारकी विनाश नहीं करनी चाहिये'॥ ५१—५४॥

चुद्धिमान् विश्वामित्रमुनिके द्वारा यां कहे जानेपर राजा क्षणभरके लिये चुप हो गये और फिर उन मुनोऽश्वरसे बोले—'मुनिश्चेष्ठ! मैं जो कह रहा हूं, उसे आप प्रसन्नतापूर्वक सुनें। मैं कमललोचन रामको लक्ष्मणके सहित आपको दे तो दैंगा, परंतु अद्यन! इनकी माला इन्हें देखे विना मर जायगी। इसलिये मुने! नेता ऐसा विचार है कि मैं स्वयं ही चतुरङ्गिणी सेनाके साथ चलकर सब राक्षसोंका वध करूँ'॥ ५५—५७॥

विश्वामित्रः पुनः प्राह राजानमितीजसम् ॥ ५८
 नाज्ञो रामो नृपश्रेष्ठ स सर्वज्ञः समः क्षमः ।
 शेषनारायणावेती तब पुत्री न संशयः ॥ ५९
 दुष्टानां निग्रहार्थाय शिष्टानां पालनाय च ।
 अवतीर्णी न संदेहो गृहे तब नराधिप ॥ ६०
 न पात्रा न त्वया राजन् शोकः कार्योऽत्र चाण्डपि ।
 निःक्षेपे च महाराज अर्पयिष्यामि ते सुती ॥ ६१
 इन्द्रुको दशरथस्तेन विश्वामित्रेण धीमता ।
 तच्छापभीतो मनसा नीवतामित्यभाषत ॥ ६२
 कच्छातिपत्रा विनिर्मुक्ते राममादाय सानुजम् ।
 ततः सिद्धाश्रमं राजन् सम्प्रतस्थे स कीर्तिकः ॥ ६३
 ते प्रतिष्ठतमथालोक्य राजा दशरथस्तदा ।
 अनुद्रन्याद्वीदेतद् यच्चो दशरथस्तदा ॥ ६४
 अपुत्रोऽहं पुरा द्वाष्टन् बहुभिः काम्यकर्तव्यिः ।
 मुनिप्रसादादधुना पुत्रवानस्मि सत्तमः ॥ ६५
 मनसा तद्विषयोगं तु न शक्षयामि विशेषतः ।
 त्वयेव जानासि पुने चीत्वा शीघ्रं प्रथम्भ भे ॥ ६६
 इत्येषमुक्तो राजानं विश्वामित्रोऽद्वीत्युनः ।
 सपासप्तश्च पुनर्नेत्र्ये रामं च लक्ष्यणम् ॥ ६७
 सत्पूर्वं तु दास्यामि न चिन्तां कर्तुमहम्भिः ।
 इन्द्रुकः प्रेषयामास रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥ ६८
 अनिच्छत्रपि राजासौ मुनिशापभयाद्वपः ।
 विश्वामित्रस्तु ती गृह्ण अयोध्याया यदी शानैः ॥ ६९
 सरव्यास्तीरयासाद्य गच्छत्रेव स कीर्तिकः ।
 तयोः प्रीत्या स राजेन्द्र ह्वे विष्टे प्रथम्भ ददी ॥ ७०
 खलामतिखलां चैव समन्वे च सम्पन्ने ।
 क्षुत्रियासापनयने पुनश्चैव महामतिः ॥ ७१
 अस्त्रग्राममशेषं तु शिक्षयित्वा तु ती तदा ।
 आश्रमाणि च दिव्यानि मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ७२
 दर्शयित्वा उपित्वा च पुण्यस्थानेषु सत्तमः ।
 गङ्गामुत्तीर्य शोणस्य तीरयासाद्य पञ्चिमम् ॥ ७३

विश्वामित्रजी यह सुनकर उन अमित-तेजस्वी राजासे
 पुनः बोले— 'नुच्छ्रेष्ठ ! शमषन्द अबोध नहीं हैं; ये सर्वज्ञ,
 समदृशी और परम समर्थ हैं । इसमें संशय नहीं कि तुम्हारे
 ये दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण साक्षात् नारायण एवं शेषनारायण
 हैं । नराधिप ! दुहोंको दण्ड देने और सत्युरुपोंकी रक्षा
 करनेके लिये ही ये दोनों आपके घरमें अवतोर्ण हुए हैं,
 इसमें संदेह नहीं है । राजन् । इनकी माता तथा आपको इस
 विषयमें धोड़ी-मी भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये । महाराज !
 ये मेरे पास धरोहरके लीलपर रहेंगे । यह पूर्ण हो जानेपर मैं
 इन दोनोंको आपके हाथमें दे दूँगा' ॥ ५८—६१ ॥

सुनित्मान् विश्वामित्रजीके यों कहनेपर दशरथजी
 मन हीं-मन उनके शापमें डरते हुए बोले— 'अच्छा,
 इन्हें ले जाइये ।' राजन् । पिता के द्वारा बड़ी कठिनाईसे
 लोड़े गये श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले विश्वामित्र
 मुनि तक अपने सिद्धाश्रमकी ओर प्रस्तुत हुए । उन्हें
 जाने देख उस समय राजा दशरथ कुछ दूर चीखे-पीछे
 गये और तब मुनिसे इस प्रकार बोले— 'सापुत्रेण !
 ज्ञान ! मैं वहां दीर्घकालतक पुत्रहीन रहा, मुनियोंकी
 कृपामें अनेक सुकाम यजकर्मीका अनुष्ठान कराके अब
 पुत्राश्वान् हो सका है । अतः मूरे ! मैं मनसे भी इन पुत्रोंका
 अधिक कालतक विद्योग नहीं भाव सकूँगा, यह बात
 आप ही जानते हैं ; अतः इन्हें ले जाकर फिर यथासम्भव
 शोष मेरे चास पहुँचा दोजियेगा' ॥ ६२—६६ ॥

उनके यों कहनेपर विश्वामित्रजीने पुनः राजासे कहा—
 'अपना यज्ञ सम्पन्न हो जानेपर मैं पुनः श्रीराम और लक्ष्मण-
 को नहीं ले आऊंगा तब अपने यज्ञको सम्प करते हुए
 इन्हें वापस कर दूँग, आप चिन्ता न करें' ॥ ६७ ॥

विश्वामित्रजीके इस प्रकार आशासन देनेपर राजाने
 उनके शापको आशकूलसे भयभीत हो, इच्छा न रहते हुए
 भी, श्रीराम और लक्ष्मणको उनके साथ भेज दिया ।
 विश्वामित्रजी उन दोनों भौद्योंको साथ ले भीर-भीरे
 अयोध्यामें बाहर चिकले ॥ ६८—६९ ॥

राजेन्द्र ! सरयूके तटपर पाँचकर महामति विश्वामित्रजीने
 चलते चलते हो श्रीराम और लक्ष्मणको प्रेमवसा पहले
 'कला' और 'अंतिमला' नामकी दो विश्वार्ण प्रदान की,
 जो शुधा और पिण्डासाको दूर करनेवाली हैं । मुनिने उन
 विद्याभौद्योंको मन्त्र और संग्रह (ठपसंहार) पूर्वक सिद्धाया ।
 किंतु उसी समय उन्हें सम्पूर्ण अस्त्र-समुदायकी विद्या
 देकर वे सापुत्रेष्ठ मुनि श्रीराम और लक्ष्मणको अनेक
 आत्मजनों मूनीश्वरोंके दिव्य आश्रम दिखाते और पवित्र
 तीर्थस्थानोंमें निवास करते हुए गङ्गा नदीको पारकर
 शोणधडके विश्वामित्र तटपर जा पहुँचे ॥ ७०—७३ ॥

मुनिधार्मिकसिद्धांशु पश्यन्ती रामलक्ष्मणी ।
 ऋषिभ्यक्षु वरान् प्राप्य तेन नीतौ नृपात्मजौ ॥ ७४
 ताटकात्या वनं घोरं मृत्योर्मुखमिवापरम् ।
 गते तत्र नृपश्चेष्ट विश्वामित्रो महातपाः ॥ ७५
 राममविलष्टकर्माणमिदं वचनमद्वीतैः ।
 राम राम महाबाहो ताटका नाम राक्षसी ॥ ७६
 रावणस्य नियोगेन वस्त्यस्थिन् महावने ।
 तया मनुष्या यहाँ मुनिपुत्रा मृगास्तथा ॥ ७७
 निहता भक्षिताक्षीव तस्मात्तां वध सत्तम् ।
 इत्येवमुत्तो मुनिना रामस्तं मुनिमद्वीतैः ॥ ७८
 कथं हि स्त्रीवधं कुर्यामहमद्य महामुने ।
 स्त्रीवधे तु महापापं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ७९
 इति रामवचः भ्रुत्वा विश्वामित्र उवाच तम् ।
 तस्यास्तु निधनाद्वाम जनाः सर्वे निराकुलाः ॥ ८०
 भवन्ति सततं तस्मात् तस्याः पुण्यप्रदो वधः ।
 इत्येवं वादिनि मुनी विश्वामित्रे निशाचरी ॥ ८१
 आगता सुमहाघोरा ताटका विवृतानना ।
 मुनिना प्रेरितो रामसां दृष्टा विवृताननाम् ॥ ८२
 उद्यतैकभृजयहिपायती
 श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम् ।
 तां विलोक्य बनितावधे धूणां
 पत्रिणा सह मुपोच राघवः ॥ ८३
 शरं संधाय वेगेन तेन तस्या उरःस्थलम् ।
 विपाटिं द्विधा राजन् सा पपात ममार च ॥ ८४
 धातयित्वा तु तामेवं तावानीय मुनिस्तु ती ।
 प्रापयामास तं तत्र नानाश्चिनिषेवितम् ॥ ८५
 नानाद्वृमलताकीर्ण नानापुष्योपशोभितम् ।
 नानानिर्झरतोयादृघं विन्यशीलान्तरस्थितम् ॥ ८६
 शाकमूलफलोपेतं दिव्यं सिद्धाश्रमं स्वकम् ।
 रक्षार्थी ताकुभी स्थाप्य शिक्षयित्वा विशेषतः ॥ ८७

मार्गमें मुनियों, शर्मात्माओं और सिद्धोंका दर्शन करते हुए तथा ऋषियोंसे वर प्राप्तकर, राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्रजीके द्वाया उस ताढ़कावनमें ले जाये गये, जो यमराजके दूसरे मुखके समान भयंकर था। नृपश्चेष्ट। वहाँ पहुँचकर महातपस्ती विश्वामित्रने अनायास ही महान् कर्म करनेवाले रामसे कहा—‘महाबाहो राम! इस महान् वनमें रावणकी आज्ञासे ‘ताढ़का’ नामकी एक राक्षसी रहती है। उसने बहुत से मनुष्यों, मुनिपुत्रों और मृगोंको मारकर अपना आहार बना लिया है; अतः सत्तम! तुम उसका वध करो’॥ ७४—७७ ॥

मुनिवर विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर रामने उनसे कहा—‘महामुने। आज मैं स्त्रीका वध कैसे करूँ? क्योंकि तुम्हान् लोग स्त्रीवधमें महान् पाप बतलाते हैं।’ श्रीरामकी यह बात सुनकर विश्वामित्रने उनसे कहा—‘राम! उस ताढ़काको मारनेसे सभी मनुष्य सदाके लिये निर्भय हो जायेंगे, इसलिये उसका वध करना तो पुण्यदायक है’॥ ७८—८० ॥

मुनिवर विश्वामित्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि वह महावीर राक्षसी ताढ़का मूँह फैलाये वहाँ आ पहुँची। तब मुनिकी प्रेरणासे रामने उसकी ओर देखा। वह मूँह व्यथे आ रही थी। उसकी छड़ी-मरीखी एक बौहू ऊपरकी ओर लटी थी। कटिप्रदेशमें मेखला (करधनी) को जगह लिपटी हुई उस निशाचरीको देखकर श्रीरामने स्त्रीवधके प्रति होनेवाली धूण और चापको एक साथ ही छोड़ दिया। राजन्। उन्होंने धनुषपर बाण रखकर उसे बढ़े बेगसे छोड़ा। उस बाणने ताढ़काकी छालीके दो टुकड़े कर दिये। किन तो वह धरणीपर गिरी और मर गयी। ८१—८४॥

इस प्रकार ताढ़काका वध करवाकर मुनि श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंको अपने उस दिव्य सिद्धाश्रमपर ले आये, जो बहुत से मुनियोंहारा सेवित था। वह आश्रम विन्यश पवतकी पश्चवतिनी उपत्यकामें विद्यमान था। वहाँ नाना प्रकारके वृक्ष और लतासमूह फैले हुए थे और भौति-भौतिके पुण्य उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह आश्रम अनेकानेक झरनोंके जलसे सुखोभित तथा शाक एवं मूल-फलादिसे सम्पन्न था। वहाँ उन दोनों राजकुमारोंको विशेषरूपसे शिक्षा देकर मुनिने उनको यजको रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया। लदनन्तर महान्

तत्क्षारव्यवान् यागं विश्वामित्रो महातपाः।
दीक्षां प्रविष्टे च मुनीं विश्वामित्रे महात्मनि॥ ८८

यज्ञे तु वितते तत्र कर्म कुर्वन्ति ऋत्विजः।
मारीचश्च सुवाहृश्च बहवश्वान्यराधसाः॥ ८९

आगता यागनाशाय रावणेन नियोजिताः।
तानागतान् स विज्ञाय रामः कमललोचनः॥ ९०

शरेण पातयामास सुवाहृं धरणीतते।
असूक्ष्मवाहं वर्षन्त मारीचं भलकेन तु॥ ९१

प्रताङ्गय नीतवान्विष्य यथा पर्ण तु वायुना।
शेषांस्तु हतवान् रामो लक्ष्मणाश्च निशाचरान्॥ ९२

रामेण रक्षितमखो विश्वामित्रो महायशः।
समाप्य यागं विधिवत् पूजयामास ऋत्विजान्॥ ९३

सदस्यानपि सम्पूर्ण्य यथाहै च छारिदम्।
रामं च लक्ष्मणं चैव पूजयामास भक्तिः॥ ९४

ततो देवगणस्तुष्टो यज्ञभागेन सत्तम्।
वर्ष पुष्पवर्षं तु रामदेवस्य मूर्धनि॥ ९५

निवार्य राक्षसभयं कारयित्वा तु तन्मुखम्।
श्रुत्वा नानाकथाः पुण्या रामो भ्रातुसमन्वितः॥ ९६

तेन नीतो विनीतात्मा अहल्या यज्ञे तिष्ठुति।
व्यभिचारान्महेन्द्रेण भर्त्रा शसा हि सा पुरा॥ ९७

पापाणभूता राजेन्द्र तस्य रामस्य दर्शनात्।
अहल्या मुक्तशाश्पा च जगाम गौतमं प्रति॥ ९८

विश्वामित्रस्ततस्तत्र चिन्तयामास चै क्षणम्।
कृतदारो मया नेयो रामः कमललोचनः॥ ९९

इति संचिन्त्य ती गृह्ण विश्वामित्रो महातपाः।
शिष्यः परिवृतोऽनेकर्जगाम मिथिलां प्रति॥ १००

तपस्वी विश्वामित्रने यज्ञ आरम्भ किया ॥ ८५—८७ ॥

महात्मा विश्वामित्र औं-ही यज्ञकी दीक्षामें प्रविष्ट हुए, उस यज्ञका कार्य चालू हो गया। उसमें ऋत्विज्ञान अपना-अपना कर्म करने लगे। तब यज्ञके द्वारा नियुक्त मारीच, सुवाहृ तथा अन्य बहुत-से राक्षसाण यज्ञ नष्ट करनेके लिये आई आये। उन सबको बहाँ आया जान कमलनयन श्रीरामने बाण मारकर 'सुवाहृ' नामक राक्षसको तो खण्डायी कर दिया। वह अपने लारीरसे रक्तकी चर्चा-सौ झलने लगा। इसके बाद 'भल' नामक बाणका प्रहार करके श्रीरामने मारीचको उसी तरह समुद्रके कटपर फेंक दिया, जैसे वायु पतेको ढड़ाकर दूर फेंक दे। तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंने मिलकर लैंग सभी राक्षसोंका वध कर छला ॥ ८८—९२ ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा यज्ञकी रक्षा होती रहनेसे महायशस्वी विश्वामित्रने उस यज्ञको विधिवत् पूर्ण करके प्रहीनवौंका दक्षिणादिसे पूजन किया। शक्राद्यग्न ! उस यज्ञके सदस्योंका भी यथोचित समादर करके विश्वामित्रजीने श्रीराम और लक्ष्मणको भी भक्तिपूर्वक पूजा एवं प्रहारसा की। सातुरायोंमें श्रेष्ठ महाराज ! तदनन्तर उस यज्ञमें मिले हुए भागोंसे सन्तुष्ट देवताओंने भगवान् रामके मस्तकपर पुण्योंकी चर्चा की ॥ ९३—९५ ॥

इस प्रकार भाई लक्ष्मणके साथ विनयशील श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंसे प्राप्त भयका निवारण करके, विश्वामित्रका यज्ञ पूर्ण कराकर, नाना प्रकारकी पावन कथाएं सुनवे हुए मुनिके द्वारा उस स्थानपर लाये गये, जहाँ शिला बनी हुई अहल्या थी। राजेन्द्र ! शूर्वकालमें इन्द्रके साथ व्यभिचार करनेसे अपने पति गौतमका शाप प्राप्तकर अहल्या पर्वत हो गयी थी। उस समय रामका दर्शन पाते ही वह लापसे मुक्त हो पुनः अपने पति गौतमके पास चली गयी ॥ ९६—९८ ॥

तदनन्तर विश्वामित्रजीने वहाँ क्षमधर विचार किया कि मुझे कमललोचन रामचन्द्रजीका विवाह करके इन्हें अयोध्या से चलना चाहिये। यह सोचकर अनेक शिष्योंसे घिरे हुए महातपस्वी विश्वामित्रजी श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले भिधिलाकी ओर चल दिये ॥ ९९—१०० ॥

नानादेशाद्यायाता जनकस्य निवेशनम्।
 राजपुत्रा महावीर्यः पूर्वं सीतापिकादिष्टाणः ॥ १०१
 तान् दृष्टा पूजयित्वा तु जनकस्तु यथाहृतः।
 यत्सीतायाः समुत्पद्यं धनुषहिश्वरं महत् ॥ १०२
 अर्चितं गच्छमालाभी रम्यशोभासमन्विते।
 रङ्गे महति विस्तीर्णे स्थापयामास तद्दनुः ॥ १०३
 उवाच च नृपान् सर्वास्तदोच्चैर्जनको नृपः।
 आकर्षणादिदं येन धनुर्धृष्टं नृपात्मजाः ॥ १०४
 तस्येवं धर्मतो भार्या सीता सर्वाङ्गशोभना।
 इत्येवं श्राविते तेन जनकेन महात्मना ॥ १०५
 कमादादाय ते ततु सन्मीकर्तुमध्याभवन्।
 धनुषा तादिताः सर्वे क्रमात्मेन महीयते ॥ १०६
 विधूय पतिता राजन् विलज्जास्तप्त पार्थिवा।
 तेषु भग्नेषु जनकस्तद्दनुस्यम्बन्धके नृप ॥ १०७
 संस्थाप्य स्थितत्वान् वीरो रामागमनकाङ्क्षया।
 विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो मिथिलापिपतेर्गृहम् ॥ १०८
 जनकोऽपि च तं दृष्टा विश्वामित्रं गृहागतम्।
 रामलक्ष्मणसंयुक्तं शिखीष्टापिगतं तदा ॥ १०९
 तं पूजयित्वा विपिवत्प्राङ्मं विप्रानुयायिनम्।
 रामं रघुपतिं चापि लाकण्यादिगुणीर्दृतम् ॥ ११०
 श्रीलालारण्णोपेतं लक्ष्मणं च महापतिम्।
 पूजयित्वा यथान्यायं जनकः प्रीतमानसः ॥ १११
 हेषपीठे सुखासीनं शिखीः पूर्वापरेवंतम्।
 विश्वामित्रमुदाचार्य किं कर्तव्यं प्रयेति सः ॥ ११२

पाठ्यांदेश दक्ष

इति श्रुत्वा ववस्तस्य मुनिः प्राह महीपतिम्।
 एष रामो महाराज विष्णुः साक्षात्महीपतिः ॥ ११३
 रक्षाधीं विष्टपानां तु जातो दशारथात्मजः।
 अस्मै सीतां प्रयच्छ त्वं देवकन्यापिव स्थिताप्त् ॥ ११४
 अस्या विवाहे राजेन्द्र धनुर्धृष्टपुदीरितम्।
 तदानय भवथनुर्दर्शयस्य जनापिप ॥ ११५

इनके जानेसे चूर्ण ही वहाँ सीतासे विवाह करनेको इच्छावाले अनेक महान् पराक्रमो राजकुमार राजा देशोंसे जनकके यहाँ पधारे थे। उन सप्तको आया देख राजा जनकने उनका यथोचित सत्कार किया तथा जो सीताके स्वदर्शनके लिये ही प्रकट हुआ था, उस महान् माहेश्वर धनुषका चन्दन और पुष्प आदिसे पूजन करके उसे रमणीय झोभासे सम्मान मुखिस्तृत रङ्गमङ्गपर लाकर रखकाया ॥ १०४—१०५॥

तब राजा जनकने वहाँ पधारे हुए उन समस्त यज्ञाभोक्त्र प्रति उच्च ल्पासे कहा—‘राजकुमारो! जिसके रुचिनेसे यह धनुष दृष्ट जायगा, यह सर्वाङ्गामुद्दो सीता उसीकी धर्मपती हो सकती है।’ यहाँत्वा जनकके द्वाण ऐसी बात मुनायी जानेपर वे नरेशगत ऋग्महः उस धनुषको सेलेक्ट पक्षनेवेत प्रयत्न करते रहे; परंतु यादी—यादीसे उस धनुषद्वारा ही झटके याकार कीपते हुए वे दूर गिर जाते थे। राजन्! इससे उन सभी भूषणोंको वहाँ जड़ी लगा हुई। नरेश! उन सबके विकल ही जानेपर वोर राजा जनक उस शिव-धनुषको यथास्थान रखायाकर श्रीरामके आगमनकी प्रतीक्षामें वहाँ ही ढहरे रहे। इसनेमें विश्वामित्रजी मिथिलानरेशांके यज्ञभवनमें आ पहुँचे ॥ १०५—१०६॥

जनकने श्रीराम, लक्ष्मण तथा शिखीसे युक्त विश्वामित्रजीको अपने भगवन्में आया देख उस समय उनकी विपिवत् पूजा की। फिर लालापाला अनुसरण करनेवाले तथा लाकण्य आदि गुणोंसे लक्षित रम्यवंशनाथ चुदिमन् श्रीराम एवं श्रील-सदाचारादि गुणोंसे युक्त यहाँस्ति सक्षमपाला भी यथादीप्य पूजन करके जनकजो मन हो मन बहुत प्रसन्न हुए। तत्पत्तात् सोनेके सिंहासनपर मुखपूर्वक बैठकर छोटे-पढ़े शिखीसे पिरे हुए मुनिवर विश्वामित्रसे ते बोले—‘भगवन्! अथ मुझे क्या करना चाहिये’ ॥ १०६—११२॥

याकेऽद्देशजी कहते हैं—राजा जनककी यह चातुर्थी बुनिने उनसे कहा—‘महाराज! ये राजा राम साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। (तीनों) लोकोंकी रक्षाके लिये वे दशरथके पुत्रलक्ष्मणसे प्रकट हुए हैं; अतः देवकन्याके समान मुरोधित होनेवाली सीताका यथा तुम इन्होंके सहाय कर दो। परंतु गजेन्द्र। नरापिप! तुमने सीताके विवाहमें धनुष लंडनेकी शर्ते रखी है; अतः अथ उस शिवधनुषको लक्ष्मण यहाँ उसको अर्पना करो’ ॥ ११३—११५॥

तथेत्युक्त्वा च राजा हि भवत्त्वापं तदद्भुतम् ।
 अनेक भूभुजां भङ्ग स्थापयामास पूर्ववत् ॥ ११६
 ततो दशरथसुतो विश्वामित्रेण चोदितः ।
 तेषां मध्यात्समुत्थाय रामः कमललोचनः ॥ ११७
 प्रणम्य विप्रान् देवांशु धनुगदाय तत्तदा ।
 सञ्च कृत्वा महायाहुन्यधीषमकरोत्तदा ॥ ११८
 आकृष्यमाणं तु बलात्तेन भग्नं महद्धनुः ।
 सीता च मालामादाय शुभां गमस्य पूर्धनि ॥ ११९
 क्षिप्त्वा संबरयामास सर्वक्षत्रियसंनिधि ।
 ततस्ते क्षत्रियाः कुद्धा राममासाद्य सर्वतः ॥ १२०
 मुमुक्षुः शरजालानि गर्जयन्तो महाबलाः ।
 ताप्तिरीक्ष्य ततो रामो धनुरादाय वेगवान् ॥ १२१
 ज्याधोषतलघोषेण कम्पयामास तात्रपान् ।
 चिच्छेद शरजालानि तेषां स्वास्त्रै रथांस्ततः ॥ १२२
 धनूर्धि च पताकाशु रामक्षित्वेद सीतलया ।
 संनहा स्वयर्लं सर्वं मिथिलाधिपतिस्ततः ॥ १२३
 जापातरं रणे रक्षन् पाणिप्राहो वभूव ह ।
 लक्ष्मणशु महाबीरो विद्रोह्य युधिता तात्रपान् ॥ १२४
 हस्यश्वाद्धुग्रुहे तेषां स्वन्दनानि वहूनि च ।
 वाहनानि परित्यन्य पलायनपरात्रपान् ॥ १२५
 ताप्तिहन्तुं च धावत्स पृष्ठतो लक्ष्मणस्तदा ।
 मिथिलाधिपतिस्ते च वारयामास कौशिकः ॥ १२६
 जितसेनं महाबीरे रामं भ्रात्रा समन्वितम् ।
 आदाय प्रविवेशाथ जनकः स्वगृहं शुभम् ॥ १२७
 दूतं च प्रेषयामास तदा दशरथाय सः ।
 श्रुत्वा दूतमुखात् सर्वं विदितार्थः स पार्थिवः ॥ १२८
 सभार्दः ससुतः श्रीमान् हस्यश्वरथवाहनः ।
 मिथिलामाजगामाशु स्ववलेन समन्वितः ॥ १२९
 जनकोऽप्यस्य सत्कारं कृत्वा स्वां च सुतां ततः ।
 विधिवल्कृतशुल्कां तां ददी रामाय पार्थिव ॥ १३०
 अपराश्च सुतास्तिर्स्त्रो रूपवत्यः स्वलङ्कृताः ।
 विभ्यसु लक्ष्मणादिभ्यः स्वकन्या विधिवद्दी ॥ १३१

तथ 'बहुत अच्छा' कहकर राजाने अनेक भूपालोंका मन भङ्ग करनेवाले उस अद्भुत शिवधनुषको मूर्खयत् वहाँ सड़काया । तत्पश्चात् कमललोचन दशरथतन्दन राम विश्वामित्रजीके आज्ञा देनेपर राजाओंके बोचसे ढठे और ज्ञात्युणों तथा देवताओंको प्रणाम करके उन्होंने वह धनुष उठा लिया । किंतु उन महाबाहुने धनुषको ढोरी चढ़ाकर उसको ढंकार करे । रामके द्वारा बलपूर्वक खंडिये जानेसे वह महान् धनुष सहसा टूट गया । तथ सोताजीं सुन्दर माला लेकर आर्थी और उन सम्पूर्ण खंडियोंकि निकट भागावान् रामके गलेमें वह माला ढासकर उन्होंने उनका विधिपूर्वक पतिरूपसे बरण किया । इससे रहने आगे हुए सभी महाबलों क्षत्रिय कुपित हो गये और श्रीरामचन्द्रजीपर सब ओरसे आक्रमण एवं गर्जना करते हुए उनपर बाक चारसने लगे । उन्हें यों करते देख श्रीरामने भी वेणपूर्वक हाथमें धनुष ले प्रत्यक्षाकी लंकासे उन सभी नेतृत्वोंको क्रमिष्ठत कर दिया और अपने अस्त्रोंसे उन सबको वाप तब्बा रथ छाट डाले । इतना ही नहीं, श्रीरामने लीलापूर्वक से उनके धनुष तथा यत्कारीं भी छाट डालीं । तदनन्तर मिथिलानोरुज भी अपनी सारी सेना तैयार करके उस संघाममें जापाता श्रीरामकी रक्षा बताते हुए उनके पृष्ठपोषक हो गये । इधर, महाबीर रुक्षनन्दन भी सुन्दरमें उन राजाओंको मार भग्नया तथा उनके हाथी, घोड़ और बहुत से रथ अपने अपिकारमें कर लिये । अपने वाहन छोड़कर भागे जाते हुए उन राजाओंको मार उत्तरनेके लिये लक्ष्मण उनके पीछे दौड़े । तब उन्हें मिथिलानोरुज अनक और विश्वामित्रने मना कर दिया ॥ ११६—१२६ ॥

राजाओंकी सेनापर विजय पाये हुए महाबीर श्रीरामको लक्ष्मणसहित साथ से राजा जनकने अपने सुन्दर भवनमें प्रवेश किया । उसी समय उन्होंने राजा दशरथके पास एक दृढ़ भेड़ा । दृढ़के मुखसे सारी आत्म सुनकर राजाको यह चृताना ज्ञात हुआ । तथ श्रीमान् राजा दशरथ अपनी राजिणी और पुत्रोंको साथ ले, हाथी, घोड़ और रथ आदि वाहनोंमें सम्पन्न हो, सेनाके साथ तुरन्त ही मिथिलामें पथारे । राजन् । जनकने भी राजा दशरथका भलीपौत्रि सन्क्षार किया । किंतु विधिपूर्वक जिसके पाणिग्रहणकी शर्त पूरी की जा चुकी थी, उस अपनी कन्या सीताको रामके हाथमें दे दिया । तत्पश्चात् अपनी अन्य तीन कन्याओंको भी, जो परमसुन्दरी और आभूषणोंसे अलृदृढ़त नहीं, लक्ष्मण आदि तीन भाइयोंके साथ विधिपूर्वक ल्याह दिया ॥ १२७—१३१ ॥

एवं कृतविवाहोऽसौ रामः कपमललोचनः।
 भ्रातुभिर्भातिभिः साधी पित्रा ब्रह्मवता सह ॥ १३२
 दिनानि कतिचित्तत्र स्थितो विविधभोजनैः।
 ततोऽयोध्यापुरी गन्तुमुत्सुकं समुत्त नृपम्।
 दृष्टा दशरथं राजा सीतायाः प्रददौ वसु ॥ १३३
 रत्नानि दिव्यानि बहूनि दत्त्वा
 रामाय वस्त्राण्यतिशोभनानि।
 हस्त्यधदासानपि कर्मयोग्यान्
 दासीजनांश्च प्रवरा: स्त्रियश्च ॥ १३४
 सीतां सुशीलां बहुरक्षभृषितां
 रथं समारोद्य सुतां सुखपाप्।
 वेदादिधोपैर्वर्द्धमङ्गलैश्च
 सम्प्रेषयापास स पर्यायो बली ॥ १३५
 प्रेषयित्वा सुतां दिव्यां नत्वा दशरथं नृपम्।
 विश्वाभिर्भ्रातुम् नमस्कृत्य जनकः संनिवृत्तवान् ॥ १३६
 तस्य पल्यो महाभागा: शिक्षयित्वा सुतां तदा।
 भर्तुभिर्भ्रातु शुभे श्वश्रूणां शुशुरस्य च ॥ १३७
 श्वश्रूणाम्पर्ययित्वा तां निवृत्ता विविशुः पुरम्।
 ततस्तु रामं गच्छन्तपयोध्या प्रबलान्वितम् ॥ १३८
 श्रुत्वा परशुरामो वै पन्थानं संकरोद्य ह।
 तं दृष्टा राजपुरुषाः सर्वे ते दीनमानसाः ॥ १३९
 आसीद्वशरवश्चापि दुःखशोकपरिपतुः।
 सभार्यः सपरीवारो भार्गवस्य भयान्त्रप ॥ १४०
 ततोऽवृद्धीजनान् सर्वान् राजानं च सुदुःखितम्।
 वसिष्ठश्चोर्जिततपा द्रह्मचारी महामुनिः ॥ १४१
 अस्मित उत्तम
 युध्याभिरत्र रामार्थं न कार्यं दुःखमण्यपि ॥ १४२
 पित्रा वा मातुभिर्भापि अन्यैभृत्यजनैतपि।
 अयं हि नुपते रामः साक्षाद्विष्णुस्तु ते गृहे ॥ १४३
 जगतः पालनार्थाय जन्मप्राप्तो न संशयः।
 यस्य संकीर्त्य नामापि भवतीतिः प्रणश्यति ॥ १४४
 द्रह्म पूर्तं स्वयं यत्र भवादेसत्र का कथा।
 यत्र संकीर्त्यते रामकथामात्रमपि प्रभो ॥ १४५
 नोपसर्गभयं तत्र नाकालमरणं नृणाम्।

इस प्रकार विवाह कर लेनेके पक्षात् कमललोचन श्रीराम अपने भ्राताओं, मातापिं और यज्ञलक्ष्मा, पिता के साथ कुल दिनोंतक जनन प्रकारके भोजनादिसे सत्कृत हो मिथिलापुरमें रहे। किंतु महाराजा दशरथको अपने पुत्रोंके साथ अयोध्या जानेके लिये उत्कण्ठित देख राजा जनकने सोताके लिये बहुत-सा धन और दिव्य रत्न देकर श्रीरामके लिये अत्यन्त सुन्दर वस्त्र, क्रियाकुशल हाथों, घोड़े और दास दिये एवं दासोंके रूपमें बहुत-ली सुन्दरी स्त्रियाँ भी अर्पित की। उन चलवान् भूपालने बहुत-से रत्नमय आभृष्टांगोदारा विभूषित सुन्दरीं साथीं पुरी सीताको रथपर चढ़कर चेदधर्मान तथा अन्य माहूलिक शब्दोंके साथ विदा किया। अपनी दिव्य कन्या सीताको विदा कर राजा जनक दशरथकी तथा विश्वामित्र [एवं वसिष्ठ] मुनिको प्रणाम करके हांट आये। तब जनकको अति सीधार्य-ज्ञानिनी गतिशी भी अपनी कन्याभृतोंको यह शिक्षा देकर कि 'तुम्हें! तुम पतिकी भक्ति तथा सास-समुराको सेवा करना' उन्हें उनकी सामृत्योंको सौंप, नगरमें हांट आयी ॥ १३२—१४१ ॥

कहते हैं, तदनन्तर यह मुनकर कि 'राम अपनी प्रथल सेनाके साथ अयोध्यापुरीको हांट रहे हैं', परशुरामने उनका मार्ग रीक लिया। उन्हें हैत्यकर सभी राजपुराणोंका इष्टय कातर हो गया। चरेकर! परशुरामके भरणसे राजा दशरथ भी अपनी रक्षी तथा परिवारके साथ दुःखी और छोकमधु हो गये। तब उत्कृष्ट तपस्यी चहूचारी महामुनि वसिष्ठजी दुःखी राजा दशरथ तथा अन्य सब लोगोंसे चोले ॥ १३८—१४२ ॥

वसिष्ठजीने कहा—तुम सोंगोंको यहाँ श्रीरामके लिये तर्तुक भी चिनता नहीं करनी चाहिये। पिता, माता, भई अधिका अन्य भूत्यज्ञ थोड़ा-सा भी खोट न करें। नहरात ! ये श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। समस्त जगत्की रक्षाके लिये ही हनोंने तुम्हारे घरमें अवतार लिया है, इसमें संदेह नहीं है। जिनके नाममात्रका कीर्तन करनेसे संसाररूपो भय निवृत्त हो जाता है, ये परमेश्वर ही जहाँ साक्षात् मूर्तिमान होकर विराजमान हैं, वही भय आदिकी चर्चा भी कैसे की जा सकती है। प्रभो ! जहाँ श्रीरामचन्द्रजीकी कथामात्राय भी कीर्तन होता है, वहाँ मनुष्योंके लिये संक्रामक श्रीमारी और अकलमृतदुका भय नहीं होता ॥ १४२—१४५ ॥

इत्युक्ते भार्गवो रामो राममाहाग्रतः स्थितम् ॥ १४६
 त्वज त्वं रामसंज्ञां तु मद्या च लंगरं कुरु ।
 इत्युक्ते राघवः प्राह भार्गवं तं पथि स्थितम् ॥ १४७
 रामसंज्ञं कुतस्त्वयेत्वया योत्स्ये स्थिते भव ।
 इत्युक्त्वा तं पृथक् स्थित्वा रामो राजीवलोचनः ॥ १४८
 न्याधोषमकरोद्दीरो यीरस्यैवाग्रतस्तदा ।
 ततः परशुरामस्य देहात्रिष्कम्प्य वैष्णवम् ॥ १४९
 पश्यतां सर्वभूतानां तेजो राममुखोऽविशत् ।
 दृष्टा तं भार्गवो रामः प्रसव्रवदनोऽश्रवीत् ॥ १५०
 राम राम महावाहो रामस्त्वं नात्र संशयः ।
 विष्णुर्विष्व भवाङ्गातो ज्ञातोऽस्यद्य मद्या विभो ॥ १५१
 गच्छ वीर यथाकारं देवकारं च वै कुरु ।
 दुष्टानां निधनं कृत्वा शिष्टांश्च परिपालय ॥ १५२
 याहि त्वं स्वेच्छया राम अहं गच्छे तपोवनम् ।
 इत्युक्त्वा पूजितस्त्वं मुनिभावेन भार्गवः ॥ १५३
 महेन्द्राद्रिं जगामाथ तपसे धृतमानसः ।
 ततस्तु जातहर्षास्ते जना दशरथश्च ऽ ॥ १५४
 पुरीयथोध्यां सप्तग्राम्य रामेण सह पार्थिवः ।
 दिव्यशोभां पुरीं कृत्वा सर्वतो भद्रगालिनीम् ॥ १५५
 प्रत्युत्थाय ततः पौरा: शङ्कुनूर्पदिभिः स्वनैः ।
 विशनं रापमागत्य कृतदारे रणोऽवितम् ॥ १५६
 तं चीक्ष्य हर्षिताः सनो विविशुसेन वै पुरीम् ।
 तौ दृष्टा मधुनिः प्राप्ती रामं लक्ष्मणमन्तिके ॥ १५७
 दशरथाय तत्पित्रे मातृभ्यश्च विशेषतः ।
 तौ समर्थं मुनिश्चेष्टसेन राजा च पूजितः ।
 विश्वामित्रश्च सहसा प्रतिगन्तु मनो दधे ॥ १५८

वसिष्ठजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि भृगुवंशी परशुरामजीने सामने खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—“राम! तुम अपना यह ‘राम’ नाम रखा दो, अध्वा मेरे साथ युद्ध करो!” उनके दों कहनेपर रघुकुलगन्दन श्रीरामने स्वार्गमें खड़े हुए उन परशुरामजीसे कहा—“मैं ‘राम’ नाम कैसे छोड़ सकता हूँ? तुम्हारे साथ युद्ध ही करेंगा, संभल जाओ!” उनसे इस प्रकार कहकर कमलतोचन श्रीराम अलग खड़े हो गये और उन बांसवरने उस समय वीर परशुरामके सामने ही भृगुवंशी प्रत्यक्षकी टंकार की। तब परशुरामजीके शरीरसे वैष्णव तेज निकलकर सब प्राणियोंके देखते-देखते श्रीरामके मुखमें समा गया। उस समय भृगुवंशी परशुरामने श्रीरामकी ओर देख प्रसन्नमुद्ध होकर कहा—“महावाहु श्रीराम! आप ही ‘राम’ हैं, अप इस विषयमें मुझे संदेह नहीं है। प्रभो! आज मैंने अपनको पहचाना; आप सक्षत् विष्णु ही इस समयमें अवतारोंहुए हैं। ओर! अब आप अपने इच्छानुसार जाइये, देवताओंका कार्य सिद्ध कीजिये और दुष्टोंका चाश करके सामु पुरुषोंका पालन कीजिये। श्रीराम! अब आप स्वेच्छानुसार चले जाइये; मैं भी तपोवनको जाता हूँ” ॥ १५६—१५२ ॥

यों कहकर परशुरामजी उन दशरथ आदिके हारा मुनिभावसे पूजित हुए और तपस्ताके लिये घनमें निष्पत्य करके महेन्द्राचलको छले गये। तब समस्त वरातियों तथा महावाज दशरथको महान् हर्ष प्राप्त हुआ और वे (वहाँसे चलकर) श्रीरामचन्द्रजीके साथ अयोध्यापुरीके निकट पहुँचे। उधर सम्मूलं शुरुआती महालग्नीयों जयेत्या नगरीको सब ओर दिव्य सजावटसे सुसज्जित करके राष्ट्र और दुन्दुपि आदि गाँव-बाजेके साथ उनकी अवधाननोंके लिये निकले। नगरके बाहर आकर वे रथमें अजेय श्रीरामजीको पलीसहित नगरमें प्रवेश करते हुए देखकर आनन्दमग्न हो गये और उन्होंके साथ अयोध्यामें प्रविष्ट हुए ॥ १५३—१५६ ॥

तत्पात्र मुनिवर विश्वामित्रने श्रीराम और लक्ष्मण—दोनों भाइयोंको अपने निकट आया हुआ देखकर उन्हें उनके पिता दशरथ तथा विशेषरूपसे उनकी माता-ओंको समर्पित कर दिया। तब राजा दशरथद्वारा पूजित होकर मुनिश्चेष्ट विश्वामित्र सहसा लौट जानेके लिये डृगत हुए।

सपर्यं रामं स मुनिः सहानुजं
सभार्थमगे पितुरेकवाक्यभम्।
पुनः पुनः श्राव्य हसन्महामति-
र्जगाम सिद्धाश्रमपेवमात्मनः ॥१५९॥

प्रति श्रीरामसिंहसुराणं एवद्वयं तत्प्राप्तात्मानोऽध्यापः ॥ १५९ ८
इस प्रकार श्रीरामसिंहसुराणं 'एवद्वयं' तत्प्राप्तात्मानोऽध्यापः ॥ १५९ ९

प्रति श्रीरामसिंहसुराणं एवद्वयं तत्प्राप्तात्मानोऽध्यापः ॥ १५९ ८
इस प्रकार श्रीरामसिंहसुराणं 'एवद्वयं' तत्प्राप्तात्मानोऽध्यापः ॥ १५९ ९

अड़तालीसवाँ अध्याय

श्रीराम-यनवास; राजा दशरथका निधन तथा उनमें राम-भरतकी भेट

मार्कण्डेय उल्लङ्घन

कृतदारो धर्मातेजा रामः कमलतोचनः।
पित्रे सुमहतीं प्रीतिं जनानामुपपादयन् ॥ १
अयोध्यायां स्थितो रामः सर्वभोगसमन्वितः।
प्रीत्या नन्दत्ययोध्यायां रामे रथुपती नुप ॥ २
भ्राता शशुद्धसहितो भरतो मातुलं यथी।
ततो दशरथो राजा प्रसर्मीष्य सुशोभनम् ॥ ३
युवानं बलिनं योग्यं भूपसिद्धै सुतं कविष्।
अभिधित्य राज्यभारं रामे संस्थाप्य वैष्णवम् ॥ ४
पदं प्रामुं महावं करिष्यामीत्यविनयत्।
संचिन्त्य तत्परो राजा सर्वदिक्षु समादिशत् ॥ ५
प्राज्ञान् भृत्यान् महीपालामन्त्रिणश्च त्वरान्वितः।
रापाभिषेकद्रव्याणि प्राणिप्रोक्तानि यानि चै ॥ ६
तानि भृत्याः समाहृत्य शीघ्रमागन्तुमहंथ।
दूतामात्याः सपादेशात्मवर्दिक्षु नराधिपान् ॥ ७
आहृय तान् समाहृत्य शीघ्रमागन्तुमहंथ।
अयोध्यापुरमत्यर्थं सर्वशोभासमन्वितम् ॥ ८
जनाः कुरुत सर्वत्र नृत्यगीतादिननिदितम्।
पुरवासिजनानन्दं देशवासिमनःप्रियम् ॥ ९

इस प्रकार महामति नुनि विभासित्रजीने छोटे भाई सक्षमण उथा भाषां सौताके साथ श्रीरामजीको, जो अपने पिताको एकान्त प्रिय थे, समर्पित कर दिया और उनके समस्य बारम्बार उनका गुणगान करके हँसते हुए थे अपने श्रेष्ठ सिद्धाश्रमको छले गये ॥ १५७—१५९ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विवाह करनेके पश्चात् महातेजस्वी कमलतोचन श्रीराम अयोध्यावासियोंका आनन्द बढ़ते हुए सभ प्रकारके भीगोंसे सम्प्रत हो, पिताके संतोषके लिये अयोध्यामें ही रहने लगे। जोक्षर! जब रामकुलनालक श्रीराम प्रसरतापूर्वक अयोध्यामें सानन्द विवाह करने लगे, तब उनके भाई भरत शशुद्धको साथ लेकर अपने मामाके यही चले गये। तदनन्तर राजा दशरथने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको अलीपुर सुन्दर, बलिष्ठ, नवयुवक, विदान् और राजा बनाये जानेके बोग्य समझकर सोचा कि 'अब श्रीरामको राजपटपर अधिषिक्त करके राज्यका भार इहैं मैरी ही और सबंध भगवान् विष्णुके भासको प्राप्त करनेके लिये माहान् यह कहौ॥ १—४', ॥

यह सौचकर राजा इस कार्यमें तप्त हो गये और समस्त दिलाओंमें रहनेवाले चुदिमान् भृत्यों, अधीनस्थ राजाओं तथा भन्तियोंको तुम्ह आज्ञा दी—'भृत्यगण! श्रीरामवन्दनजीके शम्भाभिषेकके लिये जो-जो सामान मुनियोंने छनाये हैं, वे रात्र एकत्र करके शोष्ण हो आओ। दूतों और भन्तियों! तुम लोग भी मेरी आज्ञामे सब दिलाओंके राजाओंको बुलाकर, उन्हें साथ ले, शोष्ण यहाँ आ जाओ। पुरावासी जनो! तुम इस अयोध्यानगरीको उत्तम रोनिसे भजाकर सर्वेषां होभा-सम्प्रत्र उन्होंने तथा सर्वत्र नृत्य-गीत आदि उत्सवका ऐसा प्रवन्ध करो, जिसमें यह बगर समस्त पुरवासियोंको आनन्द देनेवाला हो जाय और सम्पूर्ण देशके निवासियोंको नजोहर प्रतीत होने लगे।

रामाभिषेकं विषुलं शो भविष्यति जानवः।
श्रुत्येत्यं मन्त्रिणः प्राहुस्तं नृपं प्रणिपत्य च ॥ १०

शोभनं ते मतं राजन् यदिदं परिभाषितम्।
रामाभिषेकमस्माकं सर्वेषां च प्रियंकरम् ॥ ११

इत्युक्तो दशरथस्तैस्तान् सर्वान् पुनरद्वीतीत्।
आनीयन्तां द्रुतं सर्वे सम्भाग मम शासनात् ॥ १२

सर्वतः सारभूता च पुरी चेयं सपन्ततः।
अद्य शोभान्विता कार्या कर्तव्यं यागमण्डलम् ॥ १३

इत्येवमुक्ता राजा ते मन्त्रिणः शीघ्रकारिणः।
तर्थैव चकुसो सर्वे पुनः पुनरुदीरिताः ॥ १४

प्राप्तहर्षः स राजा च शुभं दिनमुदीपयन्।
कौशल्या लक्ष्मणश्चैव सुमित्रा नागरो जनः ॥ १५

रामाभिषेकमाकरण्यं पुदं प्राप्यातिहर्षितः।
शशूश्चरयोः सम्यक् शुभपूषपरा तु स्ता ॥ १६

मुदान्विता सिता सीता भर्तुराकरण्यं शोभनम्।
शोभाविन्यभिषेके तु रामस्य विदितात्मनः ॥ १७

दासी तु मन्यानास्त्री कैकेय्या: कुञ्जामिणी।
स्वां स्वामिनीं तु कैकेयीभिर्द वचनमद्वीत ॥ १८

भृणु राजि महाभागे वज्रानं मम शोभनम्।
त्वत्पतिस्तु महाराजस्तव नाशाय चोष्टतः ॥ १९

रामोऽसी कौसलीपुत्रः शो भविष्यति भूपतिः।
वसुवाहनकोशादि राज्यं च सकलं शुभे ॥ २०

भविष्यत्यद्य रामस्य भरतस्य न किञ्चन।
भरतोऽपि गतो दूरं भातुलस्य गृहं प्रति ॥ २१

हा कर्णं मन्दभाग्यासि सापत्न्याहुः खिता भृशम्।
सैवमाकरण्यं कैकेयी कुञ्जामिदप्रवाह्नवीत ॥ २२

पश्य मे दक्षतां कुञ्जे अर्द्धैव त्वं विचक्षणे।
यथा तु सकलं राज्यं भरतस्य भविष्यति ॥ २३

द्रुतं सब सोग यह जान लो कि कल बड़े समारोहके साथ श्रीरामचन्द्रजीका रामाभिषेक होगा' ॥ ५—९% ॥

यह सुनकर मन्त्रियोंने राजा को प्रणाम करके उनसे कहा—'राजन्! आपने हमारे समक्ष अपना जो यह विचार व्यक्त किया है, यहुत ही उत्तम है। श्रीरामका अभिषेक हम सभीके लिये प्रियकारक है' ॥ १०—११ ॥

उनके दों कहनेपर राजा पुनः उन सब लोगोंसे चोले—'अच्छा, अब मेरी आज्ञासे अभिषेकके सभी समान शोषण लाये जाएं और समस्त वसुधाकी सारभूता इस अव्याप्तपुरीको भी आज ही सब औरसे सुसज्जित कर देना चाहिये। साथ ही एक यज्ञमण्डपकी रचना भी परम आवश्यक है' ॥ १२—१३ ॥

राजाके दों कहने और बार-बार प्रेरणा करनेपर उन सब शोषणकारी मन्त्रियोंने उनके कथनानुसार सब कार्य पूर्ण कर दिये। राजा इस शुभ दिनकी प्रतीक्षा करते हुए बड़े ही आनन्दित हुए। कौशल्या, सुमित्रा, लक्ष्मण तथा अन्य पुरुषासी क्षीरामचन्द्रजीके रामाभिषेकका शुभ समाचार सुनकर आनन्दके मारे फूले नहीं समाये। माम-मसुरकी सेषामें भलोभौंत लगो रहनेवाली भीता भी अपने पतिके लिये इम शुभ संवादकी सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई ॥ १४—१५% ॥

आनन्दतत्त्वके द्वारा अपना सर्वांक मनकी बात जाननेवाले परापर श्रीरामका अभिषेक शुरू हो दिन होनेवाला था। इसों बीचमें कैकेयीकी कुञ्जड़ी दासी मन्यराने अपनी मन्त्रिनी कैकेयीके पास जाकर यह बात कही—'अद्यभागिनी रानी! मैं एक बहुत अच्छी बात मुझांती हूँ, सुनो। तुम्हारे पति महाराज दहराय अब तुम्हारा नाश करनेपर तुले हुए हैं। शुरे! ये जो कौशल्या-पुत्र राम हैं, कल ही राजा होंगे। अब, बाहन और कौश आदिके साथ यह सारा राज्य अब रामका ही जापाना; भरतका कुछ भी नहीं रहेगा। देखो, भाष्यकी बात; इस अवसरपर भरत भी बहुत दूर—अपने मामाके चर चले गये हैं। हाय! यह सब कितने कष्टकी बात हैं! तुम मन्दभागिनी हो। अब तुमें सौंतकी औरसे बहुत ही कठ उड़ाना पड़ेगा' ॥ १७—१८% ॥

ऐसी बात सुनकर कैकेयीने कुञ्जासे कहा—'बुद्धिमति कुञ्जे! तू मेरी दृढ़ता तौ देख—आज ही मैं ऐसा यज्ञ करतो हूँ, जिससे यह सारा राज्य भरतका

रामस्य बनवासस्त्वं तथा यत्करोम्यहम्।
इत्युक्त्वा मन्थरां सा तु उत्सुच्य स्वाङ्गभूषणम्॥ २४
वस्त्रं पुष्पाणि चोन्मुच्य स्थूलवासोधराभवत्।
निर्माल्यपुष्पयुक्तकष्टा कश्मलाङ्गी विलपिणी॥ २५
भस्मधूल्यादिनिर्दिग्धा भस्मधूल्या तथा ब्रिते।
भूभागे शान्तदीपे सा संध्याकाले मुदुःखिता॥ २६
ललाटे श्वेतचैत्तं तु बद्ध्या सुखाप भाषिनी।
मन्त्रिभिः सह क्रायाणि सम्मन्त्र्य सकलानि तु॥ २७
पुण्याहः स्वस्तिमाङ्गल्यैः स्थाप्य राघं तु मण्डले।
ऋषिभिस्तु वसिष्ठाणैः सार्थं सम्भारमण्डले॥ २८
युद्धिजागरणीर्यश्च सर्वतस्मृत्यनादिते।
गीतनुत्यसमार्काणौ शङ्खकाहलनिःस्वनैः॥ २९
स्वयं दशरथसततं स्थित्वा प्रत्यागतः पुनः।
कैकेय्या चेशमनो द्वारं जरद्धिः परिरक्षितम्॥ ३०
रामाभिषेके कैकेयीं यनुकामः स पार्थिवः।
कैकेयीभवनं वीक्ष्य सान्धकारपथ्याङ्गवीत्॥ ३१
अन्यकारपिदं कस्यादद्य ते मन्दिरे प्रिये।
रामाभिषेके हर्षाय अन्यजा अपि चेनिरे॥ ३२
गृहालंकरणं कुर्वन्त्यद्य लोका मनोहरम्।
त्वयाद्य न कुतं कस्मादित्युक्त्वा च महीपतिः॥ ३३
ज्यालयित्वा गृहे दीपान् प्रविवेश गृहे नृपः।
अशोभनाङ्गीं कैकेयीं स्वपनीं पतितां भुवि॥ ३४
द्वाष्टा दशरथः प्राह तस्याः प्रियपिदं त्विति।
आश्लिष्योत्थाय तां राजा श्रुतुं पे परमे चर्चः॥ ३५
स्वप्नातुरधिकां नित्यं यस्ते भक्तिं करोति वै।
तस्याभिषेके रामस्य श्रो भविष्यति शोभने॥ ३६

हो जाप और रामका बनवास हो'॥ २२—२३॥

मन्थगुम्भे यों कहकर कैकेयीने अपने आङ्गोंके आभूषण उतार दिये। सुन्दर बस्त्र और फूलोंके हार भी उतार केके और मोटा वस्त्र पहन लिया। फिर निर्माल्य (पूजामें उतारे हुए) पुष्पोंके धारण किया, देहमें राघ और भूल लपेट ही और कुरुप जैप जनाकर बह जहारमें रह और मूर्छाओंका अनुभव करने लगी। वह भाषिनों ललाटमें खेत बस्त्र और संध्याकं समय दीपक बुझा, अंधेरमें ही राष्ट्र और भूलसे भरे भूभागमें अत्यन्त दुःखित हो लेट गयी॥ २४—२६॥

इधर मन्त्रियोंके साथ सारे कार्योंके विषयमें मन्त्रणा करके, वसिष्ठ ऋषि ऋषियोंद्वारा पुण्याहवाचन, रक्षितावचन और मङ्गलपात्रादि करवाकर, श्रीरामको यज्ञ-सामग्रीसे युक्त मण्डपमें विटाया और चुदि (नान्दीशाढ़) एवं लगारथ-सम्बन्धों कुरुपके लिये उपयुक्त तथा सब और सहनाई एवं शङ्ख, काहल आदिके शब्दोंसे निनादित एवं गत और नुत्यके कार्यक्रमोंसे पूर्ण उस मण्डपमें थोड़ी देरतक रक्षण भी उठाकर राजा दशरथ वहाँसे लौट आये। राजा कैकेयीसे श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेकका शुभ समाचार सुनानेकी इच्छासे कैकेयीके भवनके दरवाजेपर पहुँचे, जहाँ शूदे सिपाही पहरा देते थे। कैकेयीके घरको अभ्यक्षारयुक्त देख राजाने कहा॥ २७—३१॥

'प्रिये! आज तुम्हारे मन्दिरमें अन्दकार क्यों है? आज तो इस नगरके चाण्डालोंने भी श्रीरामचन्द्रके अभिषेककी आवश्यकता माना है। मध्ये लोग अपने घरको सुन्दर बैंगसे सजा रहे हैं। तुमने अपने भवनको क्यों नहीं सुसज्जित किया?'—यों कहकर राजाने घरमें दीप प्रज्वलित कराये; फिर उसके भीतर प्रवेश किया। वहाँ कैकेयी घरसीपर वही सो रही थी। उसका प्रत्येक अङ्ग अशोभन जान पड़ता था। उसे इस अवस्थामें देख राजाने उठाकर हृदयसे लगाया और उसको प्रिय स्वगनेवासे ये बचन कहे—'प्रिये! मेरी उत्तम यात्रा सुनो। सुन्दरि! जो तुम्हारे प्रति अपनी मालामें भी अभिक प्रेम रखते हैं, उन्हीं श्रीरामचन्द्रका कल शम्भापिषेक होगा'॥ ३२—३६॥

इत्युक्ता पार्थिवेनापि किञ्चित्त्रोबाच सा शुभा ।
मुञ्जन्ती दीर्घमुण्डां च रोषोच्छासं मुहुर्मुहुः ॥ ३७
तस्थावाशिलव्य हस्ताभ्यां पार्थिवः प्राह रोषिताम् ।
किं ते कैकेयि दुःखस्य कारणं बद शोभने ॥ ३८
वस्त्राभरणरत्नादि यद्यदिच्छसि शोभने ।
तत्त्वं गृहीत्व निशशङ्कं भाष्टारात् सुखिनी भव ॥ ३९
भाष्टारेण मम शुभे श्वोऽर्थसिद्धिर्भविष्यति ।
यदाभिषेकं सम्प्राप्ते रामे राजीवलोचने ॥ ४०
भाष्टारामस्य मे द्वार मया मुक्तं निर्गतिम् ।
भविष्यति पुनः पूर्णं रामे राज्यं प्रशासति ॥ ४१
बहु मानय रामस्य अभिषेकं महात्मनः ।
इत्युक्ता राजवर्येण कैकेयी पापलक्षणा ॥ ४२
कुमतिर्निर्धृणा दुष्टा कुबजया शिक्षिताद्वयीन् ।
राजानं स्वपतिं वाक्यं कुरुमत्यन्तनिरुपम् ॥ ४३
रत्नादि सकलं यत्ते तत्परैव न संशयः ।
देवासुरमहायुद्धे प्रोत्या यन्म वरद्वयम् ॥ ४४
पुरा दत्तं त्वया राजेस्तदिदार्तीं प्रयच्छ मे ।
इत्युक्तः पार्थिवः प्राह कैकेयीमण्डुं तदा ॥ ४५
अदत्तमप्यहं दास्ये तत्र नान्यस्य वा शुभे ।
किं मे प्रतिश्रुतं पूर्वं दत्तमेव मया तत्र ॥ ४६
शुभाङ्गी भव कल्याणि त्यज कोपयनर्थकम् ।
रामाभिषेकजं हर्षं भजोनिष्ठं सुखी भव ॥ ४७
इत्युक्ता राजवर्येण कैकेयी कलहप्रिया ।
उवाच परुषं वाक्यं राज्ञो परणकारणम् ॥ ४८
वरद्वयं पूर्वदत्तं यदि दास्यसि मे विभो ।
श्रोभूते गच्छतु वनं रामोऽयं कोशलात्मजः ॥ ४९
द्वादशाब्दं निवसतु त्वद्वाक्यादण्डके वने ।
अधिषेकं च राज्यं च भरतस्य भविष्यति ॥ ५०

राजाके इस प्रकार कहनेपर वह सुन्दरी कुछ भी न बोली । बहस्त्रार क्लोधपूर्वक केवल लम्बी-लम्बी गरम सौसे छोड़ती रही । राजा अपनी भुजाओंसे उसका आलिङ्गन करके बैठ गये और उस रुटी हुई कैकेयीसे बोले— 'सुन्दरी कैकेयि ! बताओ, तुम्हारे दुःखका क्या कारण है ? शुभे ! वस्त्र, आभूषण और रत्न आदि जिन वस्तुओंकी तुम्हें इच्छा हो, उन सबको बिना किसी आशङ्काके भण्डारधरसे से लो; परंतु प्रसन्न हो जाओ । कल्याण ! कलत जब श्रीरामके राज्याभिषेक सम्पन्न हो जायगा, वह समय उस भण्डारधरसे मेरे मनोरथको सिद्धि हो जायगी । इस समय तो मैंने भण्डारधरका द्वार उन्मुक्त कर रखा है । श्रीरामके राज्य-जास्तन करते समय वह फिर पूर्ण हो जायगा । प्रिये ! महात्मा श्रीरामके राज्याभिषेकको तुम इस समय अधिक महत्व और सम्प्राप्त दो' ॥ ४७—४८ ॥

महाराज दशरथके इस प्रकार कहनेपर कुल्याणके द्वारा पढ़ायी गयी पापिनी, दुर्बुद्धि, दयाहीना और दुष्टा कैकेयीने अपने पति महाराज दशरथसे अत्यन्त कूरतापूर्वक निश्चर तन्त्र कहा—'महाराज ! इसमें संदेह नहीं कि आपके जो रत्न आदि हैं, वे सब मेरे ही हैं; किंतु पूर्वकालमें देवासुर-मंगामके अवसरपर आपने प्रसन्न हो मुझे जो दो वर दिये थे, उन्हें ही इस समय दीजिये' ॥ ४२—४४ ॥

यह सुनकर राजाने उस अनुभा कैकेयीसे कहा— 'शुभे ! और किसीको यात तो मैं नहीं कहता, परंतु तुम्हारे लिये ही जिसे नहीं देनेको कहा है, वह वस्तु भी दे दूँगा । फिर जिसको देनेके लिये मैंने पहले प्रतिज्ञा कर ली है, वह वस्तु तो दी हुई हो समझो । कल्याण ! अब सुन्दर वेष धारण करो और वह व्यर्थका कोप छोड़ दो । उठो, श्रीरामके राज्याभिषेकके आनन्दोत्सवमें भाग लो और सुखी हो जाओ' ॥ ४५—४७ ॥

नृपक्रेष्ट दशरथके चों कहनेपर कलहप्रिया कैकेयीने ऐसी कठोर चात कही, जो आगे चलकर राजाकी मृत्युका कारण बन गयी । उसने कहा—'प्रभो ! यदि आप पहलेके दिये हुए दोनों वर मुझे देना चाहते हों तो (पहला वर में यही माँगती हूँ कि) ये कौशल्यानन्दन श्रीराम कल सबोर होते ही बनको चले जायें और आपको आज्ञासे ये बाहर यथोर्तक दण्डकारणमें निवास करें तथा मेरा दूसरा अप्तोऽव वर यह है कि अब राज्य और राज्याभिषेक भरतका होगा' ॥ ४८—५० ॥

इत्याकर्ण्य स कैकेय्या वचनं घोरमप्रियम्।
 पपात भुवि निस्संज्ञो राजा सापि विभूषिता ॥ ५१
 राश्रिशेषं नयित्वा तु प्रभाते सा मुदावती।
 दूतं सुमन्त्रपाहैवं राम आनीयतामिति ॥ ५२
 रामस्तु कृतपुण्याहः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः।
 यागमण्डपमध्यस्थः शश्वत्तुर्वरवान्वितः ॥ ५३
 तमासाद्य ततो दूतः प्रणिपत्य पुरःस्थितः।
 राम राम महाबाहो आज्ञापयति ते पिता ॥ ५४
 द्रुतमुनिष्ठ गच्छ त्वं यत्र लिष्टुति ते पिता।
 इत्युक्तस्तेन दूतेन शीघ्रपुत्राद्य राघवः ॥ ५५
 अनुजाप्य द्विजान् प्रापः कैकेय्या भवनं प्रति।
 प्रविशन्तं गृहं रामं कैकेयी प्राह निर्षणा ॥ ५६
 पितुसत्वं यतं वत्स इदं से प्रदद्वीप्यहम्।
 वने वस महाबाहो गत्वा त्वं द्वादशाच्छकम् ॥ ५७
 अदीव गम्यतां वीर तपसे धूतमानसः।
 न चिन्त्यगच्छा वत्स आदरात् कुरु मे वचः ॥ ५८
 एतच्छुत्वा पितुर्बाक्यं रामः कमलतोचनः।
 तथेत्याज्ञां गुहीत्वास्मी नपस्कृत्य च तावृष्टी ॥ ५९
 निष्क्रम्य तदग्रहात्रामो धनुरादाय वेशपतः।
 कौशल्यां च नपस्कृत्य सुमित्रां गन्तुमुष्टतः ॥ ६०
 तच्छुत्वा तु ततः पौरा दुःखशोकपरिष्टुताः।
 विव्यथुश्चाथ सौमित्रिः कैकेयीं प्रति रोषितः ॥ ६१
 ततस्तं राघवो दृष्ट्वा लक्ष्मणं रक्तलोचनप्।
 वारयामास धर्मज्ञो धर्मवाग्भिर्महामतिः ॥ ६२
 ततस्तु तत्र ये वृद्धास्तान् प्रणाप्य मुर्णीशु सः।
 रामो रथं दिग्ब्रसूतं प्रस्थानायारुरोह वै ॥ ६३
 आत्मीयं सकलं द्रव्यं द्वाहृणेभ्यो नृपात्मजः।
 श्रद्धया परवा दत्त्वा वस्त्राणि विविधानि च ॥ ६४

कैकेयोंके इस ओर अप्रिय वचनको सुनकर राजा दशरथ नृचित हो पृथ्वीपर गिर गडे और कैकेयीने (प्रसन्नतापूर्वक) अपने आपको सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित कर लिया। शेष रात विवाहकर प्राप्तःकाल कैकेयीने आनन्दित हो राजदूत सुमन्त्रसे कहा—‘श्रीरामको यहाँ बुलाकर लाया जाय।’ उस समय राम द्वाहृणोंद्वारा पुण्याहवाचन और स्वसितवाचन कराकर, शश्वत् और तूर्य आदि वार्ताओंका शब्द सुनते हुए यज्ञमण्डपमें लिराजमान थे ॥ ५१—५३ ॥

दूत सुमन्त्र उस समय श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचकर उनके प्रश्नाम करके समझे खड़े हो गये और योले—‘राम! महाबाहु श्रीराम! तुम्हारे पिताजीका आदेश है, जल्दी उठो और जहाँ तुम्हारे पिता विद्यमान हैं, वहाँ चलो।’ दूतके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी शोध हो गडे और द्वाहृणोंसे आज्ञा ले कैकेयीके भवनमें जा पहुँचे ॥ ५४—५५ ॥

श्रीरामको अपने भवनमें प्रवेश करते देख दयालीना कैकेयोंने कहा—‘वत्स! तुम्हारे पिताका यह विचार मैं तुम्हें बता रहा हूँ। महाबाहो! तुम बारह वार्षीयक वनमें जाकर रहो। बीर! बहाँ तपस्या करनेका निष्ठय मनमें लिये तुम आज ही चले जाओ। बेटा! तुम्हें अपने मनमें जोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे वचनका आदरपूर्वक पालन करो’ ॥ ५६—५८ ॥

कैकेयोंके मुखसे पिताका यह वचन सुनकर कमलतोचन श्रीरामने ‘तथास्तु’ कहकर पिताकी आज्ञा लिरोधार्थ की और उन होनों—माता-पिताको प्रणाम करके उनके भवनसे विकलकर उन्होंने अपना धनुप संभाला। फिर कौशल्या और सुमित्राको प्रणाम करके वे वरसे जानेको लैयार हो गये ॥ ५९—६० ॥

यह समाचार सुनते ही समस्त पुरावासीजन दुःख शोकमें दूब गये और चहों अथवा का अनुभव करने लगे। इधर सुमित्राकुमार लक्ष्मण कैकेयीके प्रति बुपित हो उठे। परपर शुद्धिमान् धर्मज्ञ श्रीरामने लक्ष्मणको द्रोषसे लात औँखें किये देख धर्मयुक्त वचनोंद्वारा उन्हें शान्त किया। तपस्त्वात् वहाँ जो चढ़े—चूढ़े उपस्थित थे, उनको तथा सुनियोंको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजी वनकी यात्राके लिये रथावर आलह हुए। उस रथका सारथि वहुत दुःखी था। उस समय राजकुमार श्रीरामने अपने मासके लमरण द्रव्य और नाना प्रकारके चम्प अन्तन श्रद्धापूर्वक द्वाहृणोंको दान कर दिये ॥ ६१—६४ ॥

तित्वः श्वशुः समापन्त्य श्वशुरं च विसंद्वितम् ।
मुञ्जन्तमश्वधाराणि नेत्रयोः शोकजानि च ॥ ६५
पश्यती सर्वतः सीता चारुरोह तथा रथम् ।
रथमारुहा गच्छन्ते सीतया सह राष्ट्रवम् ॥ ६६
दृष्टा सुमित्रा वचने लक्षणं चाह दुःखिता ।
गाम दशरथं विद्धि पां विद्धि जनकात्मजाम् ॥ ६७
अयोध्यापटीं विद्धि रुज ताभ्यां गृणाकर ।
मात्रैवमुक्तो धर्मात्मा स्वनक्षीराद्रदेहया ॥ ६८
तां नत्वा चारुयानं तमारुरोह स लक्षणः ।
गच्छतो लक्षणो भाता सीता चैव पतिष्ठता ॥ ६९
रामस्य पृष्ठतो यातीं पुराद्वीरी महामते ।
विधिचित्तप्राप्तिषेकं तं गाम राजीवलोचनम् ॥ ७०
अयोध्याया विनिष्कानभनुयाता: पुरोहिताः ।
मन्त्रिणः पौरमुख्याक्ष दुःखेन महतान्विताः ॥ ७१
तं च प्राप्य हि गच्छन्ते राममूर्च्छिरं वचः ।
राम राम महाबाहो गन्तुं नाहंसि शोभन् ॥ ७२
राजग्रन्थ निवर्त्तस्व विहायास्मान् चक्र गच्छमि ।
इत्युक्तो राघवस्तीन्तु तानुवाच हठवतः ॥ ७३
गच्छध्यं पन्त्रिणः पीरा गच्छध्यं च पुरोधमः ।
पित्रादेशं मया कार्यप्रभियास्यामि च वनम् ॥ ७४
द्वादशाब्दं यतं चेतत्रीत्वाहं दण्डके वने ।
आगच्छामि पितुः पादं मातृणां द्रष्टुपञ्चमा ॥ ७५
इत्युक्त्वा ताङ्गामाथ रामः सत्यपरायणः ।
तं गच्छन्ते पुनर्याता: पृष्ठतो दुःखिता जनाः ॥ ७६
पुनः प्राह स काकृत्यो गच्छध्यं नगरीपिषाम् ।
मातृश्च पितरं चैव शत्रुणां नगरीनिमाम् ॥ ७७
प्रजाः समस्नास्तप्रस्था राज्यं भरतमेव च ।
पालवध्वं महाभागास्तपसे याम्यहं वनम् ॥ ७८

तदनन्तर सोताजो भी अपनी तीनों सासुओंसे तथा नेत्रोंसे शोकाभ्रकी धारा बहाते हुए संहारान्त्य श्वशुर महाएव दशरथसे आज्ञा ले सब और देखती हुई रथपर आरुह्य हुई । सोताके साथ श्रीरामचन्द्रको रथपर चढ़कर वनमें जाते देख सुमित्रा अत्यन्त हुःखित हो लक्षणासे योली—“महायुर्णीकी खान येटा लक्षण ! तुम आजसे श्रीरामको ही चित दशरथ समझो, सीताको ही पैरा रुक्षरूप मानो तथा वनको ही अयोध्या जानो । उन दोनोंके साथ ही सेवाके लिये तुम भी जाओ” ॥ ६५—६७ ॥

खेलवश जिनके स्वनोंसे दृध बहकर समस्त शतीरको धिगो रहा था, उन यात सुमित्राके इस प्रकार कहनेपर लक्षण उन्हें प्रश्नाम करके स्वयं भी उस सुन्दर रथपर जा देते । महामते ! इस प्रकार नगरसे वनमें जाते हुए श्रीरामचन्द्रको पीछे धीर-धीर भाता लक्षण तथा सुमित्रा-हटपा परिवर्ता थीक—दोनों ही चले ॥ ६८—६९ ॥

दुर्दिवने जिनके राज्याभिषेकको शीलमें ही लिप्त भित्र कर दिया था, वे कमलनवन श्रीराम जब अयोध्यापुरीसे विकल्पे, उस समय पुरोहित, मन्त्री और प्रधान-प्रधान पुरायासी भी बहुत हुःखी होकर उनके पीछे-पीछे चलें तथा चक्रहीं और जाते हुए श्रीरामके निकट पहुँचकर उनसे यहां योले—“राम ! राम ! महाबाहो ! तुम्हें वनमें वहीं जाना चाहिये । नाभासालीं नरेश्वर ! नगरको लौट लालीं; हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हो ?” ॥ ७०—७२ ॥

उनके यों कहनेपर दृष्टप्रतिज्ञ श्रीराम उनसे बोले—“मन्त्रिगो ! पुरायासियो ! और पुरोहितगण ! आप लोग लौट जावीं । मुझे अपने पिताजीको आज्ञाका पालन करना है, इसलिये मैं वनमें अवश्य जाऊँगा । वहाँ दण्डकारण्यमें याह वधोत्तक वनवासके नियमको पूर्ण करनेके पश्चात् मैं पिता और माताओंके चरण कमलोंका दर्शन करनेके लिये शोष्य ही यहाँ लौट आऊँगा” ॥ ७३—७५ ॥

नगर-पिकासियोंसे यों कहकर सत्यपरायण श्रीराम आगे चढ़ गये । उन्हें जाते देख पुनः सब लोग दुःखी हो उनके पीछे-पीछे चलने लगे । तब ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने फिर कहा—महाभागगण ! आपलोग इस अयोध्यापुरीको लौट जाइये और मेरे पिता-माताओंकी, भरत-शत्रुघ्नीकी, इस अयोध्यानगरीकी, यहाँके समस्त प्रजाजनोंकी तथा इस राज्यको भी रक्षा कीजिये । मैं वनमें तपस्याके लिये जाता हूँ” ॥ ७६—७८ ॥

अथ लक्ष्मणमाहेदं वदनं राष्ट्रवस्तदा।
सीतापर्यं राजानं जनकं मिथिलेश्वरम् ॥ ७९

पितृमातृवशे तिष्ठ गच्छ लक्ष्मण याम्यहम्।
इत्युक्तः प्राह धर्मात्मा लक्ष्मणो भासुवत्सलः ॥ ८०

मैवयाज्ञापय विभो मामद्य करुणाकर।
गन्तुमिच्छुसि यत्र त्वमवश्यं तत्र याम्यहम् ॥ ८१

इत्युक्तो लक्ष्मणेनास्ती सीतां तापाह राष्ट्रवः।
सीते गच्छ प्रमादेशात् पितरं प्रति शोभने ॥ ८२

सुमित्राया गृहे चापि कौशल्यायाः सुमम्बमे।
निवर्त्तस्य हि तावत्त्वे यावदागमनं पम् ॥ ८३

इत्युक्ता राष्ट्रवेनापि सीता प्राह कृताङ्गलिः।
यत्र गत्वा वने यामं त्वं करोपि महाभूज ॥ ८४

तत्र गत्वा त्वया साप्ते वसाप्यहमरितम्।
वियोगं नो स्मृते राजस्त्वया सत्यवता कृचित् ॥ ८५

अतस्त्वां प्रार्थयिष्यामि दद्यां कुरु मम प्रभो।
गन्तुमिच्छुसि यत्र त्वमवश्यं तत्र याम्यहम् ॥ ८६

नानायानैरुपगताङ्गनान् वीक्ष्य स पृष्ठतः।
योषितां च गणान् राष्ट्रो वारव्यामास धर्मविन् ॥ ८७

निवृत्य स्थीयतां स्वीरमयोष्यायां जनाः स्विष्यः।
गत्वाहं दण्डकारण्यं तपसे धृतमानसः ॥ ८८

कतिपयाव्दादायास्ये नान्यथा सत्यमीतितम्।
लक्ष्मणेन सह भास्त्रा वैदेहा च स्वभावया ॥ ८९

जनान्निवृत्य राष्ट्रोऽसी जगाम च गुहाश्रमम्।
गुहस्तु रामभक्तोऽसी स्वभावादेव वैष्णवः ॥ ९०

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने उस समय लक्ष्मणसे यह
चाल कहो—‘लक्ष्मण! तुम सीताको से जाकर मिथिलापति
राजा जनकको सीप आओ और सबसे चिता-मालाके
अधीन रहो। लौट जाओ, लक्ष्मण! मैं बनको अकेला ही
जाऊँगा।’ इनके यों कहनेपर भ्रातुरात्मल भर्माहिता लक्ष्मणने
कहा—‘प्रभो! कहाणानिधान! आप मुझे ऐसी कठोर
आजह न दीजिये। आप जहाँ भी जाना चाहते हैं, वहाँ मैं
अचरण चलूँगा।’ लक्ष्मणके यो कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने
सीतामें कहा—‘शोभने सोते! तुम येरी आज्ञासे अपने
पिताके वही चालों जाओ अचरा माला कौशल्या और
सुमित्राके भवनमें जाकर रहो। सुन्दरि! तुम तपताके
लिये वहाँ लौट जाओ, जबतक कि मैं उनसे फिर यहाँ
आ न जाऊँ।’ ८२—८३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार आदेश देनेपर सीता भी
हाथ लौटकर चोली—‘पहाड़ाहो! हे श्रुतमन! आप
उनमें जहाँ जाकर विशास करेंगे, वहाँ चलाकर मैं भी
आपकी ही साथ रहूँगी। यजन्। सम्यक्तत्वा यात्रा करनेयाले
आप पतिदेवता विश्वांग में भ्रष्टपर्याके लिये भी वहाँ सह
सकती; इसलिये प्रभो! मैं प्रार्थना करती हूँ, मुझपर दया
करो। प्रार्थना! आप जहाँ जना चाहते हैं, वहाँ मैं भी
आत्मण ही रहूँगी।’ ८४—८५ ॥

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि भी पीछे बहुत-
से पुरुष नाना प्रकारके चाहनेपर चढ़कर आ गये हैं तथा
झूँड-बौ-झूँड सिरकी भी आ गयी हैं, तब भर्मेता श्रीरामने
उन सबकी साथ चलनेसे मना किया और कहा—‘पुरुषों!
ओर सिर्पो! अतएव त्वेर लौटकर अदोऽप्यमें स्वरक्षणता
पूर्णक रहो। मैं तपस्याके लिये चित एकाह करके
दण्डकारण्यको जा रहा हूँ। वहाँ कुछ ही वैष्णवज
रहनेके बाद मैं अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके
साथ वहाँ लौट आऊँगा, वह मैंने सच्ची चाल अतावदी है।
इसे अन्यथा नहीं मानना चाहिये।’ ८३—८५ ॥

इस प्रकार अदोऽप्यावामी लोगोंको लौटाकर
श्रीरामने गुहाके आध्रमपर पदार्पण किया; एह स्वभवमें
ही वैष्णव तथा श्रीरामचन्द्रजीका परम भक्त था।

कृताब्जलिपुटो भूत्वा किं कर्तव्यमिति स्थितः ।
यहता तपसाऽनीता गुरुणा या हि खः पुरा ॥ ११
भगीरथेन या भूमिं सर्वं पापहरा शुभा ।
नानामुनिजनैर्जुष्टा कृप्यमत्स्यसमाकुला ॥ १२
गङ्गा नुज्ञोर्मिमालादया स्फटिकाभजलावहा ।
गुहोपनीतनावा तु तां गङ्गां स महाद्युतिः ॥ १३
उत्तीर्णं भगवान् राष्ट्रो भरद्वाजाश्रमं शुभम् ।
प्रथागे तु ततस्तस्यन् रक्षावा तीर्णे यथाविधि ॥ १४
लक्ष्यणोन् सह भात्रा राघवः सीतया सह ।
भरद्वाजाश्रमे तत्र विश्वान्तस्तेन पूजितः ॥ १५
ततः प्रभासे विमले तपनुजाप्य गापवः ।
भरद्वाजोन्मार्गेण चित्रकूटं शर्मीर्याणी ॥ १६
नानाहुमलनाकीर्णं पुण्यतीर्थमनुत्तमम् ।
तापसे वेषमास्थाय जहूकन्यामतीत्य वै ॥ १७
गते रामे सभाये तु सह भात्रा समारथी ।
अयोध्यापवसन् भूष नष्टशोभां सुदुःखिताः ॥ १८
नष्टसंज्ञो दशरथः श्रुत्वा वचनमपियम् ।
रामप्रव्यामजननं कैकेय्या मुख्यनिम्मुतम् ॥ १९
लव्यसंज्ञः क्षणाद्वाजा रामरामेति चुकुशो ।
कैकेय्युव्याद्य भूपालं भरतं चापिषेदय ॥ २००
मीतालक्षणसंयुक्तो रामचन्द्रो चनं गतः ।
पुष्ट्रशोकाभिसंतप्तो राजा दशरथस्तदा ॥ २०१
विहाय देहं दुःखेन देवलोकं गतस्तदा ।
ततस्तस्य महापुर्व्यामयोध्यायामरिदम् ॥ २०२
रुकुदुर्दुःखशोकात्ता जनाः सर्वे च योगितः ।
कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी कष्टकारिणी ॥ २०३

भगवान् रामको देखते ही यह उनके सामने हाथ जोड़कर चढ़ा हो गया और योस्ता—'भगवन्! मैं बया सेवा करूँ' ॥ १०४ ॥

[ये कहकर गुहने सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामका सामान्य पूजन एवं सत्कार किया। इसके बाद मध्ये सारथी और रथकों सीटाकर वे गङ्गावेशकं तटपर गये और पुनः गङ्गने संगे—] राजन्! जिन्हें आपके पूर्वज महाराज भगीरथ पूर्वकालमें बहीं तपस्या करके पृथ्वीपर ले आये थे, जो समस्त जापहारिणी और कल्पाणकारिणी हैं, अनेकानेक मुनिजन जिनका सेवन करते हैं, जिनमें कृष्ण और मत्स्य भगवि उन्-उन् भी रहते हैं, जो ऊँची-ऊँची लहरोंसे सम्भूत एवं स्फटिकमणिके समान लक्षण जल जहानेवाली है, उन पुण्यसत्तिलिङ्ग गङ्गाजीको गुहके ह्वारा लायी हुई जापसे पार करके पहान् कानिमान् भगवान् श्रीराम भरद्वाज पुणिकं शुभ आश्रमपर गये ॥ ११—१३ ॥

यह आश्रम प्रयागमें था। श्रीरामचन्द्रजीने सीता तथा पांडु लक्ष्मणके साथ उम्म प्रथागतीर्थमें विभिन्नत् स्नान करके, वहीं भरद्वाज ऋषिके आश्रममें उनसे रम्मान प्राणकार योगिमें विलाप किया। किर निर्मलं प्रभातकाल होनेपर श्रीराम लक्ष्मीवेष भारणकर, भरद्वाज मुनिसे भजते हुए, उनको जवाये हुए प्रार्थने गङ्गाके पार हो, श्रीर-धीर नाना प्रकारके तुम और लक्ष्मीओंसे आश्रम परम उत्तम चापन तोथं विश्रकृटको गये ॥ १४—१७ ॥

राजन्! इधर सीता-लक्ष्मण और यात्रिके सहित रामचन्द्रजीके चले जानेपर अयोध्यावासीजन चहूत हुए खी होकर शोभाशूल अयोध्यावासीमें रहने लगे। राजा दशरथ तो कैकेयीके मुख्यसे निर्गत श्रीरामको जनवास देनेवाले अप्रिय गवानको सुनते ही मुर्छित हो गये थे। कुछ दौर चाट उब राजाको होश हुआ, उब वे उन्नास्तरे 'राम! राम!' पुकारने लगे। उब कैकेयीने भूपालसे कहा—'राम तो सीता और लक्ष्मणके साथ चन्द्रमें चले गये; अब आप भरतका राज्याभिषेक करीजिये।' यह सुनते ही राजा दशरथ पुष्ट्रशोकमें संतप्त हो, दुःखके मारे शरीर त्यागकर देवलोकको चले गये ॥ १८—१९ ॥

श्रुतदम्भ! तब उनकी महानगरी अयोध्यामें रहनेवाले सभी स्त्री-पुरुष दुःख और शोकसे पीड़ित हो विलाप करने लगे। कौशल्या, सुमित्रा तथा कष्टकारिणी कैकेयी भी

परिवार्य मृतं तत्र रुदुस्ताः पतिं ततः।
ततः पुरोहितस्तत्र वसिष्ठः सर्वधर्मवित्॥ १०४

तैलब्रोण्यां विनिक्षिप्य मृतं राजकलेवरम्।
दूतं वै प्रेपयामास सहपन्त्रिगणीः स्थितः॥ १०५

स गत्वा यत्र भरतः शत्रुघ्नेन सह स्थितः।
तत्र प्राप्य तथा बार्ता संनिवर्त्य नृपात्मजी॥ १०६

तावानीय ततः शीघ्रमयोध्यां पुनरागतः।
कूराणि दृष्ट्वा भरतो निमित्तानि च वै पथिः॥ १०७

विपरीतं त्वयोध्यायामिति मे न स पार्थिवः।
निश्चोर्भां निर्गतश्चीकां दुःखशोकान्वितो पुरीम्॥ १०८

कैकेय्याग्निविनिर्ग्रामयोध्यां प्रविवेश सः।
दुःखान्विता जना: सर्वे ती दृष्ट्वा रुदुर्भृशम्॥ १०९

हा तात राम हा सीते लक्ष्मणोति पुनः पुनः।
रुरोद भरतस्तत्र शत्रुघ्नश्च सुदुःखितः॥ ११०

कैकेय्यास्तक्षणा च्छुत्वा चुकोध भरतस्तदा।
दृष्ट्वा त्वं दुष्टचित्ता च यथा रामः प्रवासितः॥ १११

लक्ष्मणोन सह भाग्ना राघवः सीतया वनम्।
साहसं किं कृतं दुष्टे त्वया सद्योऽस्यप्राप्यया॥ ११२

उद्भास्य सीतया रामं लक्ष्मणोन महात्मना।
ममैव पुत्रं राजानं करोत्विति मतिस्तव॥ ११३

दुष्टाया नष्टभाग्यायाः पुत्रोऽहं भाग्यवर्जितः।
भाग्ना रामेण रहितो नाहं राज्यं करोमि वै॥ ११४

यत्र रामो नरव्याघः परापत्रायतेक्षणः।
धर्मजः सर्वशास्त्रज्ञो मतिमान् द्वन्द्वुवत्सलः॥ ११५

सीता च यत्र वैदेही नियमद्रुतचारिणी।
पतिद्रुता महाभागा सर्वलक्षणसंयुता॥ ११६

अपने मृत पतिको चारों ओरसे घेरकर रोने लगी॥ १०२-१०३॥

तब सब धर्मजोंको जाननेवाले पुरोहित वसिष्ठजीने वहाँ आकर सबको शान्त किया और राजा के मृत शरीरको तेलसे भरे हुई नौकामें रखवाकर, मन्त्रिगणोंके साथ विचार करके, भरत-शत्रुघ्नको बुलानेके लिये दूत भेजा। वह दूत जहाँ शत्रुघ्नके साथ भरतजी थे, वहाँ गया और जितना उसे बताया गया था, उन्होंने संदेश सुनाकर, उन द्वीर्णों राजकुमारोंको शहरीसे हीटाकर, उन्हें साथ ले, शीघ्र ही अयोध्यामें लौट आया। राजा भरत मार्गमें घोर अधशकुन देख मन-ही-मन यह जान गये कि 'अयोध्यामें कोई विपरीत घटना घटित हुई है।' पिर जो कैकेयीलवी अधिसे दरम्भ होकर शोभाहीन, निस्तेज और दुःख-ओकसे परिपूर्ण हो गयी थी, उस अयोध्याकुरीमें भरतजीने प्रवेश किया। उस समय भरत और शत्रुघ्नको देख सभी लोग दुःखी हो 'हा तात! हा सुन! हा सीते! हा लक्ष्मण!' इस प्रकार चाम्पाट पुकारते हुए बहुत विलाप करने लगे। यह दंड भरत और शत्रुघ्न भी दुःखी होकर होने लगे॥ १०४-११०॥

उस समय कैकेयीके मुस्कर्से लक्षण सारा बुलान सुनकर भरतजी उसके ऊपर बहुत ही कुपित हुए और योले—'अरी! तू तो बहु दुष्ट हो। तेरे चित्तमें दुष्टतापूर्ण विचार भरा हुआ है। हाय! जिसने श्रीरामको वनवास दे दिया, जिसके कारण भाई लक्ष्मण और देवी सीताके साथ शत्रुघ्नाथजीको जनमें जानेको विवश होना पड़ा, उससे बढ़कर दुष्ट कौन स्त्री होगी? अरी दुष्ट! औ मन्त्रभागिनी! तूने हल्कात ऐसा दुर्द्वाहस किसे किया? तूने सोचा होणा कि महात्मा लक्ष्मण और साधीं सीताके साथ रामको घरसे निकालकर महाराजा दशरथ मेरे ही पुत्रको राजा बना देंगे। (पितार है तेरी इस कुन्तुदिको!) आह! मैं कितना भाष्यहीन हूं, जो तुझ जैसी अभागिनी दुष्ट स्त्रीजा पुत्र हुआ। किंतु तू निक्षण जान, मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामसे अलग रहकर राज्य नहीं करूँगा। जहाँ मनुष्योंमें भेद, धर्मज, सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, बुद्धिमान् तथा भाइयोंपर ज्ञेय रखनेवाले पूज्य भ्राता कमलदललोचन श्रीरामपन्द्रजी गये हैं, जहाँ नियम और द्रष्टका आचरण करनेवालों, समस्त शुभलक्षणोंसे युक्त, अत्यन्त सौभाग्य-जालनों परिव्रता विदेहराजकुमारों सोताजों विद्यमान हैं

लक्ष्मणश्च महावीर्यो गुणवान् भानुवत्सलः ।
तत्र यास्यापि कैकेयि महत्यापं त्वया कृतम् ॥ ११७

राम एव मम भाता ज्येष्ठो मतिमतां वरः ।
स एव राजा दुष्टात्मे भृत्योऽहं तस्य वै सदा ॥ ११८

इत्युक्तवा मातरं तत्र ऊरोद भृशदुःखितः ।
हा राजन् पृथिवीपाल मां विहाय सुदुःखितम् ॥ ११९

कुरु गतोऽस्यद्य वै तात किं करोमीह तद्वद् ।
भ्राता पित्रा सप्तः ब्रवास्ते ज्येष्ठे मे करुणाकरः ॥ १२०

सीता च मातृतुल्या मे क्व गतो लक्ष्मणश्च ह ।
इत्येवं विलपनं ते भरतं मन्त्रिभिः सह ॥ १२१

वसिष्ठो भगवानाह कालकर्मविभागवित् ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ बत्स त्वं न शोके कर्तुमहसि ॥ १२२

कर्मकालवशादेव पिता ते स्वर्गमासितः ।
तस्य संस्कारकार्याणि कर्माणि कुरु शोभन् ॥ १२३

रामोऽपि दृष्टनाशाय शिष्टानां पालनाय च ।
अवतीर्णो जगत्वायामी स्वांशेन भूति प्राप्तवः ॥ १२४

प्रायस्त्रास्ति रामेण कर्तव्यं लक्ष्मणेन च ।
यत्रासीं भगवान् वीरः कर्मणा तेन चोदितः ॥ १२५

तत्कृत्वा पुनरायाति रामः कर्मलतोचनः ।
इत्युक्तो भरतसेन वसिष्ठेन महात्मना ॥ १२६

संस्कारं लभ्यामास विधिद्वयेन कर्मणः ।
अग्निहोत्राग्निना दग्ध्वा पितुर्देहं विधानतः ॥ १२७

स्नात्वा सरव्वा: सलिले कृत्वा तस्योदयकिञ्चाप् ।
शत्रुणेन सह श्रीपान्नातुभिर्वच्चर्यैः सह ॥ १२८

तस्यीर्घदेहिकं कृत्वा मन्त्रिणा मन्त्रिनायकः ।
हस्त्यशुश्रूषपत्तीभिः सह प्रायान्महापतिः ॥ १२९

और जहाँ भाद्रमें भक्ति रखनेवाले, सदगुणसम्पन्न, महान् पराकर्मी लक्ष्मणजी गये हैं, वहाँ मैं भी जाऊंगा। कैकेयि! तुमेरे रामकी बनवास देकर महान् पाप किया है। दुष्टददेह! बुद्धिमानोंमें लेष्ठ श्रीरामवन्दनजी ही मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, वे ही राजा होनेके अधिकारी हैं। मैं तो सदा उनका दास हूँ ॥ १११—११८ ॥

मातासे यों कहकर भरतजी अत्यन्त दुःखी हो, वहाँ कृष्ण कृष्णकर रोने लगे और विलाप करने लगे—‘हा राजन्। हा वसुधाप्रतिपालक! हा तात! मृग अत्यन्त दुःखी थालको छोड़कर आप कहाँ चले गये? बताइये, मैं आप वहाँ क्या करे करके? पिताके तूल्य दद्या करनेवाले मेरे ज्येष्ठ भ्राता भीराम कहाँ हैं? माताके समान पूजनीया सोला कहाँ हैं और मेरा प्यारा भाई लक्ष्मण कहाँ चला गया?’ ॥ ११९—१२० ॥

भरतको इस प्रकार पिलाप करते देख काल और कर्मके विभागको जानेवाले भगवान् वसिष्ठजी भवित्योंके साथ वहाँ आकर जोरे—‘येता। उठो, उठो; तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। भद्र। काल और कर्मके बशीभूत होकर ही तुम्हारे पिता स्वर्गांकासी हुए हैं; अब तुम उनके अन्येहिसंस्कार आदि कर्म जाओ। भगवान् श्रीराम सदाचारं लक्ष्मणापति नाशयण हैं। वे जगदीश्वर दुर्घटको नाश और साधुतुर्होरका पालन करनेके लिये ही अपने अशामे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। तबमें श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा चक्रत-से क्षम्य होनेवाले हैं। वहाँ वीरवर कर्मलतोचन श्रीरामवन्दनजी उन्होंने कर्तव्यकर्मोंसे प्रेरित होकर रहेंगे और उन्हें पूर्ण करके वहाँ सौंठ आयेंगे’ ॥ १२१—१२५ ॥

उन बहात्मा वसिष्ठजीके यों कहनेपर भरतजीने तास्त्रोऽपि शिरिके अनुसार पिताका और्ध्वदेहिक संस्कार किया। उस समय उक्तोंने अग्निहोत्रकी अग्निसे पिताके शशका विधिपूर्वक दाह किया। फिर सरयूके जलमें ज्वान करके श्रीमान् भरतने भावं शत्रुघ्न, सब माताओं तथा अन्य दण्डजनोंके साथ परस्तोकर्मत पिताके लिये तिलसीहत उत्तको अज्ञाति दी ॥ १२६—१२८ ॥

इस प्रकार पिताका और्ध्वदेहिक संस्कार करके परित्यगोंके अधिष्ठित साधुओंसे महाबुद्धिमान् भरतजी अपने मन्त्रियों तथा हाथी, चोड़े, रथ एवं पैदल, सेनाओंके साथ (माताओं तथा बन्धुजनोंको भी साथ

भरतो रामपन्थेषु राममार्गेण सत्तमः।
तमायानं महासेनं रामस्यानुविरोधिनम्॥ १३०

मत्वा तं भरतं शत्रुं रामभक्तो गुहस्तदा।
स्वं सैन्यं वर्तुलं कृत्वा संनद्धः कवची रथी॥ १३१

महाबलपरीवारो रुरोध भरतं पथि॥ १३२

सभातुकं सभार्थं मे रामं स्वामिनमुत्तमम्।
प्रापयस्त्वं चनं दुष्टं साप्ततं हन्तुपिच्छसि॥ १३३

गमिष्यसि दुरात्मस्त्वं सेनया सह दुर्घते।
इत्युक्तो भरतस्त्र गुहेन नृपनन्दनः॥ १३४

तमुवाच विनीतात्मा रामायाथ कृताकृतिः।
यथा त्वं रामभक्तोऽसि तथाहमपि भक्तिमान्॥ १३५

प्रोपिते प्रथि कैकेय्या कृतमेतन्यहामते।
रामस्यानयनार्थाय द्वजाम्यद्य महामते॥ १३६

सत्यपूर्वं गणिष्यामि पन्थानं देहि मे गुह।
इति विश्वासमानीय जाह्नवीं तेन तागितः॥ १३७

नीकावृन्देनेकेस्तु स्वात्मामी जाह्नवींनले।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्तो भरतस्तं महामुनिम्॥ १३८

प्रणम्य शिरसा तस्मै यथावृत्तमुखाच ह।
भरद्वाजोऽपि तं प्राह कालेन कृतमीदृग्मम्॥ १३९

दुःखेन न ताथत् कर्तव्यं रापादेऽपि त्वयाधुना।
वर्तते चित्रकूटेऽसौ रामः सत्यपराक्रमः॥ १४०

त्वयि तत्र गते वापि प्रायोऽसौ नागमिष्यति।
तथापि तत्र गच्छ त्वं यदसी वक्ति तत्कुरु॥ १४१

रामस्तु सीतया सार्धं वनखण्डे मिथतः शुभे।
लक्ष्मणस्तु महाबीर्यो दुष्टालोकनतत्परः॥ १४२

ले) श्रीरामचन्द्रजीका अन्वेषण करनेके लिये जिस मार्गसे वे गये थे, उसी मार्गसे चले। उस समय भरत (और शत्रुघ्न) को इतनी बड़ी सेनाके साथ आते देख, उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका विरोधी शत्रु समझकर रामभक्त गुहने दुष्टके लिये सुसज्जित हो, अपनी सेना गोलाकार खड़ी की ओर कवच धारणकर, रथारुङ् हो, उस विशाल सेनासे घिरे हुए उसने मार्गमें भरतको रोक दिया। उसने कहा—'इष्ट! दुरात्मन्! दुर्दुङ्के! तूने घेरे देह स्थानी श्रीरामको भाई और पलोसहित बनमें तो भिजवा हो दिया; क्या अब उन्हें मारना भी चाहते हो, जो (इतनी बड़ी) सेनाके साथ वहाँ जा रहे हो?'॥ १३९—१३३॥

गुहके छों कहनेपर यजकुमार भरत श्रीरामके उद्देश्यमें हाथ जोड़कर विनश्युक होकर उससे बोले—'गुह! जैसे तुम श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हो, जैसे हो मैं भी उनमें भक्ति रखता हूँ। महामते! मैं नारसे जाहर (मामाके पर) चला गया था, उस समय किंवद्यै यह अनधि कर दाला। यहाँपूर्वे! याज मैं श्रीरामचन्द्रजीको लीटा लानेके लिये जा रहा हूँ। तुमसे यह सत्य चाल चलाकर वहाँ जाना चाहता हूँ। तुम मुझे मार्ग दे दो'॥ १३४—१३६॥

इस प्रकार विचास दिलानेपर गुह उन्हें गजात—पर तै आणा और हुँड की हुँड नीकाएँ बैगाकर उनके द्वारा उन सबको पार कर दिया। पिर गज्जाजीके जलमें स्नान करके भरतजी भरद्वाजमुनिके झाशमपर पहुँचे और उन महामुनिके चरणोंमें मस्तक हुका, प्रणाम करके उन्होंने उनसे अपना यथार्थ चूनान कह मुनाया॥ १३५—१३८॥

भरद्वाजजीने भी उनमें कहा—'भरत! कालके ही प्रभावसे ऐसा काण्ड घटित हुआ है। अब तुम्हें श्रीरामके लिये भी खोट नहीं करना चाहिये। सत्यपराक्रमी वे श्रीरामचन्द्रजी इस समय चित्रकूटमें हैं। यहाँ तुम्हारे जानेपर भी वे प्रायः नहीं आ सकेंगे; तथापि तुम वहाँ जाओ और जैसे वे कहें, वैसे ही करो। श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ एक सुन्दर बनाउण्डीमें निवास करते हैं और महान् पराक्रमी लक्ष्मण दुष्ट जीवोंपर दृष्टि रखते हैं—उनकी रक्षामें तत्पर रहते हैं'॥ १३९—१४२॥

इत्युक्तो भरतसतत्र भरद्वाजेन धीमता ।
उत्तीर्थं यमुनां यातश्चित्रकूटं प्रहानगम् ॥ १४३
स्थितोऽसी दृष्टवान्दूरात्सधूलौ चोत्तरां दिशम् ।
रामाय कथयित्वा ऽस्म तदादेशात् लक्ष्मणः ॥ १४४
वृक्षमारुह्ये मेधावी वीक्ष्माणः प्रयत्नतः ।
स ततो दृष्टवान् हृष्टामायान्तीं भहर्तीं चमूम् ॥ १४५
हस्त्यश्चरथसंयुक्तं दृष्टा राममध्याद्वीत ।
हे भातस्त्वं महाबाहो सीतापात्यें स्थिरो भव ॥ १४६
भूयोऽस्मि बलवान् कश्चिद्दृस्त्यश्चरथपतिभिः ।
इत्याकर्षं वदतस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥ १४७
रामसत्यवद्वीतीरो वीरं सत्यपाकूमः ।
प्रायेण भरतोऽस्माकं द्रष्टुमायाति लक्ष्मण ॥ १४८
इत्येवं वदतस्तस्य रामस्य विदितात्मनः ।
आगात्संस्थाप्य सेनां तां भरतो विनयान्वितः ॥ १४९
क्राह्णाणीर्मन्त्रिभिः सार्पं रुद्रप्रागत्य पादयोः ।
रामस्य निपपाताथ वैदेहा लक्ष्मणस्य च ॥ १५०
मन्त्रिणो मातृवर्गं क्षु दिनग्धवन्पुसुहजनाः ।
परिवार्यं ततो रापं रुदुः शोककातराः ॥ १५१
स्वर्यान्तं पितरं ज्ञात्वा ततो रामो महामतिः ।
लक्ष्मणोन सह भात्रा वैदेहाथ समन्वितः ॥ १५२
स्त्रात्वा मलापहे तीर्थे दत्त्वा च सलिलाकुलिम् ।
मात्रादीनिभिवाच्याथ रामो दुःखसप्तन्वितः ॥ १५३
उत्तात्र भरतं राजन् दुःखेन महतान्वितम् ।
अयोध्यां गच्छ भरत इतः शीघ्रं महामते ॥ १५४
राजा विहीनां नगरीं अनाथां परिपालय ।
इत्युक्तो भरतः प्राह रामं राजीवलोचनम् ॥ १५५
त्वामृते पुरुषव्याघ न यास्येऽहमितो धूमम् ।
यत्र त्वं तत्र यास्यामि वैदेही लक्ष्मणो यथा ॥ १५६

बुद्धिमान् भरद्वाजजीके यों कहनेपर भरतजी यमुना पार करके महान् पर्वत चित्रकूटपर गये। वहाँ खड़े हुए लक्ष्मणजीने दूरसे उत्तर दिशमें धूल उड़ाती देख श्रीरामचन्द्रजीको सूचित किया। फिर उनकी आज्ञासे चुक्षपर लड़कर बुद्धिमान् लक्ष्मणजी प्रयत्नपूर्वक उधर देखने लगे। तब उन्हें वहाँ बहुत बड़ी सेना आती दिखाई दी, जो हर्ष एवं उत्साहसे भरी जान पड़ती थी। हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त उस सेनाको देखकर लक्ष्मणजी श्रीरामसे बोले—‘ऐया! तुम सीताके पास मिथुतापूर्वक हैंठे रहो। महाबाहो! कोई महाबली राजा हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेनिकोंसे युक्त ज्ञातुराज्ञीणी सेनाके साथ आ रहा है’॥ १४३—१४६ ॥

महामता लक्ष्मणके ऐसे वचन सुनकर सत्यपराक्रमी चोरवर श्रीराम अपने उस लौर प्राणसे बोले—‘लक्ष्मण! मुझे लो प्राप्त: यही जान पड़ता है कि भरत ही हम सांगोंसे विलगके लिये आ रहे हैं।’ विदितात्मा भगवान् श्रीराम जिस समय यों कह रहे थे, उसी समय विनयशील भरतजी वहाँ फूंके और सेनाको कुछ दूरोपर उत्तराकर स्वर्यं ब्राह्मणों और मन्त्रियोंके साथ निकट आ, सोता और लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामके चरणोंपर रोते हुए गिर पड़े। फिर मन्त्री, नक्षत्र, स्त्रीही यमु तथा मिश्रगण श्रीरामको जारीं औरसे पेक्षकर ज्ञातुराज्ञीणी ही रोने लगे ॥ १५३—१५६ ॥

उद्दनकर महामति श्रीरामने अपने पिताके स्वर्गागमी होनेका समाचार शाकर भ्राता लक्ष्मण और जानकीके साथ वहाँके पापनाशक तीर्थमें स्नान करके जलाड़ालि दी। रात्रि । फिर माता आदि गुरुजनोंको प्रणाम करके रामचन्द्रजी दुःखी हो अत्यन्त खेदमें पड़े हुए भरतसे बोले—‘महामते भरत! तुम अब यहाँसे शीघ्र अयोध्याको चले जाओ और राजा से होन हुई उस अनाथ नगरीका पालन करो।’ उनके यों कहनेपर भरतने कमलतोचन रामसे कहा—‘पुरुषश्रेष्ठ! यह निष्ठय है कि मैं आपको साथ लिये बिना यहाँसे नहीं जाऊंगा। वहाँ आप जायेंगे, वहाँ सोता-लक्ष्मणकी भौति मैं भी चलूँगा’॥ १५२—१५६ ॥

इत्याकरणं पुनः प्राह भरतं पुरतः स्थितम्।
नृणां पितृसमो ज्येष्ठः स्वधर्ममनुवर्तिनाम्॥ १५७
यथा न लहूर्घं वचनं पया पितृपुखोरितम्।
तथा त्वया न लहूर्घं स्याद्वचनं पम् सतम्॥ १५८
पत्समीपादितो गत्वा प्रजास्तं परिपालय।
द्वादशाब्दिकमेतत्वे छतं पितृपुखोरितम्॥ १५९
तदरण्ये चरित्वा तु आगमिष्यामि तेऽनितकम्।
गच्छ तिष्ठ प्रमादेशो न दुःखं कर्तुमहंसि॥ १६०
इत्युक्तो भरतः प्राह वाष्पपर्याकुलेक्षणः।
यथा पिता तथा त्वं मे नात्र कार्या विचारणा॥ १६१
तवादेशान्वया कार्यं देहि त्वं पादुके पम्।
नन्दिग्रामे वसिष्ठेऽहं पादुके द्वादशाब्दिकम्॥ १६२
त्वं त्वद्वेषमेव प्रदेषं त्वद्वत्तं मे महाव्रतम्।
त्वं द्वादशाब्दिकादृथ्य यदि नायामि सतम्॥ १६३
ततो हवियंथा चार्णी प्रधश्यामि कलेवरम्।
इत्येवं शपथं कृत्वा भरतो हि सुदुःखितः॥ १६४
अहु प्रदक्षिणं कृत्वा नमस्कृत्य च राष्ट्रवम्।
पादुके शिरसा स्थाप्य भरतः प्रस्थितः शनैः॥ १६५
स कुर्वन् भातुरादेशं नन्दिग्रामे स्थितो वशी।
तपस्वी नियताहारः शाकमूलफलाशनः॥ १६६
जटाकलापं शिरसा च विभृत्
त्वचश्च वाक्षीः किल वन्यभोजी।
रामस्य वाक्यादरतो हृदि स्थितं
बभार भूभारमनिन्दितात्मा॥ १६७

यह सुनकर श्रीरामने अपने सामने खड़े हुए भरतसे पुनः कहा—'सापुद्रेष्ठ भरत! अपने धर्मका पालन करनेयाले मनुष्योंके लिये ज्येष्ठ भाता पिता के समान पूर्ण है। जिस प्रकार मुझे पिता के मुखसे निकले हुए वचनका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये, वैसे ही तूम्हें भी मेरे वचनोंका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। अब तुम यहाँ मेरे निकटसे जाकर इलाजनका पालन करो। पिता के मुखसे कहा हुआ जो यह बारह वर्षोंके वनवासका व्रत मैंने स्वीकार किया है, उसका बनमे पालन करके मैं पुनः गुम्फारे पास आ जाऊंगा। जाओ, मेरी आज्ञाके पालनमें लग जाओ; तुम्हें खेद नहीं करना चाहिये॥ १५७—१६०॥

ठनके यों कहनेपर भरतने अँगोंमें औंसु भरकर कहा—'ऐषा! इसके सम्बन्धमें मुझे कोई विवार करनेयकी आवश्यकता नहीं है कि मेरे लिये जैसे पिताजी थे, वैसे ही आप हैं। अब मैं आपके आदेशके अनुसार ही कार्य करौंगा; किंतु आप अपनी दोनों चरणपादुकाएं मुझे दे दें। वे इन्हीं पादुकाओंका आश्रय से नन्दिग्राममें निवास करौंगा और आपकी ही भौति आहल वर्षोंतक ग्रामका पालन करौंगा। अब आपके लेखके समान ही मेरा वेष होना और आपका जो व्रत है, वही मेरा भी महान् व्रत होगा। सापुद्रियोमणे। यदि आप बारह वर्षोंके व्रतका पालन करनेके बाद तुरंत नहीं पथारेंगे तो मैं आपिमें हवियाकी भौति अपने शरीरको होम दूँगा।' अत्यन्त दुःखी भरतजीने इस प्रकार शपथ करके भगवान् रामकी अनेक बार प्रदक्षिणा की, बारंबार उन्हें प्रणाम किया और उनकी चरणपादुकाएं अपने मिरपर रखकर वे वहाँसे भौंर-भौंर चल दिये॥ १६१—१६५॥

भरतजी अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके, शाक और गूल-फलादिका नियमित आहार करते हुए, तपोनिषद् हो, भ्राताके आदेशका पालन करते हुए नन्दिग्राममें रहने लगे। विनुद्ध हृदयवाले भरतजी अपने मिरपर जटा धारण किये और अङ्गोंमें वाल्कल यहने, वन्य फलोंका ही आहार करते थे। वे मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंमें ऋद्ध रखनेके कारण अपने ऊपर पढ़े पृथ्वीके शासनका भार दोने सगे॥ १६६—१६७॥

उनचासवाँ अध्याय

श्रीरामका जयननको दण्ड देना; शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्यसे मिलना;
शृंपंणखाका अनादर; सीताहरण; जटायुवध और शबरीको दर्शन देना

मार्गशीर्ष उक्तव

गतेऽथ भरते तस्मिन् रामः कमललोचनः।
लक्ष्मणेन सह भाग्ना भाव्यं या सीतया सह ॥ १
शाकमूलफलाहारो विचार महावने।
कदाचिक्षमणपृते रामदेवः प्रतापवान् ॥ २
चित्रकृष्णवोदेशो वैदेह्यत्सङ्घमाभितः।
सुखाप स मुहूर्ते तु ततः काको दुरात्मवान् ॥ ३
सीताभिपुख्यमध्येत्य विददार सानान्तरम्।
विदार्थं वृक्षमारुहा स्थितोऽसी वायसाधमः ॥ ४
ततः प्रदुद्धो रामोऽसी दृष्टा रक्तं स्तनान्तरे।
शोकाविहृता तु सीतां तामुखाच कमलेक्षणः ॥ ५
बद स्तनान्तरे भद्रे तथं रक्तस्य कारणम्।
इत्युक्ता सा च तं प्राह भतारं विनवान्विता ॥ ६
पश्य राजेन्द्र वृक्षाए वायसं दुष्टवेचितम्।
अनेष्य कृतं कर्म सुमे त्वयि महामते ॥ ७
रापोऽपि दृष्ट्वान् काकं तस्मिन् क्रोधप्रधाकरोत्।
इषीकास्त्रं समाधाय वृहास्त्रेणाभिमन्त्रितम् ॥ ८
काकमुहिष्य चिक्षेप सोऽप्यधावद्वयान्वितः।
स त्विन्द्रस्य सुतो राजत्रिन्दलोकं विवेश ह ॥ ९
रामास्त्रं प्रज्वलद्दीपं तस्यानु प्रविवेश च।
विदितार्थश्च देवेन्द्रो देवैः सह समन्वितः ॥ १०
निष्कामयच्च न दुष्टं राधवस्यापकारिणम्।
नतोऽसी सर्वदेवैस्तु देवलोकाद्विः कृतः ॥ ११
पुनः सोऽप्यपतन्द्रामं राजानं शरणं गतः।
पाहि राम महाव्याहो अज्ञानादपकारिणम् ॥ १२

मार्गशीर्षदेवजी कहते हैं— भरतजीके अयोध्या सौंदर्य जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी अपनी भार्या सीता और भाई लक्ष्मणके साथ शाक और मूल-फल आदिके अहामसे ही जीवन-निर्वाह करते हुए उस महान् बनमें विचरने लगे। एक दिन परम प्रतारो भगवान् यम लक्ष्मणको साथ न ले जाकर चित्रकृष्ण पर्वतके बनमें सीताजीकी गोदमें कुछ देखक सोये रहे। इतनेमें ही एक दृष्ट कौएने सीताके सम्बूद्ध आ हुएके स्तनोंके बीच चौंच मारकर जाल कर दिया। यह जरके सह अभ्यन काक वृक्षपर जा बैठा ॥ १—४ ॥

तदनन्तर यद्य कमललोचन श्रीरामचन्द्रजीको नींद सुखी, तथ उक्तोने देखा, सीताके स्तनोंसे रक्त बह रहा है और ये स्तोकमें दूषी हुए हैं। यह देख उक्तोने सीतासे पूछा— 'कल्पयामि! बलांगे, तुमहारे स्तनोंके बीचसे रक्त बहनेका क्या कारण है?' उक्ते यों कहनेपर सीताने अपने स्वामीसे किमप्यूक्तं कहा—'राजेन्द्र! महामते! बृक्षको जान्मापर चेंडे हुए इस दुष्ट कौएको देखिये; आपके सो जानेपर इसेने यह दुस्माहसपूर्ण कार्य किया है' ॥ ५—७ ॥

रामचन्द्रजीने भी उस कौएको देखा और उसपर यहां ही क्रोध किया। किन सौंकका बाण बनाकर उसे अहमस्व मन्त्रसे अधिष्ठित किया और उस कौएको लक्ष्य करके चला दिया। यह देख यह भवधीत होकर भागा। गावन्! कहते हैं, यह काक चालतामें हनुमा पुत्र जयन था, अतः भगवान् इन्द्रलोकमें शुभ गया। उसके साथ ही श्रीरामचन्द्रजीके उस प्रबलतित एवं देवीयमूर्ति याद्वाने भी उसका पोषण करते हुए इन्द्रलोकमें प्रवेश किया। यह सब यूनान्त जान, देवराज इन्द्रने देवताओंके साथ निलक्षण विचार किया तथा श्रीरामचन्द्रजीका अपराध करनेवाले उस दुष्ट पुत्रको बहासे निकाल दिया। यब सब देवताओंने उसे देवलोकसे बाहर कर दिया, तब यह पुनः जान श्रीरामचन्द्रजीकी ही लरणमें अपा और बोल—'महाकाशी श्रीराम! मैंने अज्ञानवश अपराध किया है, मुझे बचाइये' ॥ ८—१२ ॥

इति ब्रुवनं तं प्राह रामः कमललोचनः।
अमोरं च मैवास्त्रमङ्गमेकं प्रदद्धच्छ वै॥ १३

ततो जीवसि दुष्ट त्वपपकारो महान् कृतः।
इत्युक्तोऽसी स्वकं नेत्रयेकमस्त्राय दत्तवान्॥ १४

अस्त्रं तत्रेत्रमेकं तु भस्मीकृत्य समायदी।
ततः प्रभूति काकानां सर्वेषायेकनेत्रता॥ १५

चक्षुर्येकेन पश्यन्ति हेतुना तेन पार्थिव।
उपित्वा तत्र सुचिरं चित्रकृटे स राष्ट्रः॥ १६

जगाम दण्डकारण्यं नानामुनिविषयितम्।
सधारुकः सभार्यश्च तापसं वेष्मास्तितः॥ १७

पनुः पर्वतसुपाणिश्च सेषुधिक्षु महावलः।
ततो ददर्श तत्रस्थानम्युपक्षान्महामुर्मान्॥ १८

अशपकुट्टाननेकांश्च दन्तोल्खलिनस्तथा।
पश्चाग्रिमध्यगानन्यानन्यानुप्रतपश्चाग्न्॥ १९

तान् दृष्टा प्रणिपत्योच्चै राघस्तेष्वाभिनन्दितः।
ततोऽखिलं बनं दृष्टा रामः साक्षात्तनादीनः॥ २०

भ्रातुभार्यामहायश्च सम्प्रतस्ये महामतिः।
दर्शयित्वा तु सीतार्थं बनं कुसुमितं शुभम्॥ २१

नानाश्चर्यसमायुक्तं शनैर्गच्छन् स दृष्टवान्।
कृष्णाङ्गं रक्तनेत्रं तु स्थूलशीलसमानकम्॥ २२

शुभदण्डं महावाहुं संव्याघनशिरोरुहम्।
मेषस्वनं सापराधं शरं संधाय राघवः॥ २३

विष्वाध राक्षसं क्रोधाङ्गक्षमणेन सह प्रभुः।
अन्यैवव्ययं हत्या तं गिरिगते महातनुम्॥ २४

इस प्रकार कहते हुए जयन्तसे कमललोचन श्रीरामने कहा—‘ओर दुष्ट! मेरा अस्त्र अमोर है, अतः इसके लिये अपना कोई एक अङ्ग दे दें; तभी तु जीवित रह सकता है; क्योंकि तूने बहुत बड़ा अपराध किया है।’ उनके बों कहनेपर उसने श्रीरामके उस बाणके लिये अपना एक नेत्र दे दिया। उसके एक नेत्रको भस्म करके वह अस्त्र लौट आया। उसी समयसे सभी कोई एक नेत्रवाले हो गये। राजन्! इसी कारण वे एक औंछासे ही देखते हैं॥ १३—१५॥

श्रीरामचन्द्रकी अपने भाई और पक्षीके गाथ विष्वाधन किंवद्दन्तम् निकास करनेके अनन्तर वहाँसे अपेक्ष मुनियोंद्वारा सेवित दण्डकारण्यको चल दिये। उस समय ये तपस्त्री येषमें थे, उनको हाथमें धनुष और बाण थे तथा गोलघर तरकस थैं। यहीं जानेपर महाबलवान् श्रीरामने उस उनमें गहनेवाले कहे—‘यहें मुनियोंका दाहन किया, जिनमेंसे कहुं लोग केवल जलका आहार करनेवाले थे। कितने ही दनहोने होनेसे पलघरपर कूट पीसकर भाहार रुहण करते, इसलिये ‘अशमकुट’ कहताते थे। कुछ तपस्त्री दौतोंसे ही ओरखलीका बाम लेनेवाले होनेसे ‘दनोलूग्गली’ कहे जाते थे। कुछ चौथ अशिष्योंके चीजमें बैठकर तप करते थे और कुछ चतुर्थ प्रसाद से भी उग्र तपस्यामें तत्त्वर थे। उनका दहन उनके श्रीरामने उन्हें साक्षात् प्रणाम किया और उन्होंने भी उनका अभिनन्दन किया॥ १६—१९॥

तपश्चात् साक्षात् विष्वाधनलय महामति भगवान् श्रीराम रहाँकि समरत जनका अवलोकन करके अपनी भायां और भद्रोंके स्वाम भागे चढ़े। वे सीताबीकी फूलोंमें सुशोभित नष्ट नाना आकृत्योंसे युक्त सुन्दर जन दिखाते हुए जिस समय धीरे-धीरे जा रहे थे, उसी समय उन्होंने सामने एक राक्षस देखा, जिसका शरोर ज्ञाता और नेत्र लाल थे। वह पर्वतके समान स्थूल था। उसकी दाढ़ें चमकोली, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और केश मंध्याकालिक मेघके समान लाल थे। वह अनशोर गर्जना करता हुआ सदा दृष्टिरोका अपकार किया करता था। उसे देखते ही लक्षणके साथ श्रीरामचन्द्रकीने भ्रुवपर बाण चढ़ाया तथा उस घोर गङ्गासको, जो दूसरोंसे नहीं मारा जा सकता था, बींधकर भार डाला। इस प्रकार उसका वध करके उन्होंने उस महाकार राक्षसको लाशको पर्वतके खंडमें डाल दिया

शिलाभिष्ठाद्य गतवाऽशरभङ्गाश्रमं ततः ।
तं नत्वा तत्र विश्रम्य तत्कथातुष्मानसः ॥ २५
तीक्ष्णाश्रममुपागम्य दृष्टवांस्तं महामुनिम् ।
तेनादिष्टेन मार्गेण गत्वागस्त्यं ददर्श ह ॥ २६
खड्गं तु विमलं तस्मादवाप रथुनन्दनः ।
इषुधि चाक्षयशरं चापं चैव तु वैष्णवम् ॥ २७
ततोऽगस्त्याश्रमाद्रामो भ्रातुभार्यासमन्वितः ।
गोदावर्याः समीपे तु पञ्चवट्यामुवास सः ॥ २८
ततो जटायुरभ्येत्य रामं कमललोचनम् ।
नत्वा स्वकुलमाख्याय स्थितवान् गृधनायकः ॥ २९
रामोऽपि तत्र तं दृष्टा आत्मवृत्तं विशेषतः ।
कथयित्वा तु तं प्राह सीतां रक्ष महामते ॥ ३०
इत्युक्तोऽसी जटायुस्तु राममालिङ्गम्य सादरम् ।
कार्यार्थं तु गते रामे भ्रात्रा सह बनान्तरम् ॥ ३१
अहं रक्ष्यामि ते भार्या स्वीक्षितामत्र शोभन ।
इत्युक्त्वा गतवाऽत्राम्य गृधराजः स्वमाश्रमम् ॥ ३२
समीपे दक्षिणे भागे नानापक्षिनिषेषिते ।
वसन्तं राघवं तत्र सीतया सह सुन्दरम् ॥ ३३
मन्मथाकारसदृशं कथयन्ते महाकथा ।
कृत्वा पायामयं रूपं लावण्यगुणसंयुतम् ॥ ३४
मदनाक्रान्तहृदया कदाचिद्वावणामुजा ।
गायनी सुस्वरं गीतं शनैरागत्य राक्षसी ॥ ३५
ददर्श राममासीनं कानने सीतया सह ।
अथ शूर्पणखा घोरा मायारूपधरा शुभा ॥ ३६
निशशङ्का दुष्टचित्ता सा राघवं प्रत्यभाषत ।
भज मां कान्त कल्याणीं भजनीं कामिनीमिह ॥ ३७

और शिलाओंसे ढैककर वे बहाँसे शरभङ्गमुनिके आश्रमपर गये । वहाँ उन मुनिको प्रणाम करके उनके आश्रमपर कुछ देतक विश्राम किया और उनके साथ कथा-वार्ता करके वे मन-हो-मन बहुत प्रसन्न हुए ॥ २०—२५ ॥

बहाँसे सुतीक्ष्णमुनिके आश्रमपर जाकर श्रीरामने उन महर्षिका दर्शन किया और कहते हैं, उन्होंके बताये हुए मानसे जाकर वे अगस्त्यमुनिसे मिले । वहाँ श्रीरघुनाथजीने उनसे एक निर्मल खड्ग तथा वैष्णव धनुष प्राप्त किये और जिसमें रक्षा हुआ आप कभी समाप्त न हो—ऐसा उत्तरकाम भी दपलब्ध किया । तत्पश्चात् सीता और लक्ष्मणके साथ वे अगस्त्य-आश्रमसे आगे जाकर गोदावरीके निकट पञ्चवटीमें रहने लगे । वहाँ जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजीके पास गृधराज जटायु आये और उनसे अपने कुलका परिचय देकर खड़े हो गये । उन्हें वहाँ उपस्थित देख श्रीरामने भी अपना सारा वृत्तान्त विशेषक्षणसे जनाया और कहा—'महामते ! तुम सीताकी रक्षा करते रहो' ॥ २६—३० ॥

श्रीरामके यो बहुनेपर जटायुने आदरपूर्वक उनका आलिङ्गन किया और कहा—'श्रीराम ! जब कभी कार्यवश अपने भाईं लक्ष्मणके साथ आप किसी दूसरे बनमें चले जाएं, उस समय मैं ही आपकी भाविकी रक्षा करूँगा; अहं सुन्दर ! आप निश्चिन्त होकर यहाँ रहिये ।' श्रीरामसे यों कहकर गृधराज पास ही दक्षिण भागमें स्थित अपने आश्रमपर चले आये, जो नाना पक्षियोंहारा सेवित था ॥ ३१—३२ ॥

एक चार यह मुनकर कि कामदेवके समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी नाना प्रकारको महर्षपूर्ण कथाएँ कहते हुए अपनी भालों सीताके साथ पञ्चवटीमें निवास कर रहे हैं, राक्षसीं छोटी बहिन राक्षसीं शूर्पणखा भन-ही-मन कामसे पीड़ित हो गयी और लावण्य आदि गुणोंसे युक्त मायामय सुन्दर रूप बनाकर, मधुर स्वरमें गीत गाती हुई थीं—धोरे-धोरे वहाँ आयी । उसने बनमें सीताजीके साथ बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीको देखा । तब मायामय सुन्दर रूप धरण करनेवाली भयंकर राक्षसी दुष्टहृदया शूर्पणखाने निहर होकर श्रीरामसे कहा—'प्रियतम ! मैं आपको चाहनेवाली सुन्दरी दासी हूँ । आप मुझ सेविकाको स्वीकार करें ।

भजमानं त्यजेष्ठस्तु तस्य दोषो महान् भवेत् ।
इत्युक्तः शूर्पणखाया रामस्तामाह पार्थिवः ॥ ३८
कलत्रवानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे ।
इति श्रुत्वा ततः प्राह राक्षसी कापलपिणी ॥ ३९
अतीव निपुणा चाहं रतिकर्मणि राघव ।
त्यक्त्वनापनभिङ्गां त्वं सीतां मां भज शोभनाम् ॥ ४०
इत्याकर्ण्य वधः प्राह रामस्तां धर्मतत्परः ।
परस्तिव्यं च गच्छेऽहं त्वयितो गच्छ लक्ष्मणम् ॥ ४१
तस्य नात्र बने भाया त्यापसी संष्टिष्ठति ।
इत्युक्ता सा पुनः प्राह रामं राजीवलोचनम् ॥ ४२
यथा स्याक्षमणो भर्ता तथा त्वं देहि पत्रकम् ।
तथैव पुक्तवा भतिपान् रामः कमललोचनः ॥ ४३
छिन्नयस्या नासिकामिति भोक्तव्या नात्र संशयः ।
इति राष्ट्रो महाराजो लिख्य एवं प्रदत्तवान् ॥ ४४
सा गुहीत्वा तु तत्पत्रं गत्वा तस्मान्मुदान्विता ।
गत्वा दत्तवती तद्वाक्षमणाय महात्मने ॥ ४५
तां दृष्टा लक्ष्मणः प्राह राक्षसी कापलपिणीम् ।
न लक्ष्यं राघववचो भया तिष्ठात्यकर्मले ॥ ४६
तां प्रगृह्य ततः खडगमुद्यम्य विमलं सुधीः ।
तेन तत्कर्णनासां तु चिच्छेद तिलकापडवत् ॥ ४७
छिन्ननासा ततः सा तु रुदोद भृशदुःखिता ।
हा दशास्य मप्प भ्रातः सर्वदेवविमर्दक ॥ ४८
हा कष्टं कुम्भकण्ठायाता मे चापदा परा ।
हा हा कष्टं गुणनिधे विभीषणं महापते ॥ ४९
इत्येवमार्ता रुदती सा गत्वा खरदूषणी ।
त्रिशिरसं च सा दृष्टा निवेद्यात्यपराभवम् ॥ ५०

जो पुला मैकामें उपस्थित हुई रमणीय त्याग करता है, उसे बड़ा दोष लगता है' ॥ ३३—३७ ॥

शूर्पणखाके यों कहनेपर पृथ्वीपति ओरामचन्द्रजीने उससे कहा—'बाले! मेरे छोटे भाइके पास जाओ।' उनकी जात सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली उस राक्षसीने कहा—'राघव! मैं रति-कर्ममें बहुत निपुण हूं और यह सांता अनभिज्ञ है; अतः इसे त्यागकर मुझ सुन्दरीको ही स्वीकार करो' ॥ ३८—३९ ॥

उसको यह जात सुनकर धर्मपरायण श्रीरामने कहा—'मैं परायी स्वीके साथ कोई समर्पक नहीं रखता। तुम यहाँसे लक्ष्मणके किले जाओ। यहाँ बनमें उसकी स्त्री नहीं है; अतः जापद यह तुम्हें स्वीकार कर लेगा।' उनके यों कहनेपर शूर्पणखा पुनः कमलनयन श्रीरामसे बोली—'अपहर, आप एक ऐसा पत्र लिखकर दें, जिससे लक्ष्मण भेर भर्ता (भरण पोषणका भार लेनेवाला) हो सके।' तथा युद्धमान् कमलनयन भहराज श्रीरामने 'बहुत अच्छा' कहकर एक पत्र लिखा और उसे दे दिया। उसमें लिखा था—'लक्ष्मण! तुम इसकी नाक काट लो; निस्तंदेह ऐसा ही करना। यों ही न छोड़ना' ॥ ४२—४४ ॥

शूर्पणखा वह पत्र लेकर प्रसन्नतापूर्वक बहाँसे गयी। जाकर उसने महात्मा लक्ष्मणको उसी रूपमें यह पत्र दे दिया। उस कामकालिणी राक्षसीको देखकर लक्ष्मणने उससे कहा—'कलिकुनी! ठहर, मैं ओरामचन्द्रजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता।' यों कहकर शूर्पणमान् लक्ष्मणने उसे पकड़ लिया और एक चमचमाती हुई लक्ष्मण उनकर तिलबूँझे काढ़ (चौरो) -के मध्यम उसकी नाक और जान काट लिये ॥ ४५—४७ ॥

नाक कट जानेपर यह बहुत हुँ खी हो रोने तथा चिलाप करने लगी—'हा! समस्त देवताओंका जान मर्दन करनेवाले मेरे भाई राघव। आज मुझपर महान् कष्ट आ गया। हा भाई कुम्भकर्ण! मुझपर बड़ी भारी विषयति हा पड़ो। हा गुणनिधे महामते विभीषण! मुझे महान् दुःख देखना पड़ा' ॥ ४८—४९ ॥

इस प्रकार आर्तभावसे रोदन करती हुई वह खर-दूषण और प्रिशिराके चास गयों तथा उनसे अपने अपमानको जात निवेदन करके बोली—

राममाह जनस्थाने भात्रा सह महाबलम्।
ज्ञात्वा ते राघवं कुद्दाः प्रेषयामासुरुर्जितान्॥ ५१
चतुर्दशसहस्राणि राक्षसानां खलीयसाम्।
अग्ने निजामुस्तेनैव रक्षसां नायकास्त्रयः॥ ५२
रावणेन नियुक्तास्ते पुरुषं तु महाबलाः।
महाबलपरीबारा जनस्थानमुपागताः॥ ५३
कोधेन महता॒ऽविष्टा दृष्टा तां छित्रनासिकाम्।
रुदतीमश्रुदिधाङ्गी भगिनीं रावणस्य तु॥ ५४
रामोऽपि तद्वलं दृष्टा राक्षसानां खलीयसाम्।
संस्थाप्य लक्ष्मणं तत्र सीताया रक्षणं प्रति॥ ५५
गत्वा तु प्रहितैस्तत्र राक्षसैर्बलदर्पितः।
चतुर्दशसहस्रं तु राक्षसानां महाबलम्॥ ५६
क्षणेन निहतं तेन शैररशिरिश्चोपयैः।
खरश्च निहतस्तेन दूषणश्च महाबलः॥ ५७
प्रिशिराश्च महारोषाद् रणे रामेण पातितः।
हत्वा तान् राक्षसान् दुष्टान् रामक्षुग्रप्रभाविष्टः॥ ५८
शूर्पणखा च रुदती रावणानिकमागता।
छित्रमासां च तां दृष्टा रावणो भगिनीं तदा॥ ५९
पारीचं प्राह दुर्युक्तिः सीताहरणकर्मणि।
पुष्पकेण विमानेन गत्वाहं त्वं च मातुल॥ ६०
जनस्थानसमीपे तु स्थित्वा तत्र यमाह्या।
सीतर्णपुग्रस्त्रं त्वमास्थाय तु शनैः शनैः॥ ६१
गच्छ त्वं तत्र कायार्थं यत्र सीता व्यवस्थिता।
दृष्टा सा भृगयोत्ते त्वां सीतर्णं त्वयि मातुल॥ ६२
स्मृहां करिष्यते रामं प्रेषयिष्यति बन्धने।
तद्वाक्यातत्र गच्छन्तं धावस्व गहने जने॥ ६३
लक्ष्मणस्यापकर्थार्थं वक्तव्यं वागुदीरणम्।
ततः पुष्पकमारुद्धा मायारूपेण चाप्यहम्॥ ६४
तां सीतामहमानेष्ये तस्यामासक्तमानसः।
त्वमपि स्वेच्छया पक्षादागमिष्यसि शोभन॥ ६५

‘महाबली ओरम इस समय जनस्थानमें अपने भाई लक्ष्मणके साथ रहते हैं।’ ओरामका पता पाकर वे तीनों बहुत ही कुपित हुए और उनके साथ युद्धके लिये उन्होंने खीदह हजार प्रकाशों एवं बलवान् राक्षसोंको भेजा तथा वे तीनों निश्चर-नाशक स्वयं भी उस सेनाके साथ आगे-आगे चले। उन महाबलवान् राक्षसोंको रावणने वहाँ पहलेरे ही नियुक्त कर रखा था। वे बहुत बड़ी सेनाके साथ जनस्थानमें आये। रावणकी अहिन शूर्पणखा नाक कट जानेसे बहुत रो रही थी। उसके सारे अङ्ग औंसुओंसे भोग गये थे। उसकी बह दुर्दशा देख वे खर-दूषण आदि राहस्य अस्त्यन कुपित हो उठे थे॥ ५०—५४॥

ओरामने भी बलवान् राक्षसोंकी उस सेनाको देख लक्ष्मणको सीताकी रक्षामें उसी स्थानमें रोक दिया और अपने राम युद्धके लिये वहाँ भेजे गये उन बलाधिपती राक्षसोंके साथ युद्ध आस्थ कर दिया। अग्निकी ज्वलाके समान दीक्षिणान् वाणींद्वारा उन्होंने खीदह हजार राक्षसोंकी प्रबल सेनाको रुक्षभरमें मार गिराया। साथ ही खर और महाबली दूषणका भी वध किया। इसी प्रकार श्रिशिराको भी श्रीरामने अस्त्यन दोषपूर्वक राणकेष्ठमें मार गिराया। उस तरह उन सभी दुष्ट राक्षसोंका वध करके श्रीरामनन्दजी अपने आङ्गमें स्तौर आये॥ ५५—५८॥

तब शूर्पणखा रोती हुई रावणके पास आयी। दुर्युक्त रावणने अपनी अहिनकी नाक कटी देख सीताको हर सानेके ऊंटरक्षमें सीताचासे कहा—‘मामा! हम और तुम पुष्पक विमानसे चलकर जनस्थानके पास उहरे। वहाँसे तुम मेरी अज्ञानके अनुसार मौनेके भूगका थेष भारणकर थोर-थोर मेरा कार्य सिद्ध करनेके लिये उस स्थानपर जाना, जहाँ सीता रहती है। मामा! वह जब तुम्हें सुषर्णपयं पृणशाकके रूपमें देखेंगो, तब तुम्हें लैनेकी इच्छा करेंगी और श्रीरामको तुम्हें चौथ लानेके लिये भेजेंगी। जब सीताकी चात मानकर वे तुम्हें चौथने चलें, तब तुम उनके सामनेसे गहन रूपमें भाग जाना। फिर लक्ष्मणको भी उधर ही खीचनेके लिये उच्चस्थरसे [हा भाईं लक्ष्मण!] कालर यथन बोलना। तत्प्रकाशत् में भी मायामय वेष चनाकर, पुष्पक विमानपर आसृष्ट हो, उस अस्त्रहाया सीताको हर साकेंगा; क्योंकि मेरा भन उसमें आसृत हो गया है। फिर भद्र! तुम भी स्वेच्छानुसार चले आजा॥ ६९—६५॥

इत्युक्ते रावणोनाथ मारीचो वाक्यमद्वीतीत्।
त्वप्रेव गच्छ पापितु नाहं गच्छामि तत्र है॥ ६६

पुरैवानेन रामेण व्यथितोऽहं मुनेमर्खो।
इत्युक्तवति मारीचे रावणः क्रोधमूर्च्छितः॥ ६७

मारीचं हनुयारेभे मारीचोऽज्याह रावणम्।
तत्र हस्तवधाद्वीर रामेण मरणं चरम्॥ ६८

अहं गमिष्यामि तत्र यत्र त्वं नेतुपिच्छुसि।
अथ युध्यकमारुद्धा जनस्यानभुपापतः॥ ६९

मारीचसात्र सीवर्णं मृगमास्थाय चायतः।
जगाम यत्र सा सीता वर्तते जनकात्मजा॥ ७०

सीवर्णं मृगपोतं तु दृष्टा सीता यशस्विनी।
भाविकर्मवशाद्राममुखाच पतिमात्रमनः॥ ७१

गृहीत्वा देहि सीवर्णं मृगपोतं नृपात्मज।
अयोध्यायां तु संदेहे कीडनार्थमिदं मम॥ ७२

तपैवमुक्तो रामस्तु लक्ष्मणं स्वाप्य तत्र है।
रक्षणार्थं तु सीताया गतोऽस्मी मृगपृष्ठतः॥ ७३

रामेण चानुयातोऽस्मी अभ्यधावद्वने मृगः।
ततः शरेण विव्याध रामसां मृगपोतकम्॥ ७४

हा लक्ष्मणेति चोक्त्वासी निपात महीतले।
मारीचः पर्वताकारस्तेन नहो बभूव सः॥ ७५

आकर्ष्य रुदतः शब्दं सीता लक्ष्मणमद्वीतीत्।
गच्छ लक्ष्मणं पुत्रं त्वं यत्रायं शब्दं उत्तितः॥ ७६

भातुर्ज्येष्ठस्य तत्त्वं है रुदतः श्रूयते अविनिः।
प्रायो रामस्य संदेहं लक्ष्येऽहं महात्मनः॥ ७७

इत्युक्तः स तथा प्राह लक्ष्मणस्तामनिन्दिताम्।
न हि रामस्य संदेहो न भयं विद्यते क्वचित्॥ ७८

रावणके यों समझानेपर मारीचने कहा—'अरे पाच्छ! तुम्हीं जाओ, मैं वहां नहीं जाऊँगा। मैं तो विश्वमित्रमुनिके यज्ञमें पहले ही श्रीरामके हाथों भरी कह ठठ चुका हूँ।' चारोंके यों कहनेपर शुक्र क्रोधसे मूर्च्छित हो उसे मार ढालनेको उद्यत हो गया। तब मारीचने उससे कहा—'बीर! तुम्हारे हाथसे बध हो, इसकी अपेक्षा तो श्रीरामके हाथसे ही मरना अच्छा है। तुम मुझे जहाँ से जलना चाहते हो, वहाँ अब मैं अवश्य चलूँगा'॥ ६६—६८॥

यह सुनकर वह युध्यक विमावपर आरुद्ध हो उसके साथ जनस्यानके निकट आया। वहाँ पहुँचकर मारीच मूर्च्छिमय मृगका रूप धारणकर, जहाँ जनकननिदीनी सीता विद्यमान थीं, वहाँ उनके सामने गया। उस मूर्च्छिमय मृगकिंशोरको देखकर वशिष्ठनी सीता भक्तों कमंके बड़ीभूत हो अपने पाति धर्मवान् श्रीरामसे बोली—'राजपुत्र! आप उस सूर्योर्धम मृगशब्दको पकड़कर मेरे लिये ला दीजिये। यह अदोषामें मेरे महलके भीतर झौङा-विनोदके लिये रहेगा'॥ ६९—७२॥

सीताके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनको रक्षाके लिये लक्ष्मणको वहाँ रख दिया और स्वयं उस पूर्णके पीछे चले। श्रीरामके पीछा चलनेपर वह मुग बनकी और भागा, तब श्रीरामने उस मृगशब्दको चालसे बीध ढाला। मारीच 'हा! लक्ष्मण!'—यों कहकर फर्वताकार शरीरसे पृथ्वीपर गिरा और प्राणहीन हो गया। ऐसे हुए भारीबोले उस आहंकारको सुनकर सीताने लक्ष्मणसे कहा—'कलस लक्ष्मण! जहाँसे यह आवज्ज आयी है, वहाँ तुम भी जाओ। निश्चय ही तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राताके रोटनका शब्द कानोंमें आ रहा है, मूँझे प्रायः महाभा श्रीरामका श्रीवन संशयमें पड़ा दिखायी देता है'॥ ७३—७५॥

सीताकी यह बात सुनकर उन अनिन्दिता देवोंसे लक्ष्मणने कहा—'देवि! श्रीरामके लिये कोई संदेहकी बात नहीं है, उन्हें कहाँ भी भय नहीं है।'

इति शुवाणं तं सीता भाविकमर्बलाद्वतम्।
लक्ष्मणं प्राह वैदेही विरुद्धवचनं तदा॥७९
मृते रामे तु मापिच्छन्नतस्त्वं न गमिष्यसि।
इत्युक्तः स विनीतात्मा असहन्तप्रियं वचः॥८०
जगाम राममन्वेष्टुं तदा पार्थिवनन्दनः।
संन्यासवेषपास्थाय रावणोऽपि दुरात्मवान्॥८१
स सीतापार्श्वमासाद्य वचनं चेदमुक्तवान्।
आगतो भरतः श्रीमानयोद्याया महामतिः॥८२
रामेण सह सम्भाष्य स्थितवांस्तत्र कानने।
मां च प्रेषितवान् रामो विमानमिदमारुह॥८३
अयोध्यां याति रामस्तु भरतेन प्रसादितः।
मुगबालं तु वैदेहि क्रीडार्थं ते गृहीतवान्॥८४
क्लेशितासि महारथ्ये बहुकालं त्वमीदृशप्।
माप्नामराज्यस्ते भर्ता रामः स रुचिराननः॥८५
लक्ष्मणश्च विनीतात्मा विमानमिदमारुह।
इत्युक्ता सा तथा गत्वा नीता तेन महात्मना॥८६
आरुरोह विमानं तु छन्नना प्रेरिता सती।
तजगाम ततः श्रीघ्रं विमानं दक्षिणां दिशम्॥८७
ततः सीता सुदुःखार्ता विललाप सुदुःखिता।
विमाने खेऽपि रोदन्त्याश्चके स्पर्शं न राक्षसः॥८८
रावणः स्वेन रूपेण बभूवाथ महात्मुः।
दशग्रीवं महाकार्यं दृष्टा सीता सुदुःखिता॥८९
हा राम वक्षिताद्याहं केनापिच्छन्नरूपिणा।
रक्षसा घोररूपेण त्रायस्वेति भयार्दिता॥९०
हे लक्ष्मण महाबाहो मां हि दुष्टेन रक्षसा।
द्रुतमागत्य रक्षस्व नीयमानामथाकुलाम्॥९१

यों कहते हुए लक्ष्मणसे उस समय विदेहकुमारी सीताने कुछ विरुद्ध वचन कहा, जो भवितव्यताकी प्रेरणासे उनके मुखसे सहसा निकल पड़ा था। वे बोलीं—‘मैं जानती हूं, तुम श्रीरामके मर जानेपर मुझे अपनी बनाना चाहते हो; इसोसे इस समय वहाँ नहीं जा रहे हो।’ सीताके यों कहनेपर विनयशील राजकुमार लक्ष्मण उस अप्रिय वचनको न सह सके और तत्काल ही श्रीरामचन्द्रजीकी स्तोत्रमें चल पड़े॥७८—८०%,॥

इसी समय दुरात्मा रावण भी संन्यासीका लेख बनाकर सीताके पास आया और यों बोला—‘देवि! अयोध्यासे महाबुद्धिमान् भरतजी आये हैं। वे श्रीरामचन्द्रजीके साथ आत्मीय करके वहाँ काननमें ठहरे हुए हैं। श्रीरामचन्द्रजीने मुझे तुम्हें बुलानेके लिये यहाँ भेजा है। तुम इस विमानपर चढ़ चलो। भरतजीने बनाकर श्रीरामको अयोध्या चलनेके लिये राजी कर लिया है, अतः वे अयोध्या जा रहे हैं। तैरेहि! तुम्हारी जीड़ा—विनोदके लिये उन्होंने उस मृग-सायकको भी पकड़ लिया है। अहो! तुमने इस विशाल बनमें बहुत दिनोंतक ऐसा महान् कष्ट उठाया है। अब तुम्हारे स्वामी सुन्दर मुखबाले श्रीरामचन्द्रजी तथा उनके विनयशील भाई लक्ष्मण भी राज्यप्राप्ति कर चुके हैं। अतः तुम उनके पास चलनेके लिये इस विमानपर चढ़ जाओ।’॥८१—८५%,॥

उसके यों कहनेपर उसकी कपटपूर्ण जातोंसे प्रेरित हो सती सीता वह सब सत्य मानकर उस तथाकथित महारम्भके साथ विमानके निकट गयीं और उसपर आळड़ हो गयीं। तब वह विमान शीप्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ा। यह देख सीता अत्यन्त शोकसे पीड़ित हो, अत्यन्त दुःखसे विलाप करने लगीं। यद्यपि सीता आकाशमें उसके अपने ही विमानपर बैठी थी, तथापि रावणने वहाँ रोती हुई सीताका स्पर्श नहीं किया। अब रावण अपने असली रूपमें आ गया। उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया। दस मस्तकवाले उस विशालकाय गलसपर दृष्टि पढ़ते ही सीता अत्यन्त दुःखमें दूर गयीं और विलाप करने लगीं—‘हाय राम! किसी कपटवेधारी भयानक राक्षसमें आज मुझे धोखा दिया है, मैं भयसे पीड़ित हो रही हूं, मुझे बचाओ। हे महाबाहु लक्ष्मण! मुझे दृष्टि रुक्षस हरकर लिये जा रहा है। मैं भयसे व्याकुल हूं तुम जल्दी आकर मुझ असहयोगी रक्षा करो।’॥८६—९१॥

एवं प्रलपमानायाः सीतायास्तन्महत्स्वनम्।
आकर्णर्य गृध्रगाजस्तु जटायुस्तत्र चागतः ॥ १२

तिष्ठ रावण दुष्टात्मन् मुच्छ मुच्छात्र मैथिलीम्।
इत्युक्त्वा युयुधे तेन जटायुस्तत्र वीर्यवान् ॥ १३

पक्षाभ्यां ताढ्यामास जटायुस्तस्य वक्षसि।
ताढ्यन्तं तु तं पत्वा बलवानिति रावणः ॥ १४

तुण्डचम्हुप्रहरैस्तु भूषा तेन प्रपीडितः।
तत उत्थाप्य वेगेन चन्द्रहासमसिं महत् ॥ १५

जघान तेन दुष्टात्मा जटायुं धर्षचारिणम्।
निपपात महीपुष्टे जटायुः क्षीणचेतनः ॥ १६

उत्थाय च दशग्रीवं दुष्टात्मन् न त्वया हतः।
चन्द्रहासस्य वीर्येण हतोऽहं राक्षसाधम् ॥ १७

निरायुधं को हनेम्भूत सायुधस्वामृते जनः।
सीतापहरणं विद्धि मृत्युस्ते दुष्ट राक्षस ॥ १८

दुष्ट रावण रामस्वां वधिष्यति न संशयः।
रुदती दुःखशोकार्ता जटायुं प्राह मैथिली ॥ १९

मत्कृते मरणं यस्यात्क्या प्राप्तं द्विजोनम्।
तस्माद्वामप्रसादेन विष्णुलोकमवाप्यसि ॥ २००

यावद्रामेण सङ्घस्ते भविष्यति महाद्विज।
तावन्तिष्ठन्तु ते प्राणा इत्युक्त्वा तु खण्गोत्तमम् ॥ २०१

ततस्तान्यर्पितान्यङ्गाद्यूषणानि विमुच्य सा।
शीघ्रं निवध्य वस्त्रेण रामहस्तं गमिष्यत ॥ २०२

इत्युक्त्वा पातयामास भूमी सीता सुदुःखिता।
एवं हृत्वा स सीतां तु जटायुं पात्य भूतले ॥ २०३

इस प्रकार उज्ज्वरसे विलाप करती हुई सीताके उस
महन् आतंनादको सुनकर गृध्रगाज जटायु वहाँ आ पहुँचे
(और बोले—) ‘ओ दुष्टात्मा रावण ! ठहर जा ; तु सीताको
छोड़ दे, छोड़ दे ।’ यह कहकर पराक्रमी जटायु उसके
साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने अपने हाँनों पंखोंसे रावणकी
जातीमें चोट करी। उनको इस प्रकार प्रहार करते देख
रावणने समझ लिया कि ‘यह पक्षी बड़ा बलवान् है।’ जब
जटायुके मुख और चौंचको मारसे वह बहुत पीड़ित हो
गया, तब उस दुष्टे बड़े वेगसे ‘चन्द्रहास’ नामक विमाल
खड़ग उठाया और उसमे धर्मलिपा जटायुपर आतक प्रहार
किया। इससे उनकी चेतना क्षीण हो गयी और वे पृथ्वीपर
गिर गए ॥ १२—१६ ॥

उस समय उन्होंने रावणसे कहा—‘ओ दुष्टात्मन् !
ओ नीच राक्षस ! मुझे तूने नहीं मारा है। मैं तो तेरे
'चन्द्रहास' नामक खड़गके प्रभावसे मारा गया हूँ। और
मूर्ख ! तेरे सिवा दूसरा कौन शस्त्रधारी योद्धा होगा, जो
किसी विहृतेपर हाधिष्यार चलायेगा ? ओ दुष्ट राक्षस !
तू यह जान ले कि सीताका हर ले जाना तेरी भीत
है। दुष्टात्मा रावण ! विस्मितेह श्रीरामचन्द्रजी तेरा वध
कर डालेंगे’ ॥ १७—१८ ॥

जटायुके मारे जानेसे आत्मन दुःख और शोकसे
पीड़ित हुई मिथिलेशकुमारी सीता उनसे रोकर बोली—
‘हे पक्षिराज ! तुमने मेरे लिये मृत्युका वरण किया है,
इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे विष्णुलोकको
प्राप्त होओगे। खगश्रृङ्ख ! जबतक श्रीरामचन्द्रजीसे तुम्हारी
भेट न हो, तबतक तुम्हारे प्राण सारीरमें ही रहें।’ उन
पक्षिराजसे यों कहकर अत्यन्त दुःखिनी सीताने अपने
शरीरसे धारण किये हुए समस्त आभूषणोंको उतारा
और शीघ्रतापूर्वक वस्त्रमें बौधकर कहा—‘तुम सब
के-सब श्रीरामके हाथमें पहुँच जाओगे।’ और तब उन्हें
भूमिपर गिरा दिया ॥ १९—२०२ ॥

इस प्रकार सीताको हरकर तथा जटायुके धराशायी करके

पृथकेण गतः शीघ्रं लङ्घां दुष्टनेशाचरः ।
अशोकविनिकामद्ये स्थापयित्वा स मैथिलीप् ॥ १०४

इमामत्रैव रक्षणं राक्षस्यो खिकृताननाः ।
इत्यादिश्य गृहं यातो रावणो राक्षसेभ्वः ॥ १०५

लङ्घानिवासिनश्चोचुरेकान्तं च परस्परम् ।
अस्याः पुर्या विनाशार्थं स्थापितेयं दुरात्मना ॥ १०६

राक्षसीभिर्विरुद्धाभी रक्ष्यमाणा समन्ततः ।
सीता च दुःखिता तत्र स्मरन्ती रामयेव सा ॥ १०७

उवास सा सुदुःखाती दुःखिता रुदती भृशम् ।
यथा ज्ञानखले देवी हंसयाना सारस्वती ॥ १०८

सुग्रीवभृत्या हरयश्चतुरश्च यदुच्छया ।
वस्त्रबद्धं तयोत्सुहं गृहीत्वा भूषणं हुतम् ॥ १०९

स्वभ्रते विनिवेदोचुः सुग्रीवाय महात्मने ।
अरण्येऽभृत्यमहायुद्धे जटायो रावणास्य च ॥ ११०

अथ रामश्च तं हत्वा मारीचं माययाऽगतम् ।
निवृत्तो लक्ष्मणं दृष्टा तेन गत्वा स्वयान्नमम् ॥ १११

सीतामपश्यन्दुःखातः प्ररुदो च स राघवः ।
लक्ष्मणश्च महातेजा रुदो भृशदुःखितः ॥ ११२

बहुप्रकारमस्वस्यं रुदन्ते राघवं तदा ।
भूतले पतितं धीमानुत्थाप्याश्चास्य लक्ष्मणः ॥ ११३

उवाच वचनं प्राप्तं तदा यत्तच्छुण्ण्य मे ।
अतिवेलं महाराज न शोकं कर्तुमहंसि ॥ ११४

उत्तिष्ठोतिष्ठ शीघ्रं त्वं सीतां मृगयितुं प्रभो ।
इत्येवं वदता तेन लक्ष्मणेन महात्मना ॥ ११५

उत्थापितो नरयतिर्दुःखितो दुःखितेन तु ।
भ्रात्रा सह जगामाथ सीतां मृगयितुं वनम् ॥ ११६

वह दुष्ट निशाचर पुष्पक विमानद्वारा शीघ्र ही लङ्घामें जा पहुँचा । वहाँ निधिलेखकुमारों सीताको अशोक-वाटिकामें रखकर राक्षसियोंसे बोला—‘भद्रकर मुख्याली निशाचरियो ! तुम सोग यहीं सीताको रखवाली करो ।’ यह आदेश दे वह राक्षसराज रावण अपने भवनमें चला गया । उस समय लङ्घानिवासी एकान्तमें परस्पर मिलकर बातें करने लगे—‘दुरात्मा रावणने इस नगरीका विनाश करनेके लिये ही सीताको यहाँ ला रखा है’ ॥ १०३—१०६ ॥

विकट आकाशवाली रात्रिभिर्योद्धारा सब ओरसे सुरक्षित हुई सीता वहाँ दुःखमग्न हो केवल श्रीरामचन्द्रजीका ही चिन्तन करती हुई रहने लगी । वे सदा अत्यन्त शोकार्थी हो चुके दुःखके साथ बहुत रोटन किया करती थीं । राघवके बहामें पढ़ी हुई सीता ज्ञानको अपनेतक ही सीमित रखनेवाले कृष्णके अधीन हुई हंसवाहिनी सरस्वतीके समान वहाँ शोधा नहीं पाती थीं ॥ १०७—१०८ ॥

सीताने वस्त्रमें बैथे हुए अपने जिन आभूषणोंकी नीचे गिरा दिया था, उन्हें अकास्मात् भूमनेके लिये आये हुए चार चावरोंमें, जो जानराज सुग्रीवके सेवक थे, पाया और शीघ्रतापूर्वक से जाकर अपने स्वामी महात्मा सुग्रीवको अपित फरके यह समाचार भी सुनाया कि ‘आज बनके भीतर जटायु और रावणमें बहा भारी युद्ध हुआ था’ । इधर, जब श्रीरामचन्द्रजी मायाभूत बैप बनाकर आये हुए उस मारीचको मारकर सीट पड़े, तब मार्गमें लक्ष्मणको दैत्यकर उनके साथ अपने आश्रमपर आये; किंतु वहाँ सीताको न देखकर वे दुःखसे व्यक्तित ही पूट पूटकर रोने लगे । महातेजस्वी लक्ष्मण भी अत्यन्त दुःखी होकर रोटन करने लगे । उस समय श्रीरामचन्द्रजीको सर्वथा अस्वस्थ होकर रोते और पृष्ठांपर गिरा देख बुद्धिमान् लक्ष्मणने उन्हें उठाकर भीरु बैथाया ॥ १०९—११३ ॥

राजन् ! उस समय लक्ष्मणने उनसे जो समयोधित बहा कही थी, वह तुम मुझसे सुनो । (लक्ष्मण बोले—) ‘महायज्ञ । आप अधिक शोक न करें । प्रभो ! अब सीताकी खोज करनेके लिये आप शीघ्रतापूर्वक उठिये, उठिये ।’ इत्यादि बातें कहते हुए दुःखी महात्मा लक्ष्मणने अपने शोक-प्रस्त भाई राजा रामचन्द्रजीको उठाया और उनके साथ स्वयं सीताको खोज करनेके लिये बनमें चले ॥ ११४—११६ ॥

वनानि सर्वाणि विशेष्य राघवो
गिरीन् समस्तान् गिरिसानुगोचरान्।
तथा मुनीनामपि चाश्रमान् बहुं-
स्तुणादिवालीगहनेषु भूमिषु॥ ११७

नदीतटे भूविवरे गुहायां
निरीक्षमाणोऽपि महानुभावः।
प्रियामपश्यन् भृशदुःखितस्तदा
जटायुषं वीक्ष्य च चातितं नृपः॥ ११८

अहो भवान् केन हतस्त्वपीदुशीं
दशामवासोऽसि मृतोऽसि जीवसि।
ममाश सर्वं समदुःखितस्य भोः
पत्नीविद्योगादिह चागतस्य वै॥ ११९

इत्युक्तमात्रे विहगोऽथ कृच्छा-
दुवाच वाचं पधुरां तदानीम्।
शृणुच्य राजन् रम मुत्तमत्र
बद्धामि दुष्टं च कृतं च मथः॥ १२०

दशाननस्तामपनीय मायथा
सीतां समारोप्य विमानपुत्रम्।
जगाम खे दक्षिणदिशमुखोऽसौ
सीता च माता विललाप दुःखिता॥ १२१

आकर्षण्य सीतास्वनमागतोऽहं
सीतां विमोक्तुं स्वबलेन राघव।
युद्धं च तेनाहमतीव कृत्वा
हतः पुनः खड्गबलेन रक्षसा॥ १२२

वैदेहिवाक्यादिह जीवता मथा
दृष्टो भवान् स्वर्गमितो गमिष्ये।
मा राम शोकं कुरु भूमिपाल
जाह्य दुष्टं सगणं तु नैश्चितम्॥ १२३

रामो जटायुषेत्युक्तः पुनस्तं चाह शोकतः।
स्वस्त्यस्तु ते द्विजवर गतिस्तु परमास्तु ते॥ १२४

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने सारे बनोंको छाला, समस्त चक्रंतों तथा उनकी चोटियोंपर जानेकाले मार्गोंका भी निरीक्षण कर लिया। इसी प्रकार उन्हेंने मुनियोंके बहुत-से आत्रम भी देखे; तुण एवं लक्षाओंसे आच्छादित वनस्थलियों तथा खुले मैटानोंमें, नदीके किनारे, गड्ढोंमें और कन्दराओंमें देखनेपर भी जब उन महानुभावको अपनी प्रिया सीताका पता नहीं लगा, तब वे बहुत दुःखी हुए। उसी समय राजा रमचन्द्रजीने एवज्ञान भारे गये जटायुको देखा और कहा—‘अहो! आपको किसने भाग? आह! आप ऐसी दुर्दशाको पहुंच चुके हैं? पता नहीं, जीवित हैं या मर गये। पक्षोंके विद्योगवश आपके समाज हो दुःखी होकर यहाँ आये हुए मुझ रामके लिये अज्ञात आप हीं सब कुछ हो’॥ ११७—११९॥

भगवान् रामके इतना कहते ही वह पक्षों उस समय बड़े कहसे मधुर वाणीमें बोला—‘राजन्! इस समय मैंने जो कुछ देखा है और तत्काल ही उसके लिये जो कुछ किया है, वह मेरा सारा वृक्षान्त आप भूनें। दशमुख रावणने मायासे सीताका अपहरण करके उसे तत्तम विमानपर चढ़ा लिया और आकाशमार्गसे वह दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया। उस समय माता सीता अब दुःखके साथ विलाप कर रही थीं। रथुनन्दन! सीताकी आवाज सुनकर मैंने उन्हें अपने ही बलसे छुड़ानेके लिये रावणके साथ महान् युद्ध लेड दिया। किंतु उस राक्षसने अपनी तलवारके बलसे मुझे मार डाला। विदेहकुमारी सीताके ही आशीर्वादसे मैं अभीतक जीवित था, अब यहाँसे स्वर्गलोक-को जाऊँगा। पृथ्वीपालक राम! आप शोक न कीजिये, अब तो उस दुष्ट राक्षसको उसके गणोंसहित मार ही डालिये’॥ १२०—१२३॥

जटायुके यों कहनेपर श्रीरामने पुनः शोकपूर्वक उनसे कहा—‘पक्षिराज! आपका कल्याण हो और आपको उत्तम गति मिले।’

ततो जटायुः स्वं देहं विहाय गतवान्दिवम्।
विमानेन तु रथ्येण सेव्यमानोऽप्सरोगणीः ॥ १२५

गमोऽपि दग्ध्वा तलेहैं स्नातो दत्त्वा जलाङ्गिनिम्।
भास्रा सगच्छन् दुःखार्तो राक्षसी पथि दृष्टवान् ॥ १२६

उद्गमन्ती महोल्काभां विवृतास्यां भवेकरीप्।
क्षयं नयन्ती जन्मन् वै पातयित्वा गतो रुचा ॥ १२७

गच्छन् वनान्तरं रामः स कवचं ददर्श ह ।
विरुपं जठरमुखं दीर्घवाहुं वनस्तनम् ॥ १२८

रुच्यानं राममार्गं तु दृष्टा तं दग्धवाव्याने ।
दग्धोऽसी दिव्यरूपी तु खास्यो राममभाषत ॥ १२९

राम राम महावाहो त्वया मय महामते ।
विरुपं नाशितं चीर मुनिशापाच्चिरागतम् ॥ १३०

त्रिदिवं यामि धन्योऽस्मि त्वलासादात् संशयः ।
त्वं सीताप्रापये मरुचं कुरु सूर्यसुतेन भोः ॥ १३१

वानरेन्द्रेण गत्वा तु सुप्रीये स्वं निवेद्य वै ।
भविष्यति नुपश्चेष्ट प्रस्थायूकगिरि राज ॥ १३२

इन्द्रुक्त्वा तु गते तस्मिन् रामो लक्ष्मणसंयुतः ।
सिद्धेस्तु मुनिभिः शून्यमाश्रमं प्रविवेश ह ॥ १३३

तपस्थां तापसी दृष्टा तथा संलाप्य संस्थितः ।
शबरीं मुनिपुण्ड्रानां सपर्याहृतकल्पयाम् ॥ १३४

तथा सम्पूजितो रामो बदरादिभिरीक्षरः ।
साव्येन पूजयित्वा तु स्वामवस्थां निवेद्य वै ॥ १३५

सीतां त्वं प्राप्यसीत्युक्त्वा प्रविश्याग्नि दिवंगतः ।
दिवं प्रस्थाप्य तां चापि जगापान्यत्र राष्ट्रः ॥ १३६

लदनन्तर जटायु अपना लंगोर त्वामाकर एक सुन्दर विमानपर
आकृति हुए और अप्सराणोंसे संवित हो स्वर्गलोकको
चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने भी उनके लंगोरका दाह-संस्कार
करके स्नानके पश्चात् उनके निमित्त जलाञ्जलि दी। किर
सीताके लिये दुःखी हो भाई लक्ष्मणके साथ आगे जाने
लगे। इतनेमें ही उन्हें गुस्तेपर एक राक्षसी खड़ी दिखायी
दी। वह मुँहसे बड़ी भाँति उल्काके समझन आगको ज्वाला
डागत रही थी। उसका मुँह फैला हुआ था। वह बड़ी
डण्डनी थी और पास आये हुए अनेकानेक जीवोंका
संहार कर रही थी। श्रीराम उसे रोषपूर्वक मार गिराया।
फिर वे आगे बढ़ गये। जब श्रीराम दूसरे चलनमें जाने लगे,
तब उन्होंने कल्पनको देखा, जो बहुत ही कुरुप था।
उसका मुख उसके पेटमें ही था, जोहैं बड़ी-बड़ी थीं और
स्तन चले थे। श्रीराम उसे अपना मार्ग रोकते देख उसे
फल-कल्पनका धीर-धीरे जला दिया। जल जानेपर वह
दिमहिय धरत्य करके प्रकट हुआ और आकाशमें स्थित
होकर झीरामसे बोला— ॥ १३७—१३८ ॥

'महावाहु श्रीराम! महामते श्रीराम! एक मुनिके शापवश
पित्रकालसे प्राप्त हुई थीरों कुरुक्षेत्रको आपने नष्ट कर दिया;
अब मैं स्वर्गलोकको जा रहा हूँ। इसमें संदेह नहीं कि आज
मैं आपकी कृपासे धन्य हो गया। रामचन्द्र! आप सीताकी
प्राप्तिके लिये सूर्यकुमार वानरराज मुर्दीके साथ भित्रता
कीजिये। उनके पाहों जाकर सीताके सारा घुलान निवेदन कर
देनेपर आपका कलाये सिद्ध हो जायगा। अतः नुपश्चेष्ट। आप
यहाँसे प्रस्थायूक पर्वतपर जाइये' ॥ १३९—१४० ॥

यह कहकर लक्ष्मण स्वर्गको चला गया। कहते हीं,
तब संक्षेपके साथ श्रीरामचन्द्रजीने एक ऐसे आश्रममें
प्रवेश किया, जो सिद्धों और मुनियोंसे शून्य था। उसमें
उन्होंने एक 'शबरी' नामकी तपस्त्रिनी देखी, जो बड़े-
बड़े मुनियोंकी सेवा-गूजा करनेसे निष्पाप हो गयी थी।
उसके साथ बातालाप करके वे वहाँ ठहर गये। शबरीने
वेर आदि फलोंके द्वारा भगवान् रामका भलीभीति
स्वरूप किया। आवश्यकतके पश्चात् उनसे अपनी अवस्था
निवेदन की और यह कहकर कि 'आप सीताको प्राप्त
कर लेंगे' वह शबरी भी उनके सामने ही अग्रिमें प्रवेश
करके स्वर्गको चली गयी। उसे भी स्वर्गलोकमें पहुँचाकर
भगवान् श्रीरामचन्द्रको अन्वय चले गये ॥ १४१—१४२ ॥

ततो विनीतेन गुणान्वितेन
भात्रा समेतो जगदेकनाथः।
प्रियावियोगेन सुदुःखितात्मा
जगाम याप्यां स तु रामदेवः ॥ १३६

इति ब्रैंचरसिंहपुराणे रामकृष्णप्रसादस्त्रियोऽध्यायः ॥ ४९ ॥
इस प्रकार ब्रैंचरसिंहपुराणये 'ब्रैंचरसिंहपुराणविषयक' उन्नामन्त्यं अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४९ ॥

तदनन्तर विनयशील और गुणो भाई लक्ष्मणके साथ
जगदीश्वर भगवान् राम प्रियाके विचोगसे अत्यन्त दुःखी
हो चहाँसे दक्षिणकी ओर चल दिये ॥ १३७ ॥

प्रिया विनय

पचासवाँ अध्याय

सुग्रीवसे मैत्री; वालिवध; सुग्रीवका प्रमाद और उसकी भत्तेना;
सीताकी खोज और हनुमानका लक्षणगमन

वालिवध उपाय

वालिना कृतवैरोऽथ दुर्गवतीं हरीसुरः।
सुग्रीवो दृष्टवान् दूराददृष्टाऽऽह पवनात्पत्तम् ॥ १

कस्येष्मी सुधनुःयाणी चीरवल्कलधारिणी।
पश्यन्ती सरसीं दिव्यां पद्मोत्पलसमावृताम् ॥ २

नानारूपधरावेतीं तापसं वेषमास्तिती।
वालिदूताविह प्राप्ताविति निक्षित्य सूर्यजः ॥ ३

उत्पत्तात भयत्रस्तः प्राप्त्यमूकाद् वनानाम्।
वानरैः सहितः सर्वैरगस्त्याश्रममुत्तमम् ॥ ४

तत्र स्थित्वा स सुग्रीवः प्राह वायुसुतं पुनः।
हनुमन् पृच्छ शोष्णं त्वं गच्छ तापसवेषधृक् ॥ ५

कौ हि कस्य सुतीं जातौ किमर्थं तत्र संस्थिती।
ज्ञात्वा सत्यं मम शूहि वायुपुत्रं महामते ॥ ६

इत्युक्तो हनुमान् गत्वा पम्पातटमनुत्तमम्।
भिक्षुरूपी स तं प्राह रामं भात्रा समन्वितम् ॥ ७

को भवानिह सम्प्राप्तस्तथं शूहि महामते।
अरण्ये निर्जने घोरे कुतस्त्वं किं प्रयोजनम् ॥ ८

मार्कंषड्डेवजी खोले—वालीसे चौर हो जानेके कारण
उसके लिये दुर्गम स्थानमें रहनेवाले वानरराज सुग्रीवने
दूरसे ही श्रीराम और लक्ष्मणको आते देखा और देखकर
पवनकुमार हनुमानजीसे कहा—‘ये दोनों किसके पुत्र हैं,
जो हाथमें सुन्दर धनुष लिये, चौर एवं वल्कल-वस्त्र
धारण किये, कमलों एवं उत्पलोंसे आच्छान इस दिव्य
स्तरीयरक्ते देख रहे हैं।’ जान पड़ता है, ये दोनों वालीके
भेजे हुए वहुविधरुपधारी दूर हैं, जो इस समय तपस्वीका
वेष धारण किये यहाँ आ पहुँचे हैं। यह निश्चय करके
सुर्यकुमार सुग्रीव भवधीत हो गये और समस्त वानरोंके
साथ उत्तममूक पर्वतसे कूटकर दूसरे तरफे लियत
आगस्तपूनिके उत्तम आश्रमपर चले गये ॥ १-४ ॥

बहाँ स्थित होकर सुग्रीवने पुनः पवनकुमारसे कहा—
‘हनुमन्! तुम भी तपस्वीका वेष धारण करके शीघ्र जाओ
और पूछो कि ‘वे कौन हैं? किसके पुत्र हैं? और किस
लिये वहाँ ठहरे हुए हैं?’ महाबुद्धिमान् वायुनन्दन! ये सब
जाते सच-सच जानकर मुझसे जाताओ’ ॥ ५-६ ॥

उनके इस प्रकार कहनेपर हनुमानजी संन्यासीके
रूपमें पम्पासरके उत्तम तटपर गये और भाई लक्ष्मणके
साथ विद्यमान श्रीरामचन्द्रजीसे शोले—‘महामते! आप
कौन हैं? यहाँ कैसे आये हैं? इस जनशून्य घोर वनमें
आप कहाँसे आ गये? यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?—
ये सब जाते मेरे समझ ठीक-ठीक बताइये’ ॥ ७-८ ॥

एवं वदन्ते तं प्राह लक्ष्मणो भासुराज्ञया।
प्रवक्ष्यापि निबोध त्वं रामवृत्तान्तमादितः ॥ ९
राजा दशरथो नाम बभूव भुवि विश्वुतः।
तस्य पुत्रो महाबुद्धे रामो ज्येष्ठो ममाग्रजः ॥ १०
अस्याभिषेक आरब्धः कैकेय्या तु निवारितः।
पितुराजापयं कुर्वन् रामो भासा ममाग्रजः ॥ ११
मया सह विनिष्कम्य सीतया सह भार्यया।
प्रविष्टो दण्डकारण्यं नानामुनिसमाकुलम् ॥ १२
जनस्थाने निवसतो रामस्यस्य महात्मनः।
भार्या सीता तत्र वने केनापि पाप्यना इता ॥ १३
सीतामन्वेषयन् चीरो रामः कमललोचनः।
इहायातस्त्वया दृष्ट इति वृत्तानभीरितम् ॥ १४
श्रुत्या ततो वचस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः।
अव्यञ्जितात्मा विश्वासाद्दन्तुमान् मारुतात्मजः ॥ १५
त्वं मे स्वामी इति वदन् रामं रथुपतिं तदा।
आस्थास्यानीय सुग्रीवं तयोः सम्भूतपकारयन् ॥ १६
शिरस्यारोप्य पादाङ्गं रामस्य विदितात्मनः।
सुग्रीवो वानरेन्द्रस्तु ठवाच भपुराक्षरम् ॥ १७
अद्यप्रभृति राजेन्द्र त्वं मे स्वामी न संशयः।
अहं तु तत्र भृत्यश्च वानैः सहितः प्रभो ॥ १८
त्वच्छ्रुत्युर्म शत्रुः स्यादद्यप्रभृति राघव।
मित्रं ते मम सम्भित्रं त्वदुःखं तन्ममापि च ॥ १९
त्वत्त्रीतिरेव पत्त्रीतिरित्युक्त्वा पुनराह तम्।
वाली नाम मम ज्येष्ठो महाबलपराक्रमः ॥ २०
भार्यापिहारी दुष्टात्मा मदनासक्तमानसः।
त्वामृते पुरुषव्याघ नास्ति हन्ताद्य वालिनम् ॥ २१
युगपत्सप्ततालांस्तु तरुन् यो वै वधिष्यति।
स तं वधिष्यतीत्युक्तं पुराणज्ञर्नपात्मज ॥ २२

इस प्रकार पूछते हुए हनुमन्त्रज्ञोंसे अपने भाईकी आज्ञा पाकर लक्ष्मण बोले—‘मैं श्रीरामचन्द्रजीका वृत्तान्त आदिसे ही वर्णन करता हूं सुनो। इस पृष्ठीपर दशरथ नामके यज्ञ बहुत प्रसिद्ध थे। पाहावुद्धे! ये मेरे बड़े भाई श्रीराम उन्हीं महाराजके ज्येष्ठ पुत्र हैं। इनका सम्माभिषेक होने जा रहा था, किंतु (मेरी छोटी सीतेली माता) कैकेयीने उसे रोक दिया। किंतु, पिताको आज्ञाका पालन करते हुए ये भोज भासा श्रीराम मेरे तथा अपनी धर्मपत्रों सीताके साथ घरसे निकल आये। यन्मे आकर इन्होंने अपेक्षीं युनियोंसे युक्त दण्डकारण्यमें प्रवेश किया। वहाँ जनस्थानमें निवास करते हुए इन महाराज श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्रों सीताको बनाए किसी फारीने हर लिया। उन सीताजीकी ही खोज करते हुए ये भीतर कमलनयन श्रीराम यहाँ आये हैं, जिससे युक्त हो यहाँ इनका दर्शन हुआ है। यह, यही हमारा वृत्तान्त है, जो तुमसे जाता दिया’॥ १—१४॥

महामा लक्ष्मणके वचन सुनकर उनपर विश्वाय ही अपेक्षी कालण यायुनन्दन हनुमन्त्रने अपने स्वरूपको प्रकट नहीं किया और युकुलनायक दमचन्द्रसे यह कहकर कि ‘आप मेरे लक्ष्मी हैं’—उन्हें मानत्वा देते हुए अपने साथ सुप्रीतके पास ही आकर उन दोनों भाइयोंकी सुप्रीतिसे मिलता कर दी। किंतु श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका परिचय इत्त ही जापेके कालण उनके चरण-कमलोंको मिलपर भारतकर यानराज सुप्रीतेने मधुर वालीमें कहा—‘राजेन्द्र! इसमें मंदिर नहीं कि आजसे आप हमारे स्वामी हुए, और प्रभो! मैं सभस्त वानरीके साथ आपका संवेदक हुआ। रघुनन्दन! आपका जो शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु है और जो आपका मित्र है, वह मेरा भी शत्रु है; इतना ही नहीं, आपका जो दुःख है, वह मेरा भी है तथा आपकी प्रसन्नता ही मेरी भी प्रसन्नता है’ यों कहकर सुप्रीतने युनः श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—॥ १५—१९॥

‘प्रभो! ‘वाली’ नामक मेरा ज्येष्ठ भाई है, जो महाबलयान् और बड़ा ही पराक्रमी है; किंतु वह दृद्यका अत्यन्त दुष्ट है। उसने कामासक्त होकर मेरी भार्याकी अपहरण कर लिया है। पुरुषक्षेष्ठ! इस समय आपके सिवा दूसरा कोई वालीको मारनेवाला नहीं है। राजकुमार! पुराणवेलाओंने कहा है कि जो ताहके इन सात वृक्षोंको एक साथ ही काट डालेगा, वही वालीका वध कर सकेगा’॥ २०—२२॥

तत्प्रियार्थं हि रामोऽपि श्रीमांश्चित्त्वा महातस्तु ।
अर्धाकृष्टेन बाणेन युगप्रदघुनन्दनः ॥ २३
विद्युत्वा महातस्तु रामः सुग्रीवं प्राह पार्थिवम् ।
बालिना गच्छ युध्यस्व कृतचिह्नो रवेः सुत ॥ २४
इत्युक्तः कृतचिह्नोऽयं युद्धं चक्रेऽथ बालिना ।
रामोऽपि तत्र गत्वाथ शरेणैकेन बालिनम् ॥ २५
विव्याध वीर्यवान् बाली पपात च ममार च ।
वित्रस्तं बालिपुत्रं तु अङ्गदं विनयान्वितम् ॥ २६
रणशीणं यौवराज्ये नियुक्त्वा राघवस्तदा ।
तां च तारां तथा दत्त्वा रामश्च रविसूनवे ॥ २७
सुग्रीवं प्राह धर्मात्मा रामः कमललोचनः ।
राज्यमन्वेष्य स्वं त्वं कपीनां पुनरावज ॥ २८
त्वं सीतान्वेषणे यत्वं कुरु शीर्षं हरीभुर ।
इत्युक्तः प्राह सुग्रीवो रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥ २९
प्रावृद्कालो महान् प्रामः साम्यात रघुनन्दन ।
बानराणां गतिरासित चने वर्षति बासवे ॥ ३०
गते तस्मिन्स्तु राजेन्द्र प्राप्ते शरदि निर्वले ।
चारान् सम्प्रेषयिद्यामि बानरान्दिक्षु राघव ॥ ३१
इत्युक्त्वा रामचन्द्रं स तं प्रणम्य कपीभुर ।
पम्पापुरं प्रविश्याथ रेमे तारासमन्वितः ॥ ३२
रामोऽपि विधिवृद्भावा शैलसानीं महावने ।
निवासं कृतबान् शैले नीलकण्ठे महामतिः ॥ ३३
प्रावृद्काले गते कृच्छ्रान् प्रामे शरदि राघवः ।
सीताविद्योगाद्युक्तिः सौभित्रिं प्राह लक्ष्मणम् ॥ ३४
उल्लङ्घितस्तु समयः सुग्रीवेण ततो रुया ।
लक्ष्मणं प्राह काकुत्स्थो भ्रातुर्वत्सलः ॥ ३५

[वह सुनकर] श्रीमान् रामचन्द्रजीने भी सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये आधे खोंचे हुए बाणसे ही उन सात महावृक्षोंको एक ही साथ काट डाला । उन महावृक्षोंका भेदन करके श्रीरामने राजा सुग्रीवसे कहा—‘सुर्यनन्दन सुग्रीव ! मेरे पहचाननेके लिये अपने शरीरमें कोई चिह्न धारण करके तुम जाओ और बालीके साथ युद्ध करो ।’ उनके यों कहनेपर सुग्रीवने चिह्न धारणकर बालीके साथ युद्ध किया और श्रीरामने भी वहाँ जाकर एक ही बाणसे बालीको खोंच दिया । इससे पराक्रमी बाली पृथ्वीपर गिरा और मर गया । तब श्रीरामचन्द्रजीने अस्त्रन ढो द्युए बाली-कुमार अङ्गदको, जो बहुत ही विनायी और संयाममें कुक्षल था, सुवराजापदपर अधिष्ठित करके ताराको सुग्रीव-की मेलामें अवित्त कर दिया । तत्पश्चात् कमलनवन भर्मात्मा श्रीराम सुग्रीवसे बोले—‘तुम कानरोंके राज्यकी देख-भाल कर लो, फिर मैं फास आना और कपीधर । सीताकी खोज करनेका शीघ्र ही यज्ञ करना’ ॥ २३—२८ ॥

उनके हाथ इस उक्तकार कहे जानेपर सुग्रीवने लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—‘रघुनन्दन ! इस समय महान् यज्ञकाल आ पहुँचा है; इन्द्रके जर्णी करते रहनेपर इस बनमें बानरोंका जलना फिरना न हो सकेगा । राजेन्द्र ! वर्षा बीतने और शारतकाल आ जानेपर मैं समस्त दिशाओंमें अपने बानर दूतोंकी भेजूँगा ।’ यह कहकर बानराज सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया और पम्पापुरमें प्रवेश करके वे ताराके साथ रमण करने लगे ॥ ३१—३२ ॥

इधर महामति श्रीरामचन्द्रजी भी अपने भाई लक्ष्मणके साथ उस महावनमें ‘नीलकण्ठ’ नामक पर्वतकी चोटीपर विधिपूर्वक रुहने समें । (सीताके विद्योगमें) उनका वर्षाकाल बड़ी कठिनाईमें चीता । यज्ञ शारतकाल उपरस्थित हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने सीताके विद्योगसे अवित्त हो सुमित्रानन्दन लक्ष्मणसे इस विषयमें वार्तालाप किया । उस समयतक वहाँ न आकर सुग्रीवने अपनी पूर्व-प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन किया था । इसलिये भ्रातुर्वत्सल ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने लक्ष्मणसे क्रोधपूर्वक कहा—

गच्छ लक्ष्मण दुष्टोऽसी नागतः कपिनायकः ।
गते तु वर्षाकाले ऽहमागमित्यामि तेऽनिकम् ॥ ३६
अनेकवार्णैरः साध्यमित्युक्त्वासी तदा गतः ।
तत्र गच्छ त्वरायुक्तो यत्रास्ते कपिनायकः ॥ ३७
तं दुष्टमग्रतः कृत्वा हरिसेनासमन्वितम् ।
रमन्ते तारया साध्यं श्रीघ्रमानवं प्रति ॥ ३८
नात्रागच्छति सुग्रीवो यद्यसी प्राप्तभूतिकः ।
तदा त्वयैवं वक्तव्यः सुग्रीवोऽनुत्पादकः ॥ ३९
बालिहन्ता शरो दुष्ट करे मेऽद्यापि तिष्ठुति ।
स्मृत्वैतदाचर कपे रामवाक्यं हितं तत्र ॥ ४०
इत्युक्तस्तु तथेत्युक्त्वा रामं नक्त्वा च लक्ष्मणः ।
पम्पापुरं जगामाथ सुग्रीवो यत्र तिष्ठुति ।
दृष्टा स तत्र सुग्रीवं कपिराजं यथाव वै ॥ ४१
ताराभोगविषक्तस्त्वं रामकार्यपगाइस्मुखः ।
किं त्वया विस्मृतं सर्वं रामायं समयं कृतम् ॥ ४२
सीतापन्नित्य दास्यामि यत्र क्वापीति दुर्घटे ।
हत्या तु बालिनं राज्यं येन दत्तं पुरा तत्र ॥ ४३
त्वामृते कोऽवमन्येत कपीन्द्रं पापचेतस ।
प्रतिश्रुत्य च रामस्य भार्याहीनस्य भूषणे ॥ ४४
साहाय्यं ते करोपीति देखाग्निजलसंनिधी ।
ये ये च शत्रवो राज्ञस्ते ते च मय शत्रवः ॥ ४५
मित्राणि यानि ते देव तानि मित्राणि मे सदा ।
सीतापन्नेष्वितुं राजन् वानीर्बहुभिर्वृतः ॥ ४६
सत्यं यास्यामि ते पार्श्वमित्युक्त्वा कोऽन्यथाकरोत् ।
त्वामृते पापिनं दुष्टं रामदेवस्य संनिधी ॥ ४७
कारयित्वा तु तेनैवं स्वकार्यं दुष्टवानर ।
अर्थोणां सत्यवद्वाक्यं त्वयि दुष्टं मयाधुना ॥ ४८
सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते ।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्टा परित्यजति मातरम् ॥ ४९

‘लक्ष्मण! तुम पम्पापुरमें जाओः। देखो, क्या कामण है कि वह दुष्ट बानरराज अभीतक नहीं आया। पहले तो वह यही कहकर गया था कि ‘बर्षाकाल बीतनेपर मैं अनेक बानरोंके साथ आपके पास आऊँगा।’ अब तुम वहाँ वह बानरराज रहता है, वहाँ शीशतापूर्वक जाओ। तारएके साथ रमण करनेवाले उस दुष्ट बानरको आगे करके समस्त बानरसेनाके माहित मेरे पास शीश से आओ। यदि ऐस्वर्यं प्राप्त कर, सैनेके कारण मदमें चूर हो सुशील यहाँ न आये तो तुम उस असत्यवादीसे यों कहना—‘अरे दुष्ट! श्रीरामने कहा है कि जिससे बालिका वध किया गया था, वह बाण आज भी मेरे हाथमें भौजूद है; अतः बानर। इस बातको बाद करके तु श्रीरामबन्दीजीकी अज्ञाता पालन कर, इसीमें होरा भला है’॥ ४९—४०॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसी आङ्ग देनेपर लक्ष्मणने ‘बहुत अच्छा’ कहकर उसे शिरोधार्य किया और उनको नमस्कार करके मैं पम्पापुरमें गये, जहाँ सुशील रहता था। वहाँ उन्होंने बानरराज सुशीलको देखकर कहा—“अरे! तु श्रीरामचन्द्रजीके कार्यसे मुझ भौजूद यहाँ तारके साथ भी—बिलासमें पैदा हुआ है? रे दुर्दुदे! तूने श्रीरामके सम्मने जो यह प्रतिज्ञा की थी कि ‘जहाँ—कहीं भी हो, सौताक्षे दैत्यकर मैं आपको अपूर्ण करूँगा।’ उसे क्या भूल गया? अरे पापात्मा बानरराज। जिन्होंने बालिको भारकर पहले ही तुम्हें राज्य दे दिया, ऐसे परोपकारी मित्रका तेरे शिख कौन अनादर कर सकता है? तूने देवता, अंगि और जलके निकट श्रीरामसे यह प्रतिज्ञा की थी कि ‘राजन्! मैं पक्षीमें वियुक्त हुए आपकी सहायता करूँगा। राजन्! जो-जो आपके सामूह है, वे-वे मेरे भी समूह ही मित्र हैं। राजन्! मैं बहुत-से बानरोंके साथ सीताको खोज करानेके लिये अवश्य ही आपके पास आऊँगा।’ भगवान् श्रीरामके निकट यों कहकर तुझ—जैसे दुष्ट पर्याके सिक्का दूसरा कौन है, जो इसके विपरीत अचरण करता। अरे दुष्ट बानर! इस प्रकार तूने अपना काम तो उनसे करा लिया और उनका कार्य करना तु भूल गया। इस समय प्रथियोंकी यह यथर्थ बात कि ‘अनका काम सिद्ध हो जानेपर मधीकी बुद्धि बदल जाती है, जैसे बछड़ा मालाके थनोंमें दूधको कमी देखकर उसे खोड़ देता है [फिर मालाकी परवा नहीं करता]’।

जनवृत्तविदां लोके सर्वज्ञानां महात्मनाम्।
 न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन् कृतं प्रतिकरोति यः ॥ ५०
 शास्त्रेषु निष्कृतिर्दृष्टा पहापातकिनामपि।
 कृतज्ञस्य कपे दुष्ट न दृष्टा निष्कृतिः पुरा ॥ ५१
 कृतद्वाता न कार्या ते त्वत्कृतं समयं स्मर।
 एष्होह्नागच्छ शरणं काकुतस्यं हितपालकम् ॥ ५२
 यदि नायासि च कपे रामवाक्यमिदं शृणु।
 नविष्ठे मृत्युसदनं सुग्रीवं वालिनं यथा ॥ ५३
 स शरो विद्यते उस्माकं येन वाली हतः कपिः।
 लक्ष्मणो नैव मुक्तोऽसी सुग्रीवः कपिनायकः ॥ ५४
 निर्गत्य तु नमश्चके लक्ष्मणं मन्त्रिणोदितः।
 उवाच च महात्मानं लक्ष्मणं वानराधिपः ॥ ५५
 अज्ञानकृतपापानामस्माकं क्षन्तुमहेषि।
 समयः कृतो पर्या राजा रामेणापिततेजसा ॥ ५६
 यस्तदानीं महाभाग तपद्यापि न लक्ष्ये।
 यास्यामि निखिलैरघ्य कपिपिर्वृपनन्दन ॥ ५७
 त्वया सह महावीर रामपार्थी न संशयः।
 मां दृष्टा तत्र काकुतस्यो यद्वक्ष्यति च मां प्रति ॥ ५८
 तत्सर्वे शिरसा गृहु करिष्यामि न संशयः।
 सन्ति मे हरयः शूराः सीतान्वेषणकर्मणि ॥ ५९
 तान्यहं प्रेषयिष्यामि दिशु सर्वाम् पार्थिव।
 इत्युक्तः कपिराजेन सुग्रीवेण स लक्ष्मणः ॥ ६०
 एहि शीघ्रं गमिष्यामो रामपार्थीपितोऽधुना।
 सेना चाहृयतां वीरं ऋक्षाणां हुरिणामपि ॥ ६१
 यां दृष्टा प्रीतिमध्येति राघवस्ते महामते।
 इत्युक्तो लक्ष्मणोनाथ सुग्रीवः स तु वीर्यवान् ॥ ६२
 पार्थीस्थं युवराजानमङ्गुरं संज्ञयाद्वीत्।
 सोऽपि निर्गत्य सेनानीमाह सेनापतिं तदा ॥ ६३
 तेनाहृताः सप्तागत्य ऋक्षवानरकोटयः।
 गुहास्थाश्च गिरिस्थाश्च वृक्षस्थाश्रीव वानराः ॥ ६४
 तैः सार्थं पर्वताकारैर्वानैर्भीमविक्रमैः।
 सुग्रीवः शीघ्रमागत्य ववन्दे राघवं तदा ॥ ६५
 लक्ष्मणोऽपि नमस्कृत्य रामं भातरमद्वीत्।
 प्रसादं कुरु सुग्रीवे विनीते चाधुना नृप ॥ ६६

मुझे दुखने हो ठोक-ठोक घटती-सो दीख रही है। संसारमें जो मनुष्योंचित् सदृशवाहारका ज्ञान रखनेवाले हैं, उन सर्वज्ञ महात्माओंमेंसे मैं किसीको भी ऐसा नहीं देखता, जो लोकमें दूसरोंके द्वारा किये हुए उपकारको न मानता हो। वालियोंमें महापातकी शुरुवाती भी उदाहरका उपाय (प्रायिकित) देखा गया है, किंतु दुष्ट वानर! कृतज्ञ पुरुषके उदाहरका उपाय मैंने पहले कभी नहीं देखा है। इसलिये तुझे कभी कृतज्ञता नहीं करनी चाहिये। अपनी की हुई प्रतिज्ञाको याद कर। अब आ, तैं हितकी रक्षा करनेवाले ककुतस्यकुलनन्दन भगवन् श्रीरामकी शरणमें चल। वानर! यदि तु नहीं आना चाहता तो यह श्रीरामका बचन सुन। [उन्होंने कहा है—] 'मैं वालियों ही भौति सुग्रीवको भी यमपुर भेज दैगा। जिससे वानराज वालि भारा गया है, वह बाय अब भी मेरे पास भौजूद है' ॥ ५४—५३ ॥

लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर कपिराज सुग्रीव मन्त्रीओं प्रेरणासे जाहर निकले। उन्होंने लक्ष्मणको प्रणाम किया और उन महाभागसे कहा—'महाभाग! हमारे अज्ञानवश किये हुए अपराधोंको आप ज्ञान करें। मैंने उस समय अमिततेजस्यो राजा रामचन्द्रके साथ जो प्रतिज्ञा की थी, उसका अब भी उद्भवन नहीं करैगा। महावीर राजकुमार! मैं अब समस्त वानरोंको साथ लैकर आपके साथ श्रीरामके पास जाऊंगा। मुझे यहाँ देखकर श्रीरामचन्द्रजी मुझमें जो कुछ भी कहेंगे, उसे मैं शिरोधार्य करके निस्मितेह पूर्ण करैगा। राजन्! मेरे यहाँ बड़े-बड़े और वानर हैं। उन सबको मैं सीलाजीकी खोज करनेके लिये समस्त दिशाओंमें भेजूँगा' ॥ ५४—५३ ॥

वानरराज सुग्रीवके दों कहनेपर लक्ष्मणने कहा— 'आओ! अब यहाँसे शीघ्र ही श्रीरामके पास चलें। वीर! महामते। वानरों और भलुओंकी सेना भी बुला लो, जिसे देखकर श्रीरामचन्द्रजी तुमपर प्रसन्न हों।' लक्ष्मणद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परम पराक्रमी सुग्रीवने पास ही खड़े हुए युवराज अङ्गदसे इशारेमें कुछ कहा। अङ्गदने भी जाकर सेनाका संचालन करनेवाले सेनापतिको प्रेरित किया। सेनापतिके बुलानेसे पर्वत, कन्दरा और वृक्षोंपर रहनेवाले करोड़ों वानर आये। पर्वतोंके समान आकारवाले उन भयंकर पराक्रमी वानरोंके साथ सुग्रीवने उस समय शोभ्रतापूर्वक पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया। साथ ही लक्ष्मणजीने भी अपने भाईको प्रणाम करके कहा—'राजन्! इन विनशशील सुग्रीवपर अब आप कृपा करें।' ॥ ६०—६६ ॥

इत्युक्ते राष्ट्रवस्तेन भाग्ना सुग्रीवमन्नवीन्।
आगच्छात्र महावीर सुग्रीव कुशलं तव॥ ६७
श्रुत्वेत्यं रामवद्वनं प्रसन्नं च नराधिपम्।
शिरस्यञ्जलिमाधाय सुग्रीवो रामपद्वीन्॥ ६८
तदा मे कुशलं राजन् सीतादेवी तव प्रभो।
अन्विष्य तु यदा दत्ता मया भवति नान्यथा॥ ६९
इत्युक्ते वचने तेन हनुमान्मारुतात्मजः।
नत्वा रामं अभावैनं सुग्रीवं कपिनायकम्॥ ७०
शृणु सुग्रीवं मे वाक्यं राजाय दुःखितो भृशम्।
सीतावियोगेन च सदा नाशनाति च फलवादिकम्॥ ७१
अस्य दुःखेन सततं लक्ष्मणोऽयं सुदुःखितः।
एतयोरत्र यावस्था तां श्रुत्वा भरतोऽनुजः॥ ७२
दुःखी भवति तद्दुःखाद्दुःखं प्राप्नोति तज्जनः।
यत एवमतो राजन् सीतान्वेषणमाचर॥ ७३
इत्युक्ते वचने तत्र वायुपुत्रेण धीमता।
जाप्यवान्नतितेजस्वी नत्वा रामं पुराःस्थितः॥ ७४
स प्राह कपिराजं तं नीतिमान् नीतिमद्वचः।
यदुक्तं वायुपुत्रेण तत्त्वेत्यवगच्छ भोः॥ ७५
यत्र क्रापि स्थिता सीता रामभायां यशस्विनी।
पतिव्रता महाभागा वैदेही जनकात्मजा॥ ७६
अद्यापि वृत्तसम्प्राप्ता इति मे मनसि स्थितम्।
न हि कल्याणचिन्तायाः सीतायाः केनचिद्दुष्क्रिय॥ ७७
पराभवोऽस्ति सुग्रीवं प्रेषयाद्दीव वानरान्।
इत्युक्तस्तेन सुग्रीवः प्रीतात्मा कपिनायकः॥ ७८
पश्चिमायां दिशि तदा प्रेषयामास तान् कपीन्।
अन्वेष्टुं रामभायां तां महाब्रह्मपराक्रमः॥ ७९
उत्तरस्यां दिशि तदा नियुतान् वानरानसी।
प्रेषयामास धर्मात्मा सीतान्वेषणकर्मणि॥ ८०

भाई लक्ष्मणके इस प्रकार अनुरोध करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सुधीवसे कहा—‘महावीर सुग्रीव! यहाँ आओ। कहो, कुशल तो है न?’ श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा कथन मूनकर और उन नरेशको प्रसन्न जानकर सुग्रीवने सिरपर अङ्गुष्ठि बोड़ उबसे कहा—‘राजन्! प्रभो! मेरी कुशल तो हमी होगी, जब मैं सीतादेवीको हूँदूकर आपको अर्पित कर दूँ; नहीं तो नहीं’॥ ६७—६९॥

सुग्रीवने जब यह चल कहा, तब पलनकुमार हनुमान्मी श्रीरामको नमस्कार करके कपिराज सुग्रीवसे बोले—‘सुग्रीव! आप मेरी बात सुनें। ये राजा श्रीरामचन्द्रजी सीताके विद्योगसे सदा ही बहुत दुःखी रहते हैं, इसीलिये फल आदिका भी अवहार नहीं करते। इन्हींके दुःखसे ये लक्ष्मण भी सदा अत्यन्त दुःखित रहा रहते हैं। इन दोनोंकी यहाँ जो अवस्था है, उसे मूनकर इनके होटे भाई भरत भी दुःखी होते हैं और उनके दुःखसे वहाँके सभी लोग दुःखमें पड़े रहते हैं। राजन्! घूँक ऐसी स्थिति है, अतः आप बहुत शोघ्र सीताकी खोज कराइये’॥ ७०—७३॥

बुद्धिमान् वायुनन्दनके यो कहनेपर अत्यन्त हेजाली जाप्यवान् श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके सामने खड़े ही गये। ये नीतिश थे, अतः कपिराज सुग्रीवसे नीतिमुक्त वचन बोले—‘सुग्रीव! हनुमान्मीने जो कहा है, उसे आप लौक ही समझें। श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी भाष्य विटेहकुलनन्दिनी जनककुमारी महाभागा पतिव्रता सीता जहाँ कहाँ भी होंगी, आज भी सदाचारसे सम्प्रग होंगी—यह विचार मेरे मनमें निष्ठितरूपसे जमा हुआ है। सुग्रीव! सदा कल्याणमव्यरुप श्रीरामचन्द्रजीमें ही मन समादे रहनेवाली सीताजीका इस पृथ्वीपर किसीके द्वारा भी पराभव नहीं हो सकता। इसलिये आप अभी जानरोही भेजें’॥ ७४—७५॥

जाप्यवान्मृके इस प्रकार कहनेपर वहान् खल और पराक्रमसे युक्त कपिराज सुग्रीवने प्रसन्न हों सीताकी खोजके लिये बहुत-से वानरोंको पश्चिम दिशामें भेजा तथा उन धर्मात्माने उत्तर दिशामें भी सीताको दैदूनेके निमित्त एक लाख वानरोंको उसी समय भेज दिया।

पूर्वस्यां दिशि कपींशु कपिराजः प्रतापवान्।
प्रेषयामास रामस्य सुभार्यान्वेषणाय चै॥ ८१
इति तान् प्रेषयामास वानरान् वानराधिपः।
सुग्रीवो वालिपुत्रं तपश्चदं प्राह बुद्धिमान्॥ ८२
त्वं गच्छ दक्षिणं देशं सीतान्वेषणकर्मणि।
जाम्बवांशु हनुमांशु मैन्दो द्विविदं एव च॥ ८३
नीलाद्याक्षीव हरयो महाबलपराक्रमाः।
अनुपास्यन्ति गच्छन्तं त्वाम्बद्य यम शासनात्॥ ८४
अधिरादेव यूयं तां दृष्टा सीतां यशस्विनीम्।
स्थानतो रूपतक्षीव शीलतक्षु विशेषतः॥ ८५
येन नीता च कुत्रास्ते ज्ञात्वात्रागच्छ पुत्रक।
इत्युक्तः कपिराजेन पितृव्येण महात्मना॥ ८६
अङ्गदस्तूर्णपुत्त्वाय तस्याङ्गां शिरसा दधे।
इत्युक्ते दूरतः स्थाप्य वानरान्ध जाम्बवान्॥ ८७
रामे च लक्ष्मणे चैव सुग्रीवं पाठतात्मजम्।
एकतः स्थाप्य तानाहु नीतिमान् नीतिमद्वचः॥ ८८
श्रूत्यां यच्चनं पेत्य सीतान्वेषणकर्मणि।
श्रुत्या च तदग्रहणं त्वं रोचते यशोपात्मज॥ ८९
रावणेन जनस्थानान्नीयमाना तपस्विनी।
जटायुषा तु सा दृष्टा शक्तया युद्धं प्रकुर्वता॥ ९०
भूषणानि च दृष्टानि तथा द्विषानि तेन चै।
तान्यस्पाप्तिः प्रदृष्टानि सुग्रीवायार्पितानि च॥ ९१
जटायुवाक्याद्राजेन्द्र सत्यमित्यवधारय।
एतस्मात्कारणात्सीता नीता तेनैव रक्षसा॥ ९२
रावणेन महाबाहो लक्ष्मणां वर्तते तु सा।
त्वां स्मरन्ती तु तत्रस्था त्वदुःखेन सुदुःखिता॥ ९३
रक्षन्ती यत्नो वृत्तं तत्रापि जनकात्मजा।
त्वद्द्वयानेनैव स्वान् प्राणान्धारयन्ती शुभानना॥ ९४

इसो प्रकार प्रतापी वानराजने पूर्व दिशामें भी रामकी ब्रेत्त भार्या सीताका अन्वेषण करनेके लिये बहुत-से वानर भेजे। युद्धिमन्त्र वानराज युगोक्ते इस प्रकार वानरोंको भेज लेनेके बाद वालिकुमार अङ्गदसे कहा—‘अङ्गद! तुम सीताको खोज जरनेके लिये दक्षिण दिशामें जाओ। मेरी आज्ञामे आज तुम्हारे चलते समय तुम्हारे साथ जाम्बवान्, हनुमान्, मैन्द, द्विविद और नील आदि महाबली एवं महापराक्रमी वानर जायेंगे। बेटा! तुम सभी लोग बहुत सोड़ जाकर यशस्विनों सीताका दर्शन करो और यह भी पता लगाओ, ‘वे कौनसे स्थानमें हैं, किस रूपमें हैं? विशेषतः उनका आवारण कैसा है? कौन उन्हें ले गया है? तथा उसने उन्हें कहाँ रखा है?’—यह सब जानकर होप्र लौट आओ॥ ८८—९४, ९५, ९६॥

अपने चाला महाराजा सुशीलके इस प्रकार आदेश देनेपर अङ्गदने तुरत उठकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। सुग्रीवकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनकर नीतिज्ञ जाम्बवान्ने सब वानरोंको तुष्ट दूर छाड़ा कर दिया और श्रीराम, लक्ष्मण, सुशील तथा हनुमन्त्रीको एक जगह जारके उनमें यह नीतिगुल बात कहो—‘नृपनन्दन श्रीरामचन्द्रजी। सीताका अन्वेषण करनेके विषयमें इस समय आप मेरी एक बात मुझे और सुननेके बाद यदि वह अपही लागे तो इसे स्वीकार दें। जटायुने तपस्विनीं सीताको जनस्थानसे राखन्तारा ले जाये जाती हुई देखा था तथा उन्होंने उसके साथ यथास्थिति पुढ़ भी किया था। साथ ही, सीताजीने उस समय अपने आभूषण उतार पैको दे, जिनको जटायुने और हम लोगोंने भी देखा था। उन आभूषणोंको हमने सुशीलको अपित कर दिया है। इस काल राजेन्द्र! जटायुके कथनानुसार आप इस बातको सत्य समझें कि सीताजीको वही दुष्ट राक्षस रावण ले गया है और महाबाहो! वे इस समय लक्ष्मणमें ही हैं। वहीं राक्षस भी ते आपके हो दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो निरन्तर आपका ही त्यरण किया करती है। जनकनन्दिनी सीता लक्ष्मणमें रहकर भी अपने सदाचारकी यशपूर्तिक रक्षा कर रही हैं। वे सुमुखी सीतादेवी आपके हो भवानमें अपने प्राणोंको धारण करती हुई

स्थिता प्रायेण ते देवी सीता दुःखपापायणा ।
 हितमेव च ते राजब्रुद्धेत्तर्कुने क्षमम् ॥ १५
 वायुपुत्रं हनुमनं त्वमत्रादेष्टुमर्हसि ।
 त्वं चाप्यर्हसि सुग्रीवं प्रेषितुं मारुतात्मजम् ॥ १६
 तमृते सागरं गन्तु बानराणां च विद्यते ।
 बलं कर्त्यापि या वीर इति मे मनसि स्थितम् ॥ १७
 क्रियतां मद्वचः क्षिप्रं हितं पथं च नः सदा ।
 उक्ते जाप्यवतीवं तु नीतिस्वत्पाक्षरान्विते ॥ १८
 वाक्ये वानराजोऽसौ शीघ्रपुत्त्वाय चासनात् ।
 वायुपुत्रसभीयं तु तं गत्वा वाक्यमद्विवीत् ॥ १९
 शृणु मद्वचने वीर हनुमन्याकृतात्मज ।
 अयमिक्ष्याकुतिलको राजा सामः प्रतापवान् ॥ २००
 पितुरादेशमादाय प्रातुभार्यासिमन्वितः ।
 प्रविष्टो दण्डकारण्यं साक्षात्तद्यंपरायणः ॥ २०१
 सर्वात्मा सर्वलोकेशो विष्णुर्पर्वनुषरुपवान् ।
 अस्य भार्या हृता तेन दुष्टेनापि दुरात्मना ॥ २०२
 तद्विष्योगजटुःखार्तो विचिन्वत्सती बने बने ।
 त्वया दृष्टो नुपः पूर्वमयं वीरः प्रतापवान् ॥ २०३
 एतेन सह संगम्य समयं चापि कारितम् ।
 अनेन निहतः शत्रुर्मम वालिर्महाबलः ॥ २०४
 अस्य प्रसादेन कणे राज्यं प्राप्तं मयाधुना ।
 मया च तत्प्रतिज्ञातमस्य साहाय्यकमीणि ॥ २०५
 तत्सत्यं कर्तुमिच्छापि त्वद्वलान्मारुतात्मज ।
 उत्तीर्थं सागरं वीर दृष्ट्वा सीतापनिन्दिताम् ॥ २०६
 भूयस्तर्तु बलं नास्ति बानराणां त्वया विना ।
 अतस्त्वयेव जानासि स्वामिकार्यं महामते ॥ २०७
 बलवान्नीतिपांश्चैव दक्षस्त्वं दीत्यकर्मणि ।
 तेनैवमुक्तो हनुमान् सुग्रीवेण महात्मना ॥ २०८
 स्वामिनोऽर्थं न किं कुर्यामीदृशं किं नु भाष्यसे ।
 इत्युक्तो वायुपुत्रेण रामस्तं पुरातः स्थितम् ॥ २०९

प्राप्तः आपके ही विद्योग-दुःखमें दूखी रहती हैं। इसलिये गजन्! इस समय आपके हितकी ही बात बता रहा हैं, आप इस कार्यके लिये वायुपुत्र हनुमान्‌जीको आज्ञा दें, क्योंकि ये ही समुद्र लौकिके समर्थ हैं और सुग्रीव! आपको भी चहिये कि पवनकुमार हनुमान्‌जीको ही वहाँ भेजें, क्योंकि बानरोंमें उनके अतिरिक्त कोई भी ऐसा नहीं है, जो समुद्रके पार जा सके तथा है वीर। इनके बगवर किसीका बल भी नहीं है। यस, मेरे मनमें यही विचार है। मैंने कथनक जीव पालन किया जाय; क्योंकि यह हमारे लिये सदा ही हितकर और लाभकारी होगा ॥ २६—२७ ॥

जाप्यवान्‌के इस प्रकार थोड़े अक्षरोंमें नीतियुक्त वचन कहनेपर वानराज सुग्रीव शीघ्र ही अपने आसनसे उठे और वायुनन्दन हनुमान्‌जीके निकट जाकर उनसे बोले— ॥ २८ २९ ॥

“पवनकुमार वीर हनुमान्‌जी! तुम मेरी बात सुनो। ये प्रतापी राजा श्रीरामचन्द्रजी इश्वाकु वैशके भूषण हैं। ये अपने प्रियको आज्ञा भालकर भाई और पत्नीके सहित दण्डकारण्यमें चले आये थे। सदैव धर्मसंत तत्पर रहनेवाले ये श्रीराम सप्तरथ लौकिके ईस्तर और सबके अलम्भा साक्षात् भगवान् विष्णु ही हैं। इस समय मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। इनकी धर्मपत्नी सीताको दुष्ट दुरात्मा रात्रयने हर लिया है। ये प्रतापी वीर राजा उन्हींके विद्योगजट्य दुःखसे पीड़ित हो बन-बनमें उन्होंको खोज करते हुए आ रहे थे, जबकि तुमने इन्हें पहले-पहल देखा था। इनके साथ मिलकर हमने प्रतिज्ञा भी की थी। उन्होंने मेरे हातु महाबली वालिका घध किया तथा करपे। उन्होंकी कृपासे मैंने इस समय अपना राज्य प्राप्त किया है और मैंने भी इनकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की है। पवननन्दन! मैं अपनी उस प्रतिज्ञाको तुम्हारे ही बलपर पूर्ण करना चाहता हूँ। वीर! समुद्रके पार जा पतिव्रता सीताको देखकर पुनः समुद्रके इस पार लौट आनेकी सामर्थ्यं तुम्हारे सिवा बानरोंमें से किसीमें भी नहीं है। अतः महामते! तुम्हाँ अपने स्वामीके कार्यको ठांक-ठांक जान सकते हो; क्योंकि तुम बलवान्, नीतिज्ञ और दृतकर्ममें दक्ष हो” ॥ २००—२०७ ॥

महात्मा सुग्रीवके यों कहनेपर हनुमान्‌जी बोले— “आप ऐसी बात क्यों कहते हैं? भला, अपने स्वामी भगवान् श्रीरामका कार्य क्या मैं नहीं करूँगा?” वायुनन्दनके

प्राह वाक्यं महाबाहुर्वाप्यसप्त्यूर्णलोचनः।
 सीतां स्मृत्वा सुदुःखार्तः कालयुक्तमपित्रजित्॥ ११०
 त्वयि भारं समारोप्य सम्प्रदतरणादिकम्।
 सुप्रीयः स्थाप्यते हुत्र मया साध्यं महापते॥ १११
 हनुमस्तत्र गच्छ त्वं मत्तीत्येकतनिक्षयः।
 ज्ञातीनां च तथा प्रीत्ये सुप्रीवस्य विशेषतः॥ ११२
 प्रायेण रक्षसा नीता भार्या मे जनकात्मजा।
 तत्र गच्छ महाबीर यत्र सीता व्यवस्थिता॥ ११३
 यदि पृच्छति सादृश्यं यदाकारमशेषतः।
 अतो निरीक्ष्य मां भूयो लक्ष्मणं च ममानुजम्॥ ११४
 ज्ञात्वा सर्वाङ्गं लक्ष्मणं सकलं चाययोरिह।
 नान्यथा विश्वसेत्सीता इति मे घनसिंहितम्॥ ११५
 इत्युक्तो रामदेवेन प्रभद्वनमुक्तो बलो।
 उत्थाय तत्पुरः सिद्धत्वा कृताङ्गुलिहवाच तम्॥ ११६
 जानामि लक्ष्मणं सर्वं युधयोस्तु विशेषतः।
 गच्छामि कर्पिभिः साध्यं त्वं शोकं मा कुरुत्य वै॥ ११७
 अन्यच्च देहभिज्ञानं विश्वासो येन मे भवेत्।
 सीतायास्तत्र देव्यास्तु राजन् राजीवलोचनः॥ ११८
 इत्युक्तो यापुपुत्रेण रामः कमललोचनः।
 अद्भूतीपकमुन्मुच्य दत्तवान् रामचिह्नितम्॥ ११९
 तदगृहीत्वा तदा सोऽपि हनुमान्याहुतात्मजः।
 रामे प्रदक्षिणीकृत्य सक्षमणं च कर्पीक्षाम्॥ १२०
 नत्वा ततो जगामाशु हनुमानङ्गनीसुतः।
 सुप्रीवोऽपि च तात्पुत्रवा वानरान् गनुपुष्टवान्॥ १२१
 आज्ञेयानाज्ञापयति खानरान् खलदर्पितान्।
 प्रणवन् वानरः सर्वं शासनं मम भावितम्॥ १२२
 विलम्बनं न कर्तव्यं युप्याप्तिः पर्वतादिषु।
 हुतं गत्वा तु तो वीक्ष्य आगन्तव्यमनिन्दिताम्॥ १२३
 रामपत्रो महाभागां स्थास्येऽहं रामसंनिधी।
 कर्तनं वा करिष्यामि अन्यथा कर्णनामयोः॥ १२४

इस प्रकार उत्तर देवेपर शत्रुघ्निजयी महाबाहु राम सीताकी यादसे अतपत्त दुःखी हो, औंखोंमें आँसू भरकर, सामने बैठे हुए हनुमानजीसे समयोचित वचन शोले—‘महापते! मैं समुद्रके फर लगे आदिका भार तुम्हारे ही ऊपर रखकर सुप्रीवको अपने साथ रखता हूँ। हनुमन्! तुम मेरो, इन वानर-चम्पोंकी और विशेषतः सुप्रीयकी प्रसन्नताके लिये दृढ़ निष्ठय करके यहाँ (लक्ष्मण) जाओ। महायोर! प्राप्य यहाँ जान पड़ता है कि एवं नामक गहनम ही सीताको से गया है; अतः यहाँ सीता रखी गयी हो, वहाँ जाना। यदि वे पूछें कि ‘तुम जिनके पाससे आते हो, उन श्रीराम और स्वरमणका स्वरूप कौसा है?’ तो इसका उत्तर देनेके लिये तुम मेरे शरीरकी उत्तर में लोटे भाई लक्ष्मणको भी अच्छी तरह देख लो। हम दोनोंके शरीरका इत्येक विद्व देखकर उनसे बाताना। नहीं तो सीता तुमपर विश्वास नहीं कर सकती—गह मेरी परका दृढ़ विचार है’॥ १०८—११५॥

भगवान् श्रीरामके यों कहनेपर महाबली वायुवन्दन हनुमान् उठकर उनके सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उनसे शोले—‘मैं आप दोनोंके सब लक्षण विशेषज्ञसे जानता हूँ, अब मैं वानरोंके साथ जा रहा हूँ, आप योद्ध न करें। कमलांगेवन राजन्। इसके अतिरिक्त आप मुझे क्षेत्र वहसानाही चमनु दीजिये, जिससे आपकी महाशृंगों सोताका चमनपर विश्वास हो॥ ११६—११८॥

वायुवन्दन हनुमानके इस प्रकार अनुरोध करनेपर कमलनवन श्रीरामने अपनी औंगुटी विकलाकर दे दी, जिसपर ‘गम’ नाम लुटा हुआ था। उसे सेकर पवनकुमार हनुमन्ने भी श्रीराम, लक्ष्मण और वानराज सुप्रीवकी परिक्रमा की। फिर उन्हें प्रवचनकर दे अद्विनन्दन हनुमान् बहींसे शोप्रतापूर्वक चले। तब सुप्रीव भी अपने आज्ञाकारे एवं चतुर्भिमानी वानरोंके विषयमें यह जानकर कि वे जानेके लिये उपहार हैं, उन्हें आदेश देते हुए शोले—‘मधी वानर इस समय मेरी आज्ञा सुन लें—तुम पर्वतों और वनोंमें विलम्ब मत जाना। शीघ्र जाकर महाभागा रामपत्री पतिप्रता सीताका यह संग्रामकर लौट आना; मैं श्रीरामवनजीके पास उहरता हूँ। यदि तुम मेरो आज्ञाके विपरीत चलोगे तो मैं तुम्हारी जाक और कान काट लूँगा’॥ ११९—१२४॥

एवं तान् प्रेषयित्वा तु आज्ञापूर्वं कपोषुः ।
 अथ ते वानरा याता: पश्चिमादिषु दिक्षु वै ॥ १२५
 ते सानुषु सप्तस्तेषु गिरीणामपि मृद्घम् ।
 नदीतरिषु सर्वेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ १२६
 कन्दरेषु च सर्वेषु वनेषु पवनेषु च ।
 वृक्षेषु वृक्षगुल्मेषु गुहासु च शिलासु च ॥ १२७
 सहापर्वतपाश्चेषु विन्द्यासागरपार्थ्योः ।
 हिमवत्यपि शैले च तथा किम्पुरुषादिषु ॥ १२८
 मनुदेशेषु सर्वेषु सप्तपातालकेषु च ।
 मध्यादेशेषु सर्वेषु कश्मीरिषु महाबलाः ॥ १२९
 पूर्वदेशेषु सर्वेषु कामरूपेषु कोशले ।
 तीर्थस्थानेषु सर्वेषु सप्तकोश्लणकेषु च ॥ १३०
 यत्र तत्र ते सीतामद्वाहा पुनरागताः ।
 आगत्य ते नमस्कृत्य रामलक्ष्मणपादयोः ॥ १३१
 सुप्रीते च विशेषेण नाम्नाभिः कमलेक्षणा ।
 दृष्टा सीता महाभागोत्युक्त्वा तास्तत्र तस्मिन्दे ॥ १३२
 ततस्ते दुःखितं प्राह रामदेवं कपोषुः ।
 सीता दक्षिणादिग्भागे स्थिता द्रष्टुं वने नृप ॥ १३३
 शब्द्या वानरसिंहेन वायुपुत्रेण धीमता ।
 दृष्टा सीतामिहायाति हनुमान्नात्र संशयः ॥ १३४
 स्थिरो भव महाबाहो राम सत्यमिदं वचः ।
 लक्ष्मणोऽप्याह शकुनं तत्र वाक्यमिदं तदा ॥ १३५
 सर्वथा दृष्टसीतस्तु हनुमानागमिव्यति ।
 इत्याश्वास्य स्थिती तत्र रामं सुप्रीतवलक्ष्मणी ॥ १३६
 अथाङ्गदं पुरस्कृत्य ये गता वानरोत्तमाः ।
 यत्नादन्वेषणार्थाय रामपर्वी यशस्विनीम् ॥ १३७
 अदृष्टा अममापत्राः कञ्जभूतास्तदा वने ।
 भक्षणेन विहीनास्ते क्षुधया च प्रपीडिताः ॥ १३८
 भ्रमद्विर्गहनेऽरण्ये क्लापि दृष्टा च सुप्रभा ।
 गुहानिवासिनी सिद्धा ऋषिपत्नी ह्वनिन्दिता ॥ १३९
 सा च तानागतान्द्वाहा स्वाश्रमं प्रति वानरान् ।
 आगता: कस्य यूर्यं तु कुतः किं नु प्रयोजनम् ॥ १४०

कपिराज सुप्रीतने इस प्रकार आज्ञापूर्वक उन्हें भेजा और वे वानर पश्चिम आदि दिशाओंमें चल पड़े। सप्तस्त पर्वतोंके सानुओं (दधत्यकाओं) और शिखरोंपर, सारी नदियोंके तटोंपर, मुनियोंके आश्रमोंमें, छाड़ोंमें, सब प्रकारके बनों और डपबनोंमें, वृक्षों और झाड़ियोंमें, कन्दराओं तथा शिलाओंमें, सहापर्वतके आस-पास, विन्द्याचल और समुद्रके निकट, हिमालय पर्वतपर किम्पुरुष आदि देशोंमें, सप्तस्त मानवीय प्रदेशोंमें, सातों पातालोंमें, सम्पूर्ण मध्यप्रदेशोंमें, कल्पोरोंमें, पूर्वदिशके ऊरे देशोंमें, कामरूप (आसाम) और कोशल (अवध)-में, सम्पूर्ण तीर्थ-स्थानोंमें तथा सातों कोश्लण देशोंमें भी जहों-तहों सर्वत्र सीताको खोज करते हुए ते महाबलों वानर उन्हें न पाकर लौट आये। आकर उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणके शरणोंमें तथा विशेषतः सुप्रीतको प्रणाम किया और यह कहकर कि 'हमने कमललोचना महाभागा सीताको कही नहीं देखा', वहाँ रुहे हो गये ॥ १२५—१३२ ॥

तब दुःखित हुए भगवान् रामसे कपिराज सुप्रीतने कहा—'हाजन्। सीताजी दक्षिण दिशमें ही वनमें स्थित हैं; उन्हें वानरबेष्ट बुद्धिमान् पवनकुमार ही देख सकते हैं। इसमें मंदेह नहीं कि हनुमान्जी सीताजी देखकर ही आयेंगे। महाबाहु श्रीराम! आप ऐसं धारण करें, मेरा यह कथन विश्वाकुल सत्य है।' तब लक्ष्मणने भी शकुन देखकर यह चाल कही—'हनुमान् सर्वथा सीताको देखकर ही आयेंगे।' इस प्रकार सुप्रीत और लक्ष्मण भगवान् श्रीरामको सान्त्वना देते हुए उनके पास रहने लगे ॥ १३३—१३६ ॥

उभर जो-जो जेष्ठ वानर अङ्गदजीको आगे करके यशस्विनी श्रीसीताजीकी यशपूर्वक खोज करनेके लिये गये थे, वे वनमें कहीं भी सीताजीका पता न पाकर चहुत यक गये तथा कठमें पढ़ गये। यही नहीं, कुछ भोजन न मिलनेके कारण वे भूखें भी बहुत पीड़ित हो गये। नहन वनमें धूमते हुए उन्होंने एक परम कान्दिमयी और उत्तम गुणोवाली ऋषिपत्रों देखी, जो कन्दरामें निवास करनेवाली और सिद्धा थी। उसने उन वानरोंको अपने आश्रमपर आया देख भूला—'आप स्त्री किसके दूत हैं? कहाँसे आये हैं? और यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?' ॥ १३७—१४० ॥

इत्युक्ते जाम्बवानाह तो सिद्धां सुमहामतिः ।
सुश्रीवस्य वयं भृत्या आगता हुत्र शोभने ॥ १४१
रामभायां धैर्यनये सीतान्वेषणकर्मणि ।
कां दिग्भूता निराहारा अदृष्टा जनकात्मजाम् ॥ १४२
इत्युक्ते जाप्यवत्यत्र पुनस्तानाह सा शुभा ।
जानामि रामं सीतां च लक्ष्मणं च कपीचुरम् ॥ १४३
भुद्गीच्छपत्र ये दत्तमाहारं च कपीचुराः ।
रामकार्यांगतास्त्वत्र यूयं रामसमा मम ॥ १४४
इत्युक्त्वा चामृतं तेषां योगाहत्वा तपस्विनी ।
भोजयित्वा यथाकामं भूयस्तानाह तापसी ॥ १४५
सीतास्थानं तु जानाति सम्पातिनाम्य पक्षिराद् ।
आस्तियतो वे बने सोऽपि महेन्द्रे पर्वते द्विजः ॥ १४६
मार्गेणानेन हरयस्तत्र यूयं गपिष्यत ।
स वक्ति सीतां सम्पातिर्दूरदर्शी तु यः खगः ॥ १४७
तेनादिष्टं तु पन्थानं पुनरासाद्य गच्छत ।
अवश्यं जानकीं सीतां द्रष्टव्यते पवनात्पत्तः ॥ १४८
तथैवमुक्ताः कपयः परां प्रीतिमुपागताः ।
हृष्टरसेजनमाप्नास्तां प्रणम्य प्रतस्विरेऽ ॥ १४९
महेन्द्रादिं गता वीरा वानरास्तदिदृक्षया ।
तत्र सम्पातिमासीनं दृष्टवन्तः कपीचुराः ॥ १५०
तानुवाचाथ सम्पातिर्वानरानागतान्दिजः ।
के यूधिष्ठिति सम्प्राप्ताः कपय वा दूत मा चिरम् ॥ १५१
इत्युक्ते वानरा ऊचुर्यथावृतमनुक्रमात् ।
रामदूता वयं सर्वे सीतान्वेषणकर्मणि ॥ १५२
प्रेषिताः कपिराजेन सुश्रीवेण महात्मना ।
त्वां द्रष्टुमिह सम्प्राप्ताः सिद्धाया वचनादद्विजः ॥ १५३
सीतास्थानं महाभाग त्वं नो वद महापते ।
इत्युक्तो वानरैः श्येनो वीक्षांचके सुदक्षिणाम् ॥ १५४

उसको बत सुनकर महामति जाम्बवानने उस सिद्धा तपस्विनीसे कहा—‘शोभने। पापहीने। हम सुश्रीवेण भृत्य हैं, क्रोधमचन्द्रजीकी भार्या सीताको खोज करनेके लिये यहाँ आये हैं। हम किस दिशाको जाएँ, इसका ज्ञन हमें नहीं यह गया है। सीताजीका पता न पानेके कारण अभीतक हमने कुछ खोजन भी नहीं किया है’ ॥ १४१—१४२ ॥

जाम्बवानके ये कहनेपर उस कल्पणी तपस्विनीने उन्हें उन बानरोंसे कहा—‘मैं श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और कपिराज सुश्रीको भी जानती हूँ। बानरेन्द्रगण ! आप लोग यहाँ मेरा दिशा हुआ आहार ग्रहण करें। आप लोग क्रोधमचन्द्रजीके कार्यसे यहाँ आये हैं, अतः हमारे लिये श्रीरामचन्द्रजीके समान ही आदरणीय हैं।’ ये कहकर उस तपस्विनीने अपने योगबलसे उन बानरोंको अमृतमय मधुर पदार्थ अर्पित किया तथा यथेष्ट भोजन कराकर पुनः उनसे कहा—‘सीताका स्वयं चिराज सम्पातिको ज्ञात है। वे इसी बनवे महेन्द्रपर्वतपर रहते हैं। बानरगण ! आप लोग इसी मार्गसे बहाँ पहुँच आयेंगे। सम्पाति बहुत दूरका देखनेवाले हैं, अतः वे सीताका पता चता देंगे। उनके चताये हुए मार्गसे उहप लोग पुनः आगे जाइयेगा। जनकनन्दिनीं सीताको ये पवनकुम्हार हनुमान् जी अवश्य देख लेंगे’ ॥ १४३—१४४ ॥

उसके इस प्रकार कहनेपर बानरगण बहुत ही प्रसन्न हुए, उन्हें बड़ा उत्साह मिला। पिर वे उस तपस्विनीको प्रणाम करके वहाँसे प्रस्थित हुए। सम्पातिको देखनेकी इच्छासे वे बीर कपोचर महेन्द्रपर्वतपर गये तथा वहाँ चैठे हुए सम्पातिको उन्होंने देखा। तब पक्षिराज सम्पातिने वहाँ आये हुए बानरोंसे कहा—‘आप स्वेच्छा कीव हैं? किसके दूत हैं? वहाँसे आये हैं? शीघ्र बतायें’ ॥ १४५—१५१ ॥

सम्पातिके ये पूछनेपर बानरोंने सार समाचार यथार्थकृपसे क्रमसः बताना आरम्भ किया—‘पक्षिराज ! हम सब क्रोधमचन्द्रजीके दूत हैं। कपिराज महात्मा सुश्रीवेण हमें सीताजीको खोजके लिये भेजा है। पक्षिराज ! एक सिद्धाके कहनेसे हम आपका दर्शन करनेके लिये यहाँ आये हैं। महामते ! महाभाग ! सीताके स्थानका पता आप हमें बता दें।’ बानरोंके इस तरह अनुरोध करनेपर गृध्र सम्पातिने अपनी दृष्टि दक्षिण दिशाकी ओर दीक्षायी और परिवर्ता

सीतां दृष्टा स लक्ष्मायामशोकास्ये महावने।
स्थितेति कथितं तेन जटायुम् युतस्तव ॥ १५५

भ्रातेति चोचुः स स्नात्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिष्।
योगपास्थाय स्वं देहं विसर्ज य महामतिः ॥ १५६

ततस्ते वानरा दग्ध्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिष्।
गत्वा महेन्द्रशुभ्रं ते तपारुहु क्षणं स्थिताः ॥ १५७

सागरं शीक्ष्य ते सर्वे परस्परवधाद्वृत्वं।
रावणोनैव भार्यां सा नीता रामस्य निश्चितम् ॥ १५८

सप्यातिवचनादद्य संज्ञाते सकले हि तत्।
बानराणां तु कक्षात्र उत्तीर्णं लक्षणोदधिष् ॥ १५९

लक्ष्मां प्रविश्य दृष्टा तां रामपत्नीं यशस्विनीम्।
पुनश्चोदधितरणे शक्तिं दृत हि शोभनाः ॥ १६०

इत्युक्तो जाम्बवान् प्राह सर्वे शक्तास्तु वानराः।
सागरोन्तरणे किनु कार्यमन्यस्य सम्भवेत् ॥ १६१

तत्र दक्षोऽथमेवाप्तं हनुमानिति मे मतिः।
कालक्षेषो न कर्तव्यो मासार्थमधिकं गतम् ॥ १६२

यद्यदृष्टा तु गच्छामो वैदेहीं वानरपंभाः।
कर्णनासादि नः स्वाङ्गं निकृतति कपीचुरः ॥ १६३

तस्मात् प्रार्थ्यः स चास्याभिर्वायुप्रस्तु मे मतिः।
इत्युक्तास्ते तथेत्युच्चुर्वानरा वृद्धवानरम् ॥ १६४

ततस्ते प्रार्थ्यामासुर्वानराः पवनात्पञ्जम्।
हनुमन्तं महाप्राज्ञं दक्षं कार्येषु चाधिकम् ॥ १६५

गच्छ त्वं रामभृत्यस्त्वं रावणस्य भयाय च।
रक्षस्व वानरकुलपस्याकमञ्जनीसुतं।
इत्युक्तस्तांस्तथेत्याह वानरान् पवनात्पञ्जः ॥ १६६

सीताको देखकर बताया—‘सीताजी लक्ष्मामें अशोकवनके भीतर ठहरे हुई हैं।’ तब वानरोंने कहा—‘आपके भाता जटायुने सीताजीकी रक्षाके लिये ही प्राणत्याग किया है।’ वह सुनकर महामति सप्यातिने स्नान करके जटायुको जलाझाली दी और योगपारपत्रका आश्रय ले अपने शरीरको त्याग दिया ॥ १५२—१५६ ॥

तदनन्तर वानरोंने सप्यातिके शवका दाह-संस्कार किया और उन्हें जलाझालि है, महेन्द्रपर्वतपर जाकर तथा उसके लिंगपत्र आकृद हो, वानभर खड़े रहे। फिर समुद्रकी ओर दौल ते सभी पारम्पर कहने लगे—‘रावणने ही भगवान् श्रीरामको भार्या सीताका अपाहरण किया है, यह यत्र निश्चित हो गयी। सप्यातिके वर्णनसे आज सब बातें ठीक-ठीक जात हो गयीं। शोभाशाली यानरों। अब आप सब लोग सोचकर बतायें कि यहाँ वानरोंमें कौन ऐसा बीर है, जो इस लार समुद्रके पार जा लक्ष्मामें चुरे और परम यशस्विनीं श्रीरामपत्नी सीताजीका दर्शन करके पुनः समुद्रके पार लौट आनेये अर्थर्थ हो सके’ ॥ १५७—१६० ॥

वानरोंको यह जात सुनकर जाम्बवान्ने कहा—‘समुद्रके पार जानेमें तो सभी वानर समर्थ हैं, परंतु यह कार्य एक अन्यतम जानरसे ही सिद्ध होगा। मेरे विचारमें तो यह आता है कि इस कार्यको सिद्ध जानेमें केवल हनुमानजी ही समर्थ हैं। अब सभय नहीं खोना चाहिये। हमारे हीटनेको जो नियत अवधि होती है। इससे पंद्रह दिन अधिक अधिक गये हैं। वानरेन्द्रगण! यदि हमलोग सीताको देखे बिना ही लौट आयें तो अपिराज सुश्रीव हमारी नाक और कान जल लेंगे। इसलिये मेरी राय यह है कि हम सब लोग इस कार्यके लिये वानुनन्दन हनुमानजीसे ही प्रार्थना करें’ ॥ १६२—१६३ ॥

यह सुनकर उन वानरोंने बृद्ध जाम्बवान्जीसे कहा, ‘अच्छा, ऐसा ही हो।’ लक्ष्मात् ते सभी वानर कार्यसम्बन्धमें विशेष युक्त महायुद्धमान् पवननन्दन हनुमानजीसे प्रार्थना करने लगे—‘अङ्गनीनन्दन! आप श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय सेवक हैं। आप ही रावणको भय देनेके लिये लक्ष्मामें जाय और हमारे वानरपृष्ठकी रक्षा करें।’ वानरोंके यों कहनेपर पवननन्दन हनुमानजीने ‘तथात्पुरुष’ कहकर उनको प्रार्थना स्वीकार की। एक तो श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा थी,

रामप्रयुक्तश्च पुनः स्वभर्तुणा
पुनर्पहेन्द्रे कपिभिश्च नोदितः।
गन्तुं प्रचके मतिमङ्गलीसुतः
समुद्रमुत्तीर्य निशाचरालयम्॥ १६७

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामकथामें एकात्मकतावेऽध्यायः ॥ ५० ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीनरसिंहके कपिभिश्चक' एकात्मक अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

प्राक्काश विष्णु

इव्यावनवाँ अध्याय

हनुमान्‌जीका समुद्र पार करके लक्ष्मणमें जाना, सीतासे भेंट और
लक्ष्मणका दहन करके श्रीरामको समाचार देना

पर्वतांडेन उकाच

स तु रावणनीतायाः सीतायाः परिमार्गणम्।
इयेष पदमन्वेषु चारणाचरिते पथिः॥ १
अञ्जलिं प्राङ्मुखं कृत्वा सरगणायात्मयोनये।
मनसाऽऽवन्ना रामं च लक्ष्मणं च महारथम्॥ २
सागरं सरितश्चैव प्रणाम्य शिरसा कपि:।
ज्ञातीश्चैव परिष्वच्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम्॥ ३
अरिष्टं गच्छ पश्चानं पुण्यवायुनिषेचितम्।
पुनरागमनायेति वानररभिपूजितः॥ ४
अञ्जसा स्वं तथा वीर्यमाविवेशाय वीर्यवान्।
मार्गमालोकयन् दूरादूर्ध्वं प्रणिहितेक्षणः॥ ५
सम्पूर्णमिव चात्मानं भावयित्वा महाबलः।
उत्पपात गिरेः शृङ्गाश्रिष्ठीङ्ग्य गिरिपम्बरम्॥ ६
पितुमार्गेण यातस्य वायुपुत्रस्य धीमतः।
रामकार्यपरस्यास्य सागरेण प्रबोदितः॥ ७
विश्रामार्थं समुत्तम्यी मैनाको लबणोदधेः।
तं निरीक्ष्य निषीङ्गाश्च रथात्सम्भाष्य सादरम्॥ ८

फिर अपने स्थानी सुश्रौवने भी आदेश दिया था, इसके बाद महेन्द्रपर्वतपर उन बानरोंने भी उन्हें प्रेरित किया, अतः अङ्गनीकुमार हनुमान्‌जीने समुद्र लौटकर निशाचरपुरा लक्ष्मणमें जानेका निष्काय कर लिया ॥ १६४—१६७ ॥

यार्केण्डेहजी खोले—हनुमान्‌जीने रावणद्वारा हरी गयी सीताकी खोज करने तथा उनके स्थानका पता लगानेके लिये जारणोंके मार्ग (आकाश)–से जानेकी इच्छा की। पूर्वाभिमुख हो, हाथ जोड़कर उन्होंने देवगणोंसहित आत्मयोनि लक्ष्मणजीको मन ही मन प्रणाम किया तथा खोयम और महारथी लक्ष्मणको भी मनसे ही प्रणाम करके सागर तथा सरिताओंको भस्तक नकारा । फिर अपने बानर-चन्द्रओंको गले लगाकर उन सबकी प्रदक्षिणा की । तब अन्य सब बानरोंने वह आशीर्वाद दिया—'वोर! तुम (सकुशल) लौट आनेके लिये पवित्र वायुसे सेवित मार्गपर बिना खिल-बाधके जाओ ।' यो कहकर उन्होंने हनुमान्‌जीका सम्मान किया । फिर पारकमी पर्वतकुमार अपनी सहज शक्तिको प्राप्त हुए—उनमें वायुके सदृश घलका आवेश हो गया । दूरतकके मार्गका अवलोकन करते हुए उन्होंने ऊपर दृष्टि ढाली । अपने—आपमें पहचानिधि ऐश्वर्यकी पूर्णताका—सा अनुभव करते हुए वे महाबली हनुमान् यहेन्द्र पर्वतको पैरोंसे दबाकर उसके शिखरसे आकाशकी ओर उछले ॥ ५—६ ॥

बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीके कार्य—साधनमें तत्पर हो जब अपने पिता वायुके मार्गसे चले जा रहे थे, उस समय उनको थोड़ी देरतक त्रिशाम देनेके लिये, समुद्रद्वारा प्रेरित हो, मैनाक पर्वत पानीमें चाहर कूपरकी ओर उठ गया । उसे देख उन्होंने वहाँ थोड़ा—मा रुककर उससे आटरपूर्वक बातचीत की और फिर उसे अपने बेगसे दबाकर उस्सलते हुए वे दूर चले गए ।

उत्पतंश्च वने थीरः सिंहिकास्यं महाकपिः ।
 आस्यप्रान्तं प्रविश्यथ वेगेनान्तर्विनिस्तः ॥ ९
 निस्मृत्य गतवाऽशीर्च वायुपुत्रः प्रतापवान् ।
 लङ्घयित्वा तु तं देशं सागरं पवनात्मजः ॥ १०
 त्रिकूटशिखेरे रम्ये वृक्षाये निष्पात ह ।
 तस्मिन् स पर्वतश्चेष्टे दिनं नीत्वा दिनक्षये ॥ ११
 संध्यामुपास्य हनुमान् रात्री लङ्घां शनैर्निशि ।
 लङ्घाभिधां विनिर्जित्य देवता प्रविशेश ह ॥ १२
 लङ्घापनेकरत्वाद्यां वद्वाक्षुर्यसमन्विताम् ।
 राक्षसेषु प्रसुसेषु नीतिमान् पवनात्मजः ॥ १३
 रावणस्य ततो वेशा प्रविशेशाथ त्वचिद्विमत् ।
 शयाने रावणं दृष्ट्वा तल्ये महति बानरः ॥ १४
 नासापुटघोरकारिविशद्विर्युमोचकः ।
 तथेव दशभिर्वक्षेद्वृपेतेस्तु संयुतम् ॥ १५
 स्त्रीसहस्रैस्तु दृष्ट्वा तं नानाभरणभूषितम् ।
 तस्मिन् सीतामदृष्ट्वा तु रावणस्य गृहे शुभे ॥ १६
 तथा शयाने स्वगृहे राक्षसानां च नायकम् ।
 दुःखितो वायुपुत्रस्तु सम्पातेवंचनं स्मरन् ॥ १७
 अशोकवनिकां प्राप्नो नानापुष्पसमन्विताम् ।
 जुष्टां मलयजातेन चन्दनेन सुगच्छना ॥ १८
 प्रविश्य शिंशपावृक्षमाभितां जनकात्मजाम् ।
 रामपत्नीं समप्राक्षीद राक्षसीभिः सुरक्षिताम् ॥ १९
 अशोकवृक्षमारुह्य पुण्यितं प्रधुपङ्कवम् ।
 आसांचके हरिस्तत्र सेयं सीतेति संस्मरन् ॥ २०
 सीतां निरीक्ष्य वृक्षाये यावदास्तेऽनिलात्मजः ।
 स्त्रीभिः परिवृत्सत्र रावणस्तावदागतः ॥ २१
 आगत्य सीतां प्राहाश्य प्रिये मां भज कामुकम् ।
 भूषिता भव वैदेहि त्यज रामगतं मनः ॥ २२
 इत्येवं भाष्यमाणं तमन्तर्धाय तुणं ततः ।
 प्राह वाक्यं शनैः सीता कम्पमानाथ रावणम् ॥ २३
 गच्छ रावण दुष्ट त्वं परदारपरायण ।
 अचिराद्रामवाणास्ते पिबन्तु रुधिरं रणो ॥ २४

मार्गमें सिंहिका नामको राक्षसी थी । उसने जलमें मुँह फैला रखा था । महाकपि हनुमान् जी उसके मुँहमें जा पड़े । मुँहमें पड़ते ही वे वेगपूर्वक उसके भीतर शुस्कर पुनः बाहर निकल आये । इस प्रकार सिंहिकाके मुख्यसे निकलकर प्रतापी पवनकुमार उस समृद्ध प्रदेशको लाशते हुए त्रिकूट पर्वतके सुरम्ब शिखरपर एक महान् वृक्षके ऊपर जा डारे । उसी उत्तम पर्वतपर दिन बिताकर हनुमान् जीने वहीं साधकास्तकी संध्योपासना की । फिर रातमें धीरे-धीरे वे लङ्घाकी ओर चले । मार्गमें मिली हुई 'लङ्घा' नामकी नगर-देवताको जीतकर उन्होंने नाना रक्षासे सम्पन्न और अनेक प्रकारके आकर्षणसे युक्त लङ्घापुरीमें प्रवेश किया ॥ ७—१२ ॥

हठनन्तर जब सब गायत्रम गहरो नीदमें सो गये, तब नीतिज्ञ हनुमान् जीने रुक्षके समृद्धिशाली भवनमें प्रवेश किया । वहीं रावण एक बहुत बड़े पलंगपर सो रहा था । हनुमान् जीने देखा—सौंस छोड़नेवाले वोस भर्यकर नासिका छिद्रोंमें युक्त उसके दसों मुखोंमें जड़ी भवानक दाढ़ी थीं । नाना प्रकारके आभूषणोंमें विभूषित रावण हजारों मिलयोंके साथ वहीं सोया था । किंतु रुक्षके उस सुन्दर भवनमें मीलात्री कहीं नहीं दिखायी थीं । वह राशसराज अपने अरके भीतर गाढ़ निहायें सो रहा था । सीताजीका दर्शन न होनेमें वायुपन्दन हनुमान् जी बहुत दुःखी हुए । फिर मप्पातिके काषणको बाद करके वे अशोकवाटिकामें आये, जो विविध प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित और अस्तमा मूर्चित मलयज चन्दनसे लाल थीं ॥ १३—१६ ॥

वाटिकामें प्रवेश करके हनुमान् जीने अशोकवृक्षके नीचे बैठी हुई जनकनन्दिनी श्रीरामपत्नी सीताको देखा, जो गधसिंहोंसे सुरक्षित थीं । वह अशोकवृक्ष सुन्दर मृदुल पद्मबोंसे विलसित और पुष्पोंसे सुशोभित था । कपिवर हनुमान् जी उस वृक्षपर चढ़ गये और 'ये ही सीता हैं'—यह सोचते हुए वहीं बैठ गये । सीताजीका दर्शन करके वे पवनकुमार ज्यों ही वृक्षके शिखरपर बैठे, त्यों ही रावण बहुत-सी स्त्रियोंसे घिरा हुआ वहाँ आया । अहकर उसने सीतासे कहा—'प्रिये ! मैं कामपीड़ित हूं, मुझे स्वोकार करो । वैदेहि ! अब शृङ्खार धारण करो और श्रीरामकी ओरसे मन हटा सो ।' इस प्रकार कहते हुए रावणमें भयवश कौपीली हुई सीताजी और्चमें तिनकीकी ओट रखकर धीरे-धीरे ओली—'परम्परीसेवी दुष्ट रावण ! तू चला जा । मैं जाप देती हूं—भगवान् श्रीरामके बाण शोष्र ही रणभूमिमें तुम्हारा रक्त धीरें' ॥ १९—२४ ॥

तथेत्युक्तो भर्त्सितश्च राक्षसीराह राक्षसः ।
 द्विमासाभ्यनरे चैनां वशीकुरुत मानुषीम् ॥ २५
 यदि नेच्छति मां सीता ततः खादत मानुषीम् ।
 इत्युक्त्वा गतवान् दुष्टो रावणः स्वं निकेतनम् ॥ २६
 ततो भयेन तां प्राहु राक्षस्यो जनकात्मजाम् ।
 रावणं भज कल्याणि सधनं सुखिनी भव ॥ २७
 इत्युक्ता प्राह ताः सीता राघवोऽलयुविक्रमः ।
 निहत्य रावणं युद्धे सगणं मां नविष्यति ॥ २८
 नाहपन्यस्य भार्या स्वामुते रामं रपूतपम् ।
 स ह्नागत्य दशग्रीवं हत्वा मां पालयिष्यति ॥ २९
 इत्याकण्ठं वचस्तस्या राक्षस्यो ददृशुर्भयम् ।
 हन्यतां हन्यतामेषा भक्षयतां भक्षयतामिष्यम् ॥ ३०
 ततस्तासिवजटा प्राह स्वप्ते दृष्टपनिन्दिता ।
 शृणुष्व दुष्टराक्षस्यो रावणस्य विनाशनः ॥ ३१
 रक्षोभिः सह सर्वस्तु रावणस्य मृतिप्रदः ।
 लक्ष्मणेन सह भाग्ना रामस्य विजयप्रदः ॥ ३२
 स्वप्नः शुभो मया दृष्टः सीतायाक्षु पतिप्रदः ।
 त्रिजटादाद्यमाकण्ठं सीतापाक्षु विसुन्य ताः ॥ ३३
 राक्षस्यस्ता ययुः सर्वाः सीतामाहाङ्गनीसुतः ।
 कीर्तयन् रामवृत्तानां सकलं पवनात्मजः ॥ ३४
 तस्यां विश्वासमानीय दत्त्वा रामाङ्गुलीयकम् ।
 सम्भाव्य लक्षणं सर्वं रामलक्ष्मणयोस्ततः ॥ ३५
 महत्या सेनया युक्तः सुप्रीवः कपिनायकः ।
 तेन सार्थिमिहागत्य रामस्तव पतिः प्रभुः ॥ ३६
 लक्ष्मणश्च महावीरो देवतस्ते शुभानने ।
 रावणं सगणं हत्वा त्वामितोऽदाय गच्छति ॥ ३७
 इत्युक्ते सा तु विश्वस्ता यायुप्रतमधाद्वीत ।
 कथमप्रागतो वीर त्वमुत्तीर्णं महोदधिम् ॥ ३८
 इत्याकण्ठं वचस्तस्या पुनस्तामाह वानरः ।
 गोप्यदवन्मयोत्तीर्णः समुद्रोऽयं वरानने ॥ ३९

सीताजीका यह उत्तर और फटकार पाकर राजसराज यवनने राक्षसियोंसे कहा—‘तुम लोग इस मानव-कन्याको दो महोनेके भौतर समझाकर ऐसे बर्जीभूत कर दो । यदि इतने दिनोंतक इसका मन मेरी ओर न लूके तो इस मानुषोंको तुम खा डालना ।’ यों कहकर दृष्ट रावण अपने महानमें चला गया । तब रावणके हरसे ऊरी हुई राक्षसियोंने जनकनन्दिनी सीतासे कहा—‘कल्याणः रावण बहुत खोनी है, इसे स्वोकर कर लो और सुखसे रहो ।’ राक्षसियोंके यो कहनेपर सीताने उनसे कहा—‘महापराक्रमी भगवान् श्रीराम युद्धमें रावणको उसके सेवकगणोंसहित मारकर मुझे ले जायेंगे । मैं रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके सिक्षा दूसरोंको भार्या नहीं हो सकती । ये ही आकर रावणको मारकर मेरी रक्षा करेंगे’ ॥ २५—२९ ॥

सीताजी यह यात सुनकर राक्षसियोंने उनके प्रय दिखाते हुए कहा—‘अहो ! इसे मार डालो, मार डालो, खा जाओ, खा जाओ ।’ उन राक्षसियोंमें एकका नाम क्रिजटा था । यह उत्तम विद्यार रक्षनेवाली—साधो मरी थी । उसने उन सभी राक्षसियोंको स्वप्रमें देखो हुई बात चलायी । यह ‘कोली—’ अरी दुष्ट राक्षसियो ! मूर्नी, मैंने एक शुभ स्वप्न देखा है, जो रावणके लिये विनाशकारी है, स्वप्न राक्षसीके साथ रावणको मौतके दीर्घमें डालनेवाला है, भाग्ना लक्ष्मणसे शाश्वत श्रीरामचन्द्रजीको विजयका सूचक है और सीताको पतिमें मिलानेवाला है ।’ क्रिजटाजी यात सुनकर ये सभी राक्षसियाँ सीताके पाससे हटकर दूर चली गयी । तब अङ्गनीनन्दन हनुमान्‌जीने आपनेको सीताके रक्षने प्रकट किया और ‘श्रीराम जाम’ का कीर्तन करते हुए उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण युक्तानका उनके सम्मान वर्णन किया । इस प्रकार सीताके घरमें विशास डाप्तर करके उनके श्रीरामचन्द्रजीकी अङ्गठी दी । फिर उनसे श्रीराम और लक्ष्मणके हारीरके लक्षण चताये और कहा—‘समुखि ! बानरोंके राजा सुश्रोत बहुत चही सीताके स्वामी हैं । उन्होंके साथ आपके पतिदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा आपके देवत महावीर लक्ष्मणजी यहाँ पदारंगे और रावणको सेनासंहित मारकर आपको यहाँसे ले जायेंगे’ ॥ ३०—३३ ॥

हनुमान्‌जीके यह चहनेपर सीताजीव उनपर विश्वास हो गया । ऐसोल्लो—‘वो ! तुम किस तरह महामारणको पार करके यहाँ चले आये ?’ उनका यह वचन सुनकर हनुमान्‌जीने युनः उनसे कहा—‘वरानने । मैं इस नमुद्रको उसी प्रकार लाँघ गया, जैसे जोहं गोंके सूखे सूखे बने हुए गड्ढे को लाँघ जाय ।

जपतो रामरामेति सागरो गोप्यदायते ।
दुःखमग्नासि वैदेहि स्थिरा भव शुभानने ॥ ४०

क्षिप्रं पश्यसि रामं त्वं सत्यमेतद्वावीपि ते ।
इत्याच्छास्य सती सीता दुःखितां जनकात्मजाम् ॥ ४१

ततशृङ्खामणिं प्राप्य श्रुत्वा काकपराभवम् ।
नत्वा तां प्रस्थितो वीरो गन्तुं कृतमतिः कपि ॥ ४२

ततो विमुश्य तद्वद्वत्वा कोऽदावनमणेष्टः ।
तोरणस्थो ननादोच्च रामो जयति वीर्यवान् ॥ ४३

अनेकान् राक्षसान् हत्वा सेनाः सेनापतीषु सः ।
तदा त्वक्षकुमारं तु हत्वा रावणसीनिकम् ॥ ४४

साधुं समारथिं हत्वा इन्द्रजितं गृहीतवान् ।
रावणस्य पुरः स्थित्वा रामं संकीर्त्य लक्ष्मणम् ॥ ४५

सुगीवं च महावीरं दग्ध्या लक्ष्मणेष्टः ।
निर्भर्त्य रावणं दुष्टं पुनः सम्भाव्य जानकीम् ॥ ४६

भूयः सागरमुसीर्य ज्ञातीनासाद्य वीर्यवान् ।
सीतादर्शनमावेद्य हनुमांश्च वृजितः ॥ ४७

वानरैः सार्थमागत्य हनुमान्यपूर्वने पहन् ।
निहत्य रक्षपालांस्तु पादयित्वा च तन्मधु ॥ ४८

सर्वे दधिषुखं पात्य हरितो हरिभिः सह ।
खमुत्पत्य च सम्प्राप्य रामलक्ष्मणपादयोः ॥ ४९

नत्वा तु हनुमांसतत्र सुगीवं च विशेषतः ।
आदितः सर्वमावेद्य समुद्रतरणादिकम् ॥ ५०

कथयामाम रामाय सीता दृष्टा प्रयेति वै ।
अशोकवनिकापद्ये सीता देवी सुदुःखिता ॥ ५१

जो 'राम-राम' का जप करता है, उसके लिये समुद्र गौके खुरके विहके सम्मान हो जाता है । शुभानने वैदेहि ! आप दुःखमग्ना दिक्षियो देती हैं, अब ऐरे धारण कीविदे । मैं आपसे सत्य-सत्य कह रहा हूँ, आप बहुत शोऽप्त श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करेंगो ।' इस प्रकार दुःखमें इच्छी हुई पतिग्रहा जनकनन्दिनी सीताको आश्रयासन दे, उनसे पहचानके लिये शूद्रामणि पाकर और श्रीरामके प्रभावसे काकारुपी जागन्तके प्राप्तव्यकी कथा सुनकर, वहाँसे चल देनेका विचार करके हनुमानजीने सीताको नमस्कार करनेके पश्चात् प्रस्थान किया ॥ ४८—४२ ॥

तदपश्यन् कुठ स्तेष्वद्वन् पराक्रमो हनुमानजीने गवणके उस सम्पूर्ण ब्रह्मदावन (अशोकवाटिका) -को नष्ट-भट्ट कर डाला और बदके द्वारपर विष्ट हो, उक्तावारसे सिंहनद चक्षे हुए चोले—' भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो !' फिर तो चुदके लिये सामने आये हुए अनेक राक्षसोंको मारकर संक्षेप में और सेनापतियोंवा संहार किया । हमके बाद रावणके सेनापति जलशकुमारको अध तथा सारथिसहित यमलोक पर्याप्ता दिया । इसकर रावणपुर इन्द्रजित्वे वहाँ प्रभावसे उन्हें जंगी बना लिया । इसके बाद वे रावणके सम्पूर्ण उपस्थिति लिये गये । वहाँसे एटकर उन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण और महावाली मुर्दीवके यशस्वी फौरन कहते हुए सम्पूर्ण लक्ष्मणपूर्वके जलशक्ति भस्म बन दिया । तदनन्तर दुष्टमा रावणको ढाँट उठाकर पुनः सीताजीसे बालांकाप किया । फिर पाक्रमी हनुमानजी समुद्रके इस पार आकर अपने बाल बच्चुओंसे लिये और सीताजीके दर्शनका समाचार सुनाकर सबसे सम्मानित हुए ॥ ४८—४१ ॥

तदपश्यन् हनुमानजी सभी बानरोंके साथ मधुवनमें आये । उसके रुचवालोंको मारकर उन्होंने वहाँ सब साथियोंको मधु-चन जाया और स्वयं भी भीया । इस कार्यमें बाधा देनेवाले दधिमुख नामके बानरको सबने भरतीपर दे मारा । इसके बाद हनुमानजी सब बानरोंके साथ आनन्दित हो, आकाशमें उड़ाते हुए श्रीराम और लक्ष्मणके निकट जा पहुँचे । वहाँ उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम कर, विशेषतः सुगीवको बस्तक दूकाकर उन्होंने समुद्र लाँघनेसे लेकर सारा समाचार अत्योपान्त सुनाया और यह भी कहा कि 'मैंने अशोक-वाटिकाके भीतर सीतादेवीका दर्शन किया ।

राक्षसीभिः परिवृता त्वां स्मरन्ती च सर्वदा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना तव पत्नी बरानना ॥ ५२

शीलबुजसपायुक्ता तत्रापि जनकात्मजा ।
सर्वं श्रावेषमाणेन मया दृष्टा पतिव्रता ॥ ५३

मया सम्भाषिता सीता विश्वस्ता रघुनन्दन ।
अलङ्कारश्च सुमणिस्तथा ते प्रेषितः प्रभो ॥ ५४

इत्युक्त्वा दत्तवास्तस्मै चूडामणिपनुत्प्रभम् ।
इदं च वचनं तु भ्यं पत्न्या सम्प्रेषितं शृणु ॥ ५५

चिक्कटे घद्गु तु सुप्ते त्वयि महात्म ।
वायसाभिभवं राजंसत्तिकल स्मर्तुमहसि ॥ ५६

अल्पापराधे राजेन्द्र त्वया बलिभुजि प्रभो ।
यत्कृतं तप्त कर्तुं च शक्यं देवासुररपि ॥ ५७

श्रद्धास्त्रं तु तदोत्सुहं राजणं किं न जेष्यसि ।
इत्येवमादि बहुशः प्रोक्त्वा सीता रुरोद ह ।
एवं तु दुःखिता सीता तां योकुं यत्प्राचार ॥ ५८

इत्येवमुक्ते प्रयनात्मजेन
सीतावचस्तस्तु भूभूषणं च ।
श्रुत्वा च दृष्टा च रुरोद रामः
कपिं सप्तलिङ्ग्य शनैः प्रतस्थे ॥ ५९

इति श्रीनरसीहेतुदाने यमज्ञुर्द्वारे एकप्रज्ञातन्त्रोऽध्यायः ॥ ५८—५९ ॥
इति इकार श्रीनरसीहेतुदाने 'श्रीनरसीहेतु' कथाविवरण 'इकप्रज्ञातन्त्रोऽध्यायः पृष्ठ हृष्ट ॥ ५८—५९ ॥

उन्हें गशसिर्यां थेरे हुए थीं और वे बहुत दुःखी होकर निस्तर आपका हो स्मरण कर रही थीं। उनके मुख्यपर आँसुओंकी थारा वह रहो थी और वे बड़ी दीन अवस्थामें थीं। रघुनन्दन ! आपको धर्मपत्नी सुमुखी सीता वहाँ भी श्रीत और सदाचारसे सम्बन्ध हैं। मैंने मल जगह दौड़ते हुए पतिव्रता जानकीको अशोकवनमें चारा, उनसे बलांलाप किया और उन्होंने भी मेरा विश्वास किया। प्रभो ! उन्होंने आपको देनेके लिये अपना श्रेष्ठ मणिश्वय अलङ्कार भेजा है ॥ ५८—५९ ॥

यह कहकर हनुमान्‌जीने भगवान् श्रीरामको बह उत्तम शूद्धामणि दे दी और कहा—'प्रभो ! आपकी धर्मपत्नी श्रीसोतात्यांने यह संदेश भी कहला भेजा है, मुनिये—'महान् इतका पालन करनेवाले महात्म ! गिरफ्कट पर्वतपर जब आप मेरो गोदामें [सिर रखकर] सो गये थे, उस समय काकवेषभारी जापनका जो आपने मान-मर्दन किया था, उसे स्मरण करें। राजेन्द्र ! प्रभो ! उस कोइके भीहें-से ही अपराधपर उसे दण्ड देनेके लिये आपने जो अद्भुत कर्म किया था, उसे देखता और असूर भी नहीं कर सकते। उस समय तो आपने ग्रहालयका प्रयोग किया था ? यदा इस समय इस राजणको पराजित नहीं करेंगे ?' इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर सीताओं रोने स्थगी थीं। यह है दुःखिती सीताका वृत्तान्। आप उन्हें उस दुःखसे मुक्त करनेका प्रयत्न कीजिये।' परबनकुमार हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर सीताजीका वह संदेश सुन और उनके उस सुन्दर आभूषणको देख, भगवान् श्रीराम उन कपिवर हनुमान्‌जीको गलेसे लगाकर रोने लगे और भीर-भीर वहाँसे प्रस्थित हुए ॥ ५८—५९ ॥

बावनवाँ अध्याय

श्रीराम आदिका समुद्रतटपर जाना; विभीषणकी शरणागति और उन्हें लक्ष्मीके राज्यकी प्राप्ति; समुद्रका श्रीरामको मार्ग देना; पुलद्वारा समुद्र पार करके बावरसेनासहित श्रीरामका सुखेल पर्वतपर पढ़ाव डालना; अङ्गदका प्रभाव; लक्ष्मणकी प्रेरणासे श्रीरामका अङ्गदकी प्रशंसा करना; अङ्गदके बीरोचित उद्धार और दीत्यकर्म; बावर बीरोंद्वारा राक्षसोंका संहार; राक्षणका श्रीरामके द्वारा युद्धमें पराजित होना, कुम्भकर्णका वध; अतिकाय आदि राक्षस बीरोंका मारा जाना; वेष्णनाटका पराक्रम और वध; रावणकी शक्तिसे मृचित लक्ष्मणका हनुमान्‌जीके हाथ पुनर्जीवन; राम-गवण-युद्ध; रावण-बध; देवताओंद्वारा श्रीरामकी स्तुति; सीताके साथ अयोध्यामें आनेपर श्रीरामका राज्याभिषेक और अनन्ये पुरावासियोंमहित उनका परमधारामगमन

पर्वतार्द्ध उक्ताच

इति श्रुत्वा प्रियाकारीं बायुपुरेण कीर्तिताम् ।
राष्ट्रो गत्वा समुद्रान्तं खानरैः सह विस्तृतैः ॥ १
सागरस्य तटे रथ्यं तालीवनविराजिते ।
सुग्रीवो जाम्बवांशुराथ वानररतिहर्षितैः ॥ २
संख्यानीतिर्वृतः श्रीमान् नक्षत्रैरिति चन्द्रपाः ।
अनुजेन च धीरेण बीक्ष्य तस्यी सरित्पतिम् ॥ ३
रावणेनाथ लक्ष्माणां स सूक्तो भर्तितोऽनुजः ।
विभीषणो महावृद्धिः शास्त्रद्वैर्यन्विभिः सह ॥ ४
नरसिंहे महादेवे श्रीधरे भक्तवत्सले ।
एवं रामेऽचलां भक्तिमागत्य विनयातदा ॥ ५
कृताङ्गलिरुवाचेदं रामप्रिलाहुकागिणम् ।
राम राम महावाहो देवदेव जनार्दन ॥ ६
विभीषणोऽस्मि यां रक्ष अहं ते शरणं गतः ।
इत्युक्त्वा निपपाताथ प्राञ्छली रामपादयोः ॥ ७
विदितार्थोऽथ रामस्तु तपुत्याप्य महामतिम् ।
समुद्रतोयैस्तं चीरमभिषिच्य विभीषणम् ॥ ८
लक्ष्माराज्यं तवेवेति प्रोक्तः सम्भाष्य तस्थिवान् ।
ततो विभीषणेनोक्तं त्वं विष्णुर्भुवनेश्वरः ॥ ९
अविद्यर्ददान् मार्गं ते देव तं याचयामहे ।
इत्युक्तो वानरैः सार्थं शिष्ये तत्र स राघवः ॥ १०

मार्कंपद्मेष्ठी चोले—वायुनन्दन हनुमान्‌जीके हाथ कथित प्रिया जनकीजा बुकना सुन लैनेके पश्चात् श्रीगमचन्द्रजी प्रियाल बावरसेनाको साथ समुद्रके निकट यें। साथ ही युद्धीष और जाम्बवान् भी तालवनसे मुखोभित सागरके सुरम्य तटपर जा पहुँचे। अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे पूर्ण उन असंख्य बानरोंसे पिरे हुए श्रीमान् भगवान् राम नक्षत्रोंसे पिरे हुए चन्द्रमाकी भीति रोभा पा रहे थे। अपने भीर-बीर अनुज लक्ष्मणजीके साथ समुद्रकी विशालताका अवलोकन करते हुए वे उनके तटपर उहर गये। इधर लक्ष्माणें रावणे [यक्षसकुलोंके हितके लिये] अच्छो बात कहनेवर भी अपने छोटे भाई महावृद्धिमान् विभीषणजी क्षम्भुत पक्षकाए। तब वे अपने शाश्वत मनिक्योंके साथ महान् देवता भक्तवत्सल सत्त्वांपतिके अवतार नरशेष श्रीराममें जीवित हुक्के रखते हुए उनके निकट आये और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले उन भगवान् श्रीराममें हाथ जोड़ विनयपूर्वक यों चोले—‘महावाहो श्रीराम ! देवदेव जनार्दन ! मैं [रावणका भाई] विभीषण हूँ, आपकी जरामें आया हूँ; मेरो रक्षा कीजिये’—यों कहनकर हाथ जोड़े हुए वे श्रीगमचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े। उनका अभिप्राय जनकर भगवान् श्रीरामने उन महावृद्धिमान् बीर विभीषणजी उठाया और समुद्रके जलसे उनका रुक्षाभिषेक करके कहा—‘अब लक्ष्मीका राज्य तुम्हारा ही होगा।’ श्रीरामके यों कहनेपर विभीषण उनके साथ जलधीर करके वहाँ लड़े रहे ॥ १—१० ॥

तब विभीषणने कहा—‘प्रभो ! आप जगत्पाति भगवान् विष्णु हैं। देव ! ऐसी चेष्टा करें कि समुद्र ही आपको जनेका मार्ग दे दे। हम सब लोग उनसे प्रार्थना करें।’ उनके यों कहनेवर श्रीगमचन्द्रजी बावरोंके साथ समुद्रके

सुप्ते राष्ट्रे गतं तत्र त्रिरात्रमितदुतीं।
ततः कुद्दो जगत्राथो राष्ट्रो राजीवलोचनः ॥ ११
संशोधणमपां कर्तुं प्रस्वभाग्यपाददे।
तदोत्थाय वचः प्राह लक्ष्मणश्च रुषान्वितम् ॥ १२
क्रोधस्ते लयकर्ता हि एनं जहि महामते।
भूतानां रक्षणार्थाय अवतारस्त्वया कृतः ॥ १३
क्षन्तव्यं देवदेवेश इत्युक्त्वा भूतवान् शरम्।
ततो रात्रिव्रये याते कुद्दं रामपवेद्यम् ॥ १४
आग्रेयास्वाच्य संप्रस्तः सागरोऽध्येत्य भूर्तिपान्।
आह रामं महादेवं रक्ष मामपकारिणम् ॥ १५
मार्गो दत्तो मया तेऽच्यु कुशलः सेनुकमंडि।
नलश्च कथितो वीरस्तेन कारय राघव ॥ १६
यावदिष्टे तु विस्तीर्णं सेतुबन्धनमुलमम्।
ततो नलमुखैरन्वीकरितरमितीजसेः ॥ १७
बन्धयित्वा महासेनुं तेन गत्वा स राघवः।
सुवेलाख्यं गिरि प्रामः स्थितोऽसौ वानरर्वतः ॥ १८
हर्ष्यस्थलस्थितं दुष्टं रावणं वीक्ष्य चाहृदः।
रापादेशादथोत्पत्त्वं दूतवर्यसु तत्परः ॥ १९
प्रादात्पादप्रहारं तु रोषाद्वावणमूर्धनि।
विस्मितं तैः सुरगाणीवीक्षितः सोऽतिवीर्यवान् ॥ २०
साधयित्वा प्रतिज्ञां तां सुवेलं पुनरागतः।
ततो वानरसेनाभिः संख्यातीताभिरच्युतः ॥ २१
रुरोध रावणपुरीं लङ्कां तत्र प्रतापवान्।
रामः समन्तादालोक्य प्राह लक्ष्मणमन्तिके ॥ २२
तीर्णोऽर्णवः कवलितेव कर्पीश्वरस्य
सेनाभैर्ड्विटिति राक्षसराजधानीम्।
यत्पौरुषोचितमिहाद्वृतिं मया तद्
देवस्य वश्यमपरं धनुषोऽथ वास्य ॥ २३

लटपर धरना देते दुए लेट गये। अपार कलनिमान् भगवान् श्रीरामके लहाँ लेटे-लेटे तीन बाँत गयीं; तब कमलनयन बाणदीक्षर श्रीरामचन्द्रजीके बढ़ा ही झोध हुआ और उन्होंने समुद्रके जलको मुखा ढालनेके लिये हाथमें अग्निकाण धारण किया। यह देख लक्ष्मणजी ताकाल ढठे और कुद्द हुए भगवान् रामसे यों बोले— ॥ १—१२ ॥

'महामारो! आपका झोध तो समस्त ब्रह्माण्डका प्रलय करनेवाला है, इस समय इस कोषको ददा दें; क्योंकि आपने प्राणियोंको रक्षाके लिये अवतार धारण किया है। देवदेव! आप क्षमा करें',—यों कहकर उन्होंने श्रीरामके उस बाणको पकड़ लिया। इसर तीन रात बीत जानेपर श्रीरामचन्द्रजीको कुपित देख, उनके अग्निकाणसे भवभीत हो, समुद्र मनुष्यसम्प्र धारणकर उनके निकट आया और महान् देवता भगवान् श्रीरामसे बोला—'भगवान्! मुझ अपराधीकी रक्षा कोजिये। रात्रनदन! अब मैंने आपको जानेका भार्ग दे दिया। आपकी सेनामें बोतवार नल सुल बलानेमें लिपुण कहे गये हैं। उनके हारा आपको जितना बढ़ा अभीष्ट हो, उन्हें ही अहे उत्तम पुलका निर्माण करा लीजिये' ॥ १३—१५ ॥

एव भगवान् रामने जल आदि अन्य अभिल-तेजस्वी जानरौद्राया बहुत बढ़ा मुख बनवाया और उसीके हारा समुद्रके पार जा, सुवेल बाम्बक पर्वतपर पहुँचकर वहाँ जानकोंके साथ डेरा ढाल दिया। वहाँसे अङ्गुदने देखा—'दुष्ट रावण महात्मी अङ्गुलिकापर बैठा हुआ है।' उसे देखते ही वे भगवान् श्रीरामकी आङ्ग से, दूत-कर्त्यमें संख्यन हो, उछलकर रावणके चाम जा पहुँचे। जाते ही उन्होंने रोषपूर्वक रावणके बस्तकपर लात भारी। उस समय देखताभीने महान् पराक्रमी अङ्गुदजीकी ओर वहे विश्वमयके साथ देखा। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके वे पुनः सुवेल पर्वतपर चले आये। तदनन्तर प्रतापी भगवान् श्रीरामने असंख्य जानर-सेनाओंके हारा रावणकी पुरी लङ्काको जारी झोर्से भेर लिया ॥ १७—२१ ॥

तब श्रीरामने चारों ओर देख लक्ष्मणको पास बूलाकर कहा—'भाइ! हम सोगोंने समुद्र तो पार कर लिया तथा कपिराज सुरीवके सीनिकोंने राजसतोकी राजधानी लङ्काको आनन-कलनमें अनन्त ग्रास सा बना लिया है। पुराणसे जो कुछ सिद्ध होनेके योग्य था, उसका अङ्गुर तो हमने उत्पत्र उठ दिया, अब आगे जो कुछ होना है, वह भाग्य अशक्त इस धनुषके अधीन है' ॥ २२—२३ ॥

लक्षणः प्राह—कातरजनमनोऽवलम्बिना किं
दैवेन।

यावश्लाटशिखरं भुकुटिं याति
यावत्र कार्मुकशिखाप्रधिरोहति च्या।

तावन्निशाचरपते: पटिमानमेतु

प्रैलोक्यमूलविभुजेषु भुजेषु दर्पः॥ २४

तदा लक्षणः रामस्य कर्णे लगित्वा
पितृवधैरस्मरणे अथ तद्वक्तिवीर्यपरीक्षणाय
लक्षणविज्ञानायादिश्यतामङ्गुदाय दूत्यम्। रामः साधु
इति भणित्वा अङ्गुदं सबहुमानमचलोक्य
आदिशति॥ २५॥ अङ्गुद! पिता ते
यद्याली बलिनि दशकण्ठे कलितवाप्रशकास्तद्वन्तु
वयमपि मुदा तेन पुलकः।

म एव त्वं व्यावर्त्यासि तनुजत्वेन पितृता
ततः किं ब्रह्मत्वं तिलकयति सृष्टार्थपदवीम्॥ २६

अङ्गुदो भीलिमण्डलमिलत्करयुग्मेन प्रणाम्य
यदाज्ञापयति देवः। अवधार्यताम्॥ २७॥
किं प्राकारविहारतोरणवतीं लङ्घामिहैवानये
किं वा सैन्यमहं हृतं रघुपते तत्रैव सम्पादये।
अत्यत्पं कुलपर्वतैरविरलैर्बैष्णवापि वा सागरं
देवादेशय किं करोपि सकर्लं दोर्दण्डसाध्यं प्रम॥ २८

श्रीरामस्तद्वचनपात्रेणीयं तद्वक्तिं सामर्थ्यं
चावेक्ष्य बदति॥ २९॥

अज्ञानादथवाधिष्ठित्यरभसा वास्मत्परोक्षे हता
सीतेयं प्रविष्टुव्यतापिति वचो गत्वा दशास्यं वद।
नो चेष्टक्षमणमुक्तमार्गणगणच्छ्रेदोच्छलव्योगित-
च्छत्रच्छत्रदिग्नामन्तकपुरीं पुत्रं वृतो यास्यसि॥ ३०

लक्षण बोले—‘भाई! कलार पुरुषोंके हृदयको
अवलम्बन देनेवाले भाग्य या दैवसे क्या होनेवाला है? जबतक हमारे भुकुटि रोपसे तनकर ललाटके ऊपरतक
नहीं जाते और जबतक प्रत्यक्षा धनुषके अग्रभागपर
नहीं चढ़ते, तभीतक निशाचरराज रावणका दर्प त्रिभुवनका
मूलोच्छटन करनेवाली उसको भुजाओंके भरोसे बढ़ाता
है’॥ २४॥

ऐसा विचार प्रकट करके लक्षणने उसी समय
भगवान् श्रीरामके कानमें मूँह लगाकर कहा—‘अब इस
समय इस बातकी परीक्षा तथा जानकारीके लिये कि यह
अङ्गुद अपने पिता यालीके वैरजनित वधका स्मरण
करते भी आपमें कितनी भक्ति रखता है, इसमें कितना
प्रशङ्ख है तथा इसके अब कैसे लक्षण (रंग-डंग) हैं,
आप अङ्गुदको पुनः दूतकर्म करनेका आदेश दीजिये।’
श्रीरामचन्द्रजी ‘बहुत अच्छा’ कहकर अङ्गुदको ओर
यहे आदरमें देखुकर उन्हें आदेश देने लगे—‘अङ्गुद!
तुमने पिता यालीने दशकण्ठ रावणके प्रति जो पुरुषार्थ
किया था, उसका हम भी वर्णन नहीं कर सकते। उसकी
जात ऐसी ही हृषकेका कारण हमही शरीरमें रोगाज्ज हो आता
है। यही याली आज तुम्हारे रूपमें प्रकट है। तुम पुरुषकूपमें
उत्पन्न हो, अपने पुरुषार्थमें पिता को भी पीछे छोड़ रहे हो;
आता तुम्हारे विषयमें क्या कहना है। तुम पुत्र-पदवीको
मानकरका तिलक लगा रहे हो’॥ २५-२६॥

अङ्गुदने अपने मल्लकापर दोनों हाथ जोड़ भगवान्को
प्रणाम करके कहा—‘जैसी आज्ञा; भगवान् इधर आय
दें। शुश्रृते! क्या मैं चहारदोषारी, विहार-स्थल और
भगवान्महित सङ्घातमुरीको यहीं उठा लाऊं? या अपनी
सारी सेनाको हो उस पुरीमें आक्रमणके लिये पहुँचा हूँ?
अथवा इस अत्यन्त तुच्छ सामान्यको अविरल कुलाचलोद्धारा
चाट हूँ? भगवन्! आज्ञा दीजिये, क्या करें? मेरे भुज-
दण्डोद्धारा सब कुछ सिद्ध हो सकता है’॥ २७-२८॥

भगवान् रामने अङ्गुदके कथनसे ही उनकी भक्ति
और हातिका अनुमान लगाकर कहा—‘वीर! तुम दशमुण्ड
रावणके पास जाकर कहो—‘रावण! तुम अज्ञानसे या
प्रभूत्वके अधिमानमें आकर हम लोगोंके पीठ-पीछे
चोरकी भौति जिस सीताको ले गये हो, उसे छोड़ दो;
नहीं तो लक्षणके छोड़े हुए आज्ञाद्वारा बेधे जाकर
दलकर हुए रक्तकी धाराओंसे उत्त्रकी भौति दिग्नन्तको
आच्छादित करके तुम अपने पुत्रोंके साथ ही यमपुरीको
प्रस्थान करोगे’॥ २९-३०॥

अङ्गदः ॥ ३१ ॥ देव!

संधी वा विग्रहे वापि पर्य दूते दशाननी।
अक्षता वाक्षता वापि क्षितिपीठे लुठिष्यति ॥ ३२
तदा श्रीरामचन्द्रेण प्रशस्य प्रहितोऽङ्गदः।
उक्तिप्रत्युक्तिचातुर्यैः पराजित्यागतो रिपुम् ॥ ३३
राघवस्य बलं ज्ञात्वा चारस्तदनुजस्य च।
वानराणां च भीतोऽपि निर्भीरिव दशाननः ॥ ३४
लङ्घापुरस्य रक्षार्थमादिदेश स राक्षसान्।
आदिश्य सर्वतो दिश्मु पुश्चानाह दशाननः ॥ ३५
भूमाक्षं भूप्रपानं च राक्षसा यात मे पुरीम्।
पाणीर्थीर्थीत ती पर्यां अभिशानकवीर्यवान्।
कुम्भकण्ठोऽपि मद्भाता तुर्यनादैः प्रयोगितः ॥ ३६
राक्षसाद्वीज संदिष्टा रावणेन भ्रावलाः।
तस्याज्ञां शिरसाऽऽदाय युयुधुवान्नरैः सह ॥ ३७
युद्धपाना यथाशक्त्या कोटिसंख्यास्तु राक्षसाः।
वानरैर्नियन्ते प्राप्ताः पुनरन्यान् यथाऽऽदिशान् ॥ ३८
पूर्वद्वारे दशग्रीवो राक्षसानमितीजसः।
ते वापि युद्धं हरिभिर्नीलादीर्नियनं गताः ॥ ३९
अथ दक्षिणदिग्भागे रावणेन नियोजिताः।
ते सर्वे वानरवीर्दारितास्तु यमं गताः ॥ ४०
पश्चिमेऽङ्गदमुख्येश वानररतिगवितैः।
राक्षसाः पर्वताकाशाः प्रापिता यमसादनम् ॥ ४१
तदुत्तरे तु दिग्भागे रावणेन निवेशिताः।
पेतुस्ते राक्षसाः कूरा मैन्दादीर्वानीरहताः ॥ ४२
ततो वानरसङ्कास्तु लङ्घाप्राकारपुच्छितम्।
उत्पन्नत्याभ्यन्तरस्थांशु राक्षसान् बलदर्पितान् ॥ ४३

अङ्गदने यहा—‘देव! मुझ दूतके रहते हुए राघव संघि करे या विग्रह, दोनों ही अवश्याओंमें उसके दसों मसलक पृथ्वीतलपर गिरकर लौटेंगे। हाँ, इतना अनन्त अवश्य होगा कि संघि कर लेनेपर उसके मसलक यिना कर्टे ही (आपके साथें प्रणामके लिये) गिरें और विग्रह करनेपर कटकर गिरें।’ तब श्रीरामचन्द्रद्वारे अङ्गदकी प्रशंसा करके उन्हें खेजा और वे भी वही जा, चाद-प्रतिवादको चाहुरीरे सतुको हवकर लौट आये ॥ ३५—३६ ॥

राघवने गवणने भी अपने गुप्तचरोंद्वारा श्रीरामचन्द्रद्वारा, उनके भाई लक्ष्मणका और वानरोंका बल जानकर भवधीत होनेपर भी निछरकी भौति लङ्घापुरीको रक्षके लिये राक्षसोंको आज्ञा दी। मध्यै दिनोंमें राक्षसोंको जानेकी आज्ञा दे उसने अपने पुत्रोंसे और भूषाक्ष तथा भूमपानसे भी कहा—‘राक्षसों! तुम लोग जगतमें जाओ और उन दोनों भनुध्य-कुमारोंको पालासे भाँध लाओ। जानुओंके लिये यमराजके समान पराक्रमी मेरा भाई कुम्भकर्ण भी इस समय वार्षीके जग्दमें जगा लिया गया है ॥ ३४—३६ ॥

इनका ही नहीं, गवणने वहे चालान् चालान् यथासोंको युद्धके लिये आदेश दिया और वे भी उसकी आज्ञा लिरोधार्थ कर वानरोंके साथ ज़बूने लगे। अपनी शक्तिपर युद्ध करते हुए करोड़ों राक्षस वानरोंके हाथ मारे गये। और—तो—और, दशमुख राघवने जिन दूसरे-दूसरे अपार होतस्यों राक्षसोंको पूर्वद्वारपर युद्धके लिये आदेश किया था, वे सब भी नील आट वानरोंसे युद्ध करते हुए मृत्युको प्राप्त हुए। इसके बाद राघवने दक्षिण दिशामें लड़नेके लिये जिन राक्षसोंको निशुक किया था, वे भी लेह वानरोंद्वारा अपने अङ्गोंके विदीर्ण कर दिये जानेपर यमतोकको छाने गये। किस पश्चिम द्वारपर जो पर्वताकार राक्षस थे, वे भी अपनत गर्वाले अङ्गदादि वानर वीरोंद्वारा यमपुरीको पर्हृणा दिये गये। किस उत्तर द्वारपर रावणके डारा लहराये हुए कूर राक्षस मैन्द आदि वानरोंके हाथ मारे जानहर भराजावी हो गये। तदनन्तर वानरण्य लङ्घाकी ऊँची चहारटीवारी कल्दकर उसके भीतर रहनेवाले चतुर्भिमानी राक्षसोंका भी सहार करके पूनः शीघ्रतापूर्वक

हत्वा शीघ्रं पुनः प्राप्ताः स्वसेनामेव वानराः ।
 एवं हतेषु सर्वेषु राक्षसेषु दशाननः ॥ ४४
 रोदमानासु तत्स्वीषु निर्गतः क्षोधमूर्च्छितः ।
 द्वारे स पक्षिमे वीरो राक्षसैवंतुभिर्वृतः ॥ ४५
 क्लासीं रामेति च वदन् धनुष्याणिः प्रतापवान् ।
 रथस्थः शरवर्च च विसुजन् वानरेषु सः ॥ ४६
 ततस्तद्वाणछित्राङ्गा वानरा दुदुकुस्तदा ।
 पलायमानांस्तान् दृष्टा वानरान् राघवस्तदा ॥ ४७
 करम्पात् वानरा भग्नाः किमेषां भयपागतम् ।
 इति रामवचः श्रुत्या प्राह वाक्यं विभीषणः ॥ ४८
 श्रुणु राजन् महावाहो रावणो निर्गतोऽधुना ।
 तद्वाणछित्रा हरयः पलायन्ते महामतो ॥ ४९
 इत्युक्तो राघवस्तेन धनुरुद्धाम्य रोचितः ।
 ज्याधोषतलयोषाभ्यां पूरयामास खं दिशः ॥ ५०
 युयुधे रावणोनाथ रामः कमललोचनः ।
 सुग्रीवो जाय्यतांश्चैव हनुमान्द्रदस्तथा ॥ ५१
 विभीषणो वानराङ्गु लक्ष्मणक्षुपायि तीर्यवान् ।
 उपेत्य रावणीं सेवा वर्षनीं सर्वसाधकान् ॥ ५२
 हस्त्यशुरधसंयुक्तां ते निजञ्जुर्महावलाः ।
 रामरावणयोर्युद्धमभूत् तत्रायि भीषणम् ॥ ५३
 रावणोन विसुष्णुनि शस्वास्वाणि च यानि च ।
 तानि छित्त्वाथ शास्त्रेस्तु राघवञ्च महावलः ॥ ५४
 शरेण सारथिं हत्वा दशभिश्च महाहयान् ।
 रावणस्य धनुशित्त्वा भक्षेनैकेन राघवः ॥ ५५
 मुकुटं पञ्चदशभिश्चित्त्वा तन्मस्तकं पुनः ।
 सुवर्णपुरुदशभिः शरीरविद्याध तीर्यवान् ॥ ५६
 तदा दशास्त्वो व्यथितो रामक्षाणीर्भृशं तदा ।
 विवेश मन्त्रिभिन्नीतः स्वपुर्णे देवमर्दकः ॥ ५७

अपनी सेनामें लौट आये ॥ ३७—४३ ॥

इस प्रकार सब राक्षसोंके मारे जानेपर उनकी स्त्रियोंको रोदन करते देख दशानन रावण क्रौंचसे मूर्च्छित होकर निकलता । वह प्रतावो और हाथमें धनुष से बहुसंख्यक राक्षसोंसे यिरा हुआ चौथिम द्वारपर आया और बोला—‘कहाँ है वह राम?’ तथा रथपर बैठे-बैठे वानरोंपर बालोंकी वधों करने लगा । उसके बाणोंमें अहू छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वानर इप्पर उपर भागने लगे । उस समय वानरोंको भागते देख श्रीरामने पूछा—‘वानरोंमें क्यों धगदड़ पढ़ रहो है? इनपर कौन-सा भय आ पहुँचा?’ ॥ ४४—४३ ॥

श्रीरामको बात सुनकर विभीषणने कहा—‘राजन! महावाहो! मुनिये, इस समय रावण युद्धके लिये निकला है। महामते! उसीके बालोंसे क्षत्-विक्षत हो वानरगण भग रहे हैं’ ॥ ५८—५९ ॥

विभीषणके यो कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने कुपित होकर धनुष उत्तापा और प्रत्यक्षाकी टंकाएसे समस्त दिशाओं तथा आकाशको गुंजा दिया । तत्पश्चात् कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी उपचरसे युद्ध करने लगे और सुग्रीव, जाय्यता, हनुमान्, अङ्गूष्ठ, विभीषण, पराक्रमी स्वक्षम्य तथा अन्यान्य महावली वानर पहुँचकर हाथी, धोड़े और रथोंसे चुक्त रावणकी चतुरिहिती सेवाको, जो सब प्रकारके बाणोंकी वधों कर रही थी, पारने लगे । वहाँ भी श्रीराम और रावणका युद्ध बड़ा ही भयंकर हुआ । रावण तिन-तिन अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करता था, उन सबका बाणोंहुआ देवदूत करके महावली श्रीरामचन्द्रजीने एक बाणसे सारथिको तथा दस बाणोंसे उसके बड़े धोड़े शोषोंको भराकर एक भव्य नामक बाणहुआ रावणके धनुशको भी काट डाला । पिंप महान् पराक्रमी रामने पंच हालोंसे उसके मुकुट बेपकर सुवर्णकी पर्याप्तासे दस बाणोंसे उसके भस्त्रोंको भी बेप दिया । उस समय देवताओंका मान मर्दन करनेवाला रावण श्रीरामके बाणोंमें अत्यन्त चीड़ित हो गया और मन्त्रियोंहुआ ले जाया जाकर वह अपनी पुरी लक्ष्मीको लौट आया ॥ ५०—५७ ॥

बोधितस्मृत्यनादेस्मु गजयूथकमेः शनैः।
पुनः प्राकारमुखद्वय कुम्भकर्णो विनिर्गतः ॥ ५८
उत्तुङ्गस्थूलदेहोऽसौ भीमदृष्टिर्घावलः।
वानरान् भक्षयन् दुष्टो विचचार क्षुधान्वितः ॥ ५९
तं दृष्टोत्पत्य सुग्रीवः शुलेनोरस्यताढ्यत्।
कर्णद्वयं कराभ्यां तुच्छित्वा वक्षेण नासिकाम् ॥ ६०
सर्वतो युध्यमानांशु रक्षोनाथान् रणोऽधिकाम्।
राघवो पातयित्वा तु वानरेन्द्रः समन्तः ॥ ६१
चकर्ते विशिखौस्तीक्षणीः कुम्भकर्णस्य कल्पतम्।
विजित्येन्द्रजितं साक्षादगरुहेनागतेन सः ॥ ६२
रामो स्वध्यमणमंयुक्तः शुशुभे वानरेन्द्रतः।
व्यर्थं गते चेन्द्रजिति कुम्भकर्णो निपातिते ॥ ६३
लङ्घानाथस्ततः कुरुः पुत्रं विशिरसं पुनः।
अतिकायमहाकार्यी देवान्तकनरान्तकी ॥ ६४
यूयं हत्वा तु पुत्राद्या तौ नरौ युधि निष्ठतः।
ताप्त्रियुज्य दशग्रीवः पुत्रानेवं पुनर्वीर्यत् ॥ ६५
महोदरमहापार्थी सार्पभेतैर्महावलैः।
संप्राप्तेऽस्मिन् रिपून् हन्तु युक्तो व्रजतमुद्यती ॥ ६६
दृष्टा तानागतांश्च युध्यमानान् रणे रिपून्।
अनयस्यक्षमणः घट्टिभिः शरीसीक्षीयमालयम् ॥ ६७
वानराणां समूहश्च शिष्टांशु रजनीचरान्।
सुग्रीवेण हतः कुम्भो राक्षसो ब्रतदर्पितः ॥ ६८
निकुम्भो वायुपुत्रेण निहतो देवकण्टकः।
विरुपाक्षं युध्यमानं गदया तु विभीषणः ॥ ६९
भीमपैर्नदी च श्वपतिं वानरेन्द्री निवधतुः।
अङ्गदो जाप्तवांश्चात्य हरयोऽन्यात्रिजाचरान् ॥ ७०
युध्यमानस्तु समरे महालक्ष्मीं महाचलम्।
जघान रामोऽथ रणे वाणवृष्टिकरं नृप ॥ ७१

तदनन्तर वायोंके घोषसे जगाया गया कुम्भकर्णं
लङ्घाके परकोटेको साँझकर शोरे-धीरे गजस्मूहको सी
मट गतिसे बहार निकला। उसका शरीर बहुत ही कैचा
और मोटा था, आँखें बड़ी ही भयानक थीं। यह
महाबली दृष्ट राक्षस भूखसे ब्याकुल हो वानरोंको अपना
आहार बनाता हुआ रणभूमिमें विचरने लगा। उसे देख
सुग्रीवने उछलकर उसको लातीमें शूलसे प्रहार किया।
तथा अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों कानोंको और
मुखसे उसकी नासिकाको काट लिया ॥ ५८—६० ॥

तत्प्रत्यक्षतः श्रीरामचन्द्रजीने रणमें सब ओर सुढ़ करते हुए
बहुसंख्यक राक्षसाधिवातियोंको चारों ओरसे वानरोंद्वारा
परवाकर अपने तीखे बाणोंसे कुम्भकर्णका भी गला
काट लिया। फिर वहीं आपे हुए साक्षात् गहड़के हारा
इन्द्रजितको भी जीतकर वानरोंसे छिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी
स्वध्यमालहित बड़ी जोधा पाने लगे। इन्द्रजितका उच्चोग
व्यर्थ होने और कुम्भकर्णके मारे जानेपर लङ्घापति
राज्यने सुन्द ही अपने पुत्र विशिरा, अतिकाय, महाकाय,
देवान्तक और नरान्तकसे कहा—‘पुत्रवरो! तुम उम
दोनों मनुष्यों—राम और स्वध्यमणको युद्धमें मार डालो।’
उस प्रकार उन पुत्रोंको ऐसी आदा दे दक्षकर्त राज्यने
पुनः महोदर और महापार्थी नामक राक्षसोंसे कहा—‘तुम
दोनों इस संशयमें शमुओंका वध करनेके लिये उद्यत
हो बहुत बड़ी सेनाओंके साथ जाओ’ ॥ ६१—६६ ॥

रणभूमियें उपर्युक्त शमुओंकी आकर सुढ़ करते
देख लङ्घणने ले, तीखे बाणोंसे मारकर उन्हें यमलोक
भेज दिया। इसके बाद वानराणने शेष राक्षसोंको मार
दाला। सुशीकरे बलाधिमानी कुम्भ नामक राक्षसको
मार, हनुमन्तूलीने देवताओंके लिये कष्टकरूप निकुम्भका
वध किया। सुढ़ करते हुए विरुपाक्षको विभीषणने
गदासे मार डाला। वानरेष्ट भीम और मैन्दने शृणुतिका
संहार किया, अङ्गद और जाप्तवान् तथा अन्य वानरोंने
दूसरे निकालयोंका संहार किया। नरेश! युद्धमें लगे हुए
श्रीरामचन्द्रजीने भी संचामभूमियें बाणोंकी वर्षा करनेवाले
महालक्ष्मी और महाचल नामक राक्षसोंको मौतके घाट
जार दिया ॥ ६७—७१ ॥

इन्द्रजित्मन्त्रलब्धं तु रथमारुद्धा वै पुनः।
वानरेषु च सर्वेषु शरवर्षे वर्वर्षे सः॥ ७२
रात्रौ तद्वाणभित्रं तु बलं सर्वं च राधवम्।
निश्चेष्टप्रियिलं दृष्टा जाप्त्वयत्प्रेरितस्तदा॥ ७३
वीर्यांदीपधमानीय हनूमान् मारुतात्मजः।
भूम्यां शयानमुत्थाप्य रामं हरिगणांस्तथा॥ ७४
तेरेव वानरैः सार्थं ज्वलितोत्काकर्त्तिशि।
दाहयामास लङ्घां तां छस्य भूरधरक्षसाम्॥ ७५
वर्षनं शरजालानि सर्वेदिक्षु घनो यथा।
स भाग्रा मेघनादं तं घातयामास रायवः॥ ७६
घातितेष्वथ रक्षसम् पुत्रभित्रादिवन्युषु।
कारितेष्वथ विषेषु होमजप्त्वादिकर्मणाम्॥ ७७
ततः कुद्धो दशग्रीवो लङ्घाद्वारे विनिर्गतः।
क्वासी राम इति खृते मानुषस्तापसाकृतिः॥ ७८
योद्धा कपिबलीत्युच्चव्याहरद्वाक्षसापिपः।
वेगवद्विर्विनीतैश्च अश्वैश्चित्ररथे स्थितः॥ ७९
अथायानं तु तं दृष्टा रामः प्राह दशाननम्।
रामोऽहमत्र दुष्टात्मत्रेहि रावण मां प्रति॥ ८०
इत्युक्ते लक्ष्मणः प्राह रामं राजीवलोचनम्।
अनेन रक्षसा योत्ये त्वं तिष्ठेति महाबल॥ ८१
ततस्तु लक्ष्मणो गत्वा रुरोध शरवृष्टिभिः।
विंशद्वाहुविसृष्टस्तु शस्त्रास्त्रैलक्ष्मणं युधि॥ ८२
रुरोध स दशग्रीवः तयोर्युद्धमभूम्यहत्।
देवा व्योम्नि विमानस्था वीक्ष्य तस्थुर्महाहवम्॥ ८३
ततो रावणशस्त्राणिच्छित्त्वा स्वैस्तोक्षणसायकैः।
लक्ष्मणः सारथिं हत्वा तस्याश्वानपि भद्रकैः॥ ८४

तत्पक्षात् इन्द्रजित् मन्त्रशक्तिसे प्राप्त हुए रथपर आरुद्ध हो समस्त वानरोंपर बाण-वृष्टि करने लगा। रात्रिके समय समस्त वानर-सेना तथा श्रीरामचन्द्रजीको मेघनादके बाणोंसे विद्ध हो सर्वथा निश्चेष्ट पड़े देख पवनकुमार हनूमानजी जाम्बवानके द्वारा प्रेरित हो अपने पराक्रमसे औंषध से आये। उन्होंने उस औंषधके प्रभावसे भूमिपर पड़े हुए श्रीरामचन्द्रजी तथा वानरगणोंको डालाया और प्रस्तुति उत्का हाथमें लिये उन्हीं वानरोंके साथ रातमें जाकर हाथी, रथ और घोड़ोंसे युक्त राक्षसोंकी लङ्घामें आग लगा दी। तदनन्तर भगवान् रामने बादलके समान समस्त दिशाओंमें बाणोंकी वधां करते हुए मेघनादका अपने भाई लक्ष्मणके द्वारा वध करा दिया॥ ७२—७६॥

इस प्रकार जब पुत्र-मित्रादि लक्ष्मण राक्षस-यन्त्रमारे गये तथा होम-जप आदि अभिचार-कर्मोंमें वानरोंद्वारा विष डाल दिया गया, तब कृपित हो दशशीश रावण वेगशाली मुश्किलि अशोंसे युक्त विजित रथमें बैठकर लङ्घाके हारपर निकल आया और कहने लगा—'तपस्वीका वेष बनाये वह मनुष्य राम कहाँ है, जो वानरोंके बलपर योद्धा बना हुआ है?' राक्षसराज रावणने यह बात बड़े जोरोंसे कही। यह सुन भगवान् रामने दशानन रावणको आते देख उसमें कहा—'दुष्टात्मा रावण! मैं ही राम हूँ और वहाँ खड़ा हूँ, तू मेरो ओर चला आ!'॥ ७७—८०॥

उनके यों कहनेपर लक्ष्मणने कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'महाबल! आप अभी ठहरें, मैं इस राक्षसके चाथ युद्ध करूँगा।' तदनन्तर लक्ष्मणने आगे बढ़कर बाणोंको वृष्टिसे रावणको ढक दिया। फिर दशशीश रावणने भी जपनी बीस भुजाओंद्वारा छोड़े हुए शस्त्रास्त्रोंसे लक्ष्मणको संश्याममें आच्छादित कर दिया। इस प्रकार उन दोनोंमें महान् युद्ध हुआ। विमानपर आरुद्ध देवतागण इस महान् संग्रामको देख [कौतूहलवश] आकाशमें रिश्वत हो गये॥ ८१—८३॥

तत्पक्षात् लक्ष्मणने अपने तोखे बाणोंद्वारा रावणके अस्त्र लास्त्र काटकर उसके सारथिको मार डाला और भद्र नामक बाणोंसे उसके घोड़ोंको भी नष्ट कर दिया।

रावणस्य धनुशिष्ठत्वा द्वजं च निशितः शरे ।
वक्षः स्थलं महाबीर्यो विव्याध परवीरहा ॥ ८५

ततो रथाविपत्याधः क्षिप्रं राक्षसनायकः ।
शक्तिं जग्नाह कुपितो घण्टानादविनादिनीम् ॥ ८६

अग्निज्वालान्वलजिह्वां महोल्कासदृशाद्युतिम् ।
दृढमुष्ट्या तु निक्षिमा शक्तिः सा लक्ष्मणोरसि ॥ ८७

विद्यार्थानः प्रविष्टाद्य देवास्वस्तास्ततोऽस्त्रे ।
लक्ष्मणं पतितं दृष्ट्वा रुद्दिर्वान्नरेश्वरः ॥ ८८

दुःखितः शीघ्रमागम्य तत्पाश्च प्राह राष्ट्रम् ।
कृ गतो हनुमान् वीरो मित्रो मे पवनात्पञ्चः ॥ ८९

यदि जीवति मे भाता कथंचित्पतितो भूवि ।
इत्युक्ते हनुमान् राजन् वीरो विष्ण्यातपीठषः ॥ ९०

बद्ध्याङ्गालिं बभाषेदं देहनुजां स्थितोऽस्मि भोः ।
रामः प्राह महाबीर विशल्यकरणां मम ॥ ९१

अनुजं विरुजं शीर्षं कुरु मित्र प्रहावतः ।
ततो वेगात्समुत्पत्य गत्वा द्रोणगिरिं कपिः ॥ ९२

बद्ध्या च शीघ्रमानीय लक्ष्मणं नीरुजं क्षणात् ।
चकार देवदेवेशां पश्यतां राष्ट्रमस्य च ॥ ९३

ततः कुद्दो जग्नायो रामः कमललोचनः ।
रावणस्य खलं शिष्टं हस्त्यशुरथराक्षसम् ॥ ९४

हत्वा क्षणोन रामस्तु तच्छरीरं तु सायकेः ।
तीक्ष्णीर्जंजरितं कृत्वा तस्थिवान् वानरैर्वृतः ॥ ९५

अस्त्रचेष्टो दशग्रीवः संज्ञां प्राप्य शनैः पुनः ।
उत्थाय रावणः कुद्दः सिंहनादं ननाद च ॥ ९६

तत्रादश्रवणीव्योनिं वित्रस्तो देवतागणः ।
एतस्मिन्नेव काले तु गमं प्राप्य महामुनिः ॥ ९७

फिर तो ये बाणोंसे रावणका धनुष और उसकी ध्वजा काटकर सत्रु-वीरोंका नाश करनेवाले महान् पराक्रमी लक्ष्मणजीने उसके वक्ष-स्थलको बेध दिया । तब राक्षससंघ रावण रथसे नीचे गिर पड़ा । किंतु शोष्र ही उठकर कुपित हो उसने हाथमें जाकि उत्तरी, जो सैंकड़ीं घड़ियालोंकी समान आकाश करनेवाली थी । उसकी धार अग्निको ज्वालाके समान प्रक्षलित थी तथा उसकी कान्ति महती उत्कर्षके समान प्रतीत होती थी । उसने दृढतापूर्वक मुद्री चौपक्षर उस शक्तिको लक्ष्मणकी छातीपर लेका । यह जाकि उनकी छाती छेदक भीतर भूस गयी । इसमें आकाशमें स्थित देवतागण भवधीत हो गये । लक्ष्मणको गिरा देख रहे हुए वानराधिपतियोंके साथ हुःखी हो भगवान् भीराम शोष्र ही उनके पास आये और कहने लगे—‘मेरे मित्र पलकन्तुमार हनुमान् कहाँ जाले गये ? पृथ्वीपर पद्म हुआ गैर भई स्वरमन जिस लिंगसे प्रकाश भी जीवित हो सके, वह उपर होना चाहिये’ ॥ ८५—८९ ॥

राजन् ! उनके इस प्रकाश कहनेपर, विष्ण्यात पराक्रमी नीरुपान् जी हाथ जोड़कर बोले—‘देव ! आजा है, मैं सेवामें उपर्युक्त हूँ’ ॥ ९० ॥

भीरामने कहा—‘महाबीर ! मुझे ‘विशल्यकरणी’ ओर्धवधि चाहिये । महाबली ! उसे स्नान कर मेरे भाईको शोष्र ही नीरोग करो ॥ ९१ ॥

तब हनुमान् जी छड़े बैगासे उड़ले और द्रोणगिरिपर जाकर तीक्ष्ण हो बहाये दका चौपक्षर हो आये और उसका प्रयोग जरके देवदेवेशों तथा राष्ट्रवन्द्रजीके देखते-देखते वाणभरमें लक्ष्मणको नीरोग कर दिया ॥ ९२—९३ ॥

तदनन्तर जगदीधर कमलनवन श्रीराम यस्तु ही कुपित हुए, और रावणकी जनी हुई सेनाको हाथी, घोड़े, रथ तथा राहसोसहित शणभृतों भार गिराया । उन्होंने तीखे बाणोंसे रावणका शरीर चंडाएं कर दिया और रणभृतिमें वानरोंसे चिरं हुए खाड़े रहे । रावण निलेट होकर गिर पड़ा । फिर धीर-धीर हाँसनें आनेपर वह उठकर कुपित ही सिंहनाद करने लगा । उसकी गर्वना सुनकर आकाशवर्णी देवतालोग दहल गये ॥ ९४—९८ ॥

इसी समय रावणके प्रति येर चौथे महामुनि अगस्त्य श्रीग्रन्थन्द्रजीके पास आये

रावणे अद्वैतरस्तु अगस्त्यो वै जयप्रदम्।
 आदित्यहृदयं नाम मन्त्रं प्रादाजप्रदम्॥ १८
 रामोऽपि जपत्वा तन्मन्त्रमगस्त्योक्तं जयप्रदम्।
 तद्दत्तं वैष्णवं वापमतुलं सहृणं दृढम्॥ १९
 पूजयित्वा तदादाय सञ्चं कृत्वा पठावतः।
 सौवर्णपूर्वस्तीक्ष्णस्तु शैर्मर्पयिदार्णीः॥ २००
 युयुधे राक्षसेन्द्रेण रघुनाथः प्रतापवान्।
 तयोस्तु युध्यतोसतत्र भीमशब्द्योर्महामते॥ २०१
 परम्परविसृष्टस्तु व्योम्नि संवर्द्धितोऽनलः।
 समुत्थितो गृपथ्रेषु रामरावणयोर्युधिः॥ २०२
 संगेरे वर्तपाने तु रामो दाशरथिस्तदा।
 पदातिर्युधे खीरो रामोऽनुकपराक्रमः॥ २०३
 सहस्राभ्युतं दिव्यं रथं मातलियेव च।
 प्रेषयामास देवेन्द्रो महान्ते लोकविभूतम्॥ २०४
 रामस्ते रथमारुहु पृथ्यमानः सुरोत्तमैः।
 मातत्व्युक्तोपदेशस्तु रामचन्द्रः प्रतापवान्॥ २०५
 द्वाह्यदत्तवरे दुष्टं द्रव्यास्त्रेण दशाननम्।
 जथान वैरिणं कूरं रामदेवः प्रतापवान्॥ २०६
 रामेण निहते तत्र रावणे सगणे रिषी।
 इन्नाद्या देवताः सर्वाः परम्परमध्याद्वृत्तम्॥ २०७
 रामो भूत्वा हरिर्यस्यादस्माकं वैरिणं रथो।
 अन्वैरथ्यपथ्येन जथान युधि रावणम्॥ २०८
 तस्मात् रामनामानपनन्तभपराजितम्।
 पूजयामोऽवतीर्यनमित्युक्त्वा ते दिवीकरः॥ २०९
 नानाविषयानैः श्रीमद्विद्वतीयं प्रहीतले।
 रद्रेन्द्रवसुचन्द्राद्या विधातारं सनातनम्॥ २१०
 विष्णुं विष्णुं जगन्मूर्ति सानुजं गम्पमव्ययम्।
 तं पूजयित्वा विधिवत्परिवार्योपतस्थिते॥ २११
 रामोऽर्च दृश्यतां देवा लक्ष्मणोऽयं व्यवस्थितः।
 मुग्नीवो गविपुत्रोऽयं वायुपुत्रोऽयमास्थितः॥ २१२

और शत्रुओंपर विजय दिलानेवाले 'आदित्यहृदय' नामक स्तोत्र-मन्त्रका उपदेश किया। महावली श्रीरामचन्द्रजीने भी अगस्त्यमुनिके बताये हुए उस विजयदायक मन्त्रका जप करके उनके द्वारा अपित फिये गये उत्तम ढोरेवाले, सुदृढ़ एवं अनुपम वैष्णव-धनुषको सादर ग्रहण किया और उसपर प्रस्तुता चढ़ायी। फिर प्रतापी रघुनाथजी शत्रुओंका मर्म-भेदन करनेमें समर्थ सोनेको पौखावाले तीक्ष्ण चारोंद्वारा राक्षसराज रावणके साथ युद्ध करने लगे॥ १०३—१००%॥

महामते! नुपश्चैष! उन दोनों भयंकर शक्तिवाले शोरोम और रावणके परम्पर युद्ध करते समय एक दूसरेरपर छोड़ी हुई अग्निकी ज्याला उठ उठकर वहाँ आक्रमणमें फैलने लगे। इस वर्तमान संग्राममें अवर्णनीय पराक्रमवाले वार दशरथवन्दन शोरोम फैलत हो युद्ध कर रहे थे। यह देख देवराज इन्हें अपने सारांश मातलिसहित एक महान् लोकविजयत दिव्य रथ भेजा, जिसमें एक हवार घोड़े जुते थे। प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी लेख देवोंद्वारा प्रशंसित होकर उस रथवर आसृढ़ हुए और मातलिके उपदेशसे उस दुष्ट दशाननका, जिसे द्रव्याजीने वरदान दिया था, द्रव्यास्त्रद्वारा बध किया। इस प्रकार प्रतापी भगवान् श्रीरामने अपने कुर वैरो रावणका संहार किया॥ १०३—१०६॥

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा शत्रु रावणका उसके गणोंसहित वध ही जानेपर इन्द्र आदि सभी देवता परम्पर कहने लगे—“सहात् भगवान् विष्णुने ही श्रीरामावतार लेकर हमारे वैरो रावणका, जो दूसरोंके लिये अवश्य था, युद्धमें वध किया है। इसलिये हम लोग आकाशमें उत्तरकर इन अनन्त पराक्रमों तथा किसीसे भी पराजित न होनेवाले 'श्रीराम' नामक परमेश्वरको पूजा करें।” ऐसी सम्पर्क जारी के सद, इन्द्र, वसु और चन्द्र आदि देवतागण अनेक कानिमान् विमानोंद्वारा पृथ्वीपर उतरे। वे उग्रत्वके रूपान्वित, विश्वमूर्ति, सनातन पुरुष, विषयशील भगवान् विष्णुके स्वरूपभूत अविनाशी परमात्मा श्रीरामका स्वरूपसहित विभिन्न भूजन करके उन्हें सब ओरसे उत्तरकर छाड़े ही गये॥ १०७—१११॥

सब देवता परम्पर कहने लगे—“देवगण! देवों— ये श्रीरामचन्द्रजी हैं, ये लक्ष्मणजी छाड़े हैं, ये सूर्यनन्दन सुशीत हैं, ये भाषुनन्दन हनुमानजी छाड़े हैं और ये

अङ्गदाण्डा इमे सर्वे इत्युचुस्ते दिवौकसः।
गन्धापोदितदिवक्चक्रा भूमरालिपदानुगा ॥ ११३
देवस्त्रीकरनिर्मुका राममूर्धनि शोभिता।
पपात पुष्पवृष्टिस्तु स्वक्षयणस्य च मूर्धनि ॥ ११४

ततो ब्रह्मा समागत्य हंसयानेन राघवम्।
अमोघाख्येन स्तोत्रेण स्तुत्या राममतोचत ॥ ११५

श्रीरामचन्द्र

त्वं विष्णुरादिभूतानामननो ज्ञानदुक्षम्भुः।
त्वमेव शाश्वतं ब्रह्म वेदान्ते विदितं परम् ॥ ११६
त्वया यदद्य निहतो रावणो लोकरावणः।
तदाशु सर्वलोकानां देवानां कर्म साधितम् ॥ ११७

इत्युक्ते परायोनी तु शङ्करः प्रीतिमास्थितः।
प्रुणाप्य रामे तस्यै तं भूयो दशरथं नुपम् ॥ ११८

दर्शयित्वा गतो देवः सीता शुद्धेति कीर्तयन्।
ततो बाहुबलप्राप्ते विपाने पुष्पकं शुभम् ॥ ११९

पृतामारोप्य सीतां तापादिष्टः पर्यनात्मजः।
ततस्तु जानकीं देखीं विशेषकां भूषणान्वितापम् ॥ १२०

वन्दितां बानरेन्द्रस्तु सार्थं भात्रा महाबलः।
प्रतिष्ठाप्य महादेवं संतुष्टये स राघवः ॥ १२१

लक्ष्यवान् परमां भक्तिं शिवे श्राव्योरनुग्रहात्।
रामेश्वर इति ख्यातो महादेवः पिनाकधृक् ॥ १२२

तस्य दर्शनमात्रेण सर्वहत्यां व्यपोहति।
रापस्तीर्णप्रतिज्ञोऽसी भरतासत्तमानसः ॥ १२३

ततोऽयोध्यां पुरीं दिव्यां गत्वा तस्यां द्विजोत्तमैः।
अभिधिक्तो बसिष्ठादीर्भरतेन प्रसादितः।
अकरोद्भूमतो राज्यं चिरं रामः प्रतापवान् ॥ १२४

अङ्गद आदि सभी बानर वौर विराजमान हैं। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणके मस्तकपर देवाङ्गनाओं के हाथसे छोड़े गये फूलोंकी वस्त्रां हुईं। उस समय वहोंकी सब दिशाएं उन दिव्य पुष्पोंकी सुगम्भमें सुकामित हो रही थीं और उन पुष्पोंपर भूमरण झौंडरा रहे थे ॥ ११२—११४ ॥

उदननदी ब्रह्माजी के होसकी सवारीसे वहाँ आये और 'अमोघ' नामक लोकसे भगवान् श्रीरामकी स्तुति करके तब उनसे बोले ॥ ११५ ॥

ब्रह्माजीने कहा—आप समस्त प्राणियोंके आदिकारण, अधिकारी, ज्ञानदृष्टि भगवान् विष्णु हैं; आप ही बेदान विष्णुत जनातन परस्पराय हैं। आपने आज जो सम्मूर्ख लोकोंको रुक्षनेवाले रावणका वध किया है, इससे समस्त लोकों तथा देवताओंका भी कार्य सद्यःसिद्ध हो गया ॥ ११६—११७ ॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेके पश्चात् भगवान् शङ्करने भी पहले श्रीरामचन्द्रजीको पैमपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्हें राजा दशरथका दर्शन कराया। उसके बाद यह कठाकर कि 'श्रीसीताजी निष्कलङ्क और तुम चरित्रवाली हो'—भगवान् शङ्कर चले गये ॥ ११८ ॥

उदननदी परिव्रक्तम्। सीताजीको अपने बाहुबलसे प्राप्त मुन्द्र पुष्पक-विमानपर चढ़ाकर भगवान् ने हनुमान्जी-जीको भस्त्रेनका आदेश दिया। तब समस्त जानेन्द्रोद्विष्टा यन्दित लोकराहित जानकीदेखोंको आभूषणोंसे विभूषितकर महाबली रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणके साथ चले। सीटली नदी श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके पुलपर महादेवजीकी स्थापना की और शङ्करजीकी कृपासे उन्होंने उन शिवजीमें परमधारिं प्राप्त की। वहाँ स्थापित हुए पिनाकपातो महादेवजी 'रामेश्वर' नामसे विख्यात हुए। उनके दर्शनमात्र से शिवजी सब प्रकारके हत्यादि दोषोंको दूर कर देते हैं ॥ ११९—१२३ ॥

इस ग्रन्थार उलिजा पूर्ण करके श्रीरामचन्द्रजी अपना दिव्य भस्त्रजीको और नवा रहनेके कारण वहाँसे दिव्यपुरी अयोध्याको गये। फिर भस्त्रजीके मनामेपर श्रीरामचन्द्रजीने बमिष्ठ आदि उनम् ब्राह्मणोंके हाथ अपना राज्याभिषेक करना। उपक्षत् प्रतापों भगवान् श्रीरामने चिरकालतक

यज्ञादिकं कर्म निजे च कृत्वा
पौरस्तु रामो दिवमारुरोह।
राजन्यया ते कथितं समाप्ततो
रामस्य भूम्यां चरितं महात्मनः।
इदं सुभक्त्या पठतां च शृण्वतां
ददाति रामः स्वपदं जगत्पतिः ॥ १२५

इति श्रीकाशिंदुपुराणे रामादुर्भावे दिवकालोऽध्यायः १२५ ॥
इस प्रकार श्रीकाशिंदुपुराणे श्रीकाशिंदुपुराणे कथितेष्वकथं जगत्पतिः अध्याय एव हुआ १२५ ॥

अथाये श्रीकाशिंदुपुराणे

तिरपनवाँ अध्याय

रामाय-श्रीकृष्ण-अखादके चरित्र

कर्मचारी उक्ताय

अतः परं प्रवृत्यामि प्रादुर्भवद्वयं शुभम्।
तृतीयस्य तु रामस्य कृष्णस्य तु समाप्ततः ॥ १
पुरा हासुरभारातीं महीं प्राह नृपोत्तम्।
आसीने देवमध्ये तु ब्रह्माणां कमलासनम् ॥ २
देवासुरे हता ये तु विष्णुना देवदानवाः।
ते सर्वे क्षत्रिया जाताः कंसाद्याः कमलोद्धव ॥ ३
तद्विभारसम्प्राप्ता सीदन्ती चतुरानन्।
पम तद्वाराहानिः स्याद्याथ देव तथा कुरु ॥ ४
तथैवमुक्तो ब्रह्माथ देवैः सह जगाय ह।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं विष्णुं भक्तिविद्वीभितम् ॥ ५
तत्र गत्वा जगत्स्वष्टु देवैः साधुं जनाईनम्।
नरसिंहं प्रहादेवं गन्धपुण्ड्रादिभिः क्रमात् ॥ ६
अथवच्च भक्त्या गोविन्दं वाक्युष्णेण च केऽगतम्।
पूजयामास राजेन्द्र तेन तुष्टो जगत्पतिः ॥ ७

श्रीकाशिंदु

वाक्युष्णेण कथं ब्रह्मन् ब्रह्माव्यर्थितवान् हरिम्।
तन्ये कथय विष्णेन्द्र ब्रह्मोत्तं स्तोत्रमूलम् ॥ ८

भक्तिपूर्वक रामं किंवा तथा रजोचित वागादि कर्मान्वका
अनुशासन करके वै पुरावासीजनोंके साथ ही स्वर्गलोक
(साकेतधाम)-को चले गये। राजन्! पृथ्वीधर महात्मा
श्रीरामनन्दजीके किंवे हुए चरित्रोंका भैंने तुमसे संक्षेपतः
वर्णन किया। जो लोग इसको भक्तिपूर्वक पढ़ते और
सुनते हैं, उन्हें जगत्पति भगवान् श्रीराम अपना धारा
उदान करते हैं ॥ १२६—१२५ ॥

मार्कण्डेयसी कहते हैं—अब मैं तीसरे दाम (यत्तरम्)
और श्रीकृष्णके युगल अवतारोंका संक्षेपमें वर्णन करौंगा।
नृपंष्ठु! पूर्वकालको यात है, पूर्वी दैत्योंके भारसे पीड़ित
हो देवताओंके मध्यमें विद्युत्यान कमलासन ब्रह्माजीके
पास गये और इस प्रकार चोली ॥ १—२ ॥

‘कमलोद्धव! देवासुर-संश्लापमें जो-जो दैत्य और
दानव भगवान् विष्णुके हाथसे मारे गये थे, वे सभी कंस
आदि क्षत्रियोंके लक्ष्यमें उत्पन्न हुए हैं। चतुरानन्! उनके
भाई ब्रह्माजी देवकर में चहुत दुःखी हो गयी हैं। देव! मेरा
वह भार जैसे भी दूर हो, वह उपाय आप करें’ ॥ ३—४ ॥

पृथ्वीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना की जानेपर, कहते
हैं, ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ क्षीरसागरके उत्तर
कट्टपर भगवान् विष्णुके निकट गये। उन्होंने भगवान्को
अपनी भक्तिके प्रभावसे सोतेसे जगाया था। वहाँ पहुँचकर
जगद्गृहीं सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके
साथ नरसिंहस्वरूप भगवान् देवता भगवान् जनाईनकी
गत्य पूज्यादिके द्वारा क्रमशः भक्तिपूर्वक पूजा की। फिर
वाक्युष्णसे भी उन गोविन्द-क्रमवका पूजन किया। राजेन्द्र!
इससे ये जगदीक्षर भगवान् विष्णु उत्तर अहुत संतुष्ट
हुए ॥ ५—७ ॥

राजा बोले—ब्रह्मन्! ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुको
वाक्युष्णसे किस प्रकार पूजा की? विष्रेन्द्र! ब्रह्माजीद्वारा
जहे हुए उस उत्तम स्तोत्र (वाक्युष्ण)-को आप पुरो
सुनाइये ॥ ८ ॥

महोन्देव उक्तम्

भृणु राजन् प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं ब्रह्ममुखेरितम्।
सर्वपापहरं पुण्यं विष्णुतुष्टिकरं परम्॥ ९

तमाराध्य जगन्नाथपूर्व्याहुः पितामहः।
भूत्वैकाग्रमना राजनिदं स्तोत्रमुदीरयत्॥ १०

ब्रह्मोक्तम्

नपापि देवं नरनाथमच्युतं
नारायणं लोकगुरुं सनातनम्।
अनादिमव्यक्तमधिन्यप्रव्ययं
वेदानवेदं पुरुषोत्तमं हरिम्॥ ११

आनन्दरूपं परमं परात्परं
चिदात्पकं ज्ञानवतां परां गतिम्।
सर्वात्मकं सर्वं गतैकरूपं
ध्येयस्वरूपं प्रणामापि माधवम्॥ १२

भक्तप्रिय काननमतीय विद्युतं
सुराधिपं सुरिजनैरभिष्टुतम्।
चतुर्भुजं नीरजवर्णमीश्वरं
रथाङ्गपाणिं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥ १३

गदासिशङ्खाव्यकरं श्रियः पतिं
सदाशिवं शार्ङ्गधरं रविप्रभम्।
पीताम्बरं हारविराजितोदरं
नमापि विष्णुं सततं किरीटिनप्॥ १४

गण्डस्थलासक्तसुरक्तकुण्डलं
सुदीपिताशेषदिशं निजत्रिपा।
ग-धर्वसिद्धैरुपगीतपूर्व्यनि
जनार्दनं भूतपतिं नमापि तम्॥ १५

हत्यासुरान् पाति युगे युगे सुरान्
स्वधर्मसंस्थान् भूति संस्थितो हरिः।
करोति सुर्एं जगतः क्षर्य च-
स्तं वासुदेवं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥ १६

मार्कण्डेयजी बोले— राजन्! मैं ब्रह्माजीके मुखसे निकले हुए उस उत्तम स्तोत्रको कहता हूँ, सुनो! वह स्तोत्र समस्त सार्वोंको हरनेवाला, पवित्र तथा भगवान् विष्णुको अत्यन्त संतुष्ट करनेवाला है। राजन्! ब्रह्माजीने पूर्वोक्त रूपसे भगवान् जगन्नाथकी पूजा करके एकाग्रचित्त हो इस स्तोत्रका याढ़ किया॥ ९-१०॥

ब्रह्माजी बोले— मैं सम्पूर्ण जोतोंके स्वामी भगवान् अच्छुतको, सनातन लोकगुरु भगवान् नारायणको नमस्कार करता हूँ। जो अनादि, अल्पतम्, अचिन्त्य और अविनाशी हैं, उन वेदान्तलेश्वर पुरुषोत्तम श्रीहरिको प्रणाम करता हूँ। जो परमानन्दस्वरूप, यशस्वर, ज्ञानमय एवं ज्ञानियोंके परम आश्रय हैं तथा जो सर्वमय, सर्वव्यापक, अद्वितीय और सबके भवेयकृपा हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भक्तोंके प्रेमी, अत्यन्त कमनीय और दीपोंसे रहित हैं, जो समस्त देवताओंके स्वामी हैं, विष्णु, पुरुष जिनकी सुरुति करते हैं, जिनके चार भुजाएँ हैं, नौनकमलके समान जिनकी श्यामल कानि है, जो हाथमें चक्र धारण किये रहते हैं, उन परमेश्वर केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके हाथोंमें गदा, तालवार, रथ और कमल सुशोभित हैं, जो सक्षमीजीके पति हैं, सदा ही कल्प्यान जरनेवाले हैं, जो शर्वर्ह धनुष धारण किये रहते हैं, जिनको सूर्यके समान कानि है, जो पीतवस्त्र धारण किये रहते हैं, जिनका ठढरभाष हाससे विभूषित है तथा जिनके मस्तकपर मुकुट शोभा पा रहा है, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जिनके कषोलोंपर सुन्दर रक्तवर्ण कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जो अपनी कानिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे हैं, गन्धर्व और मिद्दगण जिनका सूचया गाते रहते हैं तथा जिनका वैदिक ऋच्याज्ञेद्वारा यशोगान किया जाता है, उन भूतनाथ भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भगवान् प्रत्येक वृगमें धृष्ट्योग्र अवतार से, देवद्रोही दानवोंको हत्या करके अपने धन्वं भवति देवताओंकी रक्षा करते हैं तथा जो इस जगत्को सुष्टु एवं संहार करते हैं, उन सर्वानन्दयोगी भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १२-१३॥

यो मत्स्यरूपेण रसातलस्थितान्
वेदान् समाहृत्य मम प्रदत्तवान्।
निहत्य युद्धे पथुकैटभावुभौ
तं वेदवेद्यं प्रणतोऽस्म्यहं सदा॥ १७

देवासूरः क्षीरसमुद्रमध्यतो
न्यस्तो गिरियेन धृतः पुरा महान्।
हिताय कौर्य वपुरास्थितो य-
स्तं विष्णुमाद्यं प्रणतोऽस्मि भास्करम्॥ १८

हत्या हिरण्याक्षमतीव दर्पितं
वराहरूपी भगवान् सनातनः।
यो भूमिमेतां सकलां समुद्धार-
स्ते वेदभूति प्रणामापि सूकरम्॥ १९

कृत्या नृसिंहं वपुरात्मनः परं
हिताय स्लोकस्य सनातनो हरिः
जपान यस्तीक्ष्यानखैर्दितेः सुतं
तं नारसिंहं पुरुषं चमापि॥ २०

यो वामनोऽस्ती भगवाञ्छनादेनो
बलिं ब्रह्मच्य श्रिपिरुर्जितेः पद्मः।
जगत्त्रयं कृष्ण ददी पुरुदरे
तदेवमाद्यं प्रणतोऽस्मि वामनम्॥ २१

यः कार्तवीर्यं निजधान रोषात्
त्रिस्सप्तकृत्यः वितिपात्मजानपि।
ते जामदान्यं क्षितिभारताशकं
नतोऽस्मि विष्णुं पुरुषोत्तमं सदा॥ २२

सेतुं महानं जलधी वदन्य यः
मध्यात्य लङ्घां सगणं दशाननम्।
जपान भूत्यं जगतां सनातनं
तं रामदेवं सततं नतोऽस्मि॥ २३

यथा तु वाराहनृसिंहरूपैः
कृतं त्वया देव हितं सुराणाम्।
तथाद्य भूमेः कुरु भारहानि
प्रसीद विष्णो भगवत्त्रभस्ते॥ २४

जिन्होंने नुदन्में भृशु और कैटभ—इन दोनों दैत्योंको
मारा तथा मत्स्यरूप धारण करके रसातलमें पहुँचे हुए
वेदोंको लाकर मुझे दिया था, उन वेटवेद्य परमेश्वरको
में सदा ही प्रणाम करता है। पूर्वकालमें जिन्होंने देवता
और अमूरोद्वारा क्षीरसमुद्रमें ढाले हुए महान् मन्दिराभलको
संषक्षा हित करनेके लिये कूर्मलघुपर्वे पांटपर धारण
किया था, उन प्रकाश देवेवाले आदिदेव भगवान् विष्णुको
में प्रणाम करता है। जिन सनातन भगवान्ने वराहरूप
धारण करके इस सम्पूर्ण वसुभृतका जलसे उद्धार किया
और उसी समय अत्यन्त अधिमानो देत्य हिरण्याक्षको
मार गिराया था, उन वेदमूर्ति युक्तरूपधारी भगवान्को
प्रणाम करता है। जिन सनातन भगवान् श्वाहरिने त्रिलोकीका
हित करनेके लिये रथयं ही संहृ नृसिंहरूप धारण करके
अपने तीखें नखोंद्वारा दिति-वन्दन हिरण्यकशिष्ठुका वध
किया था, उन चरम पुरुष भगवान् नरसिंहको में प्रणाम
करता है। जिन वामनकापधारी भगवान् जनादेनने यत्तिको
बौधा था और अपने बड़े हुए तीव्र बगोंसे त्रिभुवनको
नाशकर उसे द्वन्दको दे दिया था, उन आदिदेव वामनको
में प्रणाम करता है। जिन्होंने क्षोणवश राजा कालंशीर्यको
मार डाला तथा इक्षीम जार क्षत्रियोंका संहार किया,
पृथ्वीका भार दूर करनेकाले परमामहायधारी उन पुरुषोंतम
भगवान् विष्णुको में सदा नमस्कार करता है। जिन्होंने
समुद्रमें बहुत बड़ा पुल बौधा और लङ्घामें पहुँचकर
त्रिलोकीको रक्षाके लिये रावणको उसके गणोंसहित
मार डाला था, उन सनातन पुरुष भगवान् श्रीरामको में
सदा प्रणाम करता है। भगवन्! विष्णो! जिस प्रकार
[पूर्वकालमें] वाराह-नृसिंह आदि रूपोंसे आपने देवताओंका
हित किया है, उसी प्रकार आज भी प्रसन्न होकर
पृथ्वीका भार दूर करें। देव! आपको सदर नमस्कार
है॥ १७—२५॥

श्रीमार्कण्डेश उकाल

इति स्तुतो जगन्नाथः श्रीधरः पद्मयोनिना।
आविवंभूव भगवाऽस्त्राद्वयकगदाधरः ॥ २५
उकाल च हृषीकेशः पद्मयोनि सुरानपि।
स्तुत्यानयाहं संतुष्टः पितामह दिवौकसः ॥ २६
पठतां पापनाशाय नृणां भक्तिमतामपि।
यतोऽस्मि प्रकटीभूतो दुर्लभोऽपि हरिः सुराः ॥ २७
देवैः सेन्द्रैः सरुद्रैस्तु पृथ्व्या च प्रार्थितो ग्रहम्।
पद्मयोने बदाय त्वं श्रुत्या तत्करवाणि ते ॥ २८
इत्युक्ते विष्णुना प्राह ग्रह्या लोकपितामहः।
दैत्यानां गुरुभारेण पीडितेयं मही भृशम् ॥ २९
लखीपिमां कारयितुं त्वयाहं पुनर्बोतम्।
तेनागतः सुरैः सार्थं नान्यदस्तीति कारणम् ॥ ३०
इत्युक्तो भगवान् प्राहु गच्छस्यामपराः स्वकम्।
स्थानं निरामयाः सर्वे पद्मयोनिस्तु गच्छन्तु ॥ ३१
देवबन्यां वसुदेवाच्य अयतीर्य महीतले।
सितकृष्णो च मच्छुक्ती कंसादीन् प्रातयिष्यतः ॥ ३२
इत्याकण्यं हरेर्वाक्यं हरि जल्या ययुः सुराः।
गतेषु त्रिदिवीकः सु देवदेवो जनादनः ॥ ३३
शिष्टानां पालनार्थाय दृष्टिग्रहणाय च।
प्रेपयामास ते शक्ती सितकृष्णो स्वके नृप ॥ ३४
तयोः सिता च रोहिण्यां वसुदेवाद्वभूव ह।
तद्वक्त्या च देवबन्यां वसुदेवाद्वभूव ह ॥ ३५
रीहिणेयोऽथ पुण्यात्मा रामनामाश्रितो महान्।
देवकीनन्दनः कृष्णास्तयोः कर्म शृणुष्व मे ॥ ३६
गोकुले बालकाले तु राक्षसी शकुनी निशि।
रामेण निहता राजन् तथा कृष्णोन् पूतना ॥ ३७
धेनुकः सगणस्तालवने रामेण यातितः।
शकटश्चार्जुनो वृक्षी तद्वक्त्योन् यातितो ॥ ३८

श्रीमार्कण्डेशजी कहते हैं—बहाजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर जगत्परि भगवान् स्वक्षमीधर हाथमें लहू, चक्र और गदा धारण किये जहाँ प्रकट हुए तथा वे भगवान् हृषीकेश ब्रह्मजी और देवताओंसे बोले—'पितामह! देवताओं! मैं तुम्हारी इस स्तुतिमें बहुत ही प्रसन्न हूँ। देवगण! यह स्तोत्र इरका पाठ करनेवालोंके सारे पाप नहीं करनेमें समर्थ है। यहाँपि मैं श्रीहरिके रूपमें भृशिमान् पुरुषोंको भी कठिनतासे ही छाप होता है, तथापि इस स्तोत्रके प्रभावमें मैं प्राप्तक्षम प्रकट हो गया हूँ। ज्ञानाजी! आज यह और इन्द्रजाहित समस्त देवताओं तथा पृथिवीने भेंटे प्राचंना की है, अतः तुम लोग अपना मनोरथ कहो; उसे सुनकर पूर्ण करेंगा' ॥ २५—२८ ॥

भगवान् विष्णुके यो करनेपर लोकपितामह ज्ञानाजी बोले—'तुम्हारात्म: यह पृथ्वी दैत्योंके गुस्तर भारसे अन्यन दीक्षित हो रहे हैं। अतः मैं आपके द्वारा इस वसुभारके भारको उत्तराखनेके लिये वहाँ देवताओंके साथ आया हूँ। मैं भी आवेद्य दृसय कराइ कारण नहीं है' ॥ २९—३० ॥

यह सुनकर भगवान्मैं कहा—'देवगण! तुम लोग निश्चिन्त होकर अपने-अपने स्थानको लौट जाओ। ज्ञानाजी भी चले जावै। भेंटे गौर और कृष्ण—दो शक्तिशील पृथिवीपर वसुदेवजीके शीर्ष तूंड देवकीजीके गर्भसे अवतार लैकर करम आदि अमूर्तोका सथ करेंगी' ॥ ३१—३२ ॥

भगवान्का यह बचन सुनकर सभी देवता उनको प्रणाम करके चले गये। राजन्। देवताओंके चले जानेपर देवदेव जनादनने सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका संहार करनेके लिये अपनी बैंगी-कृष्ण—दो शक्तिशील पृथिवीपर हुई तथा कृष्ण शक्तिने वसुदेवके अंश एवं देवकीजीके गर्भसे अवतार लिया। पुण्यात्मा महापुरुष रोहिणीनन्दनने 'राम' नाम धारण किया और देवकीनन्दनका 'श्रीकृष्ण' नाम रखा गया। नरेश्वर! तुम उन दोनोंके कर्म मुझसे सुनो ॥ ३३—३६ ॥

राजन्! गोकुलमें रामने चाल्यकालमें ही राजिके समय एक पक्षीराष्ट्रपारिणी राक्षसीको मारा था और श्रीकृष्णने 'धेनुक' का संहार किया था। रामने तालवनमें 'धेनुक' नामक राक्षसको उसके गणोंमहित मारा था और श्रीकृष्णने भी शकट उलट दिया तथा 'चमत्कार्दुन' नामक दो वृक्षोंको उखाड़ दिया था।

प्रलम्बो निधनं नीतो दैत्यो रामेण मुष्टिना ।
कालियो दमितस्तोये कालिन्दां विषपत्रगः ॥ ३९
गोवर्धनक्षु कृष्णोन धूतो वर्षति खासवे ।
गोकुलं रक्षता तेन अरिष्टक्षु निपातितः ॥ ४०
केशी च निधनं नीतो दुष्टवाजी महामुरः ।
अकृतेण च तौ नीतौ मधुरायां महामना ॥ ४१
ददर्श तु निपत्रक्षु रामकृष्णो महामने ।
स्वं स्वं रुपं जले तस्य अकृतस्य विभूतिदम् ॥ ४२
अनयोर्भावमतुलं ज्ञात्या दृष्टा च यादवाः ।
बभूतः प्रीतमनसो हाकृतक्षु नृपात्मजः ॥ ४३
दुर्वचक्षु प्रजल्पनं कंसस्य रजके ततः ।
कृष्णो जयान रामक्षु तदुस्त्रं चाहाणो ददी ॥ ४४
पालाकारेण भवत्या तु सुधनोधिः प्रपूजिती ।
ततस्तस्य ब्रान्दत्वा दुर्लभान् रामकेशवी ॥ ४५
गच्छन्ती राजमार्गं तु कृञ्जया पूजिती ततः ।
तत्कौटिल्यपानीय विरुप्यं कार्मुके ततः ॥ ४६
बभूत्य कृष्णो खलशान् कंसस्याकृत्य तत्काणान् ।
रक्षपालान् जयानाथ रामस्त्रं खलान् बहून् ।
हत्या कृत्यलयाख्यं च गजं रामजनादनी ॥ ४७
प्रविश्य रहु गजदन्तपाणी
मदानुलिपी बसुदेवपुत्री ।
युद्धे तु रामो निजधान मालं
शैलोपमं मुष्टिकमव्ययान्मा ॥ ४८

कृष्णोऽपि चाणुरपतिप्रसिद्धं
खलेन वीर्येण च कंसमङ्गकम् ।
युद्ध्वा तु तेनाथ चिरं जयान
तं देत्यमादं जनसंसदीशः ॥ ४९

रामने "प्रलम्ब" नामक राक्षसको मुक्तसे मारकर मौतके घाट उतारा तथा श्रीकृष्णने बमुनाके जलमें रहनेवाले विद्युते सर्वे "कालिय" का दमन किया और इन्द्रके वर्षा करते समय वे सात दिनोंतक हाथपर गोवर्धनपर्वत भारण किये रहे हैं रहे हैं। इतना ही नहीं, श्रीकृष्णने गोकुलकी रक्षा करते हुए अरिष्टासुरका भी वध किया था। फिर दुष्ट धोड़वा रूप भारण करनेवाले महान् असुर केशीका उन्होंने मंहार किया; इसके बाद महामना अकृतस्य [कंसको आजासे] आये तथा राम और कृष्ण—दोनों बभूत्योंको मधुरा से गये। महामते! मार्गमें अकृतजीने बमुनामें दुष्टकी तमाते समय जलके भोतर राम और कृष्ण—दोनोंको देखा। उन दोनों बभूत्योंने अकृतजीको अरणे—अपने ऐश्वर्यदायक स्वरूपका दर्शन कराया। तदनन्तर। उन दोनोंके अनुष्ठम स्वरूपको देख और जानकर अकृतजीके साथ ही समस्त यादवगण बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ४०—४१ ॥

तदनन्तर [मधुरामें भ्रमण करते समय] कंसुवर्यन कहनेवाले कंसके एक धोतीको कृष्ण और रामने मार डाला तथा उसके बस्त्र खालियोंको बौंट दिये। फिर मार्गमें एक शालोंने फूलोंसे धक्किपूर्वक उनकी पूजा की। तब राम और श्रीकृष्णने उसे दुर्लभ यज्ञ दिये। उसके बाद जब वे सहृदयपर शूम रहे थे, उसी समय "कृच्छा" शालोंने आकर उनका आदर-मालार किया। तब श्रीकृष्णने उसकी भांति लगनेवाली कृच्छाको दूर कर दिया। तदनन्तर [यज्ञशालामें रखे गये] कंसके धनुषोंको महाबली श्रीकृष्णने [यज्ञपूर्वक] खींचा और तक्काल ही लोड़ डाला। उस समय वहाँकि अनेकों दुष्ट राक्षसोंको बस्त्रामवीने मार डाला। फिर बस्त्राम और श्रीकृष्ण—दोनोंने मिलकर 'कृत्यलयापोद' नामक हाथीको भी मार गिराया ॥ ४८—४९ ॥

तदनन्तर उन दोनों बसुदेवकुमारोंने हाथीके दाँत उखाड़कर हाथमें से लिये और उसके मट्टसे मने हुए ही रक्षभूमिमें प्रवेश किया। वहाँ अविनाशी खलामजीने पर्वताकार "मुष्टिक" नामक पहलवानको कुस्तीमें मार डाला और श्रीकृष्णतदनन्तरे भी कंसके "चालू" नामक

प्रतस्य मात्रस्य च मुष्टिकस्य
 मित्रं पुनः पुष्करकं स रामः।
 युद्धार्थमुत्थाय कृतक्षणं तं
 मुष्टिप्रहोरेण जघान वीरः॥ ५०
 कृष्णः पुनस्तान् सकलात्रिहत्य
 निगृहा कंसं विनिपात्य भूमी।
 स्वयं च देहे विनिपत्य तस्य
 हत्वा तथोद्याँ निचकर्त्य कृष्णः॥ ५१
 हते तु कंसे हरिणातिकुञ्जो
 भातापि तस्यातिरुपेण चोत्थितः।
 मुनाभसंज्ञो बलवीर्यपुनो
 रामेण नीतो यमसादनं क्षणात्॥ ५२
 ती बन्ध यातापितरी सुहृदी
 जनैः समस्तैर्युभिः सुसंबृती।
 कृत्वा तुपै चोग्रसंन यदूनां
 सभां सुधर्मा ददतुमहिनीम्॥ ५३
 सर्वज्ञभावावपि रामकृष्णी
 सम्प्राप्य सांदीपनितोऽस्त्रविद्याप्।
 गुरोः कृते पङ्गजनं निहत्य
 यमे च जित्वा गुरवे सुतं ददी॥ ५४
 निहत्य रामो मग्ने श्वरस्य
 बलं समस्तं बहुशः समागतम्।
 दिव्यास्त्रपूरमराविमालुभी
 शुभां पुरी चक्रतुः सागरान्ते॥ ५५
 तस्यां विद्यायाच जनस्य वासं
 हत्वा शृगालं हरिष्वयात्मा।
 दार्थ्या महान्तं यद्यनं ह्युपाया-
 द्वारं च दन्त्वा नृपतेर्जगाय॥ ५६
 रामोऽथ संशानसमस्तविग्रहः
 सम्प्राप्य नन्दस्य पुनः स गोकुलम्।
 वृन्दावने गोपजनैः सुभाषितः
 सीरेण रामो यमुनां चकर्त्य॥ ५७

पहलवानका, जो अपने बल और पराक्रमके कारण बहुत ही प्रसिद्ध था, कच्छम निकाल दिया। भगवान् श्रीकृष्णने उस जन-समाजमें दैत्य यम चाणूरके साथ देरतक युद्ध करनेके बाद उसका वध किया था। फिर वीरवा बलरामजीने युद्धके लिये उत्साहपूर्वक ठडे हुए पुष्करको, जो 'मृत मुष्टिक' नामक महाका मित्र था, मुकेसे ही मार डाला। इसके बाद श्रीकृष्णने वहाँ उपस्थित समस्त दैत्योंका मंहार करके कंसको पकड़ लिया और उसे मष्टके नीने भूमिपर पटककर वे स्वयं भी उसके शरीरपर कूट पढ़े। इस प्रकार कंसका वध करके श्रीकृष्णने उसके मृत देहको भूमिपर लौटाया। श्रीकृष्णद्वारा कंसके मरे जानेपर उसका बलवान् एवं प्राकृतिको भला मुनाभ आपना झोधपूर्वक युद्धके लिये डाला; किंतु उसे भी बलरामजीने तुरंत ही मारकर यमलोक भेज दिया॥ ५८—५९॥

तदनन्तर समस्त यदुवंशियोंसे घिरे हुए उन दोनों भद्रवीरोंने अपना प्रस्त्र हुए माता-पिताको लन्दना करके श्रीकृष्णदेवको ही यदुवंशियोंका राजा बनाया और उन्हें उन्होंके 'सुधर्मा' नामक दिव्य सभा प्रदान की॥ ५३॥

यद्यपि बलराम और श्रीकृष्ण सर्वज्ञ थे, तो भी उन्होंने सांदीपनिसे आख-मिथाकी हिता पायी। फिर गुरुको दक्षिणा देखेके लिये उड़ात हो, 'पङ्गजन' दैत्यको मारा और यमराजको जीतकर वे दीर्घकालके मरे हुए गुरुपूजको वहाँसे से आये। वहाँ पुर उन्होंने गुरुजीकी दक्षिणाके रूपमें आपित किया॥ ५४॥

फिर बलरामजीने अपने ऊपर अनेकों यार चक्रार्द्ध करनेकाले यमधरण अरमंथके समस्त सैनिकोंको दिव्यास्त्रोंकी वज्री जड़के मार डाला। इसके बाद उन दोनों देवेशरोंने समुद्रके भीतर एक मुन्दर पुरी द्वारकाका निर्माण कराया। उसमें मधुराजाने कुन्तुल्योजनोंको यससकर अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णने राजा शृगालका वध किया। फिर एक उपाय करके महान् योद्धा यदवराजको भल्य कर, राजा मुचुकुन्दको बदाम दे, वे द्वारकामें लौट गये॥ ५५—५६॥

वापक्षण् सारा यद्येहा समाप्त हो जानेपर बलरामजी एक बार फिर उन्दहैं गोकुल (नन्दगांव) — में गये और वहाँ वृन्दावनमें गोपजनोंसे भलीभौति प्रेमालाप आदिके द्वारा सम्पानित हुए। वहाँ उन्होंने अपने हृष्णसे यमुनाजीका आकर्षण किया था।

सम्प्राप्य भार्यामध्य रेवतीं च
रेषे तथा द्वारावतीं स लाङ्गलो।
क्षत्रेण सम्प्राप्य तदा स रुविमर्णा
कृष्णोऽपि रेषे पुरुषः पुराणः ॥ ५८

द्वृते कलिङ्गराजस्य दनानुत्पादय लाङ्गलो।
जघानाष्टपदेवैव रुविमर्णा चानुतन्त्रितम् ॥ ५९

कृष्णः प्राग्न्योतिथो देत्यान् हयग्रीवादिकान् बहून्।
हत्या तु नरकं चापि जग्नाह च महद्धनम् ॥ ६०

अदित्यं कुण्डले दत्त्वा जित्वेन्द्रं देवतः सह।
गृहीत्वा पारिजातं तु ततो द्वारावतीं पुरीम् ॥ ६१

कुरुभिष्ठ धूतं साम्बं राम एको महावलः।
कुरुणां भव्यमुत्पाद्य मोचयामास तीर्थयान् ॥ ६२

बाणवाहुवर्णं छित्रं कृष्णोन् युधि धीमता।
रामेण तद्वलं नीतं क्षयं कोटिगुणं क्षणात् ॥ ६३

देवापकारी रामेण निहतो वानरो महान्।
ततोऽर्जुनस्य साहाय्यं कुर्यात् कंसशत्रुणा ॥ ६४

सर्वभूतवधाद्राजन् भुवो भारोऽवरोपितः।
तीर्थयात्रा कृता तदुद्रामेण जगतः कृते ॥ ६५

रामेण निहता ये तु तात्र संख्यातुपुत्सहे।
एवं तौ रामकृष्णो तु कृत्वा दुष्कर्थं नृप ॥ ६६

अवतार्य भुवो भारे जग्नतुः स्वेच्छया दिवम्।
इत्येती कथितौ दिव्यौ प्रादुर्भावी मया तत्र।
संक्षेपाद्रामकृष्णस्य काल्यं शृणु मपाधुना ॥ ६७

इत्थं हि शक्ती सितकृष्णास्त्वये
हरेननन्तस्य महावलाङ्गो।
कृत्वा तु भूमर्नप भारहानि
पुनश्च विष्णुं प्रतिजग्नमतुस्ते ॥ ६८

उदनन्तर द्वारकामे 'रेजती' नामकी भार्याको चाकर बलरामजी उनके साथ सुखपूर्वक रहने लगे और पुरुष पुरुष श्रीकृष्णचन्द्र भी क्षत्रियधर्मके अनुसार 'रुविमर्णी' नामक भार्याको हस्तगत करके उसके साथ सानन्द विहार करने लगे। तदनन्तर एक बार जूआ खेलते समय हस्तधरने कलिङ्गराजके दीवोंको उखाइ लिया और असत्यकर्त्ता आत्रय लेनेवाले रुम्होंको भी पासेसे ही मार गिया। इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने भी प्राग्न्योतिथपुरुके हयग्रीव आदि बहुत-से दीवोंको यमलोक पूर्वुकाया तथा नरकासुरका भी संहार करके वे उसके यहाँसे बहुत धन ले आये। वहाँसे श्रीकृष्ण इन्द्रलोकमें गये। वहाँ उन्होंने अदितियोंके उनके वे दीनों दिव्यं कुण्डल दिये, जो नरकासुरने हड्डप लिये थे। फिर देवताओंसहित इन्द्रको जीतकर पारिजात वृक्ष साथ ले, वे अपनी पुरी द्वारकामें सैट उठाये ॥ ६७—६८ ॥

उदनन्तर महावलों एवं महापणकम्भे बलरामजीने अकेले ही हस्तिनासुरमें जा कीर्त्तियोंको भव दिलाया और उनके द्वारा लंटी यावे गये [श्रीकृष्णपुत्र] साम्बको शुद्धाया। फिर शुद्धिमान् श्रीकृष्णचन्द्रने युद्धमें बाणासुरकी भुजाभियोंको काट हाला और बलरामजीने उसके करोड़ों सैनिकोंका झणभरमें ही संहार कर दिया। इसके बाद बलरामजीने देवताओं 'हुतिविद' नामक महान् वानरका वध किया। इसी तरह भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनकी सहायता करके उनके द्वारा समस्त दुष्ट क्षत्रियोंका वध कराया और पृथ्वीका सारा भार उतार दिया। उन दिनों बलरामजी लोकहितके लिये लोकेयाजा कर रहे थे ॥ ६८—६९ ॥

हाजन्! बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रने जितने दुष्टोंका वध किया था, उनकी गणना हम नहीं कर सकते। इस प्रकार दीनों भाई बलराम और श्रीकृष्णने दुष्टोंका संहार करके भूमिका भार दूर किया। फिर वे स्वेच्छानुसार वैकुण्ठशास्त्रको पधार गये। इस तरह राम और श्रीकृष्णके इन दिव्य अवतारोंकी मैने तुम्हें संक्षेपसे कह सुनाया। अब मूलमें 'कलिक-अवतार' का वर्णन सुनो। नरेश्वर! उस प्रकार अनन्त भगवान् विष्णुको वे दीनों महावलवती गौर और कृष्ण शक्तियां पृथ्वीका भार उतारकर पुनः अपने विष्णुस्वरूपमें लीन हो गयीं ॥ ६६—६८ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे कृष्णाद्वृत्तेन्द्रो नाम विवरणात् ॥ ५३ ॥

उत्त प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'कृष्णाद्वृत्तेन्द्रो' नामक विवरणात् अध्याय पृथ्वी हुआ ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ अध्याय

कल्पि-चरित्र और कलि-धर्म

महाराष्ट्रीय उच्चाच

अतः परं प्रब्रह्मामि शृणु राजन् समाहितः ।
प्रादुर्भविं हरे: पुण्यं कल्प्याछ्यं पापनाशनम् ॥ १
कलिकालेन राजेन्द्र नष्टे धर्मे महीतले ।
वृद्धिगते तथा पापे व्याधिमर्प्पीडिते जने ॥ २
देवैः सम्पार्थितो विष्णुः क्षीराक्षी स्तुतिपूर्वकम् ।
साम्भलाख्ये महाप्राप्ते नानाजनसमाकुले ॥ ३
नास्त्रा विष्णुयशः पुत्रः कल्पी राजा भविष्यति ।
अश्वपारुद्धा खड्गेन म्लेच्छानुत्सादयिष्यति ॥ ४
म्लेच्छान् समस्तान् क्षितिनाशभूतान् ।
हत्या स कल्पी पुरुषोन्नमाशः ।
कृत्वा च यागं बहुकाङ्क्षान्वये
संस्थाप्य धर्मे दिवमारुरोह ॥ ५
दशावताराः कथितास्तर्चव
हरेर्घया पार्थिव पापहन्तुः ।
इमं सदा यस्तु गुस्तिंभलः
शृणोति गित्य स तु याति विष्णुम् ॥ ६

उत्तरोक्तम्

तत्र प्रसादाद्विप्रेन्द्र प्रादुर्भवाः श्रुता मया ।
नारायणस्य देवस्य शृण्वतां कल्प्यापहाः ॥ ७
कलिं विस्तारतो शृङ्खि त्वं हि सर्वविदां चरः ।
चाह्यणाः क्षत्रिया वैश्याः शृद्राश्च मुनिसत्तम् ॥ ८
किपाहाराः किमाचारा भविष्यन्ति कलीं युगे ।

सूत उच्चाच

शृणु द्वयपृथयः सर्वे भरद्वाजेन संयुताः ॥ ९
सर्वे धर्मा विनश्यन्ति कृष्णो कृष्णात्वमागते ।
तस्मात् कलिर्महाधोरः सर्वपापस्य साधकः ॥ १०

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! इसके बाद मैं तुमसे भगवान् विष्णुके 'कलिक' नामक चाचन अवतारका वर्णन करता हूँ, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है, तुम सावधान होकर सुनो। राजेन्द्र! अब कलिकालद्वारा पृथ्वीपर अमंका नाश हो जायगा, पाप बढ़ जायगा और सभी लोग नाना प्रकारके रोगोंसे पीड़ित होने लगेंगे, तब देवतासंग श्रीरामाके तटपर जाकर यहाँ भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना करेंगे। तदनन्तर भगवान् 'साम्भल' नामक महान् धार्मक, जो बहुसंख्यक मनुष्योंसे परिपूर्ण होगा, विष्णुयशाके पुत्रलप्तसे अवतार हो, 'कलिक' नामसे विश्वात राजा होंगे। किरण ये योहेपर चढ़कर, हाथमें तलवार हो, म्लेच्छोंका नाश करेंगे। इस प्रकार भगवान् विष्णुके ओशभूत 'कलिक' भूषणद्वारा अवसरण करनेवाले समस्त म्लेच्छोंका संहार कर, 'बहुकाङ्क्ष' नामक यज्ञ करके, धर्मकी स्थापना कर स्वर्गसुदृढ हो जाएंगे। राजेन्द्र! पापोंका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुके इन दस अवतारोंका यैने बर्णन किया। यो भगवद्वक्तु पुरुष इन अवतार-चरित्रोंका निरूप आवण करता है, यह भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ १—६ ॥

राजा बोले—विशेन्द्र! आपके प्रसादसे मैंने भगवान् नारायणके अवतारोंका, जो श्रोताओंके पापोंका नाश करनेवाले हैं, अवण कर लिया। मुनिसत्तम! अब आप कलिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि आप मरण भहस्त्राऽन्तेमे सबसे ब्रेष्ट हैं। कृपणा वताइये कि कलिपूरामें चाह्यण, शत्रिय, वैश्य और शृद्र कैसे आहार और आचरणजाले होंगे ॥ ७—८ ॥

मृतजी बोले—भरद्वाजसहित आप सभी ज्ञायिगण सुनें। राजाके ये व्रेणु करनेपर मार्कण्डेयजीने कलि-धर्मका इस प्रकार निरूपण किया। भगवान् कृष्णचन्द्रके परमद्याम पथार जानेपर उनके अन्तर्धानिके फलस्वरूप समात् पापोंका साधक महाधोर कलियुग प्रकट होगा;

ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्या: शूद्रा धर्मपराङ्मुखाः ।
घोरे कलियुगे प्राप्ते द्विजदेवपराङ्मुखाः ॥ ११
व्याजधर्मरता: सर्वे दम्भाचारपरायणाः ।
असूयानिरताश्चैव वृथाहंकारदूषिताः ॥ १२
सर्वे: संक्षिप्यते सत्यं नैरः पण्डितगर्वितः ।
अहमेवाधिक इति सर्वं एव वदन्ति वै ॥ १३
अधर्मलोलुपाः सर्वे तथान्येषां च निन्दकाः ।
अतः स्वल्पायुषः सर्वे भविष्यन्ति कलां युगे ॥ १४
अल्पायुक्तान्मनुष्याणां न विद्याग्रहणं द्विजाः ।
विद्याग्रहणशून्यत्वादधर्मो वर्तते पुनः ॥ १५
ब्राह्मणाद्यास्तथा वर्णाः संकीर्यन्ते परस्परम् ।
कामकोपपरा भूदा वृथा संतापपीडिताः ॥ १६
वज्रद्विरा भविष्यन्ति परस्परवर्येष्वाः ।
ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्या: सर्वे धर्मपराङ्मुखाः ॥ १७
शूद्रतुल्या भविष्यन्ति तपःसत्यविवर्जिताः ।
उत्तमा नीचतां यान्ति नीचाश्चोत्तमतां तथा ॥ १८
राजानो द्रव्यनिरतास्तथा लोभपरायणाः ।
धर्मकञ्चुकसंबीता धर्मविष्वांसकारिणाः ॥ १९
घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वाधर्मसमन्विते ।
यो योऽशुरथनागाढः स स राजा भविष्यति ॥ २०
पितृन् पुत्रा नियोक्ष्यन्ति वध्वः शुश्रूशु कर्मसु ।
पतीन् पुत्रान् वज्रायित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः ॥ २१
पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं श्वाकृत्वं गवां श्वयः ।
धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपृजितम् ।
खण्डवर्षी च पर्जन्यः पन्थानस्तस्करावृताः ।
सर्वे: सर्वे च जानति वृद्धाननुपसेव्य च ॥ २२
न कश्चिदकविनामि सुरापा ब्रह्मवादिनः ।
किंकराश्च भविष्यन्ति शूद्राणां च द्विजातयः ॥ २३

उस समय सभी धर्म नष्ट हो जायेंगे । घोर कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी लोग धर्म, ब्राह्मण तथा देवताओंसे विमुक्त हो जायेंगे । सभी किसी-न-किसी व्याख्ये (स्वार्थसिद्धिके लिये) ही धर्ममें प्रवृत्त होंगे; दम्भ-हौंसका आचरण करेंगे । एक-दूसरेमें दोष दूढ़नेवाले और व्यव्य अभिमानसे दूषित विचारवाले होंगे । पाण्डित्यका गवं रखनेवाले सभी मनुष्य सत्यका अपलाप करेंगे और सब लोग यही कहेंगे कि 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ' । कलियुगमें सभी अधर्मलोलुप तथा दूसरोंकी निन्दा करनेवाले होंगे, अतः सबकी आयु बहुत शोहड़ी होगी । द्विजगण! मनुष्योंकी आयु अल्प होनेमें ब्राह्मणलोग अधिक विद्याध्ययन नहीं कर सकेंगे । विद्याध्ययनसे शून्य होनेके कारण उनके छारा पुनः अधर्मकी ही प्रशुति होगी ॥ १—१५ ॥

ब्राह्मण अदि वर्णोंमें परस्पर संकरता आ जायेगी । वे कठमी, झोड़ी, मूर्ख और व्यर्थ संतापसे गीड़ित होंगे । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आपसमें तैर चौधकर एक-दूसरेका वध कर देनेकी इच्छावाले होंगे । वे सभी अपने-अपने धर्मसे विमुक्त होंगे । तप एवं सत्यभावणादिसे रहित होकर शूद्रके समान हो जायेंगे । उत्तम वर्णवाले नीचे गिरेंगे और नीच वर्णवाले उत्तम बनेंगे । याजात्मोग लोभी तथा केवल भ्रनोपार्जनमें ही प्रवृत्त रहेंगे । वे धर्मका चौला पहनकर दूसरोंकी ओरटमें धर्मका विभवंस करनेवाले होंगे । समस्त अधर्मोंसे युक्त घोर कलियुगके आ जानेपर जो-लो घोड़े, रथ और हाथीसे सम्प्रक्ष होंगे, वे ऐ ही राजा जहे जायेंगे । पुत्र अपने फिलासे काम करायेंगे और बहुरूप सामासे काम लेंगे । स्त्रियां पति और पुत्रको धोखा देकर अन्य पुरुषोंके पास जाया करेंगी ॥ १६—२१ ॥

पुरुषोंकी संख्या कम और स्त्रियोंकी अधिक होगी । कुतोंकी अधिकता होगी और गौओंका हास । सबके मनमें धनका ही महत्व रहेगा । सत्यरूपीके सदाचारका सम्मान नहीं होगा । मेघ कहीं वर्षा करेंगे, कहीं नहीं करेंगे । समस्त मार्ग चोरोंमें चिरे रहेंगे । गुरुजनोंकी सेवामें रहे बिना ही सभी लोग सब कुछ जानेका अधिमान करेंगे । कोई भी ऐसा न होगा जो अपनेको कवि न मानता हो । शरण जीनेवाले लोग ब्रह्मज्ञानका उपदेश करेंगे । ब्राह्मण, क्षत्रिय,

द्विष्णनि पितं पुत्रा गुरुं शिष्या द्विष्णनि च ।
 पतिं च बनिता द्वेष्टि कली धोरे समाप्ते ॥ २४
 लोभाभिभूतपृथः सर्वे दुष्कर्मशीलिनः ।
 पराम्भलोलुपा नित्यं भविष्यन्ति द्विजातयः ॥ २५
 परस्तीनिरता: सर्वे परद्रव्यपरामृणाः ।
 धोरे कलियुगे प्राप्ते नरं धर्मपरामृणम् ॥ २६
 असूयानिरता: सर्वे उपहासं प्रकृत्यते ।
 न ब्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वेदनिन्दकाः ॥ २७
 न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवादैर्विकुत्सिताः ।
 द्विजाः कुर्वन्ति दम्भार्थं पितृयज्ञादिकाः किम्याः ॥ २८
 न पात्रेष्वेष दानानि कुर्वन्ति च नरासनथा ।
 क्षीरोपाधिनिमित्तेन गोषु प्रीतिं प्रकृत्यते ॥ २९
 वधुनि च द्विजानेव धनार्थं राजकिंकराः ।
 दानयज्ञजपादीनां विक्रीणन्ते फलं द्विजाः ॥ ३०
 प्रतिग्रहं प्रकृत्यन्ति चण्डालादेरपि द्विजाः ।
 कले: प्रथमपादेऽपि विनिन्दन्ति हरिं नराः ॥ ३१
 युगान्ते च होरोमि नैव कश्चित् स्मरिष्यति ।
 शूद्रस्त्रीसङ्कुरिता विधवासंगलोलुपा: ॥ ३२
 शूद्रान्नभोगनिरता भविष्यन्ति कली द्विजाः ।
 न च द्विजातिशुश्रूषां न स्वधर्मप्रवर्तनम् ॥ ३३
 करिष्यन्ति तदा शूद्राः प्रवर्ज्यालिहुनोऽध्याः ।
 सुखाय परिवीताश्च जटिला भस्मधूर्धरा: ॥ ३४
 शूद्रा धर्मान् प्रवक्ष्यन्ति कूटबुद्धिविशारदाः ।
 एते चात्ये च बहवः पाषण्डा विप्रमत्तमाः ॥ ३५
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या भविष्यन्ति कली युगे ।
 गीतवाद्यागता विष्णा वेदवादपराह्म्युक्ताः ॥ ३६
 भविष्यन्ति कली प्राप्ते शूद्रमार्गप्रवर्तिनः ।
 अल्पद्रव्या वृथालिङ्गा वृथाहेकारदूषिताः ॥ ३७
 हर्तरो न च दातारो भविष्यन्ति कली युगे ।
 प्रतिग्रहपरा नित्यं द्विजाः सम्मार्गशीलिनः ॥ ३८
 आत्मस्तुतिपरा: सर्वे परनिन्दापरामृणथा ।
 विश्वामीनाः पुरुषा देववेदद्विजातिषु ॥ ३९

और वैद्यन् शूद्रोंके सेवक होंगे । और कलिकहाल आनेपर पुत्र फिलासे, शिष्य गुरुसे और स्त्रियाँ अपने पतियोंसे द्वेष करेंगी । सबका चित्त लोभसे आक्रमित होगा, अलएव सभी लोग दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होंगे । ब्राह्मण सदा दूसरोंके ही अप्रकृत लोभी होंगे । सभी परस्तीसेवी और परम्पराका अवहरण करनेवाले होंगे । धोरे कलियुग आ जानेपर दूसरोंमें दोषहृष्टि रखनेवाले सभी लोग धर्मपरामृण पुरुषोंका उपहारण करेंगे । ब्राह्मणलोग वेदकी निन्दामें प्रवृत्त होकर ज्ञातोंका आचरण नहीं करेंगे । तर्कवादसे कुरित विचार हो जानेके बाबज्ञ वे न तो यह करेंगे और न हवनमें ही प्रवृत्त होंगे । द्विजलोग दम्भके लिये ही पितृयज्ञ आदि क्रियाएँ करेंगे । मनुष्य प्राप्त, सत्यात्रको दान नहीं देंगे । लोग दृध आदिके लिये ही गौड़ोंमें प्रेम रखेंगे । गजोंके सिपाही भनके लिये ब्राह्मणोंको ही बैरंगें । द्विजलोग दान, यज्ञ और जप आदिका फल प्राप्त, वेदा करेंगे । ब्राह्मणलोग ब्रह्मान आदि असूयान जातियोंसे भी दान लेंगे । कलियुगके प्रथम चरणमें भी लोग भगवान्‌की निन्दा करनेवाले हो जाएंगे ॥ २२—३९ ॥

कलियुगके अनित्य समयमें तो कोई भगवान्‌के नामका स्मरणात्मक न करेगा । कलियुगके द्विज शूद्रोंकी सिद्धियोंके माध्यम सहजास करेंगे और विधवा-संगमके लिये लक्षणात्मक रहेंगे तथा वे शूद्रोंका भी अन्त भक्षण करनेवाले होंगे । उस समय अध्यम शूद्र संन्यासका चिह्न व्यक्त कर नहीं सकता । उस समय अध्यम शूद्रोंके लिये जनेक पहनेंगे, जटा रखेंगे और शरीरमें खाक-भूत लपेटे करेंगे । विप्रवरो । कूटबुद्धिमें निपुण शूद्राणां भर्मका उपदेश करेंगे । ऊपर कहे अनुसार तथा और भी तरहके चहुन से पात्रान्वी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कलियुगमें उत्पन्न होंगे । कलियुग आनेपर विप्रमण वेदके स्वामीयसे विमुद्ध हो गाने-बजानेमें यज्ञ लगायेंगे और शूद्रोंके मार्गिका अनुसारण करेंगे । कलियुगमें लोग थोड़े धनबाले, जूठा चेप प्राप्त करनेवाले और मिथ्याभिमानसे दूषित होंगे । वे दूसरोंका धन हरण कर लेंगे, यह अपना किसीको नहीं देंगे । उस समय अच्छे पथापर भलनेवाले ब्राह्मण भद्रा दान लेते रहेंगे । सभी लोग आत्मप्रशंसक और दुष्कर्मोंका निन्दा करनेवाले होंगे । देवता, चंद्र और ग्रहानांपरमे नस्यका विभास उठ जायगा ॥ ३२—३९ ॥

असंश्रुतोक्तिवक्तारे द्विजद्वेषरतास्तथा ।
 स्वधर्मत्यगिनः सर्वे कृतज्ञा भिन्नवृत्तयः ॥ ४०
 याचकाः पिशुनाक्षीव भविष्यन्ति कल्पी युगे ।
 परापवादनिरता आत्मस्तुतिपरायणः ॥ ४१
 परस्वहरणोपायचिन्तकाः सर्वदा जनाः ।
 अत्याहादपरास्तात्र भुवानाः परवेशमनि ॥ ४२
 तस्मिंश्च दिने प्रायो देवतार्चनतत्पराः ।
 तत्रैव निन्दानिरता भुक्तवा चैकाङ्ग संस्मिताः ॥ ४३
 द्विजाश्च क्षत्रिया वैश्याः शृग्राक्षान्ये च जातयः ।
 अत्यन्तकामिनक्षीव संकीर्णते परम्परम् ॥ ४४
 न शिष्यो न गुरुः कक्षित्र पुत्रो न पिता तथा ।
 न भार्या न पतिक्षीव भविता तत्र संकरे ॥ ४५
 शूद्रवृत्त्येव जीवन्ति द्विजा नरकभोगिनः ।
 अनावृष्टिभवप्राप्य गगनासनकदृष्टयः ॥ ४६
 भविष्यन्ति जनाः सर्वे तदा क्षुद्रद्वयकात्तराः ।
 अत्रोपाधिनिमित्तेन शिष्यान् गृहन्ति पितॄवः ॥ ४७
 उभाभ्यामपि पाणिभ्यां शिरः कण्ठद्वयने स्त्रियः ।
 कुर्वन्त्यो गुरुभर्तृणामात्रा भेत्यन्ति ता हिताः ॥ ४८
 यदा यदा न यश्यन्ति न होश्यन्ति द्विजातयः ।
 तदा तदा कलेवृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥ ४९
 सर्वधर्मेषु नरेषु याति निःश्रीकर्तां जगत् ।

सूत वक्ता

एवं कले: स्वरूपं तत्कथितं विप्रसत्त्वाः ॥ ५०
 हरिभक्तिपरानेव न कलिवर्धाथते द्विजाः ।
 तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ध्यानमेव हि ॥ ५१

सब स्तोग वेदविरुद्ध वचन खोलनेवाले और आह्वानोंके द्वेषी होंगे। सभी स्वधर्मके त्यागनेवाले, कृतज्ञ और अपने वर्णधर्मके विरुद्ध बृत्तिसे आजीविका चलानेवाले होंगे। कलियुगमें लोग भिटामंगे, चुगलखोर, दूसरोंकी निन्दा करनेवाले और अपनी ही प्रशंसामें तत्पर होंगे। मनुष्य सदा दूसरोंके भवनका अपहरण करनेके ठपायको ही सोचते रहेंगे। यदि उन्हें दूसरोंके घरमें भोजन करनेका अवसर मिल जाय तो वे बड़े ही आवन्दित होंगे और प्राप्त उसी दिन वे दूसरोंको दिलानेके लिये देवताकी पूजामें प्रवृत्त होंगे। दूसरोंकी निन्दामें तत्पर रहनेवाले वे ब्राह्मण वहाँ ही सबके साथ एक आखनपर बैठकर भोजन करेंगे ॥ ४०—४१ ॥

उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, लैश्य और शूद्र—सभी जातियोंके स्तोग अत्यन्त कठामी होंगे और एक-दूसरेरसे समर्पक स्वापित करके लगे-संकर हो जायेंगे। वर्ण-संकरताको दशमें गुरु-शिष्य, पिता-मुत्र और पति-पत्नीका विचार नहीं रहेगा। नरकभोगी ब्राह्मणादि वर्ण-प्राप्त; शूद्रबृत्तिसे ही जीविका चलायेंगे और नरकभोगी होंगे। लोगोंको प्राप्त; सदा अनावृष्टिका भव जना रहेगा और वे सदा आकाशको और दृष्टि लगाये बृहिको ही प्रतीका करते रहेंगे। उस समयके सभी लोग सदा भूखको पोहामें कातर रहेंगे। संन्यासी स्तोग अब प्राप्तिके उत्तरसे ही सोगोंको शिष्य बनाते फिरेंगे। स्त्रियाँ दोनों ही हाथोंमें भिर खुनलाती हुई अपने पति तथा गुरुजोंको हितपांग आज्ञाओंका विषयकर करेंगी। द्विजातिसोग ज्यो-ज्यों यज्ञ और हवन आदि कर्म छोड़ते जायेंगे, त्यों-ही त्यों शुद्धिमानोंको कलियुगको बृद्धिका अनुमान करना चाहिये। उस समय सम्पूर्ण धर्मोंके नष्ट हो जानेसे यह सत्ता जगत् छोड़ा हो जायगा ॥ ४८—४९ ॥

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे कलियुगके स्वरूपका वर्णन किया। द्विजगण! जो लोग भगवानुके भजनमें तत्पर रहेंगे, उन्हींको कलियुग बाधा नहीं दे सकता। सभ्यपुरामें तपस्या उपाधान है और ज्ञेयमें व्याप्ति।

द्वापरे यज्ञमेवाहुदानमेकं कलीं युगे।
यतते दशभिर्वैस्वेतायां हायनेन तत्॥५२
द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कली।
व्यायन् कृते यजन् यज्ञस्वेतायां द्वापरेऽर्चयन्॥५३
यदाप्रोति तदाप्रोति कलीं संकीर्त्यं केशवम्।
सप्तस्तजगदाधारं परमार्थस्वरूपिणम्॥५४
घोरे कलियुगे प्राप्ते विष्णुं व्यायन् न सीदति।
अहोऽतीव महाभाग्याः सकृदे केशवार्दकाः॥५५
घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वकर्मविष्टुते।
न्यूनातिरिक्तता न स्यात्कली वेदोक्तकपीणाम्॥५६
हरिस्परणमेवात्र सम्पूर्णफलदायकम्।
होरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय॥५७
जनार्दनं जगद्वाम पीताम्बरधराच्युतं।
हुतीरथनि ये नित्यं न हि ताम् बाधते कलिः॥५८
अहो हरिपरा ये तु कलीं सर्वभयंकरे।
ते सभाग्या महात्मानस्तसंगतिरता अपि॥५९
हरिनामपरा ये च हरिकीर्तनतत्परा।
हरिपूजारता ये च ते कृतार्थी न संशयः॥६०
इत्येतद्वुः सप्ताख्यातं सर्वदुःखनिवारणम्।
सप्तस्तपुण्यफलदै कलीं विष्णोः प्रकीर्तनम्॥६१

इति शीकरितं पुष्टारे इतिलक्षणकोर्त्तम चन्द्र चन्द्रपाठेऽभावः ॥ ५४ ॥

इति श्रुत्वा शीकरितं पुष्टारे इतिलक्षणकोर्त्तम चन्द्र चन्द्रपाठेऽभावः ॥ ५५ ॥

प्राप्ति विष्णोः

पचपनवाँ अध्याय

शुक्राचार्यको भगवान्की स्मृतिसे पुनः नेत्रकी प्राप्ति
द्वापरेण

मार्कण्डेय कथं शुक्रः पुरा वलियुगे गुरुः।
वामनेन स विद्वाक्षः स्तुत्वा तत्प्रथवान् कथम्॥ १

द्वापरमे यज्ञां भगवान् वताया यता है और कलियुगमें एकमात्र दानको। सत्ययुगमें दस वर्षोंतक तप आदिके लिए प्रयत्न करनेसे जो फल भिलता है, वही वेतायुगमें एक ही वर्षके प्रयत्नसे मिळ होता है, द्वापरमें एक ही नासकी स्वरूपनासे मुलभ होता है और कलियुगमें केवल एक दिन-दहा यज्ञ करनेसे प्राप्त हो जाता है। सत्ययुगमें छान, वेतामें वज्रोद्धारा वज्रन और द्वापरमें पूजन करनेसे, जो फल भिलता है, उसे ही कलियुगमें केवल भगवान्का कीर्तन करनेसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। घोर कलियुग प्राप्त होनेपर समस्त जगत्के आधारभूत परमार्थस्वरूप भगवान् विष्णुवा इहन करनेवाले मनुष्यको कलिये वापा नहीं पहुँचती। अहो! जिन्होने एक बार भी भगवान् विष्णुका पूजन किया है, वे जड़े भीभाग्यवशहोते हैं॥ ५०—५५॥

सम्पूर्ण कर्मोंका चहिष्कार करनेवाले कलियुगके प्राप्त होनेपर किसे जगनेवाले वेदोक्त कर्मोंमें न्यूनता या अंतिकालका दोष नहीं होता। उसमें भगवान्का स्मरण ही पूर्ण फलदायक होता है। जो सोने हो, केशव, गोविन्द, वासुदेव, जगन्मय, जनर्दन, जगद्वाम, पीताम्बरधर, अच्युत इत्यादि नामोंका तत्त्वारप्य करते रहते हैं, उन्हें कलियुग कभी वापा नहीं पहुँचता। अहो! सबको भय देवतासे इस कलिकालमें जो तोष भगवान् विष्णुकी झाराभनामें लगे रहते हैं, अध्यया जो उनके आराधकोंका संग ही जरते हैं, वे भगवान्का जड़े ही भाग्यवशहोती हैं। जो हरिनामका जप करते हैं, हरिकीर्तनमें लगे रहते हैं और सदा हरिकी पूजा हो किया करते हैं, वे मनुष्य कृतकृत्य ही गये हैं—इसमें संदेह नहीं है। इस प्रकार यह कलिया ब्रह्माना मैने दुमसे कहा। कलियुगमें भगवान् विष्णुका नामकीर्तन सप्तस्त दुःखोंको दूर करनेवाला और सम्पूर्ण पुण्यफलोंको देनेवाला है॥ ५६—६१॥

गाजा बोले— मार्कण्डेयजो ! पूर्वकालमें यज्ञ वलिये यहमें भगवान् व्यामनने जो दैत्यगुरु शुक्राचार्यकी अंतिम डाली थी, उसे उन्होंने पुनः भगवान्की स्मृतिद्वारा किम श्रुत्वा प्राप्त किया ?॥ १ ॥

मरकारावेद उत्तरा

वामनेन स विद्धाक्षो बहुतीथेषु भाग्यवः।
जाह्नवीसलिले स्थित्वा देवमध्यर्व्वं वामनम्॥ २
ऊर्ध्वयाहुः स देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम्।
हृषि संचिन्त्य तुष्टव नरसिंहं सनातनम्॥ ३

सुर उत्तर

नमामि देवं विश्वेशं वामने विष्वारुपिणम्।
बलिदर्पहरं शान्तं शाश्वतं पुरुषोत्तमम्॥ ४
धीरं शूरं महादेवं शङ्खचक्रगदाधरम्।
विशुद्धं ज्ञानसम्पदं नमामि हरिमच्युतम्॥ ५
सर्वशक्तिपदं देवं सर्वेण सर्वभावनम्।
अनादिमजरं नित्यं नमामि गकुड्यजम्॥ ६
सुरासुरभैर्भक्तिमद्दिः सुनो नारायणः सदा।
पूजितं च हृषीकेशं तं नमामि जगदग्रहम्॥ ७
हृषि संकल्प्य यद्रूपं व्यायनित यतयः सदा।
ज्योतीरुपमनीपद्यं नरसिंहं नमाप्यहम्॥ ८
न जाननि परं रूपं शहुआदा देवतागणाः।
यस्यावताररूपाणि समर्चनि नमामि तम्॥ ९
एतत्समस्ते थेनादीं सुष्टु दुष्टवथात्पुनः।
त्रातं यत्र जगदीनं तं नमामि जनार्दनम्॥ १०
भक्तैरभ्यर्थितो यस्तु नित्यं भक्तप्रियो हि यः।
तं देवममलं दिव्यं प्रणमामि जगत्पतिम्॥ ११
दुर्लभं चापि भक्तानां यः प्रयच्छनि तोषितः।
तं सर्वंसाक्षिणं विष्वं प्रणमामि सनातनम्॥ १२

अंगारकार्णेय उत्तर

उत्ति सनुतो जगत्राथः पुरुषक्रेण पार्थिव।
प्रादुर्बन्धूय तस्याग्रे शङ्खचक्रगदाधरः॥ १३
उवाच शुक्रमेकाक्षं देवो नारायणसदा।
किमर्थं जाह्नवीतीरे सनुतोऽहं तद्वीहि मे॥ १४

श्रीमार्कण्डेयजी बोले— वामनजीके द्वारा जब औरुष उद्दीपिता गयी, तब भृगुनन्दन शुक्राचार्यजीने बहुत तीर्थोंमें भ्रमण किया। फिर एक जगह गङ्गाजीके जलमें द्वाढ़ हो भगवान् वामनको पूजा को और अपनी चाँहे कपर उत्तरकर शङ्ख-चक्र-गदाभाषे सनातन देवेशर भगवान् नृसिंहका मन-ही-मन घ्यन करते हुए वे उनकी सूर्ति करते रहे॥ २-३॥

शुक्राचार्यजी बोले— मैं सम्पूर्ण विश्वके स्वामी और शंखचक्रके अवतार उन देवदेव वामनजीको नमस्कार करता हूं, जो बलिका अभिमान चूर्ण करनेवाले, परम रात्म, सनातन पुरुषोत्तम हैं। जो धीर है, शूर है, सबसे चढ़े देवता है, शङ्ख, चक्र और गदा पारण करनेवाले हैं, उन विशुद्ध एवं ज्ञानसम्पद भगवान् अच्युतको मैं नमस्कार करता हूं। जो सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक और सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन जारीहित, अनादिदेव भगवान् गहनदर्पजाको मैं प्रणाम करता हूं। देवता और असुर सदा ही जिन कारणकी भाँक्षिपूर्वक सूर्ति किया करते हैं, उन सर्वपूर्वक जगद्गुरु भगवान् तृष्णोकेशको मैं नमस्कार करता हूं। यतिकाल अपने अन्तःकरणमें भावनाद्वारा स्थापित करके जिनके स्वरूपका सदा स्थान करते रहते हैं, उन अतुलनीय एवं ज्योतिर्विषय भगवान् नृसिंहजी मैं प्रणाम करता हूं। ब्रह्म अटि देवहाता जिनके प्रणार्थं इश्वरपको भलीभीत नहीं जाते, अतः जिनके असातारकपीको ही वे सदा मूर्जन किया करते हैं, उन भगवान्को मैं नमस्कार करता हूं। जिन्होंने प्रथम इस सम्पूर्ण जगत्की मृष्टि को खी, फिर जिन्होंने दुर्देवा जप करके इमहसु रक्षा की है तथा जिनमें ही यह सम्भव जगत् लौंग हो जाता है, उन भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूं। भक्तजन जिनका सदा अर्चन करते हैं तथा जो भक्तोंके प्रेमी हैं, उन परम निर्मल, दिव्य कान्तिमय जगदीश्वरको मैं नमस्कार करता हूं। जो प्रसन्न होनेपर अपने भक्तोंको दुर्लभ यस्तु भी प्रदान करते हैं, उन सर्वसाक्षी सनातन विष्वाभगवान्को मैं प्रणाम करता हूं॥ ४-१२॥

श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं— राजन्! पूर्वकालमें शुक्राचार्यजीके द्वारा इस प्रकार सूर्ति की जानेवर शङ्ख-चक्र-गदाभाषी भगवान् जगत्राथ उनके समस्त प्रकट हो गये। उस समय भगवान् नारायणने एक औरुष्याले शुक्राचार्यजीमें कहा—‘ब्रह्मन्! दुमने गङ्गाकटपर किसलिये में स्वरूपन किया है? यह नूहामें बताओ’॥ १३-१४॥

तुक उद्देश

देवदेव मया पूर्वमपराधो महान् कृतः।
तदोषस्यापनुत्त्यर्थं स्तुतवानस्मि साम्रातम्॥ १५

श्रीगणेशालभ्य

ममापराधात्रयनं नष्टमेकं तवाधुना।
संतुष्टेऽस्मि ततः शुक्र मनोब्रेणानेन ते मुने॥ १६

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्ते मुनिं प्रहसत्रिव।
पाञ्चजन्येन तच्चक्षुः पस्पर्शं च जनादेनः॥ १७

स्पृष्टमात्रे तु शङ्खेन देवदेवेन शार्ङ्गिणा।
वभूत निर्वलं चक्षुः पूर्ववत्रप्रसन्नम्॥ १८

एवं दत्त्वा मुनेश्चक्षुः पूजितस्तेन माधवः।
जगामादर्शनं सद्यः शुक्रोऽपि स्वाक्षर्ये यद्यो॥ १९

इत्येतदुक्तं मुनिना महात्मना
प्राप्तं पुरा देववरप्रसादात्।
शुक्रेण किं ते कथयामि राजन्,
पुनश्च मां पृच्छ मनोरक्षानाः॥ २०

इति श्रीरामिकपुण्ये शुक्रवान्नदी लक्षणप्रसादात् एवं इत्यर्थात्॥ २५६ ८
इति प्रकारं श्रीरामिकपुण्ये 'शुक्रवान्नदी' लक्षणं प्रपादत्वं अनुभवं पूर्णं हुँडित्वा॥ २५६ ९

प्राप्ति लक्षणं

छत्पनवाँ अध्याय

विष्णुमूर्तिके स्वापनकी विधि

उद्देश्य

साम्रातं देवदेवस्य नरसिंहस्य शार्ङ्गिणः।
श्रोतुमिच्छामि सकलं प्रतिष्ठायाः परं विधिम्॥ १

श्रीरामिकपुण्ये उक्तं

प्रतिष्ठाया विधिं विष्णोदेवदेवस्य चक्रिणः।
प्रवक्ष्यामि यथाशास्त्रं शृणु भूपालं पुण्यदम्॥ २

कर्तुं प्रतिष्ठां यक्षात्र विष्णोरिच्छति यार्थिव।

स पूर्वं स्थिरनक्षत्रे भूषिष्ठोधनमारभेत्॥ ३

शुक्राचार्यजी ओले—देवदेव ! मैंने पहले (यस्तिके चलने) आपका बहुत बड़ा अपराध किया है; उसी दोषको दूर करनेके लिये इस समय आपका स्वापन किया है॥ १६॥

श्रीभगवान् ओले—मुने ! मेरे प्रति किये गये अपराधमें ही तुम्हारा एक नेत्र नष्ट हो गया था। शुक्र ! इस समय तुम्हारे इस स्वापनमें मैं तुम्हारे संतुष्ट हूँ॥ १६॥

यह कहकर देवदेवेश जनादेन फैसले हूँए से अपने पाछजन्म शङ्खसे शुक्राचार्यके फूटे हुए नेत्रका स्पर्श किया। नृपतेषु। शार्ङ्गधन्वा देवदेव विष्णुके द्वारा शङ्खका स्वरूप कराये जाते ही शुक्राचार्यका वह नेत्र पहलेकी भौंति हो निषंस हो गया। इस प्रकार शुक्राचार्यको नेत्र देकर और उनमें पूजित होकर भगवान् लक्ष्मीपति तुलन अनन्धन हो गये और शुक्राचार्य भी अपने आक्षमको छले गये। राजन् ! इस प्रकार शुक्रकालमें भूविदा यहांका शुक्राचार्यवेदे देवेश भगवान् विष्णुको फूटासे अपना नेत्र प्राप्त कर लिया—यह प्रसाद हुम्हारे प्रकानुसार मैंने मुना दिया। अब तुम्हें मैं और कसा मुनाकै ? हुम्हारे मनमें और भी यादि कुछ पूर्णेकी इच्छा हो ली मुझसे प्रश्न करो॥ १७—२०॥

राजा ओले—ज्ञान ! अब मैं शार्ङ्गधनुषधारी देवदेव नरसिंहके स्वापनकी समस्त उत्तम विधिको सुनना चाहता हूँ॥ १॥

श्रीमार्केश्वरजी ओले—भूपाल ! देवदेवेश चक्रपाणि भगवान् विष्णुके स्वापनकी शुक्राचार्यवाँ विधि मूलो ; मैं शास्त्रके अनुसार उसका वर्णन कर रहा हूँ। शुक्रलोकते ! जो भी इस लोकमें भगवान् विष्णुको स्वापना करना चाहे, उसको चाहिये कि वह पहले स्थिर-संज्ञक * नक्षत्रोंमें भूमिशोधनका कार्य प्रारम्भ करे।

* नक्षत्रे इतने भी रोहिणी—वि 'रिष्य' नक्षत्र कहने लाये हैं

खात्वा पुरुषमादं तु ब्राह्मद्यमथापि च।
पूरयेच्छुद्भूमिदिस्तु जलाकैः शर्करान्वितैः ॥ ४

अधिष्ठानं ततो युद्धवा पापाणोष्टकमृणमयम्।
प्रासादं कारयेत्तत्र वास्तुविद्याविदा नृप ॥ ५

चतुरस्वं सूत्रमार्गं चतुःकोणं समन्वतः।
शिलाभिनिकमुल्कृष्टं तदलाभेष्टकामयम् ॥ ६

तदलाभे तु मुल्कृष्टये पूर्वद्वारे सुशोभनम्।
जातिकाष्टुपर्यैः स्ताप्तप्रस्तापनैः फलदान्वितैः ॥ ७

उत्पलं परयपत्रैश्च पातितिश्चित्रशिल्पिभिः।
इत्थं तु कारयित्वा हि हरेवेषम् सुशोभनम् ॥ ८

पूर्वद्वारे नुपश्चेष्ट सुकपादं सुचिप्रितम्।
अतिवृद्धातिवालैस्तु कारयेत्राकृतिं हरेः ॥ ९

कुप्राद्युपहतिवांपि अन्यैर्वाँ दीर्घरोगिभिः।
विश्वकर्मांकमार्गेण पुराणोक्तां नुयोनम् ॥ १०

कारयेत् प्रतिपां दिव्यां पुष्टाङ्गेन तु धीमता।
सोम्याननां सूक्ष्मवर्णां सूनासां च सुलोचनाम् ॥ ११

नाधोदृष्टिं नोच्चर्दृष्टिं तिर्यग्दृष्टिं न कारयेत्।
कारयेत् समदृष्टिं तु परयपत्रायतेक्षणाम् ॥ १२

सुभूतं सुललाटां च सुकपोलां मपां शुभाप्।
यिम्योष्टीं सुषुचिव्युकां सुग्रीवां कारयेद्वृद्धः ॥ १३

उपवाहुकरे देयं दक्षिणं चक्रमक्षवत्।
नाभिसंलग्नदिव्यारं परितो नेपिसंयुतम् ॥ १४

वामपाश्चेत्युपभुजे देयं शहुं शशिप्रभम्।
पाञ्चजन्यमिति ख्यातं दैत्यदर्पंहरं शुभम् ॥ १५

एक पुरुषके बराबर अर्धांश् साडे तीन हाथ अथवा दो हाथ नीचेतक नींबु खोदकर उसमें जलसे भीगो हुई केकड़ और बालूसहित शुद्ध मिट्टी भर दे। राजन्! फिर उसे ही आधार समझकर उसके कपार अपनी शक्तिके अनुसार पत्थर, इंट अथवा मिट्टीसे गृहनिर्माण-विद्यामें कुशल कारोगरीके द्वारा मन्दिर तैयार कराये। वह मन्दिर चारों ओरसे बराबर और चौकोर हो। उसकी दीवार पत्थरकी हो जो बहुत उत्तम; पत्थर न मिलनेपर इंटोंको ही दीवार बनाता ले। यदि इंट भी न मिल सके तो मिट्टीको ही भीत उठा ले। मन्दिर बहुत ही सुन्दर हो और उसका दरवाजा चूर्ककी ओर होना चाहिये। उस मन्दिरमें अच्छे जातिवाले काढ़के खांभे लगे हों और उनमें निरकरना जानेवाले शिल्पियोंके द्वारा कलाकृत वृक्ष, कुमुद तथा कलालदाल चित्रित कराने चाहिये ॥ २—१५ ॥

(नुपश्चेष्ट) इस प्रकार जिसमें सुन्दर किंचिद्दलों हों और जिसमें द्वार पूर्व दिशकी ओर हो—ऐसा बेल-चूटोंमें भलंभीति चिह्नित भगवान्वृष्ट परम सुहावना मन्दिर बनवाकर पूर्णिमान् एवं इष्टपूर्ण जातिवाले पूर्णको द्वारा विश्वकर्माकी जलयी हुई पद्मतिके अनुसार गुराणोक्त दिव्य प्रतिमाका विर्योत्त रखाये। जो कारोगर अन्यना सूक्ष्म तथा अथवा कांड़ झोट रोपोते दूषित या पुराना रोगी हो, उससे भगवान्प्रतिमाका निर्माण नहीं कराना चाहिये। प्रतिमाका मुख सीम्य (प्रस्तर) तथा कान, नाक और नेत्र आदि अङ्ग सुदृढ़ होने चाहिये। उसकी दृष्टि न तो चहुत नोची हो, न चहुत ऊची हो और न लिप्ती हो हो। विद्वान् पूर्ण ऐसी प्रतिमा बनवाने, जिसकी दृष्टि सम हो और जिसके नेत्र कलालदालके समान विशाल हों। भौंह, लक्षाट और कवोल सुन्दर हों, तथका लम्बात विद्वान् सूडाल और सीम्य हो। उसके दोनों ओंसे जल हो, तोहो (अधरके नीचेका भाग) मनोहर तथा कण्ठ सुन्दर हो। प्रतिमाकी भुजाएँ चार होनी चाहिये—दो भुजाएँ और दो उपभुजाएँ। उनमेंसे दोहोनी उपभुजाके हाथमें सूषके समान आकारवाला चक्र धारण कराना चाहिये। नालोंकी नापिके तरीं ओर दिव्य और हों और उनके भी ऊपर सब जोरसे नेपि (हात) लगी हो। जबीं उपभुजाके हाथमें चन्द्रमांक समान लेते कलनिमय पाञ्चजन्य नामक लंघन देना चाहिये, जो ईर्ष्योंके मदको चूर्ण करनेवाला और कलन्दाल है ॥ ८—१५ ॥

हारापितवरां दिव्यां कण्ठे त्रिवलिसंयुताम्।
सुस्तनीं चारुहृदयां सुजठरां समां शुभाम्॥ १६
कटिलग्रुवामकरां पद्मलग्रां च दक्षिणाम्।
केयूरवाहुकां दिव्यां सुनापिवलिभृष्टिकाम्॥ १७
सुकटीं च सुजङ्गोहं वस्त्रमेखलभृष्टिम्।
एवं तां कारवित्या तु प्रतिमां राजसतम्॥ १८
सुवर्णवासदानेन तत्कर्तृन् पून्य मन्त्रम्।
पूर्वंपश्चे शुभे काले प्रतिमां स्थापयेदद्युधः॥ १९
प्रासादस्याग्रतः कृत्वा यागमण्डपमुत्तमम्।
चतुद्वारे चतुर्दिशु चतुर्भिस्तोरणीयुतम्॥ २०
सप्तधान्याङ्गूर्युक्तं शान्त्व-भेरीनिनादितम्।
प्रतिमां क्षात्य विद्वद्विः पद्मिंशद्विर्घटोदकः॥ २१
प्रविश्य मण्डुये तस्मिन् आहुणीवेदपासीः।
तत्रापि स्नापयेत्पश्चात् पञ्चग्रन्थैः पृथक् पृथक्॥ २२
तथोच्चावारिणा स्नाय पुनः शीतोदकेन च।
हरिद्राकुङ्कुमाद्येत्सु चन्दनैश्चोपलेपयेत्॥ २३
पृथग्मालैरलङ्कृत्य वस्त्रैराच्छाद्य तां पुनः।
पृण्याहं तत्र कृत्वा तु प्रहरिभस्तां प्रोद्य वारिभिः॥ २४
स्नात्वा तां आहुणीपर्नैः गंखभेरीस्वनैर्युतम्।
बासयेत्प्रसरात्रं तु त्रिरात्रं च नदीनले॥ २५
हुदे तु विमले शुद्धे तडागे वायि रक्षयेत्।
अधिवास्य जले देवयेवं पार्थिवपुङ्गव॥ २६
तत उत्थाय विप्रेत्सु स्थाप्यालङ्कृत्य पूर्ववत्।
ततो भेरीनिनादेत्सु वेदधोर्येषु केशवप्॥ २७
आनीय मण्डुये शुद्धे पद्माकारविनिर्मिते।
कृत्वा पुनस्तः स्नाय विष्णुपूर्णिमालङ्कृत्यान्॥ २८

उस दिव्य भगवत्प्रतिमाके कण्ठमें सुन्दर हार पहनाया
गया हो, गलेमें श्रिवलो-चिह्न हो, स्तनभाग सुन्दर,
वक्ष-रक्षत लंबिर और उदर मनोहर होन्ता चाहिये। सम्पूर्ण
अङ्ग बराबर और सुन्दर हों। वह प्रतीमा अपना व्याया
हाथ कम्बलपर रखे हों और दाहिनेमें कमल धारण किये
हों। जाहुओंमें भुजवन्धु पहने हों और सुन्दर नाभि तथा
विकलामें सुशोभित एवं दिव्य जान पढ़ती हों। उम्रका
कटिभाग (नितम्य), जाँघे और पिंडलियां मनोहर हों,
वह कमरमें बेश्वला और पीतवस्त्रमें विभूषित हो।
नुचितह! इस प्रकार भगवत्प्रतिमाका विर्माण कराकर
उसके बनानेवाले लिलियोंको सुवर्ण-दान एवं वस्त्र-
दानके द्वारा सम्मानित करके विदान् पूर्ण पूर्व पक्षमें
शुभ समयपर उस प्रतिमाकी स्थापना करे॥ १६—१९॥

धन्दिसंकेतः सामने एक उत्तम यज्ञमण्डप बनवाये।
उसमें बारीं और एक-एकके क्रमसे नार दरकार हों
और सारा यज्ञद्वय चार तीरणों (चाहे चाहे फाटकों)-से
पिणि हो। उसमें सहधान्यके अङ्ग उग्नि हों तथा भेद्य
और भेरी आदि वाजे बजाते हों। विद्वानोंके हारा इत्तोत्तम
पहे जलसे उस प्रतिमाका अधिष्ठक कराकर उसके
माथ येदोंके फारगामो बाहुणीोंको साथमें लिये उक्त
मण्डपमें प्रवेश करे और पिणि पञ्चग्रन्थैसे पृथक्-पृथक्
स्नान कराये। इसी प्रकार गर्भ जलसे नहलाकर पिणि ठंडे
जलमें रुहाने कराये। तत्पश्चात् हल्दी और कुङ्कुम आदिका
तथा चन्दनोंसा दमपर लैप करे, फिर फूलोंको मालाओंमें
विभूषितकर उसे वस्त्र धारण करा दे और पृथग्मालवन
करके वैदिक अच्चाओंसे उच्चारणपूर्वक जलसे प्रोक्षित
कर भव ब्राह्मज्ञोदाया उस भगवद्विषयको नहलाये।
तापक्षल् शंख, भेरी आदि वाजे बजाते हुए उसे नटोंके
जलमें रक्षकर जल या तीन दिनोंतक उसे यहाँ रहने दे।
अद्यक्षा किसी विर्मल जलसमय या शुद्ध सरोवरमें हो
रक्षकर उसकी रक्षा करे। नुप्रवेश! इस प्रकार भगवान्का
जलाभवास करके ब्राह्मणोदाया उनको उठवाये और
पालको आदिमें चढ़ाकर पूर्ववत् उन्हें माला आदिसे
विभूषित करे। तदनन्तर बगालोंको ध्वनि और वेदमन्त्रोंके
गम्भीर धोयके साथ भगवान्को बहीये ले आये और
फलानाकाम ऐने हुए शुद्ध मण्डपमें रहें। वहाँ पूनः सामने
करके विष्णुपूर्णिमाला उत्तमा भृष्टप्रकाशये॥ २०—२८॥

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु विधिवत् योङ्गशर्त्विजः ।
चतुर्भिरध्ययनं कार्यं चतुर्भिः पालनं तथा ॥ २९

चतुर्भिस्तु चतुर्दिक्षु होमः कार्यो विचक्षणैः ।
पुण्याक्षतात्रभिश्चेण दद्यादिक्षु बलीन् नृप ॥ ३०

एकेन दापयेत्तेषामिन्नाद्याः प्रीयन्तामिति ।
प्रत्येकं सायंसंध्यायां मध्यरात्रे तथोवसि ॥ ३१

उदिते च ततो दद्यान्मातृविप्रगणाद्य च ।
जपन् पुरुषसूक्तं तु एकतस्तु पुनः पुनः ॥ ३२

एकतो मनसा राजन् विष्णोर्भन्दिरप्रव्यगः ।
अहोरात्रोपितो भूत्वा यजमानो द्विजैः सह ॥ ३३

प्रविश्य प्रतिमाद्वारे शुभलग्ने विचक्षणाः ।
देवसूक्तं द्विजैः सार्थमुपस्थाप्य च तां दृष्टम् ॥ ३४

संस्थाप्य विष्णुसूक्तेन पवमानेन च पुनः ।
प्रोक्षयेदेवदेवेशमाचार्यः कुशवारिणा ॥ ३५

तदग्रे चाग्निपाधाय सम्परिस्तीर्य चक्रतः ।
जुहुयाजातकमांदि गायत्रा वैष्णवेन तु ॥ ३६

चतुर्भिराज्याहुतिभिरेकामेकां कियां प्रति ।
आचार्यस्तु स्वयं कुर्यादस्वैर्वंशं च कारयेत् ॥ ३७

आतारमिति चैन्द्रयां तु कुर्यादान्यप्रणुत्रकम् ।
परोदिवेति याम्यायां यारुण्यां निषेति च ॥ ३८

या ते ठद्रेति सौम्यां तु हुवेदाज्याहुतीर्नृप ।
परोमात्रेति सूक्ताभ्यां सर्वत्रान्याहुतीर्नृप ॥ ३९

इसके बाद सोलह ऋतिवृज् ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक भोजन कराये । उनमेंसे चार ब्राह्मणोंको तो वहाँ वेद-पुराणादिका स्वाध्याय (पाठ)करना चाहिये, चार विश्रोंको उस भगवांडिग्रहकी रक्षामें संलग्न रहना चाहिये तथा चार विद्वानोंको यज्ञमण्डपके भोजन चारों दिशाओंमें हवन करना चाहिये । राजन् ! फिर एक ब्राह्मणके हारा फूल, अलत और अन्यसे समस्त दिशाओंमें बलि अर्पित कराये । यह बलि इन्द्रादि देवताओंको प्रसन्नताके लिये होती है । प्रत्येक दिशाके अधिपतिको 'इन्द्रः प्रीयताम्' इत्यादि रूपसे उसके नामोच्चारणपूर्वक ही बलि दें । सार्वकाल, आधी रात, उठःकाल तथा सूर्योदयके समय प्रत्येक दिक्षालको बलि अर्पित करनी चाहिये । इसके बाद ब्राह्मणोंको बलि और ब्राह्मणोंको उपहार दे । राजन् ! इसके पश्चात् यजमानको चाहिये कि भगवान् विष्णुके मन्दिरमें एक ओर बैठकर एकाग्रचित्तसे चार-चार त्रुष्णमूर्तका जप करे । फिर पूरे एक दिन-रात उपकास करके शुभ लक्ष्यमें वह चुदिमान् पुरुष ब्राह्मणोंको साथ ही मण्डपमें, जहाँ प्रतिमा रखी गयी हो, उस द्वारसे मण्डपके भोजन प्रवेश करे, और ब्राह्मणोंके साथ देवसूक्तका पाठ करते हुए भगवान्तरिमाका उपस्थान करके उसे मन्दिरमें लाये और विष्णुमूर्त अपना पवमानसूक्तका पाठ करते हुए उसे वहाँ दृढतापूर्वक स्थापित करे । तत्पश्चात् आचार्य कुशमुक्त जलमें उन देवदेवेभर भागवान्का अभियेक करे ॥ २९—३६ ॥

फिर भगवान्के सम्मुख अग्निस्थापन करे । अग्निके चारों ओर स्वपूर्वक कुशालतरण करके गायत्री और विष्णुमन्त्रोद्घारा नक्तकर्मादि संरक्षकारकी सिद्धिके निमित्त हवन करे । आचार्यको चाहिये कि प्रत्येक क्रियामें चार-चार चार चीकी आहुति दे तथा अखमन्त्र (अखाय कट) योजकर दिव्यन्य कराये । 'ॐ ज्ञातारशिवन्द्रम्' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० २०। ५०)-से अग्निवेदीपर पूर्वकी ओर घोकी आहुति दे । 'परो दिख्या०' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० १७। २२)-से दक्षिण दिशामें और 'निष्वमद०' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० १०। २७)-से पश्चिममें युतका हवन करे । हे नृप ! 'या ते रात्र०' (शु० यजु० १६। २)-इस मन्त्रसे उत्तर दिशामें और 'परो मात्राया०' (शु० यजु० ६। १९) इत्यादि दो सूक्तोद्घारा सम्पूर्ण दिशाओंमें चीकी आहुति दे । इस प्रकार विधिवत् हवन करके 'यदस्या०' (शु० यजु० २३। २८) इस

हुत्वा जपेच्च विधिवद्वादस्येति च स्विष्टकृत्।
ततः स दक्षिणां दद्याद्विग्रभ्यश्च यथार्हतः ॥ ४०
वस्त्रे द्वे कुण्डले चैव गुरवे चाहूलीयकम्।
यजमानस्ततो दद्याद्विभवे सति काञ्छनम् ॥ ४१
कलशाष्ट्रसहस्रेण कलशाष्ट्रशतेन च।
एकविंशतिना वापि स्नपनं कारयेद् बुधः ॥ ४२
शङ्कुदुन्तुभिनिधौचैवेदधोवैक्ष मङ्गलैः।
यद्वद्विहितुः पात्रैरुद्दत्तुचित्रताहूरैः ॥ ४३
दीपयष्टिपताकापिश्छ्रवामरतोरणीः ।
स्नपनं कारयित्वा तु यथाविभवविस्तरम् ॥ ४४
तत्रापि दद्याद्विप्रेभ्यो यथाशक्त्या तु दक्षिणाम्।
एव यः कुरुते राजन् प्रतिष्ठा देवचकिणः ॥ ४५
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः ।
विमानेन विचित्रेण त्रिःसप्तकुलजीर्युतः ॥ ४६
पूजां सम्प्राप्य महतीभिन्नलोकादिषु क्रमात्।
यान्पदांसोषु संस्थाप्य विष्णुलोके महीयते ॥ ४७
तत्रैव ज्ञानमासाद्य चैवाचं पदमाप्नुयात्।
प्रतिष्ठाविधिर्यं विष्णोर्यदीर्यं ते प्रकीर्तिः ॥ ४८
पठतां शृणवतां चैव सर्वपापप्रणाशनः ॥ ४९
यदा नृसिंहं नरनाथं भूमी
संस्थाप्य विष्णुं विधिना हुनेन।
तदा हृसी याति हरे: पदं तु
यत्र स्थितोऽयं न निवत्तते पुनः ॥ ५०

मनका जप करे और घोसे 'स्विष्टकृत्' संज्ञक होम करे। तदनन्तर व्रह्मिवज्ञोंको उनके सम्मानके अनुकूल सादर दक्षिणा दे। इसके बाद यजमान आचार्यको दो वस्त्र, दो सुवर्णमय कुण्डल और सोनेकी अंगूठी दे तथा यदि सामर्थ्य हो तो इसके अतिरिक्त भी सुवर्णदान करे ॥ ३६—४१ ॥

फिर विद्वान् पुरुष यथासम्भव एक हजार आठ या एक सौ आठ अवश्य इकीस घड़े जलसे भाग्यान्को लान कराये। उस समय शंख और दुन्तुभि आदि बाजे बजते रहे, वेदमन्त्रोंका धोष और मङ्गलपाठ होता रहे। अपनी शक्तिके अनुसार विनपर जी आदिके अङ्गुर निकले हों, ऐसे जी और ग्रोहि (चावल)-से भरे पात्रोंद्वारा तथा दोष, बाष्ठि (छाढ़ी), पताका, छत्र, चैंबर, तोरण आदि सामग्रियोंके साथ ज्ञान-विधि पूर्ण कराके वहाँ भी जाह्नवोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे। राजन्। इस प्रकार जो भगवान् विष्णुकी प्रतिष्ठा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और मृत्युके पक्षात् अपनेसहित इकीस चीझीके पितरोंको साथ ले, सब प्रकारके आभूषणोंसे भूषित एवं विचित्र विमानपर आरूढ़ हो, क्रमशः इन्द्रादि लोकोंमें विशेष सम्मान प्राप्त करता है तथा अपने अन्यजनोंको उन लोकोंमें रखकर स्वयं विष्णुलोकमें जाकर प्रतिष्ठित होता है। फिर वहाँ ही भगवत्स्त्वका ज्ञान प्राप्तकर वह विष्णुम्बरूपमें लीन हो जाता है ॥ ४२—४७ ॥

राजन्! इस प्रकार तुमसे मैंने यह प्रतिष्ठा-विधि बतायी। इसका पाठ और ऋषण करनेवाले लोगोंके सब पाप दूर हो जाते हैं। नरनाथ! जब मनुष्य इस पूर्खोक्त विधिसे पृथ्वीपर भगवान् नृसिंहकी स्वापना कर लेता है, तब मृत्युके बाद वह भगवान् विष्णुके उस नित्यधारमको प्राप्त होता है, जहाँ रहकर वह पुनः संसारमें नहीं लौटता ॥ ४८—५० ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे प्रतिष्ठाविधिर्जप फटपक्षासोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणे 'प्रतिष्ठाविधि' ग्रन्थका उपनिषद्वारा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय *

भक्तके लक्षण; हारीत-स्मृतिका आरम्भ; विष्णुप्राप्ति का वर्णन

राजोऽप्त

भक्तानां लक्षणं द्वृहि नरसिंहस्य मे द्विज।
येषां संगतिमात्रेण विष्णुलोको न दूरतः ॥ १

श्रीमार्कण्डेय उच्चाच

विष्णुभक्ता महोत्माहा विष्णवर्खनविधी सदा।
संयता धर्मसप्तव्राः स्वार्थान् साधयन्ति ते ॥ २
परोपकारनिरता गुरुशश्रूषणे रताः।
वर्णांश्रमाचारयुताः सर्वेषां सुप्रियंवदाः ॥ ३
वैदवेदार्थतत्त्वज्ञा गतरोषा गतस्युहाः।
शान्ताङ्ग सौम्यवदना नित्यं धर्मपरायणाः ॥ ४
हिते पिते च वक्तारः काले शक्त्यातिविधिप्रियाः।
दध्मायाविनिर्मुक्ताः कामकोपविवर्जिताः ॥ ५
ईदुर्गिवधा नरा धीराः क्षमावनो बहुश्रुताः।
विष्णुकीर्तनसंज्ञातहर्वा रोमाङ्गिता जनाः ॥ ६
विष्णवर्घापूजने यतासतत्कथायां कृतादराः।
ईदुर्गिवधा महात्मानो विष्णुभक्तः प्रकीर्तिताः ॥ ७

राजोऽप्त

ये वर्णांश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति।
इति प्रोक्तं त्वया विद्वन् भगुवर्यं गुरो भग्य ॥ ८
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मं मे वक्तुमर्हमि।
यैः कृतैस्तुव्यते देवो नरसिंहः सनातनः ॥ ९

श्रीमार्कण्डेय उच्चाच

अत्र ते वर्णयिष्यामि पुरावृत्तप्रनुभाप्य।
मुनिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥ १०
हारीतं पर्मतत्त्वज्ञमासीनं बहुपाठकम्।
प्रणिपत्यावृत्वन् सर्वे मुनयो धर्मकादिक्षणः ॥ ११

* यहाँसे 'हारीत-स्मृति' का शारम्भ है: अधुका उपलब्ध 'तत्पुरावृत्तप्रनुभाप्य' के बाद इसके पाठसे ग्रायः मिलते हैं। कुछ-कुछ

राजा बोले— छहान्! आप भूमि से भगवान् नृसिंहके भक्तोंका लक्षण बतलाइये, जिनका सङ्ग करनेमात्रसे विष्णुलोक दूर नहीं रह जाता ॥ १ ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा— रुद्रान्! भगवान् विष्णुके भक्त उनको पूजा-अर्चा करनेमें महान् उत्साह रखते हैं। वे अपने मन और हान्दियोंको संयममें रखते हुए धर्ममें तत्पर रहकर सारे मनोरथोंको मिट्ठ कर लेते हैं। भगवद्गीता जैसा सदा परोपकार और गुरु-सेवामें लगे रहते हैं, सबसे मीठे बचान बोलते और अपने-अपने वर्णों तत्त्व आश्रमके सदाचारोंका पालन करते हैं। वे तेद और वेदार्थका तत्त्व जाननेवाले होते हैं, उनमें ज्ञेय और वामनाओंका अभाव होता है। वे सदा सत्त रहते हैं, उनके मुख्यपर सौम्यभाव लक्षित होता है तथा वे निन्दन धर्माचारणमें लगे रहते हैं। योहु किंतु हितकरी वाचन बोलते हैं, समयपर अपनी दक्षिणके अनुसार सदा अतिविधी सेवा करनेमें उनका ग्रीष्म अवसर रहता है। वे दध्य, कपट, काम और ज्ञोधसे रहते होते हैं। जो मनुष्य इन पूर्वोक्त सदाचारोंसे युक्त एवं धीर है, वहुनु और क्षमावान् है तथा विष्णुभक्तवर्गके नामोऽवय वर्तीते अपका ऋत्वण करते समय हर्षसे रोमाङ्गित हो जाते हैं, इसी तरह जो विष्णुपूजनमें तत्पर और भगवत्कथामें आदर रखनेवाले हैं, ऐसे महात्मा पुरुष भास्त्रान् विष्णुके भक्त कहं गये हैं ॥ २-७ ॥

राजा बोले— विद्वन्! भूगूचय! मेरे गुरुदेव! आपने अपी कहा है कि जो अपने वर्ण और आश्रमके धर्ममें लगे रहते हैं, वे भगवान् विष्णुके भक्त हैं; अतः आप कृपा करके वर्णों और आश्रमोंके धर्म बताइये, जिनके पालन करनेमें मनसात्म प्राप्तवान् नृसिंह संतुष्ट होते हैं ॥ ८-९ ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा— इस विषयमें मुनियोंके साथ महात्मा हारीत ऋषिका संवाद हुआ था; उसी प्राचीन एवं उत्तम इतिहासका उन्नाम मैं तुम्हारे समवश वर्णन करौगा ॥ १० ॥

एक समयकी बात है, धर्मका तत्त्व जाननेकी इच्छावाले समस्त मुनियोंने एक जगह आसनपर आसीन, धर्म-तत्त्ववेत्ता एवं बहुलादे महात्मा हारीत ऋषिके पास जाकर उन्हें प्रणाम

पादान्तर भी नपस्यते होते हैं।

भगवन् सर्वधर्मज् सर्वधर्मप्रबर्तक ।
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मं प्रवृहि शाश्वतम् ॥ १२
हारीत उक्ताच

नारायणः पुरा देवो जगत्स्वहा जलोपरि ।
सुख्याप भोगिपर्यह्ने शयने तु श्रिया सह ॥ १३

तस्य सुसस्य नाभौ तु दिव्यं पद्मप्रभूत् किल ।
तन्मध्ये चाभवद्गङ्गा वेदवेदाङ्गं भूषणः ॥ १४

स चोक्तस्तेन देवेन ब्राह्मणान् मुखातोऽसुजन् ।
असुजस्त्रियान् बाहुवीर्यांस्तु ऊरुतोऽसुजन् ॥ १५

शुद्रास्तु पादतः सृष्टास्तेषां दैवानुपर्यशः ।
धर्मशास्त्रं च मर्यादां प्रोक्ताच कथलोद्दत्यः ॥ १६

तदृत्पर्यं प्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसन्नमाः ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गयोक्षफलप्रदम् ॥ १७

ब्राह्मणां ब्राह्मणेनैव चोत्पत्तो ब्राह्मणः स्मृतः ।
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥ १८

कृष्णसारो मुगो यत्र स्वभावात् प्रवर्तते ।
तस्मिन् देशे चसेधर्मं कुरु ब्राह्मणपुंगव ॥ १९

पटकमार्गिं च यान्याहुङ्गाहाणस्य मनीषिणः ।
तैरेव सततं यस्तु प्रवृत्तः सुखप्रेषते ॥ २०

अद्ययनाद्यापनं च यज्ञनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहक्षेति कर्मपटकपिहोच्यते ॥ २१

अद्यापनं च त्रिविधं धर्मस्यार्थस्य कारणम् ।
शुश्रूषाकारणं चैव त्रिविधं परिकीर्तिम् ॥ २२

योग्यानव्यापयेचित्प्रव्यान् यान्यानपि च याजयेत् ।
विधिना प्रतिगृहं क्ष गृहधर्मप्रसिद्धये ॥ २३

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं शुभे देशो समाहितः ।
नित्यं वैमित्तिकं कार्यं कर्म कुर्यात् प्रवृत्ततः ॥ २४

गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायमतन्त्रितः ।
सायं प्रातरुपासीत विधिनाग्निं द्विजोत्तमः ॥ २५

किया और कह—‘भगवन्! आप समस्त भग्नोंके जाता और प्रवर्तक हैं; अतः अप हमस्तोंगोंसे वर्ष और अक्रमोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सनातन धर्मका वर्णन कीजिये’॥ ११—१२॥

श्रीहारीतजी बोले—पूर्वकालमें जगत्स्त्री भगवान् नारायण जलके ऊपर होणाराकी शव्यापर श्रोतृस्त्रीजीके साथ शयन करते थे। कहते हैं, शयन-कालमें ही उन भगवान्की नाभिसे एक दिव्य कमल प्रकट हुआ और उस कमल-कोषमें वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञानमें विभूषित श्रीब्रह्माजी प्रकट हुए। उन ब्रह्माजीने सुहिंके लिये भगवान् नारायणकी आङ्ग होनेपर सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको अपने मुखसे प्रकट किया। फिर लक्ष्मियोंको बाहुओंमें और वैश्योंको जाँघोंसे उत्पन्न किया। अन्तमें उन्होंने चरणोंसे शूद्रोंकी सृष्टि की। फिर उसलोद्देव ब्रह्माजीने क्रमशः उन्हीं ब्राह्मणादि यणोंके धर्मका उपदेश करनेवाले जात्यर और वर्णोंकी मर्यादाका वर्णन किया। द्विजवरी! ब्रह्माजीने जो कुछ उपदेश किया, वह सब मैं आप होगोंमें कह रहा हूँ; आप सुनें। यह धर्मस्त्रव धन, यज्ञ और आपुको बढ़ानेवाला तथा स्वर्ण और नीक्षकस्त्री परतको देनेवाला है॥ १३—१७॥

जो ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुई स्त्रीके गर्भ और आहारके ही वीर्यसे उत्पन्न हुआ है, वह ‘ब्राह्मण’ बना गया है। अब मैं ब्राह्मणके धर्म और निवास-योग्य दैशको बता रहा हूँ। ब्रह्माजीने ब्राह्मणको उत्पन्न करके उनसे कहा—‘ब्राह्मणप्रेष्ठ! दिस देशमें कृष्णसार मुग स्वभावतः निवास करता हो, उसी देशमें यहकर तुम धर्मका पालन करो।’ मनीषियोंने जो ब्रह्मनके छ: कर्म बतायाए हैं, उन्होंके अनुसार जो यदा अव्याहार करता है, वह सुखपूर्वक अध्युदययोंल होता है। अध्यायन (पढ़ना), अध्यायन (पढ़ना), यज्ञ (यज्ञ करना), यज्ञ (यज्ञ करना), दान बताना और दान लेना—ये ही ब्रह्मनके छ: कर्म कहे जाते हैं। इनमेंसे अध्यायन तीन प्रकारका बताया जाता है—पहला भर्मिक लिये, दूसरा धनके लिये और तीसरा अपनी सेवा करनेके लिये होता है। ब्राह्मणको चर्चाहेये कि दोग्य लिंगोंको पढ़ाये, दोग्य यज्ञमानोंका यज्ञ कराये और गृहस्थार्थके लिंगदि (जीविका चलाने आदि)-के लिये विधिपूर्वक दूसरोंका दान भी ग्रहण करो। शुभ स्थानपर रहकर एकाग्राचित्त हो, प्रतिदिन वेदका ही अध्याय करो तथा व्यापूर्वक नित्य नैमित्तिक और जल्द जर्मोंका अनुकूल करो। ऐसु ब्राह्मणको चाहिये कि अस्तस्य त्यागकर उचित रूपसे गुरुजनोंकी सेवा करे और प्रतिदिन प्रातःकाल तथा सायंकाल विधिपूर्वक अतिष्ठों सेवा किया करे॥ १८—२५॥

कृतस्वानस्तु कुर्यात् वैश्वदेवं दिने दिने।
अतिधिं चागतं भवत्या पूजयेच्छकितो गृही॥ २६
अन्यानथागतान् दृष्टा पूजयेदविरोधतः।
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः॥ २७
सत्यवादी जितकोपः स्वपर्मनिरतो भवेत्।
स्वकर्मणि च सम्माने प्रपादं नैव कारयेत्॥ २८
प्रियां हितां चर्देहाचं परतोकाविरोधिनीय्।
एवं धर्मः समुद्दिष्टो ग्राहणस्य समाप्तः।
धर्मेष्व तु यः कुर्यात्स याति ग्राहणः पदम्॥ २९
इत्येष धर्मः कथितो मया वै
विप्रस्य विष्णा अखिलाच्छारी।
वदामि राजादिगनस्य प्रार्थी
पृथक्पृथग्नोभत विप्रवर्याः॥ ३०

तातो श्रीनरसिंहपुराणे श्रावणपर्वते तद्रात्रकालीनम् अध्यायः ४५४
इति प्रकार श्रीनरसिंहपुराणे 'श्रावणपर्वतो तद्रात्र' तद्रात्र तत्त्वाकालीनम् अध्याय तृतीया तु आत्मा ४५५ ॥

तत्त्वात् तत्त्वात्

अट्टावनवाँ अध्याय

क्षत्रियादि वर्णोंके धर्म और ग्राहणवर्य तथा गृहस्थान्नमयके धर्मोंका वर्णन

हातोत उक्तच

क्षत्रियादीनां प्रवक्ष्यायि चावदनुपूर्वशः।
येन येन प्रवर्तने विधिना क्षत्रियादयः॥ १
रान्यस्थः क्षत्रियक्षेत्र प्रजा धर्मेण पालयेत्।
कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेष्ठान् यथाविधि॥ २
दशाहनं द्विजाग्रेष्यो धर्मपुद्दिसम्बन्धितः।
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः॥ ३
नीतिशास्त्रार्थकुशलः संधिविग्रहतत्त्ववित्।
देवग्राहणाभक्तश्च पितॄकार्यपरस्तथा॥ ४
धर्मेणीव जयं काङ्क्षेदधर्मं परिवर्जयेत्।
उत्तमां गतिमाजोति क्षत्रियोऽथैवमाचान्॥ ५

गृहस्थ ग्राहण स्तान आदिके बाद प्रतिदिन वलिवैभृतेव
करे और चरपत अवै हुए अतिथिका अपनी शक्तिके
अनुसार भक्तिपूर्वीक सम्मान करे। एक अतिथिके आ
जानेपर यदि दूसरे भी आ जावै तो उन्हें भी देखकर
विशेष न लाए, उनका भी चराहणकि सम्मान करे। सदा
अपनी ही स्त्रीमें अनुराग रखे, दूसरेकी स्त्रीके सम्बन्धसे
सदा दूर रहे। सदा सत्य बोले, छोप न करे, अपने धर्मका
पालन करता रहे। अपने नीतियक आदि कर्मका समय प्राप्त
होनेपर प्रमाद न करे। जिससे परतोक न दिग्दे—ऐसी
सत्य, जिन और हितकारियी यानी भोले। इस प्रकार मैंने
क्षत्रिय-धर्मसंबंध संक्षेपसे वर्णन किया। जो ग्राहण इस
प्रकार अपने धर्मका पालन करता है, वह नित्य ग्राहणाय
(साधारणीक)-को प्राप्त होता है। विप्रगाय! इस प्रकार मैंने
अपनेगोसे यह ग्राहण-धर्म कहा है, यह समस्त पापोंकी
दूर करनेवाला है। विप्रवर्तो! अब क्षत्रियादि जातियोंका
पृथक्-पृथक् धर्म बताता हूँ, आप लोग सुनें॥ २६—३०॥

श्रीहारीत मूरि खोले—अब मैं क्रमसः क्षत्रियादि
वर्णोंके लिये विवित विषयोंका यथावृत् वर्णन करूँगा,
जिनके अनुसार शक्तिशास्त्रिको अपना व्यवहार निभाना
नाहिये। ग्राहणपर विवित क्षत्रियोंको डायित है कि वह
धर्मपूर्वक प्रवास्य पालन करे। उसे भलीभीत वेदाध्ययन
और विधिपूर्वक यज्ञ भी करने चाहिये। धर्मपुद्दिसे युक्त
हो ब्रेत ग्राहणोंको दान दे, सदा अपनी ही स्त्रीमें
अनुरक्त रहकर परस्तीका त्याग करे, नीतिशास्त्रका अर्थ
समझनेमें निषुल हो, संघि और विग्रहका तत्त्व समझे।
देवग्राहणों और ग्राहणोंमें भक्ति रखे, पितॄरोक्ता पूजन—
ग्राहणादि कर्म करे। धर्मपूर्वक ही विजयकी इच्छा करे,
अधर्मको भलीभीत त्याग दे। इस प्रकार आचरण
करनेवाला क्षत्रिय उत्तम गतिको प्राप्त होता है॥ १—५॥

गोरक्षाकृषिवाणिज्यं कुर्याद्देश्यो यथाविधि ।
दानधर्मं यथाशक्त्या गुरुशुश्रूषणं तथा ॥ ६
लोभदम्भविनिर्मुक्तः सत्पवाग्नसूयकः ।
स्वदारनिरतो दानः परदारविवर्जितः ॥ ७
धनविविष्टान् समचेत यज्ञकाले त्वरान्वितः ।
यज्ञाध्ययनदानानि कुर्याद्वित्यमतन्द्रितः ॥ ८
पितुकार्यं च तत्काले नरसिंहार्चनं तथा ।
एतद्वैश्यस्य कर्मके स्वधर्मपनुतिष्ठुतः ॥ ९
एतदासेवमानस्तु स स्वर्गी स्यात्र संशयः ।
वर्णप्रत्ययस्य शुश्रूषां कुर्याद्वृद्धः प्रयत्नतः ॥ १०
दासवद्वाहाणानां च विशेषण समाचरेत् ।
अयाच्चितं प्रदातव्यं कृत्यं वृत्यर्थमाचरेत् ॥ ११
ग्राहाणां मासिके कार्यं पूजनं न्यायधर्मतः ।
धारणं जीर्णविस्त्रस्य विप्रस्योच्छ्रामार्जनम् ॥ १२
स्वदारेषु रतिं कुर्यात् परदारविवर्जितः ।
पुराणधर्वणं विप्राङ्गरसिंहस्य पूजनम् ॥ १३
तथा विप्रनमस्कारे कार्यं अद्वासमन्वितम् ।
सत्यसम्भाषणं चैव रागद्वेषविवर्जनम् ॥ १४
इत्थं कुर्यात् सदा शूद्रो मनोवाच्चर्यकर्मधिः ।
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापस्तु पुण्यभाक् ॥ १५
वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता
यथाकृमं ज्ञाहणवर्यसाधिता ।
श्रुणुद्वयत्राश्रमधर्मपादां
प्रयोच्यमानं क्रमशो मुनीन्द्राः ॥ १६

हारीत उच्चार

उपनीतो माणवको वसेदूनकुले सदा ।
गुरोः प्रियहितं कार्यं कर्मणा मनसा गिरा ॥ १७

वैश्यको चाहिये कि वह विधिपूर्वक गोरक्षा, कृषि
और व्यापार करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार दानधर्म
और गुहसेवा भी करे। लोभ और दम्भसे सर्वथा दूर रहे,
सत्पवाणी हो, किसीके दोष न देखें, मन और इन्द्रियोंको
संयममें रखकर परदारीका त्याग करे और अपनी ही स्त्रीमें
अनुरक्त रहें। यज्ञ-कालमें शीघ्रतापूर्वक ज्ञाहणोंका धनसे
सम्पादन करे तथा आलस्य छोड़कर प्रतिदिन यज्ञ, अध्ययन
और दान करता रहें। ज्ञाह-काल प्राप्त होनेपर पितृ-
आद अवश्य करे और नित्यप्रति भगवान् श्रीनृसिंहदेववास
पूजन करे। अपने धर्मका चालन करनेवाले वैश्यके लिये
यही कर्तव्य कर्म बतलाया गया है। पूर्वोक्त कर्मका पालन
करनेवाला वैश्य निःसदैह स्वर्गलोकका अधिकारी होता
है ॥ ६—१६ ॥

शुद्धको चाहिये कि वह यज्ञपूर्वक इन तीनों वर्णोंकी
सेवा करे और ज्ञाहणोंकी तो दासकी भीति विशेषकृपासे
तुष्टया करे। किसीसे भाँगकर नहीं, अपनी ही कमाईका
दान करे। जीविकाके लिये कृषि कर्म करे। प्रत्येक
मासमें न्याय और धर्मके अनुसार ग्रहोंका पूजन करे,
पुराणा चल भारण करे। ज्ञाहणका जूठा बर्तन भाँजे।
अपनी तीनों अनुराग रखें। परस्तियोंको दूरसे ही त्याग
दे। ज्ञाहणके मुख्यसे पुराणकथा अवलोकन करे, भगवान्
नरसिंहका पूजन करे। इसी प्रकार ज्ञाहणोंको प्रदापूर्वक
नमस्कार करे। राग-द्वेष त्याग दे और सत्यभाषण करे।
इस प्रकार मन, वाणी, शरीर और कर्मसे आचरण
करनेवाला शूद्र पापरहित हो पुण्यका भागी होता है और
मृत्युके पश्चात् इन्द्रलोकको प्राप्त होता है ॥ १०—१५ ॥

मुनीन्द्रगण! वर्णोंके ये नाना प्रकारके धर्म मैंने आप
लोगोंसे क्रमशः कहे हैं। इन्हें लेण ज्ञाहणोंने बतलाया है।
अब मैं क्रमसे प्रथम ज्ञाहणर्थ-आश्रमके धर्म बता रहा
हूँ, आप लोग सुनें ॥ १६ ॥

श्रीहारीत मुनि बोले — उपनयन-संस्कार हो जानेके
बाद ज्ञाहचारी चालक सदा गुरुकुलमें निवास करे। उसको
चाहिये कि मन, वाणी और कर्मसे गुहका प्रिय और हित करे।

ब्रह्मचर्यमप्यःशत्या तथा बहुरुपासनम्।
उदकुम्भं गुरोदेवात्तथा चेन्धनमाहरेत्॥ १८

कुर्यादिथ्ययनं पूर्वं ब्रह्मचारी यथाविधि।
विधिं हित्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत्॥ १९

यत्किंचित् कुरुते कर्म विधिं हित्वा निरात्मकः।
न तत्फलमवाप्नोति कुर्वणो विधिविच्छुतः॥ २०

तस्मादेवं ज्ञानीह चरेत् स्वाध्यायसिद्धये।
शीचाचारमशोषं तु शिक्षयेद्गुरुसंनिधी॥ २१

अजिनं हण्डकाष्टं च मेखलां चोपवीतकम्।
धारयेदप्रमत्तम् ब्रह्मचारी समाहितः॥ २२

सायं प्रातःक्षेत्रदीक्षं भोजनं संयतेन्द्रियः।
गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलवच्युतुः॥ २३

अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वपूर्वं च वर्जयेत्।
आचम्य प्रथतो नित्यमश्रीयादूर्वनुद्रया॥ २४

शयनात् पूर्वमुत्थाय दर्भमृहतशोधनम्।
वस्त्रादिकमथान्यच्च गुरवे प्रतिपादयेत्॥ २५

स्नाने कृते गुरी पक्षात् स्नानं कुर्वीत यद्वान्।
ब्रह्मचारी ज्ञाती नित्यं न कुर्यादनशोधनम्॥ २६

छत्रोपानहमभ्यङ्गं गच्छमाल्यानि वर्जयेत्।
नृत्यगीतकथालापं मैथुनं च विशेषतः॥ २७

वर्जयेन्मधुं प्राप्तं च रसास्वादं तथा स्त्रियः।
कापं क्रोधं च लोभं च परिवादं तथा नृणाम्॥ २८

स्त्रीणां च प्रेक्षणालाभमुपषानं परस्य च।
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित्॥ २९

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
स्वात्माकं भव्यं वित्याग्निं पुनर्मामित्युचं जपेत्॥ ३०

यह ब्रह्मचर्यका फलन, भूमिपर जापन और अग्निको उपासना करे। गुरुके लिये जलका भड़ा भरकर लायें और हवनके निमित्त समिधा ले आये। इस प्रकार सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य आक्षममें रहकर विधिपूर्वक अध्ययन करना चाहिये। जो विधिका त्वाग करके अध्ययन करता है, उसे उस अध्ययनका फल नहीं प्राप्त होता (उसको विद्या सफल नहीं होती)। विधिकी अवहेलना करके बहु जो कुछ भी कर्म करता है, विधिभृष्ट एवं नास्तिक होनेके कारण उसे उसका फल नहीं मिलता। इसलिये गुरुकुलमें रहकर अपने अध्ययनको सफलताके लिये उपर्युक्त व्रतोंका आचारण करना चाहिये और गुरुके निकट समस्त शीचाचारोंको स्वीकृता चाहिये। ब्रह्मचारी साधारण और शकाश्चित् रहकर मृगशब्दं, पलाशटण्ड, मेखला और उपवीत (जेवेत) पराम करे। अपनी इन्द्रियोंको वस्त्रमें रखकर साधनकाल और प्रातःकाल भिक्षासे मिला हुआ अप भोजन करे। गुरुके कुलमें और उनके कुटुम्बीयम्-बाल्यवीके भारतीय भिक्षा न लीजें। दूसरोंके घर न भिले तो शूर्वोलं घारोंमें से भी भिक्षा ले सकता है; किन्तु यथासाध्य पूर्व-पूर्व गृहोंका त्वाग करे। अर्थात् पहले कहे हुए गुरुगृह या गुरुकुलका त्वागकर अन्दर भिक्षा ले। नित्य आचमन करके शुद्धिविहार करकर गुरुकी आज्ञा से भोजन करे। रात्रि जीतनेपर गुरुसे पहले ही अपने आसनसे ढठ जाय और गुरुके लिये कुश, भिंडी, दौड़न और वस्त्र आदि अन्य सामान एकत्र करके उनको दे। गुरुजीके स्नान कर लेनेपर स्वयं यज्ञपूर्वक स्नान करे। ब्रह्मचारी सदा ब्रत रखे और कष्ट आदिसे दूनधारन न करे॥ १७—२६॥

ज्ञाता, ज्ञाता, उक्तट, गच्छुकुल इत्र आदि और कूल माला आदिको त्वाग दे। विशेषतः नाच, गान और ग्राम्य कथा-वार्ता एवं मैथुनका सर्वथा त्वाग करे। मधु, मांस और रसास्वाद (जिह्वाके स्वाद)-को त्वाग दे। लिंगोंसे अलग रहे। काम, क्रोध, होत तथा दूसरे मनुष्योंके अपवाद (निन्दा)-का परित्याग करे। स्त्रियोंकी ओर देखने, उनका म्लान करने और दूसरे जीवोंको हिंसा करने आदिसे व्यवहार रहे। सब जगह अकेले हो शब्दन करे, कभी कहो भी योर्पात न करे। यदि कामभाव न होनेपर भी स्वप्नमें वीर्य-स्थान हो जाय तो ब्रह्मचारी द्विजको जाहिये, वह स्नान करके सूर्य और अग्निकी आराधना करे, तथा 'पुनर्मामेविनिद्रियम्' इस

आस्तिकोऽहरहः संध्यां प्रिकालं संयतेन्द्रियः ।
उपासीत यथान्यायं ब्रह्मचारिवते स्थितः ॥ ३१
अभिवाढु गुरोः पादी संध्याकर्मविसानतः ।
यथायोग्यं प्रकुर्वीत मातापिशोस्तु भक्तिः ॥ ३२
एतेषु त्रिषु तुष्टेषु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
तदेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥ ३३
अधीत्य चतुरो खेदान् खेदी खेदमयापि च ।
गुरवे दक्षिणां दक्ष्वा तदा स्वस्वेच्छया वसेत् ॥ ३४
विरक्तः प्रवजेद्ब्रह्मान् संरक्षण्यु गुही भवेत् ।
सरागो नरकं याति प्रवज्वन् हि धूवं द्विजः ॥ ३५
यस्यैतानि सुशुद्धानि जिह्वोपस्थोदरं गिरः ।
संन्यसेदकृतोद्भाहो ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यवान् ॥ ३६
एवं यो विधिमास्थाय नयेत् कालमतिनितिः ।
तेन भूयः प्रजायेत ब्रह्मचारी दृढवतः ॥ ३७
यो ब्रह्मचारी विधिमेतमास्थित-
क्षुरेत् पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ।
सम्प्राप्य विद्यायपि दुर्लभा ता
फलं हि तस्याः सकलं हि विन्दति ॥ ३८

इतीत उक्तव

गुहीतवेदाध्ययनः श्रुतिशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
गुरोर्दत्तवरः सम्यक् समावर्तनमारभेत् ॥ ३९
असमाननामगोत्रो कन्यां भातुयुतां शुभाम् ।
सर्वावियवसंयुक्तां सदृक्षामुद्भवेत्ततः ॥ ४०
नोद्भुतेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गी न रोगिणीप् ।
ब्राचालामतिलोपां च न व्यङ्गी भीमदशानाम् ॥ ४१

* इससे जागे 'हारीत उक्तव' नुस्खा दिया गया है। इससे जान पड़ता है, यह अध्याय यहाँ पूर्ण हो गया है।

ब्रह्माका जप करे। ईश्वर और परलोकके अस्तित्वपर विश्वास करता हुआ, ब्रह्मचारियोंके लिये उचित खत्तके पालनमें ताप्तर रहकर, जितेन्द्रिय हो, प्रतिदिन न्यायतः प्राप्त प्रिकालसंघाकी डपासना करे। संध्या-कर्म समाप्त होनेपर गुरुके चरणोंमें प्रणाम करे और यदि सुयोग प्राप्त हो तो भाका-पितामें भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। इन तीनोंके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न रहते हैं; इसलिये ब्रह्मचारीको चाहिये कि हाह छोड़कर, इन तीनोंके शासनमें रहे। ब्रह्मसम्भाव चार, दो अधिक एक हो जेका अध्ययन पूर्ण करके गुरुको दक्षिणा दे। फिर अपने इष्टानुसार कहीं भी निवास करे। यदि वह बिहान् ब्रह्मचारी विरक्त हो, तब तो संन्यासी हो जाय; किन्तु यदि उसका विषय-धोरणेंकि प्रति अनुग्रह हो तो गृहस्थानमें उपेक्ष करे। द्वितो! राणी पुरुष यदि संन्यासी हो जाय तो वह निष्पत्त ही नरकमें जाता है। जिसकी जिह्वा, उपस्थ (जननेन्द्रिय), उदार और चाणी तुम्हाँ हों, अर्थात् जो स्वाद, काम और मुभुक्तको जीत तुका हो और सत्यतादो या मौन रहता हो, वह पुरुष यदि ब्रह्मचर्यवान् ब्राह्मण हो तो वह विषाह न करके संन्यास से सकता है॥ ३७—३८॥

इस प्रकाश जो आलमस्य त्यागकर विशिष्टा पालन करते हुए ही सम्बन्ध-योग्य करता है, वह ब्रह्मचारी अधिकाधिक दृढ़ खलवाला होता है। जो ब्रह्मचारी पूर्वोक्त विधिका सहाया लेकर गुह-सेवापाद्यण हों पृथ्वीपर भूमण करता है, वह दुर्लभ विद्याको भी सीखकर उसके सम्पूर्ण फलोंको प्राप्त कर सकता है*॥ ३७—३८॥

श्रीहारीत मुनि बहने हैं—पूर्वोक्त गीतिसे वेदाध्ययन सम्पालकर कुति तथा अन्यान्य शास्त्रोंकि अर्थ एवं तत्त्वका ज्ञान रुक्षनेवाला ब्रह्मचारी विहान् गुरुसे अशोकांद प्राह्लाद विधिपूर्वक सम्पालतान्-संस्कार आरम्भ करे। फिर, जिसके नाम और गोत्र उसनेसे भिन्न हों, जिसके भाई भी हो, जो सुन्दरी एवं शुभ लक्षणोंवाली हो, जिसके शरीरके सभी अवयव अधिकल हों और जिसका आवास उत्तम हो, ऐसी कन्याके साथ विवाह करे। जिसके शरीरका रंग दक्षिण हो, जो अधिकाङ्गी या रोगिणी हो, बहुत बोलनेवालों और अधिक रोगावाली हो, जिसका कोई अङ्ग विकृत या हीन हो और जिसकी

नक्षत्रुक्षनदीनार्थीं नान्तपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनार्थीं न च भीषणनामिकाम्॥ ४२

अव्यङ्गाङ्गीं सोम्यनार्थीं हंसवारणगामिनीम्।
तन्वोष्टुकेशदशनां मृद्धङ्गीमुद्धेत् खित्यम्॥ ४३

ब्राह्मण विधिना कुर्यात् प्रशस्तेन द्विजोत्तमः।
यथायोगं तथा होत्वं विवाहं वर्णधर्मतः॥ ४४

उपःकाले समुत्थाय कृतशीचो द्विजोत्तमः।
कुर्यात् स्नानं ततो विद्वान्दनधावनपूर्वकम्॥ ४५

मुखे पर्युचिते नित्यं यतोऽप्यतो भवेत्तरः।
तस्याच्छुद्धकमधार्द्वं चा भक्षयेहनधावनम्॥ ४६

खदिरं च कदम्बं च करञ्जं च बटं तथा।
अपामार्गं च विल्वं च अर्कक्षोदयारसत्था॥ ४७

एते प्रशस्ताः कथिता दनधावनकर्मणि।
दनधावनकाष्ठं च बक्ष्यामि तत्प्रशस्ताम्॥ ४८

सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणस्तु यशस्विनः।
अष्टाङ्गुलेन मानेन तत्प्रपाणमिहोच्यते॥ ४९

प्रादेशमत्रमध्यवा तेन दनान् विशोधयेत्।
प्रतिपद्मांष्टीषु नवप्राणं चैव सत्तमाः॥ ५०

दनानां काष्ठसंयोगाद् दहत्यासम्मं कुलम्।
अलाभे दनकाष्ठस्य प्रतिपद्मे च तद्दिने॥ ५१

अपां द्वादशगण्डूर्धमुखशुद्धिविधीयते।
स्रात्वा मन्त्रवदाच्य पुनराच्यते चरेत्॥ ५२

मन्त्रवान् प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम्।
आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम रक्षसाः॥ ५३

गृहत उत्तरनी हो, ऐसी कन्यासे विवाह न करे। जिसका नाम नक्षत्र वृक्ष या नदीके नामपर रखा गया हो, अथवा जिसके नामके अन्तर्में पर्वतवाचक शब्द हो, अथवा जो पक्षी, साँप और दम आदि अर्थवाले नामोंसे युक्त हो, या जिसका भवेत्तर नाम हो, ऐसी कन्यासे भी विवाह न करे। जिसके लगाएके सभी अवश्य सुदूरील हो, नाम कोमल और मधुर हो, जो हास या गजराजके समान मन्द एवं लीलायुक्त गतिसे चलनेवाली हो, जिसके अवश्य दौत और केश पतले हों एवं जिसका लगाएका बोमल हो, ऐसी कन्यासे विवाह करे। ऐसे द्विजातिको चाहिये कि यथात्तमध्यव सर्वोत्तम ब्राह्मणिधिसे विवाह करे। इस प्रकार चाहियामें अनुसार विवाह-संस्कार पूर्ण करना चाहिये॥ ४९—५४॥

इसके बाद विद्वान् द्विजको चाहिये कि प्रतिदिन सूर्योदयमे पूर्व उठकर शीतादिके अनन्तर दनधावन करके लूत स्नान कर ले। प्रतिदिन रुतमें भोकर उठनेके बाद मुख पर्युचित होनेके कारण मनुष्य अपवित्र रहता है, अतः शुद्धिके लिये भूखा या गीला दनधावन अवश्य चलाना चाहिये। दौतुनके लिये खटिर, कफदम्ब, करञ्ज, बट, अरामार्ग, बिल्व, मटार और गूलर—ये बृक्ष उत्तम माने गये हैं। दनधावनके लिये उपयुक्त काष्ठ और उत्तमी उत्तमताका लक्षण रहता रहा है॥ ५५—५६॥

जिसने लगाएके लृक्ष है, वे सभी पवित्र हैं। जिसने दूधको लृक्ष है, वे सभी यस देनेवाले हैं। दौतुनकी लक्ष्मीकी लक्ष्यार्द्वं आठ अंगुलकी लमाये जाती हैं। अष्टका विलामात्र उत्तमकी लम्बावं होने चाहिये। ऐसी दौतुनसे दौतेको रखना जाहिये। परंतु सामुशिरोमणियो! प्रतिपदा, अमलास्या, पाणि और नवमीको काठाकी दौतुन वहीं करनी चाहिये; क्योंकि उक्त तिथियोंको यदि दौतेको काठक रखेन हो जाय तो वह स्वत शोदौतको कुलको दाध कर दालता है। जिस दिन दौतुन न मिले या जिस दिन दौतुन करना निषिद्ध है, उस दिन बारह बार जलका कुल्ला करके मुखकी शुद्धि कर लेनेकी विधि है॥ ५६—५७॥

दौतुनके बाद स्नान करे। फिर मन्त्रपाठपूर्वक आयमन करके युनः आचमन करना चाहिये। मन्त्रपाठपूर्वक अपने ऊपर भी जल छिड़के और सूर्यके लिये अर्घ्यके तीरपर जलाझुलि भरकर उठाले। अवश्यकजन्म ब्रह्माजीके खरदानसे

युद्धान्त वरदानेन द्वाहणोऽव्यक्तजन्मनः ।
उटकाङ्गलिविक्षेपो गायत्रा चाभिष्मन्त्रितः ॥ ५४

तान् हन्ति राक्षसान् सर्वान् मन्देहान् रथिवैरिणः ।
ततः प्रयाति सविता द्वाहणी रक्षितो दिवि ॥ ५५

परीच्याहैर्यहाभागीः सनकादैशु योगिभिः ।
तस्माद्व लक्ष्येत्संव्यां सायं प्रातर्द्विजः सदा ॥ ५६

ठलकृयति यो मोहात्स याति नरकं भूतम् ।
सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य मूर्यम्य चाङ्गलिम् ॥ ५७

दत्त्वा प्रदक्षिणं कृत्वा जलं स्पृष्टा विशुद्धति ।
पूर्वां संव्यां सनक्षत्रामुपकम्य यथाविधि ॥ ५८

गायत्रीमध्यसेतावद्यावदुक्षाणि पश्यति ।
ततस्वावसर्वं प्राप्य होयं कुर्यात्क्षयं बुधः ॥ ५९

संचिन्त्य भृत्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ।
ततः शिष्यहितार्थाय स्वाद्यायं किञ्चिद्दाच्चरेत् ॥ ६०

ईश्वरं चैव रक्षार्थपरिगच्छेद्विजोनमः ।
कुशपुष्येत्यनादीनि गत्वा दूरात्समाहोत् ॥ ६१

माय्याद्विकीं क्रियां कुर्याच्चुच्चीं देशे समाहितः ।
विधिं स्वानस्य वक्ष्यामि सपासात् पापनाशनम् ॥ ६२

स्वात्वा येन विद्यानेन सद्यो मुच्येत विस्त्रिषान् ।
सुधीः स्वानार्थमादाय शुक्लां कुशतिलीः सह ॥ ६३

सुपनाश्र ततो गच्छेत्रदीर्घं शुद्धां मनोरमाप् ।
नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादल्पवारिषु ॥ ६४

शुचीं देशे समभ्युक्ष्य स्थापयेत्कुशपूतिकाम् ।
मृतोयेन स्वकं देहपरिप्रक्षाल्य यत्करः ॥ ६५

प्रबल हुए 'मन्देह' नामक राक्षस प्रतिदिन प्रातःकाल अक्षर सूर्यके साथ चुद्ध करते हैं; किंतु जब गायत्रीसे अभिष्मन्त्रित जलाङ्गलि सूर्यपूर्वके सामने उछाली जाती है, तब यह उन समस्त सूर्य-वैरी मन्देह नामके राक्षसोंको भार भगती है।" तत्पश्चात् महाभाग मरोचि आदि द्वाहणों और सनक्षत्रिक योगियोंद्वाय रक्षित हो, भगवान् सूर्यदेव आकर्षणमें आगे चढ़ते हैं। इसलिये द्विजको चाहिये कि सायं और प्रातःकालकी संख्याका कभी उल्लङ्घन न करे। जो भोजवश संख्याका उल्लङ्घन करता है, वह अवश्य ही नरकमें पड़ता है। यदि सायंकालमें मन्त्रपाठपूर्वक आश्रमन करके अपने कपर जल छिड़ककर फिर भगवान् सूर्यको जलाङ्गलि अस्ति को जाय और उनकी परिक्रमा करके पुनः जलका स्पर्श किया जाय तो वह द्विज शुद्ध हो जाता है। प्रातःकालकी संख्या तारोंके रहते-रहते विशिष्यपूर्वक आरम्भ करे और जलात्मक तारोंका दर्शन हो, तबतक गायत्रीका जप करता रहे। तत्पश्चात् घरमें आकर विद्वान् पुरुषको स्वयं हवयन करना चाहिये। फिर जो भूत्य-पालनीय कुटुम्बोंजन तथा दास आदि हों, उनके भरण-पोषणके लिये विद्वान् गृहस्थ विला (आवश्यक प्रयत्न) करे। उसके बाद शिष्योंके हितके लिये कुछ देशान्तर स्वाध्याय करे। उसमें द्विजको चाहिये कि अपनी रक्षाके लिये ईश्वरका सहाय ले। फिर दूर जाकर पूजाके लिये कुश, फूल और हवयनके लिये समिधा आदि ले आये और पवित्र स्थानमें एकाग्रधितसे गैठकर भगवान्कालिक क्रिया (संख्योकासना आदि) करे। ६३—६५ ॥

अब हम थोड़ीमें स्नानकी विधियात्मता रहे हैं जो मनस्त पायोंके नष्ट करनेवाली है। उस विधिसे स्नान करके मनुष्य तत्काल पायोंमें शुद्ध हो जाता है। तुटिमान् पुरुषको चाहिये कि स्नानके लिये कुश और तिलोंके साथ चुद्ध मिट्टी ले ले तथा प्रस्त्राद्वित होकर शुद्ध और बनोहर नदीके टटपर जाय। नदीके होते हुए खोटे जलाशयोंमें स्नान न करे। यहाँ पवित्र स्थानपर उसे छिड़ककर कुश और मृतिका आदि रख दे। फिर विद्वान् पुरुष मिट्टी और जलसे अपने शरीरको

* यहीं 'मन्देह' राक्षस जालस्थके ग्राहक हैं; जिन दैश्वर्यं जब तात योक्तकर ज्ञात होता है, वहाँके तौरेंको हमें मन्त्र आलम्य देखते रहता है। 'सूर्य आत्मा जगतः' के अनुमत नवं सहकं आत्मा है, अतः किसी भी प्राणीपर आलम्यका आलम्यण मुख्यमन्देहका आलम्यण है। यानि और मूर्यम्यसे इस मन्देह का आलम्यका निष्काश तातके प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है।

स्नानाच्छरीं संशोध्य कुर्याद्वयमन् युधः।
शुभे जले प्रविश्याथ नपेद्वरुणमप्यतिष्॥ ६६
हरिमेव स्परंश्चित्ते निमञ्जेच्च बहूदके।
ततः स्नानं सपासाद्य अप आचार्य भवतः॥ ६७
प्रोक्षयेद्वरुणं देवं तैर्यन्ते: पावमानिभिः।
कुशाग्रस्थेन तोयेन प्रोक्ष्यात्यानं प्रयत्नतः॥ ६८
आलभेन्युतिकां गात्रे इदं विष्णुरिति विधा।
ततो नारायणं देवं संस्मरन् प्रविशेजलम्॥ ६९
निपञ्चानन्तर्जले सम्यकित्रः पठेदधर्मर्थम्।
स्नात्या कुशतिलैस्तद्वेवर्पीन् यितुभिः सह॥ ७०
तर्पयित्वा जलात्माग्रिष्ठकम्य च समाहितः।
जलतीरं समासाद्य धीते शुद्धे च बाससी॥ ७१
परिधायोन्तरीयं च न कुर्यात्केशाभ्युपूनम्।
न रक्तमुल्त्वां वासो न नीलं तद्वशाम्यते॥ ७२
मलात्मं तु दशाहीनं चर्जयेदम्बरं युधः।
ततः प्रक्षालयेत्यादौ मृत्तोयेन विच्छङ्गाः॥ ७३
प्रिः पिवेद्विश्चितं तोयमाम्यं द्विः परिष्ठार्जयेत्।
पादी शिरसि चाभ्युक्षेत्रिराचम्य तु संस्मृणेत्॥ ७४
अहूष्टेन प्रदेशिन्या नासिकां समुपस्थृणेत्।
अहूष्टुकनिष्ठिकाभ्यां नाभौ हृदि तलेन च॥ ७५
शिरश्चाद्युलिपिः सर्ववाहुं चैव ततः स्पृशेत्।
अनेन विधिनाऽचम्य ग्राहणः शुद्धमानसः॥ ७६
दर्भे तु दर्भपाणिः स्यात् प्राद्युखः सुसमाहितः।
प्राणायामांस्तु कुर्वीत यथाशास्त्रमतन्त्रितः॥ ७७

यज्ञपूर्वक लिपा करके शुद्ध स्नानके द्वाय उसे धोकर पुनः आचमन करे। तदनन्तर स्वच्छ जलमें प्रवेश करके अलेप बहुतको नमस्कार करे। फिर मन-हौ मन भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए जहाँ कुछ अधिक जल हो, वहाँ दुखकी स्नानये। इसके बाद स्नान समाप्तकर, मन्त्रवाटपूर्वक आचमन करके, वहन्तसम्बन्धीय पश्चमान-मन्त्रोद्घात वहन्तदेवका अधिष्ठेक करे। फिर कुमके अग्रभागपर स्थित जलसे अपना यज्ञपूर्वक मार्जन करे और 'इदं विष्णुरितिक्रमे' इस मन्त्रका पाठ करते हुए अपने जारीरके तीन भागोंमें त्रिमशः मुनिकालम् संपूर्ण करे। तत्पश्चात् भगवान् नारायणका स्मरण करते हुए जलमें प्रवेश करे। जलके भीतर भली प्रकार दुखकी लगाकर तीन बार अधर्मर्थं पाठ करे। इस प्रकार स्नान करके कुम और लिलोद्घात देवताओं, ऋषियों और पितृरोप्त तर्पण करे। इसके बाद गर्वालित्वित हो, जलसे बाहर निकल, तटपर आकर भुले हुए दो खेत वस्त्रोंको धारण करे। इस प्रकार धोती और उत्तरोय धारणकर अपने केशोंको न कटाकरे। अस्थर्थिक लाल और नील लहर धारण करना भी उत्तम वहाँ माना गया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि विस ग्रन्थमें भल या दाग लगा हो, अथवा विसमें किनारी न हो, उसका भी त्याग करे॥ ७२—७२॥, ॥

इसके पश्चात् विज्ञ पुरुष गिर्ही और जलसे अपने चरणोंको धोये। फिर द्वूष-देण्य-भावकर शुद्ध जलसे तीन बार आचमन करे। दो बार जल लेकर मुँह धोये। ऐर और सिरपर जल छिड़के। फिर तीन बार आचमन करके त्रिमशः अहङ्कारा स्पर्श करे। औंगटे और तज्जीनीसे नासिकाका स्पर्श करे। अहूष्ट और कनिष्ठिकासे नाभिका स्पर्श करे। हृदयका करतालमें स्पर्श करे। तदनन्तर समस्त औंगुलियोंसे यहले सिरका, फिर बाहुओंका स्पर्श करे। इस प्रकार आचमन करके ज्ञाहण शुद्धहदय हो, हाथमें कुम ले, पूर्वको और मुख करके एकाग्रतापूर्वक कुशसनपर बैठ जाय और आलम्यको रथागकर शास्त्रोत्त विधिये-तीन बार ज्ञानायाम करे॥ ७३—७३॥

जपयज्ञं ततः कुर्याद्यायत्री वेदमातरम्।
त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्स्य भेदं निवोधत ॥ ७८
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः।
प्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयः स्यादुत्तरतरम् ॥ ७९
यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टशब्दवदक्षरैः।
शब्दमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः ॥ ८०
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोद्धी प्रचालयेत्।
किंचिन्मन्त्र स्वये विन्द्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ॥ ८१
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वृण्ठं पदात्पदम्।
शब्दार्थीचिनानं ध्यानं तदुक्तं मानसं जपः ॥ ८२
जपेन देवता नित्यं सूखमाना प्रसीदति।
प्रसन्ना विपुलान् भोगान्दद्यान्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥ ८३
यक्षरक्षः पिशाचाश्च ग्रहाः सूर्यादिदूषणाः।
जापिनं नोपसर्पन्ति दूरादेवापयानि ते ॥ ८४
ऋग्मादिकं परिज्ञाय जपयज्ञपतन्त्रितः।
जपेदहरहः स्नात्वा सावित्रीं तम्ना द्विजः ॥ ८५
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।
गायत्री यो जपेन्नित्यं न स पापैर्हि लिप्यते ॥ ८६
अथ पुष्याङ्गुलिं दत्त्वा भानवे खोर्यवाहुकः।
उदुत्यं च जपेन्मन्त्रं चित्रं तच्चक्षुरित्यपि ॥ ८७
प्रदक्षिणामुपावृत्य नमस्कुर्यादिवाकरम्।
स्वेन तीर्थेन देवादीनद्विः संतर्पयेदवृथः ॥ ८८
देवान् देवगणांश्चैव ऋषीनविगणांस्तथा।
पितृन् पितृगणांश्चैव नित्यं संतर्पयेदवृथः ॥ ८९
स्नानवस्त्रं ततः पीड़य पुनराचमनं चोत्।
दर्थेषु दर्भपाणिः स्याद्वृद्धायज्ञविधानतः ॥ ९०
प्राइमुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्यादुद्दिसमन्वितः।
ततोऽर्थं भानवे दद्यात्तिलपुष्यजलान्वितम् ॥ ९१

तत्पक्षात् वेदमत्ता गायत्रीका जप करते हुए जपयज्ञ करे। जपयज्ञ तीन प्रकारका होता है; उसका भेद बताते हैं, आप लोग सुनें। वाचिक, उपांशु और मानस—तीन प्रकारका जप कहा गया है। इन तीनों जपयज्ञोंमें उत्तरोत्तर जप त्रैष है, अर्थात् वाचिक जपको अपेक्षा उपांशु और उसकी अपेक्षा मानस जप त्रैष है। अब इनके लक्षण बताते हैं। जप करनेवाला पुरुष आवश्यकतानुसार ऊंचे, ऊंचे और समान स्वरोंमें बोले जानेवाले स्पष्ट शब्दयुक्त अक्षरोंद्वारा जो वाणीसे सुस्पष्ट शब्दोचारण करता है, वह 'वाचिक जप' कहलाता है। इसी प्रकार जो तनिक सा ओटोंओं हिलाकर धीर-धीर मन्त्रका उच्चारण करता है और मन्त्रको स्वयं ही कुछ-कुछ सुनता या समझता है, उसका वह जप 'उपांशु' कहलाता है। बुद्धिके द्वारा मन्त्राभ्यसम्भूके प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक पद और शब्दार्थका जो विनान एवं ध्यान किया जाता है, वह 'मानस जप' कहा गया है। जपके द्वारा प्रतिदिन जिसका स्वरूप जिया जाता है, वह देवता प्रसन्न होता है और प्रसन्न होनेपर वह विपुल भोग तथा नित्य मोक्ष-सुखको भी देता है। यस-गुहात्तर विनान आदि और सूर्योदै देवताओंको दृष्टित करने-कारे अत्य (लहू-बेन्दु आदि) ग्रह भी जप करनेवाले पुरुषके विषय नहीं जाते, दूरसे ही भाग जाते हैं ॥ ८८-८९ ॥

द्वितीयों चाहिये कि वह आलस्यका त्वाग करके प्रतिदिन तारोंको देखकर अर्थात् तारोंके रहते-रहते स्नान करके, गायत्रीके अर्थमें मन लगा गायत्री-मन्त्रका जप करे। जो द्विज अधिक-से-अधिक एक हजार, साधारणतया एक भी अधिक कम-से-कम दस बार प्रतिदिन गायत्रीका जप करता है, वह पापोंसे लिम नहीं होता ॥ ८५-८६ ॥

इसके बाद सूर्योदेवको पुष्याङ्गुलि अर्पित करके अपनी भुजार्हे ऊपर ढाकर 'ॐ उदुत्यं जातवेदसम्...' तथा 'ॐ तच्चक्षुर्वैवहितम्...' इन मन्त्रोंका जप करे। फिर उद्दिष्णा करके सूर्योदेवको प्रणाम करे। तत्पक्षात् विद्वान् पुरुष प्रतिदिन देवतोर्धसे (डैगलियोंद्वारा) देवताओंका तपेण करे। विज्ञ पुरुषको देवताओं और उनके गणोंका, ऋषियों और उनके गणोंका तथा मित्रों और पितृगणोंका प्रतिदिन तर्पण करना चाहिये। तदनन्तर स्नानके बाद उत्तरे हुए वस्त्रको निचोड़कर पुनः आचमन करे। फिर हाथमें कुश लेकर कुशासनपर बैठ जाय और ब्रह्मयज्ञकी विधिके अनुसार पूर्वाभिमुख हो बुद्धिपूर्वक ब्रह्मयज्ञ (गंडका स्वाध्याय) करे। तदनन्तर खड़ा होकर तिल, कूल और जलसे युक्त अर्घ्यपात्रको अपने मस्तकतक

उत्थाय पूर्धपर्यन्तं हंसः शुचिष्वित्युच्चा।
जले देवं नमस्कृत्य ततो गृहगतः पुनः ॥ १२
विधिना पुरुषसूक्तेन तत्र विचारं समर्चयेत्।
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्बुलिकम् यथाविधि ॥ १३
गोदोहमावमतिथिं प्रतिवीक्षेत वै गृही।
अदृष्टपूर्वमतिथिमागतं प्राक् समर्चयेत् ॥ १४
आगत्य च पुनर्द्वारं प्रत्युत्थानेन साधुना।
स्वागतेनाग्रयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनाम् ॥ १५
आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराद्।
पादशौचेन पितरः प्रीतिमायानि तस्य च ॥ १६
अश्रादोन च दत्तेन तृप्यतीह प्रजापतिः।
तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना ॥ १७
भक्त्या च भक्तिमाङ्गित्यं विष्णुमध्यर्थं चिन्तयेत्।
भिक्षां च भिक्षावे दद्यात्परिदाद्ब्रह्माचारिणे ॥ १८
आकल्पिताद्वादुद्भूत्य सर्वव्यज्ञानसंयुतम्।
दद्याच्य मनसा नित्यं भिक्षां भिक्षोः प्रयत्नतः ॥ १९
अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षी भिक्षार्थमागते।
अवश्यमेव दातव्यं स्वर्गसोपानकारकम् ॥ २००
उद्भूत्य वैश्वदेवात्र भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत्।
वैश्वदेवाकृतं दोषं शक्तो भिक्षुर्वर्यपोहितुम् ॥ २०१
सुवासिनीः कुमारीश्च भोजयित्वा १७ तुरानपि।
बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुजीत वै गृही ॥ २०२
प्राइमुखोद्भुखो वापि मौनी च मित्रभाषणः।
अत्रं पूर्वं नमस्कृत्य प्रहुणेनान्तरात्मना ॥ २०३
पञ्च प्राणाहुतीः कुर्यात्समन्वेण पृथक् पृथक्।
ततः स्वादुकरं चाचं भुजीत सुसमाहितः ॥ २०४

ऊंचे उठा 'हंसः शुचिष्वत्'—इस ऋचाका पाठ करते हुए सूर्यदेवके लिये अर्प्य दे। फिर जलमें स्थित ब्रह्मण्डेवको नमस्कार कर पुनः घरपर आ जाय और वहाँ पुरुषसूक्तसे भगवान् विष्णुका विधिवत् पूजन करे। तदनन्तर विधिपूर्वक चलिवैक्षदेव कर्म करे ॥ १७—१३ ॥

इसके बाद जितने देखमें गौ दुहो जाती है, उतनी देखतक द्वारपर अतिथिके आनेको प्रतीक्षा करे। यदि कई अतिथि आ जार्य तो उनमेंसे जिसे पहले कभी न देखा हो, उसका सम्मान सबसे पहले करना चाहिये। द्वारपर आकर अतिथिकी खड़े होकर भलीभांति अगवानी करनेसे गृहस्थके ऊपर दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय—तीनों अग्नि प्रसन्न होते हैं; आसन देनेसे देवराज इन्द्रको प्रसन्नता होती है, अतिथिके पैर धोनेसे उस गृहस्थके पितृणां तृष्ण होते हैं, अम आदि भोज्य पदार्थ अर्पण करनेसे प्रजापति प्रसन्न होते हैं। इसलिये गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि वह अतिथिका पूजन करे ॥ १४—१७ ॥

इसके पश्चात् भक्तिमान् पुरुष प्रतिदिन भगवान् विष्णुकी भक्तिपूर्वक पूजा करके उनका चिन्तन करे। फिर संन्यासी, विरक्त एवं ज्ञात्यारोको भिक्षा दे। सब प्रकास्तसे तैयार हिये हुए अन्नमेंसे समस्त व्यञ्जनोंसे युक्त कुछ अन्न निकालकर प्रतिदिन उनपूर्वक भिक्षु (संन्यासी) को देना चाहिये। अतिथिक्षदेव करनेके पहले भी यदि भिक्षु भिक्षाके लिये आ जाय तो उसे अवश्य भिक्षा देनी चाहिये; क्योंकि यह दान स्वर्गमें जानेके लिये सीढ़ीका काम देता है। विशेषसम्बन्धी अन्नमेंसे लेकर भिक्षुको भिक्षा देकर उसे चिंता करे। वैश्वदेव कर्म न करनेके दोषको वह भिक्षु दूर कर सकता है। फिर सुखामिनी (सुहागिन) और कुमारी कन्याओं तथा रोगी व्यक्तियोंको और बालकों एवं बृद्धोंको पहले भोजन करके उनसे बचे हुए अन्नको गृहस्थ पुरुष स्वयं भोजन करे ॥ १८—१२ ॥

भोजन करते समय पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके बैठे और मीन रहे अथवा कम बोले। भोजनसे पहले प्रसन्नचित्तसे अन्नको नमस्कार करके पृथक्-पृथक् पौच ज्ञानवाच्यांकोंके नाम-मन्त्रसे अर्थात् 'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा'—इस प्रकार उच्चारण करते हुए पौच वार प्राणाश्रिहोष करे। इसके बाद एकाग्राधित होकर उस स्वादिष्ट अन्नको स्वयं भोजन करे।

आचम्य देवतामिहां संस्मरेदुदां स्पृशन्।
इतिहासपुराणाभ्यां कंचित्कालं नयेद्युधः॥ १०५

ततः संध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विद्यानतः।
कृतहोमश्च भुज्ञीत रात्रावतिथिमर्चयेत्॥ १०६

सायं प्रातर्हिंजातीनामशाने श्रुतिचोदितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः॥ १०७

शिष्यानव्यापयेतद्वदनव्यायं विवर्जयेत्।
स्मृत्युक्तान् सकलान् पूर्वपुणोक्तानपि द्विजः॥ १०८

महानव्यायां द्वादश्यां भरण्यामपि चैव हि।
तथाक्षयतुर्तीयादां शिष्यान्नाव्यापयेद्युधः॥ १०९

माघमासे तु सप्तम्यां रव्यामव्ययनं त्वजेत्।
अध्यापनव्याध्यन्यं स्नानकाले विवर्जयेत्॥ ११०

दानं च विधिना देयं गृहस्थेन द्वितीयिणा।
हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं विशेषतः॥ १११

एतानि च: प्रयच्छेत ओषिधेभ्यो द्विजोत्तमः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते॥ ११२

मङ्गलाचारयुक्तश्च शुचिः अद्वापरो गृही।
आद्यं च अद्वापा कुर्यात्स याति ऋद्वापः पदम्॥ ११३

जातावृत्कर्त्तमायाति नरसिंहप्रसादतः।
स तस्मान्मुक्तिमाप्नोति ऋद्वाणा सह सन्तमाः॥ ११४

एवं हि विग्राः कथितो यथा च:
समासतः शाश्वतधर्मराशिः।
सम्यग्गृहस्थस्य सतो हि धर्म
कुर्वन् प्रयत्नाद्विधेति मुक्तः॥ ११५

भोजनके बाद मुँह-हाथ थो, आचमन (कुलला) करके, अपने उटरका स्पर्श करते हुए इष्टदेवका स्मरण करे। फिर द्विजान् पुरुष इतिहास-पुराणोंके अध्ययनमें कुछ समय व्यतीत करे। लद्दनन्तर सायंकाल आनेपर बाहर (नदी या जलस्रावके टटपर) जाकर विधिपूर्वक संध्योपासन करे। पुनः रात्रिकालमें हवन करके अतिथि-सम्भारके पश्चात् भोजन करे। द्विजालियोंके लिये प्रातः और सायं—दो ही समय भोजन करना चाहिये। जैसे अग्निहोत्र प्रातः और सायंकालमें किया जाता है, वैसे ही दो ही समय भोजनकी भी विधि है॥ १०९—१०७ ३

इसके अतिरिक्त द्विजको चाहिये कि वह प्रतिदिन शिष्योंको पढ़ाये, परंतु अध्ययनके लिये पर्याप्त समयका ल्याग करे। स्मृतिमें जाताये हुए तथा पहलेके पुराणोंमें वर्णित सम्पूर्ण अनव्याय-कालको ल्याग दे। महानव्याय (अधिन शुक्ल नवमी) और द्वादशी तिथि, भरणी नक्षत्र और अहयतुर्तीयादोंमें द्विजान् पुरुष शिष्योंको न पढ़ाये। याथ मासकी सप्तमीकी अध्ययन न करे, सहकार खलाते समय और उच्चटन लगाकर स्नान करते समय भी अध्ययनका ल्याग करे॥ १०८—११० ॥

अपना हित खलनेवाले गृहस्थको चाहिये कि विधिपूर्वक दान करे। विशेषतः सूक्ष्मादान, गोदान और भूमिदान करे। जो द्विजत्रेषु सूक्ष्म आदि पूर्णोंके बस्तुर्पुर्ण ओषिध ऋद्वाणोंको दानमें देता है, वह यथा पार्षदेसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। जो गृहस्थ शुभाचरणोंमें पूर्ण, पवित्र और ऋद्वान् रहकर ऋद्वापूर्वक आदृ करता है, वह ऋद्वाणोंको प्राप्त होता है। वह भगवान् नरसिंहकी कृपासे जातिमें उत्कर्ष प्राप्त करता है और सन्तमो! ऋद्वाणोंके यात्र ही वह मुक्त हो जाता है। विप्रगण! इस प्रकार मैंने आप सोगोंसे यह सनातन धर्मसमूहका संक्षेपसे वर्णन किया। जो पुरुष सद्गृहस्थके उक्त धर्मका भलीभौति प्रयत्नपूर्वक पालन करता है, वह मुक्त होकर भगवान् ओहरिको प्राप्त करता है॥ १११—११५ ॥

इति ऋन्द्रमिहेनुराणे गृहस्थान्वये ऋद्वाप्राप्तिः प्राप्तः १५८ ८
इस प्रकार औरसिंहपुराणमें "गृहस्थान्वये" उपक अवृत्तान्वये अध्ययन पूरा हुआ १५८ ९

उनसठवाँ अध्याय

बानप्रस्थ-धार्म

हारीत उक्तव्य

अतः परं प्रवक्ष्यामि बानप्रस्थस्य लक्षणम्।
धर्मपाप्यं महाभागा: कल्पमानं निवोपतः॥ १
गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन् द्वाहा पलितमात्रमः।
स्वभाव्यां तनये स्थाप्य स्वशिष्टैः प्रविशेद्वनम्॥ २
जटाकलापचीराणि नखगाप्ररुद्धाणि च।
थारयम्भुवादग्री वैतानविधिना स्थितः॥ ३
भृत्यांपूर्वत्सभूतींवाराहीतनितः।
कंदमूलफलैर्वापि कुर्यात्रित्यक्रियां युथः॥ ४
त्रिकालं स्नानयुक्तस्तु कुर्यातीतं तपः सदा।
पक्षे गते वा अश्नीयान्मासाने वा पराक्रमन्॥ ५
चतुःकालेऽपि चाश्नीयात्कालेऽप्युत तथाहृष्टे।
पष्ठाहृकाले ह्राथवा अश्वा वायुभक्षकः॥ ६
धर्मे पञ्चाग्रियमध्यस्थो धारावर्षांसु वै नयेत्।
हेमनिके जले स्थित्या नयेत्कालं तपश्चरन्॥ ७
एवं स्वकर्मभोगेन कृत्वा शुद्धिमयात्रमः।
अग्निं चात्मनि वै कृत्वा द्वजेद्वाथोत्तरं दिशम्॥ ८
आदेहपाताद्वनगो मीनमास्थाय तापसः।
स्मरप्रतीनियं द्वाहा द्वद्वलोके महीयते॥ ९
तपो हि यः सेवति काननस्थो
वसेन्महस्त्वसप्ताधियुक्तः।
विमुक्तपापो हि मनःप्रशान्तः
प्रयाति विष्णोः सदनं द्विजेन्द्रः॥ १०

श्रीहारीत मुनि बोले—महापाणगण ! इसके बाद मैं बानप्रस्थका सक्षण और ब्रेष्ट धर्म बताऊँगा; आप सोना मेरे द्वारा बताये जानेवाले उस धर्मको सुनें॥ १॥

गृहस्थ पुरुष जब यह देख से कि मेरे पुत्र-पीत्र हो गये हैं तब बाल भी पक गये हैं, तब वह अपनी भावांको पुत्रोंकी देख-रेखमें सौंपकर स्वयं अपने लिखोंकी साथ यनमें प्रवेश करे। जटा, चीर (वस्त्रकल) वस्त्र, नख, लोम आदि धारण किये हुए ही यज्ञोक्त विधिसे अद्वितीय हृष्टन करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पत्नीवाले साग आदिसे या धरतीसे स्वयं डरपत्र हुए नीकार आदिसे अथवा कंद-मूल-फल आदिसे प्रतिदिन आहारकिशका निर्वाह करे। प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों कालोंमें खान करके सदा कठोर तपस्या करे। 'पराम' आदि व्रतोंका पालन करता हुआ बानप्रस्थ पुरुष एक पक्ष या एक मासके बाद भोजन करे अथवा दिन-रातके चीर्षे या आठवें भागमें एक बार भोजन करे। अथवा छठे दिन कुछ भोजन करे या पायु पीकर ही रहे॥ २—६॥

श्रोत्र-कालमें पञ्चाग्रिये क्षमय लैठे, वर्षाकालमें धारावृहि होनेपर बाहर आकाशके ही नीचे समय ल्यतीत करे और हेमत-श्रुतमें वर करते हुए वह जलमें द्वाहा रहकर समय बिताये। इस प्रकार रक्षभोगद्वारा आत्महृदृढ़ करके, अग्निके भावनद्वारा अनःकरणमें स्थापितकर उत्तरदिशाको चला जाय। वह हप्तस्थी देहपत द्वौनेतक वनमें घौन रहकर हन्दियालील झटका स्मरण करता हुआ देह त्यागकर झटकोंको चूजित होता है। जो द्विजेन्द्र वनवासी (बानप्रस्थ) होकर महान् सत्यगुण और समाधिसे युक्त हो तपकर अनुष्ठान करता है, वह पापराहित और प्रशान्तचित होकर विष्णुप्राप्तको प्राप्त होता है॥ ७—१०॥

इह छोनरसिंहपुराण बानप्रस्थको चन एवं वैष्णवहितको अध्ययः ४-५-६

इस प्रकार श्रीनारसिंहपुराणे 'बानप्रस्थर्थ' उपक उत्तरद्वारा अप्यत युक्त हुआ ४-५-६

साठवाँ अध्याय

यतिश्चर्व

हारीत उक्त

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतिधर्ममनुलमण्।
अन्दया यदनुष्टाय यतिभुज्येत यत्प्रवात्॥ १

एवं बनाश्रमे तिष्ठुस्तपसा दग्धकिल्वयः।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत् संन्यस्य विधिना द्विजः॥ २

दिव्यं ऋषिभ्यो देवेभ्यः स्वपितृभ्यश्च यत्ततः।
दस्ता आद्यमृषिभ्यश्च यनुजेभ्यस्तत्त्वाऽऽस्मर्ने॥ ३

इहि वैष्णवानीं कुल्वा प्राज्ञापत्यमध्यापि च।
अग्निं स्वात्मगि संस्वाय्य मन्त्रवत्प्रद्वजेत् पुनः॥ ४

ततः प्रभुति पुत्रादौ सुखालोभादि वर्जयेत्।
दण्डाच्च भूमावृदकं सर्वभूताभयेकरम्॥ ५

त्रिदण्डे वैष्णवे सीम्यं सत्त्वचं सम्पर्कम्।
वेष्टितं कृष्णागोवालरञ्ज्या च चतुर्हूलम्॥ ६

प्राणिभिर्वा त्रिभिर्युक्तं जलपूतं च धारयेत्।
गृहीयाहक्षिणो हस्ते मन्त्रेणीव तु मन्त्रवित्॥ ७

कौपीनाच्छादनं वासः कुर्था शीतनिवारिणीम्।
पादुके चापि गृहीयात्कुर्यात्त्रान्यस्य संग्रहम्॥ ८

एतानि तस्य लिङ्गानि यतेः प्रोक्तानि धर्मतः।
संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुलमण्॥ ९

स्नात्या शुचय्य विधिवजलयुक्ताशुकेन वै।
वारिणा तर्पयित्वा तु मन्त्रवद्वास्करं नमेत्॥ १०

आसीनः प्राइमुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत्।
गायत्रीं च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत्यरं पदम्॥ ११

स्थित्यधर्मात्मनो नित्यं भिक्षाटनमधाच्चरेत्।
सायाह्नकाले विप्राणां गृहाणि विचरेत्यतिः॥ १२

श्रीहारीत मुनि कहते हैं—इसके बाद अब मैं संन्यासियोंका सर्वोत्तम धर्म बताऊंगा, जिसका आद्यमूर्वक अनुहान करके संन्यासी भवत्वनसे पुक्त हो जाता है। द्विजको बाहिने कि पूर्वोक्त रीतिसे बानप्रस्थ-आश्रममें रहो हुए तपस्याद्वारा पापोंको भ्रम करके, विभिर्पूर्वक संन्यास ले चौंमे आश्रममें प्रवेश करे। पहले बन्धपूर्वक देवताओं, ऋषियों और अपने पितरोंके लिये दिव्य लाङ्घ-सामार्पणका दान करे; इसी प्रकार ऋषियों, भूमुखों तथा अपने लिये भी आद्वीप वस्तुका दान करे। फिर वैष्णव, अथवा प्राज्ञापत्य याग करके, मन्त्रपाठपूर्वक अपने अन्तःकरणमें अग्निस्वापन करके संन्यासी हो, वहांसे चला जाय। उस दिनसे पुर आदिके प्रति आसक्तिको और सुख-लोभ आदिको त्याग दे। पृथ्वीपर समस्त प्राणियोंको अभय देनेके विभिन्न जलकी अड़ालि दे। गेशु (वौस)-का चना हुआ त्रिदण्ड धारण करे, जो सुन्दर और त्वचामुक हो, उसके थोर बारावर हो, काली गीके बालोंकी रससीमे वह चार अंगुलातक लपेटा गया हो। अथवा वह दण्ड तीन गोलोंसे युक्त हो, उसे जलसे पवित्र करके धारण करे। मन्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह मन्त्रपाठपूर्वक ही उस दण्डको दायें हाथमें प्राप्त करे॥ १—७॥

कौपीन (लैंगोटी), चादर, जड़ा दूर करनेवाली एक गुदड़ी तथा छहाँड़ी—इन्हीं चम्मुओंकी अपने पास रहे, अन्य वस्तुओंका संग्रह न करे। संन्यासीके ये ही यिह बहाये गये हैं। इन चम्मुओंका धर्मतः संग्रह करके संन्यासी पुरुष उल्लम्भीर्थमें जा, स्नान करके विधिवृत्त-आचरण करे। खानके बाद भीगे बस्त्रके जलसे सूर्योदयका मन्त्रपाठपूर्वक तपाण करके उन्हें प्राणाप करे। फिर पूर्वभिमुख बैठकर, भौंन हो, तीन प्राणायाम—पूरक, कुम्भक और रेचक करे तथा यथाशक्ति गायत्रीका जप करके पत्राद्वाका भ्यान करे। शरीरकी स्थिति (रक्षा)-के लिये प्रतिदिन भिक्षाटन करे। यतिको बाहिये कि संभ्राने के समय ब्राह्मणोंके घरोंपर भिक्षाके लिये धमण करे॥ ८—१२॥

स्यादथीं यावतात्रेन तावद्वैक्षं समाचरेत्।
ततो निवृत्य तत्पात्रमभ्युक्ष्याचम्य संयमी॥ १३

मूर्यादिदैवतेभ्यो हि दत्त्वात्रं प्रोक्ष्य वारिणा।
भुज्ञीत पर्णपुटके पात्रे वा वास्तवो यतिः॥ १४

बटकाशवस्थपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकपत्रयोः।
कोविदारकरडेषु न भुज्ञीत कदाचन॥ १५

भृत्याऽचम्य निरुद्धामुरुपतिष्ठेत भास्करम्।
जपथ्यानेतिहासेस्तु दिनशेषे नयेद्वातिः॥ १६

पलाशा: सर्वं उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः।
कांस्यस्येव तु यत्पात्रे गृहस्थस्य तथैव च।
कांस्यभोजी यतिः सर्वं प्राप्तुयात्मित्यिवर्णं पुनः।
भुज्ञपात्रे यतिर्नित्यं भक्षयेन्नपूर्वकम्।
न दुष्येनस्य तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव।
कृतसंघ्यसतो रात्रिं नयेदेवगृहादिषु।
हत्पुण्डरीकनिलये ध्यापत्रारायणं हरिष्म।
तत्पदं समवाप्नोति यत्प्राप्य न निर्वतीते॥ १७

इति श्रीकर्मिण्हपुराणे द्यौपत्रयोः नवं चतुर्तीत्याचापः॥ १४॥१
इति प्रकार श्रीकर्मिण्हपुराणमें 'विष्वर्णका वर्णन' नमस्करणार्थ अपाप्य पूर्ण हुआ॥ १५॥१

प्राप्तम् नवम्

इकसठवाँ अध्याय

योगसार

इतरीत उपाय

वर्णनापाश्रमाणां च कथितं धर्मलक्षणम्।
यतः स्वगापवर्गो तु प्राप्तुयुस्ते द्विजादयः॥ १
योगशास्त्रस्य वक्ष्यामि संक्षेपात्सारमुत्तमम्।
यस्याभ्यासवलाद्यान्ति मोक्षं चेह मुमुक्षवः॥ २॥

जितने अत्रको उसे उस समय आवश्यकता हो, उत्तरी ही भिक्षा मार्गे। फिर लौटकर उस भिक्षापात्रपर जलके छाटी देकर संयमी यति स्वयं भी आचमन करे। इसके बाद उस अत्रपर भी जलके छाटी देकर, उसे सूर्य आटि देवलाङ्गोंको निवेदन कर, पत्तेके दोने या पतलमें रखकर, वह संन्यासी पुरुष नौनधारसे भोजन करे। बट, पीपल, जलकुम्भी और तिन्दुकके पत्तोंपर तथा कोविदार और करंजके पत्तोंपर भी कभी भोजन न करे। भोजन समाप्त करके मुँह-हाथ भी, आचमन करके, प्राणवायुको रोक, सूर्यदेवको प्रणाम करे। नैतिक नियमोंके बाद जितना दिन शेष रहे, उसे संन्यासी पुरुष जप, ध्यान और इतिहास-पाठ आदिके द्वारा यत्तेवत करे। कौसेंके पात्रमें भोजन करनेवाले सभी यति 'पलाश' कहलाते हैं। यदि संन्यासी कौसेंका पात्र रहे तो वह गृहस्थके ही समान है; कठोरिक गृहस्थका भी तो ऐसा ही पात्र होता है। कौसेंके पात्रमें भोजन करनेवाला यति समस्त पात्रोंका भगवी होता है। यति जिस काल या मिट्टी आदिके पात्रमें एक जा भोजन कर चुका है, उसे भोक्तर पुनः उसमें मन्त्रणाडपूर्वक भोजन कर सकता है; उसका वह पात्र यह-पात्रोंके समान कभी दृष्टित नहीं होता। इसके बाद पश्चासपर संष्ठाकात्मिक नियमोंका पतलन करके देवमन्दिर आदिमें रात्रि व्याहोति करे, और अपने कुट्य-कामलके आसनपर भगवान् नारायणका ध्यान करे। यों करनेसे वह यति उस परमपदको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर पुनः लौटना नहीं पड़ता॥ १३—१७॥

श्रीहारीत मुनि कहते हैं — मुनियो! मैंने चारों वर्णों और चारों आक्रमोंके धर्मका स्वरूप जतलाया, जिसके प्राप्तमें उपर्युक्त चाहयनादि वर्णके स्वर्ण और मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं। अब मैं संक्षेपमें योगशास्त्रका उत्तम सारोंश वर्णन करूँगा, जिसके अध्याससे मुमुक्षु पुरुष इसी जन्ममें मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं॥ १८॥१

योगाभ्यासरतस्येह नश्येयुः पातकानि च।
तस्माद्योगपरो भूत्वा व्यायेन्नित्यं क्रियान्ते॥ ३

प्राणायामेन वचने प्रत्याहारेण चेन्निवयम्।
धारणाभिर्वशीकृत्य पुनर्दुर्धर्षणं यनः॥ ४

एकं कारणमानन्दवोधं च तमनामयम्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं व्यायेजगदाधारमच्युतम्॥ ५

आत्मानपरविन्दस्थं तपस्वामीकरप्रभम्।
रहस्येकान्तमासीत व्यायेदात्महादि स्थितम्॥ ६

यः सर्वप्राणचित्तज्ञो यः सर्वेषां हृषि स्थितः।
यश्च सर्वजनैर्ज्ञेयः सोऽहमस्मीति चिन्तयेत्॥ ७

आत्मलाभसुखं यावत्तावद्वशनमुदाहृतम्।
भूतिस्मृत्युदितं कर्म तत्तदृथं समाचरेत्॥ ८

यथाभ्यु रथहीनाश्च रथाद्वाद्विना यथा।
एवं तपश्च विद्या च उभावपि तपस्विनः॥ ९

यथाग्रं मधुसंयुक्तं मधु चाङ्गेन संयुतम्।
एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं महत्॥ १०

द्वाभ्यामेव हि पक्षाभ्यां यथा वै पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते यद्या शाश्वतम्॥ ११

विद्यातपोभ्यां सम्प्रत्रो द्वाहृणो योगतत्परः।
देहद्वन्द्वं विद्यायाशु मुक्तो भवति बन्धनात्॥ १२

न देवयानमार्गेण यावत्त्वामि परं पदम्।
न तावदेहलिङ्गस्य विनाशो विद्यते क्वचित्॥ १३

मया च कथितः सर्वो वर्णांश्रवयिभाग्नः।
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा पर्यन्तेषां सनातनः॥ १४

नारायणदेव उत्तमः

भूत्वैवमृषयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम्।
प्रणम्य तमृषिं जग्मुपुदितास्ते स्वभास्तयम्॥ १५

योगाभ्यासपरायण पुरुषके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः कलांत्र यक्षमंसे अवकाश मिलनेपर प्रतिदिन योगनिष्ठ होकर भ्याव करना चाहाँये। पहले प्राणायामके द्वारा वायोको, प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको और धारणके द्वारा दुर्धर्षण मनको तापमें करे। तत्प्रधातु जो सबके एकमात्र कामण, ज्ञानानन्दस्वरूप, अनापय और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तत्त्व है, उन जगदाधार अल्लुका श्याव करे। एकान्त स्थितमें अकेले बैठकर अपने हृदयमें कमलके आलानपर विराजमान, तथाये हुए सुषष्ठुके समान कानितमान, अपने आत्मस्वरूप भगवान्का चिन्तन करे। जो सबके प्राणों और चित्तकी ऐश्वर्योंको जानता है, सभोंके हृदयमें विराजमान है तथा समस्त प्राणियोंद्वारा जाननेयोग्य है—वह परमात्मा में ही है, ऐसो भावना करे। जबतक अपराह्नस्तकरत्नान्व सुखको प्रतीति हो, तभीतक श्याव करना आवश्यक यथाया गया है। उपर्युक्त उपरात्मा खींत और स्मार्त कर्मोंका अपराह्न सुखारक्षणसे करे॥ ३—८॥

इसे रथके विना छोड़े और चोहोंके विना रथ उपयोगी नहीं हो सकते, उसी प्रकार तपस्वीके तप और विद्याको विनिष्ठ भी एक-दूसरेरके जाग्रित हैं। जिस प्रकार अत्र मधु (योनी आदि)-से युक्त होनेपर योद्या होता है और मधु भी अक्षके मध्य ही मुस्कादु प्रतीत होता है, उसी प्रकार तप और विद्या—दोनों साथ रहकर ही भवतोरामके महान् औपर्युप होते हैं। जिस प्रकार पक्षी दोनों संख्योंसे ही उड़ सकते हैं, उसी प्रकार ज्ञान और कर्म—दोनोंसे ही सलालन प्रकृत्यकी प्रतीत ही रक्ती है। विद्या और तपसे सम्प्रत्र योगतत्पर द्वाहृण देहिक दुर्विद्योंको शोष्य ही त्वागकर भवत्यभ्याससे पुक्त हो जाता है। जबतक देवयानमार्गसे जाकर जोवको परमपदको प्राप्ति नहीं होती, तपतक लिङ्गस्तरोरक्त विनाश कर्त्ता हो नहीं सकता। द्विजवरी! इस प्रकार ज्ञानों और आश्रमोंके विभागपूर्वक यैने उन आश्रमोंके सम्पूर्ण सनातन धर्मका संक्षेपसे लर्णन कर दिया॥ ९—१५॥

प्राक्षेपिद्वयद्वी कहते हैं—इस प्रकार हारीत मुनिके मुखसे रक्तगं और भोगभक्त फलको देनेवाले धर्मका वर्णन सुनकर वे प्राप्तिगण उन मुनीश्वरको प्रणाम कर प्रसन्नतानुरूप अपने अपने रक्षानको नले गये।

धर्मशास्त्रमिदं यस्तु हारीतमुखनिस्मृतम्।
अत्वा च कुरुते धर्मं स वाति परमां गतिम्॥ १६
मुखजस्य तु यत्कर्म कर्म यद्वाहुजस्य तु।
कुरुजस्य तु यत्कर्म पादजस्य तथा तृष्ण॥ १७
स्वं स्वं कर्म प्रकुर्वाणा विप्राद्या यानि सद्गतिम्।
अन्यथा वर्तमानो हि सद्यः पतति वात्यधः॥ १८
यस्य येऽभिहिता धर्माः स तु तैस्ते: प्रतिष्ठितः।
तस्मात्स्वधर्मं कुर्यात् नित्यमेवमनापदि॥ १९
चतुर्वर्णाङ्कु राजेन्द्र चत्वारश्चापि चाश्रमाः।
स्वधर्मं येऽनुतिष्ठन्ति ते यानि परमां गतिम्॥ २०
स्वधर्मेण यथा तृष्णां नरसिंहः प्रतुष्टित।
वर्णधर्मानुसारेण नरसिंहं तथाचंयेत्॥ २१
उत्पत्त्रवैगायथलेन योगाद्
व्यायेत् परं छहु सदा क्रियायाम्।
सत्यात्मकं चित्सुखलपमाद्य
विहाय देहं पदमेति विष्णोः॥ २२

द्विं श्लोकान्तर्मुखी श्लोकाद्ये दूर्देहस्थितिः भवतः ८११ ८
इति उक्तं श्लोकमित्युक्तादेव 'द्विं श्लोकाद्' श्लोकां उक्तस्तत्त्वं भवतः ८१२ ८

पृष्ठा ८११ श्लोक ८१२ ८

बासठबाँ अध्याय

श्रीविष्णुपूजनके वैदिक मन्त्र और स्थान

श्रीमार्कण्डेय उक्ताच

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं लक्षणं तत्र।
भूयः कथय राजेन्द्र शश्रूषा तत्र का तृष्ण॥ १
महामन्त्रक उक्ताच

स्नात्वा वेशमनि देयेशपर्वयेदच्युतं त्विति।
त्वयोक्तं मम विष्णेन्द्र तत्कथं पूजनं भवेत्॥ २
वैर्मन्त्रैरच्यते विष्णुयेषु स्थानेषु ये मूने।
तानि स्थानानि तात्पन्नांस्त्वमाचक्ष्व महामूने॥ ३

जो भी हरीत मुखसे निगंत इस धर्मशास्त्रका श्रवण करके इसके अनुसार आचरण करता है वह परमण्डितको प्राप्त होता है। नरेश्वर! ब्राह्मण, खत्रिय, वैश्य और शूद्रके जो-जो कर्म वकारे गये हैं, उन-उन अपने-अपने वज्रोचित कर्मोंका पालन करनेवाले ब्राह्मण आदि सद्गुरियोंको प्राप्त होते हैं; इसके विपरीत आचरण करनेवाला पूरुष तत्काल नीचे गिर जाता है। जिसके लिये जो धर्म वकारे गये हैं, वह पूरुष उन्हीं धर्मोंसे प्रतिश्वित होता है। इसीलिये आपलिकालके अल्पतरिक सदा ही अपने धर्मका पालन करना चाहिये। राजेन्द्र! चार ही वर्ण और चार ही अश्रम हैं। जो स्लोग अपने वर्ण एवं आश्रमके उचित धर्मका पूर्णतया पालन करते हैं, वे परम गणितको प्राप्त होते हैं। भगवान् नरसिंह जिस प्रकार स्वधर्मका आचरण करनेसे मनुष्याद्य प्रसन्न होते हैं, वे से दूसरे प्रकारसे नहीं; इसीलिये वर्णधर्मके अनुसार भगवान् नरसिंहका पूजन करना चाहिये। जो पूरुष स्वकर्ममें तत्पर रहकर उत्पन्न हुए वैशायक, जलसे योगाभ्यासपूर्वक सदा सञ्जिदानन्दरक्षण, अनाहि ब्रह्मका भयन करता है, वह देह त्यागकर साक्षात् श्रीविष्णुपूजको प्राप्त होता है॥ १५—२२॥

श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! मैंने तुम्हें वर्णों और आश्रमोंका स्वरूप बताया। राजेन्द्र! अब कहो, तुम्हारे मनमें क्या सुननेकी इच्छा है॥ १॥

सहस्रानीक बोले—विष्णेन्! आपने बताया कि प्रतिदिन रात्रि करके अपने घरमें भगवान् अन्युतका पूजन करना चाहिये। अतः वह पूजन किस प्रकार होना चाहिये? महामूने! जिन मन्त्रोंहारा और जिन आधारोंमें भगवान् विष्णुको पूजा होती है, वे आधार और वे मन्त्र आप मुझे बताइये॥ २—३॥

श्रीकर्णडेव उत्तर

अर्चनं सम्प्रवक्ष्यामि विष्णोरमिततेजसः।
यत्कृत्वा मुनयः सर्वे परं निर्वाणमाप्नुयः॥ ५

अग्री क्रियावतां देवो हृदि देवो मनोषिणाम्।
प्रतिमास्वत्पवुद्गीनां योगिनां हृदये हरिः॥ ६

अतोऽग्री हृदये सूर्ये स्वर्णिङ्गले प्रतिमासु च।
एतेषु च हरे: सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम्॥ ७

तस्य सर्वमयत्वाच्च स्वर्णिङ्गले प्रतिमासु च।
आग्नुभस्य सूक्ष्मस्य विष्णुस्तस्य च देवता॥ ८

पुरुषो यो जगद्गीजं शशिनीराघणः स्मृतः।
दद्यात्पुरुषसूक्ष्मेन यः पुरुषाण्यप एव च॥ ९

अधितं स्याज्जगत्सर्वं तेन चै सच्चाचरम्।
आत्माऽवाहयेदेवपूर्वा तु पुरुषोत्तमम्॥ १०

द्वितीयाऽस्तनं दद्यात्पादं दद्यानृतीयया।
चतुर्थ्याधिर्विष्णुः प्रदातव्यः पञ्चम्याऽस्तमनीयकम्॥ ११

पष्ठुषा स्नाने प्रकुर्वीत सामग्या चस्त्रमेव च।
यज्ञोपवीतमष्टम्या नवम्या गन्धमेव च॥ १२

दशम्या पुण्ड्रदानं स्पादेकादश्या च धूपकम्।
द्वादश्या च तथा दीपं त्रयोदश्याच्चनं तथा॥ १३

चतुर्दश्या स्तुतिं कृत्वा पञ्चादश्या प्रदक्षिणम्।
षोडश्योद्ग्रासनं कुर्याच्छेषकपर्णिं पूर्ववत्॥ १४

स्नानं वस्त्रं च नैवेद्यं दद्यादाचमनीयकम्।
षणमासात्सिद्धिमाप्नोति देवदेवं समर्चयन्॥ १५

संबत्सरेण तेनैव सायुन्यमधिगच्छति।
हविषाग्री जले पूर्णघ्यानेन हृदये हरिम्॥ १५

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा— अच्छा, मैं आपिततेजस्यां पूजनान् विष्णुके पूजनकी विधि बता रहा हूं, जिसके अनुसार पूजन करके सभी मुनिगण परम निर्वाण (मोक्ष) पटको प्राप्त हुए हैं। अग्रिमे हृष्ण करनेवालेके हिते भगवान् का वास अग्रिमे है। ज्ञानियों और योगियोंके लिये अपने-अपने हृदयमें ही भगवान् की स्थिति है तथा जो थोड़ी चुड़िवाले हैं, उनके लिये प्रतिमामें भगवान् का निवास है। इसलिये अग्रि, सूर्य, हृदय, स्वर्णिङ्गल (नेत्री) और प्रतिमा—इन सभी आधारोंमें भगवान् का विभिन्नरूपके पूजन मुनियोंद्वारा बताया गया है। भगवान् सर्वमय हैं, अतः स्वर्णिङ्गल और प्रतिमाओंमें भी भगवान्पूजन उत्तम है॥ ५-६ १/॥

अब पूजनका मन्त्र बताते हैं। शुक्ल यजुर्वेदीय लक्ष्माण्याशीमें जो पुरुषसूक्त है, उसका उच्चारण करते हुए भगवान् का पूजन करना चाहिये। पुरुषसूक्तका अनुसृत हृन्द है, जगत्के कारणभूत परम पुरुष भगवान् विष्णु देवता है, नारायण ज्ञाति है और भगवत्पूजनमें उत्तरका लिनियोग है। जो पुरुषसूक्तसे भगवान् को पूल और जल अपेण करता है, उसके द्वारा सम्मूलं चराचर जगत् पूजित हो जाता है। पुरुषसूक्तको पहली ज्ञातामें भगवान् पुरुषोत्तमका आवाहन करता चाहिये। दूसरी ज्ञातामें आपन और तीसरीमें पाद अपेण करे। चौथी ज्ञातामें अर्घ्य और पौष्टिकीमें आचमनीय निवेदित करे। छठी ज्ञानामें स्नान कराये और सातवेंमें वस्त्र अपेण करे। आठवींमें यज्ञोपवीत और नवमी ज्ञातामें गन्ध निवेदन करे। दसवींमें फूल चढ़ाये और ग्यारहवीं ज्ञातामें धूप दे। बारहवींमें दीप और तेरहवीं ज्ञातामें नैवेद्य, फल, दक्षिणा आदि अन्य पूजन-सामग्री निवेदित करे। चौदहवीं ज्ञातामें सुति करके पंद्रहवींमें प्रदक्षिणा करे। अनन्तमें सोलहवीं ज्ञातामें विसर्जन करे। पूजनके बाद ज्ञेय कर्म पहले बताये अनुसार ही पूर्ण करे। भगवान् के लिये स्नान, वस्त्र, नैवेद्य और आचमनीय आदि निवेदन करे। इस प्रकार देवदेव परमात्माका पूजन करनेवाला पुरुष उः महीनेमें मिहिं प्राप्त कर लेता है। इसी क्रममें यदि एक वर्षतक पूजन करे तो वह भक्त सायुज्य मोक्षका अधिकारी हो जाता है॥ ७-१५ १/॥

विद्वान् पुरुष आग्नेयमें आहूतिके द्वारा, जलमें पूर्णके

अर्चनि सूरयो नित्यं जपेन रविमण्डले।
आदित्यमण्डले दिव्यं देवदेवमनामयम्।
शङ्खचक्रगदाधार्णं ध्यात्वा विष्णुमुपासते॥ १६

ध्येयः सदा सवितुमण्डलमध्यवती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्यमयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥ १७

एतत्पठन् केवलमेव सूक्तं
दिने दिने भावितविष्णुद्विदिः।
स सर्वपापं प्रविहाय वैष्णवं
पदं प्रयात्यच्युततुष्टिकुञ्जः॥ १८

पत्रेषु पुष्टेषु फलेषु तोषे-
चक्रीतलभ्येषु सदैव सत्सु।
भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे
मुक्तये किमर्थं किष्यते न यतः॥ १९

इत्येवमुक्तः पुरुषस्य विष्णो-
र्खाविधिस्तेऽद्य यथा तुषेन।
अनेन नित्यं कुरु विष्णुपूजां
प्रामुः तदिष्टु यदि वैष्णवं पदम्॥ २०

इति श्रीनरसिंहपुण्याणे विष्णोरवतीर्तिविष्टय द्विष्टहितोऽध्यायः ॥ १६-२०
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुण्याणे 'भगवान् विष्णुको पूजा-विधि' नामक वास्तविक आधार पूरा मुझे ॥ १६-२०

* * *

तिरसठवाँ अध्याय

अष्टाव्याप्त-मन्त्रके प्रभावसे इन्द्रका स्त्रीयोनिसे उद्धार

सहस्रानीक उकाय

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् वैदिकः परमो विधिः।
विष्णोदेवातिदेवस्य पूजनं प्रति मेऽध्युना॥ १
अनेन विधिना ब्रह्मन् पूज्यते मधुसूदनः
वेदद्वैतव नार्यस्तु तस्यात्सर्वंहितं वद॥ २

द्वारा, इदयमें भगवान्हारा और सूर्यमण्डलमें जपके द्वारा भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं। वे भक्तजन सूर्यमण्डलमें दिव्य, अनामय, देवदेव शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए उनकी उपासना करते हैं। जो केवल, मकराकृतिकुण्डल, किरीट, हार आदि आभूषणोंसे भूषित हो, हाथमें शङ्ख-चक्र धारण किये कमलासनपर विगुडमान हैं तथा जिनके शरीरकी कानि सुखर्णके सम्मान देखेण्यमान हैं, सूर्यमण्डलके मध्यमें विराजमान उन भगवान् नारायणका सदा ध्यान करे। जो प्रतिदिन बुद्धिमें भगवान् विष्णुको भावना करके केवल इस 'ध्येयः सदा'.....' इत्यादि सूक्तका पाठमात्र ही कर लेता है, वह भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाला पुरुष सब चारोंसे मुक्त हो विष्णुधामको पहुँच जाता है। जिना मूल्यके ही विलनेवाले पूजनोपचार—पत्र, पुष्प, फल और जलके सदा रहते हुए तथा एक मात्र भक्तिसे ही मूलभ होनेवाले भगवान् पुराण-पुराणके होते हुए मनुष्यहारा भुक्तिके लिये प्रशंस कर्यो नहीं किया जाता? अर्थात् उक्त मूलभ उपचारोंसे भगवान्का पूजन करके लोग मोक्ष प्राप्तेके लिये बहु कर्यो नहीं करते? ॥ १५-१९ ॥

तुष्टवर! इस प्रकार यह परमपुरुष भगवान् विष्णुकी पूजा-विधि आज मैंने तुम्हें बतायी है। यदि तुम्हें वैष्णव-पद प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो इस विधिके द्वारा सदा भगवान् विष्णुको पूजा करो ॥ २० ॥

सहस्रानीक बोले—ब्रह्मन्! इस समय आपने देवादेवेश्वर भगवान् विष्णुके पूजनकी यह उत्तम वैदिक विधि बतायी, वह विलकृत ठोक है; परंतु ब्रह्मन्! इस विधिसे तो केवल वेदज्ञ पुरुष ही मधुसूदनकी पूजा कर सकते हैं, दूसरे लोग नहीं; इसलिये आप ऐसी कोई विधि बताइये, जो सबके लिये उपयोगी हो ॥ १-२ ॥

श्रीमर्कण्डेश्वर उक्तव्य

अष्टाक्षरेण देवेशं नरसिंहमनामयम्।
गन्धपुष्पादिपर्वित्यमर्चयेदच्युतं चरः॥ ३
राजग्रामाक्षरो मन्त्रः सर्वपापहरः परः।
समस्तयज्ञफलदः सर्वशान्तिकरः शुभः॥ ४
३० नमो नारायणाय।

गन्धपुष्पादिसकलमनेनैव निवेदयेत्।
अनेनाभ्यर्थितो देवः प्रीतो भवति तत्क्षणात्॥ ५
किं तस्य बहुभिर्दीर्घैः किं तस्य बहुभिर्दीर्घैः।
३० नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥ ६
इयं मन्त्रं जपेष्टस्तु शुचिर्भूत्वा समाहितः।
सर्वपापविनिर्मुको विष्णुसायुन्यमाप्नुयात्॥ ७
सर्वतीर्थफलं ह्रेतत् सर्वतीर्थवरं नुप।
हरेरचंगमव्ययं सर्वयज्ञफलं नुप॥ ८
तस्माल्कुरु नुपशेषु प्रतिपादिषु चार्चनम्।
दानानि विष्णुभुखेभ्यः प्रथम्य विधिना नुप।
एवं कुरु नुपशेष नरसिंहप्रसादादतः।
प्राप्नोति वैष्णवं तेजो यत्काङ्क्षान्ति मुमुक्षवः॥ ९
पुरा पुरंदरो राजन् स्त्रीत्वं प्राप्नोऽप्यपर्यन्तः।
तृणविन्दुमुनेः शाणान्मुको हृष्टाक्षराज्ञपात्॥ १०

महाकाशीक उक्तव्य

एतत्कथय भूदेव देवेन्द्रस्याधमोचनम्।
कोऽप्यर्थः कथं स्त्रीत्वं प्राप्नो मे बद कारणम्॥ ११
श्रीमर्कण्डेश्वर उक्तव्य

राजेन्द्र महादात्यानं शृणु कौतुहलान्वितम्।
विष्णुभक्तिप्रजननं शृणवतां पठतामिदम्॥ १२
पुरा पुरंदरस्यैव देवराज्यं प्रकुर्यातः।
वैराग्यस्यापि जननं सम्भूतं बाहुबास्तुषु॥ १३
इन्द्रसदाभृद्विषयमस्वभावो
राज्येषु भोगेष्वपि सोऽप्यचिन्तयन्।
धूतं विरागीकृतमानसानां
स्वर्गस्य राज्यं न च किञ्चिदेव॥ १४

श्रीमर्कण्डेश्वरी बोले—मनुष्यको चाहिये कि वह अष्टाक्षर मन्त्रसे निरामय देवे भर भगवान् नरसिंहका गन्ध-
पुष्प आदि उपचारोंद्वारा प्रतिदिन पूजन करे। राजन्! यह अष्टाक्षर मन्त्र समस्त पापोंको हर देनेवाला, समस्त यज्ञोंका फल देनेवाला, सब प्रकारकी शान्ति प्रदान करनेवाला एवं परम शुभ है। मन्त्र यों हैं—‘३० नमो नारायणाय।’ इसो मन्त्रसे गन्ध आदि समस्त सामग्रियोंको अपर्याप्त करे। इस मन्त्रसे पूजा करनेपर भगवान् विष्णु तत्काल प्रसन्न होते हैं। मनुष्यके लिये अन्य बहुत-से मन्त्रों और छोटोंकी कथा आवश्यकता है। केवल ‘३० नमो नारायणाय’—यह मन्त्र ही समस्त मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। जो खानादिसे पवित्र होकर एकाग्रार्थितसे इस मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके मानुष्यको प्राप्त होता है॥ ३—७॥

नरेश! तान्त्रभावसे भगवान् विष्णुका पूजन करना ही सब तीर्थों और यहोंका फल है तथा सभूती तीर्थोंसे बढ़कर पवित्र है। अतः नरेश! तुम प्रतिमा आदिमें विष्णुर्वंक भगवान्का पूजन करो और ऐसे ज्ञानपाठोंको दान दो। नृपलेष्ट! यों करनेसे भक्त पुरुष उस तेजोमय वैष्णवधारको प्राप्त होते हैं, जिसको मुमुक्षुलोग सदा अभिलाषा किया करते हैं। राजन्! पूर्वकालमें इन्द्र भक्तें विष्णोर्त आत्मरण करके तुष्णिन्द्रु मुनिके शापसे स्त्री-योनिको प्राप्त हो गये थे; परंतु इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करनेसे ये पुनः उस योनिसे मुक्त हो गये॥ ८—१०॥

सहस्रानीक बोले—भूमिदेव! देवराज इन्द्रको जो शाप एवं शापसे सूटकारा मिला, उस प्रसङ्गका वर्णन कीजिये। उहोंने जौन-सा अधर्म किया था और किस कारण स्त्रीयोनिको प्राप्त हुए—वह सब भी चताइये॥ ११॥

श्रीमर्कण्डेश्वरीने कहा—उवेद्र! मूरो, यह उपाख्यान बहुत यहा तथा कौतुहलसे भरा हुआ है। जो लोग इसे मुक्ते और नक्ते हैं उनके हृदयमें यह आख्यान विष्णुभक्ति उत्पन्न करता है॥ १२॥

पूर्वकालके बात है, एक समय देवलोकका राज्य भोगते हुए इन्द्रके लिये उनका यह सम्भव ही बाहु वस्तुओंमें वैराग्यका कारण बन गया। उस समय इन्द्रका स्वभाव राज्य-कार्यों और भोगोंकी प्रति विषम (वैराग्यपूर्ण) हो गया। ये सोचने समें—‘यह निषिद्ध है कि विरक्त

राज्यस्य सारं विषयेषु भोगो
 भोगस्य चान्ते न च किंचिदिस्ति।
 विमृश्य चैतन्मुनयोऽप्यजलं
 पोक्षाधिकारं परिचिन्तयन्ति ॥ १५
 सदैव भोगाय तपःप्रवृत्ति-
 भौंगावसाने हि तपो विनष्टम्।
 मैत्र्यादिसंयोगपराद्युखानां
 विमुक्तिभाजां न तपो न भोगः ॥ १६
 विपृश्य चैतत् स सुराधिनाथो
 विपानपारुण्यं सकिञ्चिणीकम्।
 नूनं हराराधनकारणेन
 कैलासमध्येति विमुक्तिकामः ॥ १७
 स एकदा मानसमागतः मन्
 संवीक्ष्य तां यक्षपतेश्च कान्ताम्।
 समर्चयन्ती गिरिजापिण्ड्युगमं
 अवजाभिदानद्वयमहारथस्य ॥ १८
 प्रधानजाप्यनुनदशुद्धवणी
 कणान्तसंलग्नप्रयनोऽनेत्राम् ।
 सुसूक्ष्मवस्त्रान्तरदृशयगाप्रां
 नीहारमण्यादिव चन्द्रलेखाम् ॥ १९
 तां चीक्ष्य वीक्षणसहस्रभरेण कामं
 कामाङ्गोहितपतिनं यदी तदानीम्।
 दूराध्यगं स्वगुह्येत्य सुसंचिताचं-
 स्तस्थी तदा सुरपतिर्विषयाभिलाषी ॥ २०
 पूर्वं वरं स्यात् सुकुलेऽपि जन्म
 ततो हि सर्वाङ्गशीरस्यपम्।
 ततो धनं दुर्लभपेत् पञ्चा-
 द्वनाधिपत्यं सुकृतेन सम्यम् ॥ २१
 स्वर्गाधिपत्यं च मया प्रलब्धं
 तथापि भोगाय न चास्ति भाग्यम्।
 चः स्वं परित्यन्य विमुक्तिकाम-
 स्तिष्ठापि मे दुर्मीतिरस्ति चित्ते ॥ २२

हृदयबाले पुरुषोंकी दृष्टिमें स्वर्गका राज्य कुछ भी महत्व
 नहीं रखता। राज्यका सार है—विषयोंका भोग तथा
 भोगके अन्तमें कुछ भी नहीं रह जाता। यहीं सोचकर
 मुनिगण सदा ही मोक्षाधिकारके विषयमें ही विचार
 करते हैं। सोगोंकी सदा भोगके लिये ही तपमें प्रवृत्ति
 हुआ करती है और भोगके अन्तमें तप नह हो जाता
 है। परंतु जो लोग मैत्री आदिके द्वारा विषय-सम्पर्कसे
 विमृश्य ही गये हैं, उन योक्षभागी पुरुषोंको न तपकी
 आवश्यकता होती है न योगको! इन सब जातोंका
 विचार करके देवराज इन्द्र शुद्धप्रिणारोंको भवनिये
 मुख विघ्नानपर आरुद्ध हो भगवान् भक्तकी आराधनाके
 लिये कैलासपर्वतपर चले आये। उस समय उनके मनमें
 एकमात्र मोक्षकी कामना रह गयी थी ॥ १३—१७ ॥

कैलासपर रहते समय इन्द्र एक दिन भूमते हुए
 परानसपरावरके तटपर आये। वहाँ उन्होंने यात्रीजीके
 मुग्धलवल्लविन्दोका पूजन करती हुई यक्षराज कुवेरकी
 प्रणालीभा चित्रसेनाको देखा। जो कामदेवके महान्
 रथकी झड़ा सौ जान पढ़ती थी। उनमें 'आम्बुद'
 नामक सुखरोके समान उसके अङ्गोंकी दिव्य कानिं
 थी। अँखें बही बही और मनोहर थीं, जो कानके
 पासतक धूंच गयी थीं। महान् माझीके भीतरसे उसके
 मनोहर अङ्ग इस प्रकार झलक रहे थे, मानो कुहासेके
 भीतरसे चन्द्रलेखा दृष्टिगोचर हो रही हो। अपने हजार
 देवोंसे उस देवीको इच्छानुसार निहारते ही इन्द्रका हृदय
 कामसे मोहित हो गया। उस समय वे दूरके रास्तेपर
 स्थित अपने आक्रमपर नहीं गये और सम्यूर्ण मनोरथोंकी
 मनमें लिये देवराज इन्द्र विषयाभिलाषी हो खड़े हो गये।
 वे सोचने लगे—'पहले तो उनमें कुलमें जन्म पा जाना
 ही बहुत यड़ी बात है, उसके बाद सर्वाङ्ग-सीन्द्र्यं और
 उसपर भी धन तो सदैव ही दुर्लभ है। इन सबके बाद
 धनाधिप (कुवेर) होना तो पुण्यसे ही सम्भव है। मैंने
 इन सबसे बड़े स्वर्गके आधिपत्यको प्राप्त किया है, फिर
 भी मेरे भाग्यमें भोग भोगना नहीं बदा है। मेरे
 चित्तमें ऐसी दुर्बुद्धि आ गयी है कि मैं स्वर्गका
 मुखभोग क्षोड़कर यहीं मुक्तिकी इच्छासे आ पड़ा है।

मोक्षोऽमुना यद्यपि मोहनीयो
मोक्षेऽपि किं कारणपस्ति राज्ये।
क्षेत्रं सुपक्षं परिहृत्य द्वारे
किं नाम चारण्यकृष्णं करोति॥ २३
संसारदुःखोपहता नरा ये
कर्तुं समर्था न च किञ्चिदेव।
अकर्मणो भाग्यविवर्जिताशु
वाजहनि ते मोक्षपर्यं विमूरा॥ २४
एतद्विमूर्श्य बहुधा मतिमान् प्राचीरो
रूपेण मोहितमना धनदाङ्गनायाः।
सर्वाधिराकुलपतिः परिमुक्तधीर्यः
सम्पार मारममराधिपचक्षवती॥ २५
समागतोऽसौ परिमद्दमदं
कापोऽतिकामाकुलचित्तवृत्तिः।
पुरा महेश्वरं कृताङ्गनाशो
दीयालयं गच्छति को विशङ्कः॥ २६
आदिशयतां नाथ यदस्ति कार्यं
को नाम ते सम्प्रति शब्दभूतः।
शीघ्रं समादेश्य मा विलम्बं
तस्यापदं सम्प्रति भो दिशामि॥ २७
श्रुत्वा तदा तस्य बचोऽधिरायं
मनोगतं तत्परमं तुलोच।
निष्प्रभ्रम्य सहस्रै भृत्या
जगाद वाक्यं स विहस्य चीरः॥ २८
रुद्रोऽपि येनार्धशरीरमात्र-
श्वकेऽन्यनङ्गत्वमुपागतेन
सोऽहं समर्थोऽयं परोऽपि लोके
को नाम ते मार शराभिषात्म॥ २९
एकाग्रचित्ता गिरिजाचर्नेऽपि
या मोहयत्येव यमात्र चित्तम्।
एतामनङ्गायतलोचनाख्यां
मदङ्गसङ्गैकरसां विधेहि॥ ३०
स एवमुक्तः सुरवधेन
स्वकार्यभावाधिकगौरवेण
संधाय वाणं कुमुमायुधोऽपि
सम्पार मारः परिपोहनं सुधीः॥ ३१

मोक्ष-मुख तो इस राज्य-भोगद्वारा भोह लिया जा सकता है, परंतु क्या मोक्ष भी राज्य-प्राप्तिका कारण हो सकता है? भला, अपने द्वारपर पके अन्तर्से युक्त खेतको छोड़कर कोई जंगलमें खोती करने क्यों जायगा? जो सांसारिक दुःखसे मारे-मारे फिरते हैं और कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं रखते, वे ही अकर्मण्य, भाग्यहीन एवं मूढ़जन्म मोक्षमार्गको इच्छा करते हैं॥ १८—२४॥

इन सब बातोंपर यारेवार विचार करके देवेश्वरोंके चक्रवर्ती सज्जाद बुद्धिमान् बीरवर इन्द्र कुञ्जेवपली चित्तसेनाके रूपपर मोहित हो गये। समस्त मानसिक वेदनाओंसे ज्याकुल हो, ऐरे खोकर ये कामदेवका स्वरूप करने लगे। इन्द्रके स्वरूप करनेपर अत्यन्त क्षमनाओंमें उक्त चित्तवृत्तिवाला कामदेव बहुत धीरे-धीरे डरता हुआ यहीं आया; क्योंकि वहीं पूर्वकालमें शंकरजीने उसके शरीरको जलाकर भस्म कर दिया था। क्यों न हो, प्राणसंकटके स्थानपर धीरतापूर्वक और निर्भय होकर कौन जा सकता है? कामदेवने आकर कहा—'नाथ! मुझसे जो कार्य लेना हो, आज्ञा कीजिये; बताइये तो सही, इस समय कौन आपका शत्रु बना हुआ है? जोप्र बताइये, विलम्ब न कीजिये; मैं अभी उसे आलिमें डालता हूँ'॥ २५—२७॥

उस समय कामदेवके उस मनोभिराम वचनको सुनकर मन-ही-मन उसपर विचार करके इन्द्र बहुत संतुष्ट हुए। अपने मनोरूपको सहसा सिद्ध होते जान बीरवर इन्द्रने हीसकर कहा—'कामदेव! अनङ्ग बन जानेपर भी तुमने जब शंकरजीको भी आधे शरीरका बना दिया, तब संसारमें दूसरा कौन तुम्हारे उस शराभातको सह सकता है? अनङ्ग! जो गिरिजापूजनमें एकाग्रचित्त होनेपर भी भीरे मनको विक्षय ही भोहे लेती है, उस विशाल नदनोंवाली सुन्दरीको तुम एकमात्र मेरे अङ्ग-सङ्गकी सरस भावनासे युक्त कर दो'॥ २८—३०॥

अपने क्षर्यको अधिक महत्व देनेवाले सुरराज इन्द्रके यो कहनेपर उल्लम बुद्धिवाले कामदेवने भी अपने पुष्पमय अनुपर पाण रखकर मोहन-मन्त्रका स्मरण किया।

सम्पोहिता पुष्पशोरण बाला
कामेन कामं मदविद्वलाङ्गी।
विहाय पूजां हसते सुरेण
कः कामकोदण्डरथं सहेत ॥ ३२
विलोलनेत्रे अयि कासि बाले
सुराधिषो बाक्यमिदं जगाद।
सम्पोहयनीव मनांसि पुंसां
कस्येह कान्ता वद पुष्पभाजः ॥ ३३
उक्तापि बाला मदविद्वलाङ्गी
रोमाङ्गुसंस्थेदसकम्प्यगात्रा ।
कृताकुला कामशिरलीभुखेन
सगद्रदं बाक्यमुवाच मन्दम् ॥ ३४
कान्ता धनेशस्य च यक्षकन्या
प्राप्ता च गौरीचरणाचंनाय ।
प्रबृहि कार्यं च तथास्ति नाथ
कस्यं वदेस्तिष्ठुसि कामकृषः ॥ ३५
इति उक्तम्
सा त्वं समागच्छ भजस्व मां चिरा-
मदङ्गमङ्गोत्सुकतां ऋजाशु ।
त्वया विना जीवितमव्यवनस्यं
स्वर्गस्य रान्यं यम निष्कर्त्ता स्यात् ॥ ३६
उक्ता च सैवं मधुरं च तेन
कंदर्पसंतापितचारुदेहा ।
विमानमारुद्धा चलत्यताकं
सुरेशकण्ठग्रहणं चकार ॥ ३७
जगाम शीघ्रं स हि नाकनाथः
साकं तया मन्दरकन्दरासु ।
अदृष्टदेवासुरसंचरासु
विचित्रवाङ्कुरभासुरासु ॥ ३८
रेते तया साकमुदारवीर्य-
शुक्रं सुरेश्वर्यगतादरोऽपि ।
स्वयं च यस्या लघुपुष्पशश्यां
चकार चातुर्पैनिधिः सकामः ॥ ३९
जातः कृतार्थोऽमरवृद्धनाथः
सकामभोगेषु सदा विदधः ।
मोक्षाधिकं स्वेहरसातिमृष्टे
पराङ्गनालिङ्गनसङ्गसीखम् ॥ ४०

तब कामदेवद्वारा पुष्पवाणसे मोहित को हुई वह बाला
अपने समूलं अङ्गमें मदके ड्रेकसे बिछुल हो गयी
और पूजा छोड़ इन्द्रको और देखकर मुक्ताने लगी।
भला, कामदेवके घनुषकी ठंकार कौन सह सकता
है ॥ ३१—३२ ॥

इन्द्र उसको अपनी ओर निहारते देखकर वह वचन
बोले—‘बिछुल नेत्रोक्ताली बाले। तुम कौन हो, जो पुरुषोंके
मनको इस प्रकार भोगे लेती हो? बताओ तो, तुम किस
पुष्पवाणको पल्ली हो?’ इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर उसके
अङ्ग महसे बिछुल हो उठे। शरीरमें रोमाङ्ग, स्वेद और
कम्प होने लगे। वह कामवाणसे व्याकुल हो गदाद-
कण्ठसे धीर-धीर इस प्रकार बोली—‘नाथ! मैं धनाधिप
कुबेरकी पत्नी एक यक्षकन्या हूं। पार्वतीजीके चरणोंको
पूजा करनेके लिये यहाँ आयी थी। आप अपना कार्य
बताइये; आप कौन है? जो साक्षात् कामदेवके समान रूप
भाज किये यही खड़े है?’ ॥ ३३—३५ ॥

इन्द्र बोले—‘प्रिये! मैं स्वर्णका राजा इन्द्र हूं। तुम मेरे
पास आओ और मुझे अपनाओ तथा चिरकालात्मक भैर
अङ्ग-सङ्गके लिये शीघ्र ही उत्सुकता धारण करो। देखो,
तुम्हारे विना मेरा यह जीवन और स्वर्णका विशाल गम्य
भी अर्थ हो जायगा ॥ ३६ ॥

इन्द्रने मधुर बालीमें जब इस प्रकार कहा, तब उसका
मुन्दर शरीर कामदेवनासे पीड़ित होने लगा और वह
फहराती हुई पतलाकम्भीसे सुरोभित विमानपर आरुद्ध हो
देवराजके फण्ठसे लग गयी। तब स्वर्णकी राजा इन्द्र शीघ्र
ही उसके साथ मन्दराचलकी उन कन्दराओंमें चले गये,
जहाँका यारं देवता और असुर—दोनोंकी ही दृष्टिमें नहीं
आया था और जो विचित्र रूपोंकी प्रधासे प्रकाशित थीं।
आकृत्य है कि देवताओंके राज्यके प्रति आदर न रखते हुए
भी वे उदारपणकमी इन्द्र उस मुन्दरी यक्ष-बालके साथ
बहाँ रमण करने लगे तथा कामके वशीभृत हो परम चतुर
इन्द्रने अपने हाथों विचित्रसेनाके लिये शीघ्रतापूर्वक छोटी-
सी पुष्पहृष्टा हैरान की। कामोपभोगमें परम चतुर देवराज
इन्द्र विचित्रसेनाके समग्रमसे कृतार्थताका अनुभव करने
लगे। शोहरसे अशन्त मधुर प्रतीत होनेवाला यह परस्वीके
आतिझून और समागमका सुख उन्हें भोक्तसे भी बदूकर
जान पड़ा ॥ ३७—४० ॥

अथागता यक्षपते: समीपं
नार्योऽनुवर्ण्येव च चित्रसेनाम्।

सप्तप्थपा: सप्तप्थपिण्डश्रगाप्राः
सगद्दं प्रोच्युरसाहस्राः ॥ ४१

नूनं समाकर्णय यक्षनाथ
विमानमारोप्य जगाम कक्षित्।

संवीक्ष्माणः कक्षभोऽपि कान्ता
विगृहा वेगादिह सोऽपि तस्करः ॥ ४२

वचो निशम्याथ धनाधिनाथो
विषोपाप्य जातपरीनिभाननः।

जगाद् भूयो न च किञ्चिदेव
बभूव वै वृक्ष इवाग्निदग्धः ॥ ४३

विज्ञापितार्थो वरकन्यकापि-
यैक्षिप्रसेनासहचारिणीपिः ।

मोहापनोदाय मतिं दधानः
स कण्ठकुब्जोऽपि समावगाम ॥ ४४

श्रुत्वाऽऽगते यीक्ष्य स राजाराज
उन्मीलिताक्षो वचने जगाद्।

विनिःश्वसन् गाढसकम्पगात्रः
स्वस्थं यनोऽप्याशु विधाय दीनः ॥ ४५

तद्वीवर्णं यशुवतीविनोदो
धनं तु चैतत्त्वजनोपयोगि।

तद्वीवितं यस्त्रियते सुधर्ष-
स्तदाधिपत्यं यदि नष्टविग्रहम् ॥ ४६

पितृमे धनं जीवितमत्यन्त्यं
राज्यं वृहत्सप्तति गुहाकानाम्।

विशामि जाग्रिं न च वेद कक्षित्
पराभवोऽस्तीति च को मृतानाम् ॥ ४७

पाश्चं स्थितस्यापि च जीवतो मे
गता तद्वागं गिरिजार्चनाय।

हुता च केनापि वर्यं न विदो
धुयं न तस्यास्ति भव्यं च मृत्योः ॥ ४८

जगाद् वाक्यं स च कण्ठकुब्जो
मोहापनोदाय विभोः स मन्त्री।

आकर्ण्यतां नाथ न चास्ति योग्यः
कान्तावियोगे निजदेहधातः ॥ ४९

इपरि इन्द्र जब चित्रसेनाको सोकर भन्दराखलपर चले आये, तब उसको सङ्किनी स्त्रियों उसे साथ लिये बिना ही यक्षराज कुबेरके समीप वेगपूर्वक आयी। वे दुसराहसदे अनभिज्ञ थीं, अतः एक्षणहटके कारण उनके सारे शरीरमें रक्षा हो रही थीं। वे गद्द कण्ठसे बोलीं—'दक्षपते! निष्ठय हो आप हमारे यह बात मूर्ने—आपको भार्या चित्रसेनाको किसी अहात पुलवने पकड़कर विमानपर बिठा लिया और चारों ओर सकारात्मकाएँ देखता हुआ वह चोर बड़े लोगसे कहीं चला गया है' ॥ ४१—४२।

विषोपाप्य समान दुम्हान प्रतीत होनेवाली इस बातको मूर्नेसे धनाधिप कुबेरका मुँह काला पड़ गया। वे अश्रिते जले हुए चुक्षके समान हो गये। उस समय उनके मुखसे कोई बात नहीं निकली। इसी समय चित्रसेनाकी सहचरी लेह चक्ष-कन्याओंसे यह समाचार जानकर कुबेरका मन्त्री कण्ठकुब्ज भी अपने स्वामीका मोह दूर करनेके लियारसे बहीं आया। उसका आपमन सुन राजवाच कुबेरने आँखें खोलकर उसकी ओर देखा और लंबो सौम चीरोंहुए हुए अपने चितको यथासम्भव हीम संभालकर वे दीनभावसे बोले। उस समय उनका शरीर अस्थन कम्पियत हो रहा था ॥ ४३—४४।

वे छहने लगे—'यही यीवन सफल है, जिससे पुष्टलीका मनोऽक्षन हो सके; धन भी यही स्वर्धक है, जो आत्मीय जनोंके उपयोगमें आ सके। जीवन वह सफल है, जिससे सद्गमं किया जाय और प्रभुत्व वहीं स्वर्धक है, जिसमें युद्ध और कलहके भूल नहीं हो गये हैं। इस समय मेरे इस विपुल भनको, गुहाकोंके इस विशाल राज्यको और मेरे इस जीवनको भी पिलार है। अभीलक मेरे इस अपमनको कोई नहीं जानता; अतः इसी समय अश्रिते जल मर्हेंगा। पीछे यदि इस समाचारको सोग जान भी लें भी क्या? मृत पुरुषोंका मर्या अपमन होगा? हा! वह मनसासरोवरके तटपर गिरिजा-पूजनके लिये गयी थीं। यहीं निकट झो था और जीवित भी रहा; तो भी किसीने उसे हर लिया। हम नहीं जानते वह कौन है। वे समझता हूँ, अपश्य ही उस दुष्टको मृत्युका भय नहीं है' ॥ ४५—४६॥

स्वामीकी यह बात सुनकर उनका मोह दूर करनेके लिये कुबेरके उस मन्त्री कण्ठकुब्जने यह वचन कहा—'नाथ! सुनिये, स्त्रीके वियोगमें शरीर-स्थान आपके लिये उचित नहीं है।

एका पुरा रामवधूहृता च
निशाचरेणापि मृतो न सोऽपि ।
अनेकशः सन्ति तवात्र नार्यः
को नाम वित्ते क्रियते विषादः ॥ ५०
विमुच्य शोकं कुरु विक्रमे भृति
धैर्यं समालम्बय यश्वराज ।
भृशं न जल्पन्ति रुदन्ति साधवः
पराभवं बाहुकृतं सहन्ते ॥ ५१
कृतं हि कार्यं गुरु दर्शयन्ति
सहायवान् वित्तप क्रातरेऽसि किम् ।
सहायकार्यं कुरुते हि सम्प्रति
स्वयं हि यस्यावतजो विभीषणः ॥ ५२

भगवन्नक्षम

विभीषणो मे प्रतिपक्षभूतो
दायादभावं न विमुच्छतीति ।
धूर्यं प्रसन्ना न भवन्ति दुर्जनाः
कृतोपकारा हरिवरुनिमुताः ॥ ५३
न चोपकारीन् गुणीन् सीहृदैः
प्रसादमायाति मनो हि गोत्रिणः ।
उखाच बाक्यं स च कण्ठकुब्जो
युक्तं त्वयोक्तं च धनाधिनाथ ॥ ५४
परम्परं धृन्ति च ते विरुद्धा-
स्तथापि लोके न पराभवोऽस्ति ।
पराभवं नान्यकृतं सहन्ते
नोक्ता जले ज्यालयते तुणाणि ॥ ५५
तस्मात्समागच्छ धनाधिनाथ
पार्श्वं च वेगेन विभीषणस्य ।
स्वयाहुवीर्याञ्जितवित्तभोगिनां

स्वखन्युवर्गेषु हि को विरोधः ॥ ५६
इत्युक्तः स तदा तेन कण्ठकुब्जेन मन्त्रिणा ।
विभीषणस्य सामीक्ष्यं जगामाशु विचारयन् ॥ ५७
ततो लक्ष्माधिपः श्रुत्वा बान्धवं पूर्वजं तदा ।
प्राप्तं प्रत्याजगामाशु विनयेन समन्वितः ॥ ५८
ततो विभीषणो दृष्ट्वा तदा दीनं च बान्धवम् ।
संतप्तमानसो भूप जगादेदं वचो महत् ॥ ५९

पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी एकमात्र पक्षी सींताको भी निशाचर यशस्वने हर लिया था, परंतु श्रीरामचन्द्रजीने प्राप्त नहीं त्वया । आपके यहाँ तो अनेक स्त्रियाँ हैं, फिर आप मनमें यह कैसा विषाद ला रहे हैं? यक्षराज! शोक त्वयांकर पराक्रममें मन लगाइये; धैर्यं धारण कीजिये । सामु पुरुष बहुत जाति नहीं बनाते और न बैठकर रोते ही हैं; वे दूसरोंके द्वारा परोक्षमें किये हुए अपने अपमानको उस समय चुपचाप सह लेते हैं । वित्तपते! महामुरुष समय अपेक्षा महान् कार्य कर दिखाते हैं । आपके तो अनेक सहायक हैं, आप क्यों कातर हो रहे हैं? इस समय तो आपके छोटे भाईं विभीषण स्वयं ही आपकी सहायता कर रहे हैं ॥ ५४—५२ ॥

कुबेर बोले—विभीषण तो मेरे विपक्षी ही बने हुए हैं, वे अब भी मेरे साथ कौटुम्बिक विरोधका त्वया नहीं करते । यह निश्चित बात है कि दुर्जन पुरुष उपकार फरनेपर भी प्रसन्न नहीं होते, वे इन्द्रके वज्रके सदृश कठोर होते हैं । मणोऽक्षका यन उपकारोंमें, गुणोंमें अधका विशेष भी प्राप्त नहीं होता ॥ ५३ ॥

यह सुनकर कण्ठकुब्जने कहा—‘धनाधिनाथ! आपने लौक कहा है । विरोध होनेपर समग्रेत युह्य अवश्य ही परम्परा यात्-प्रतिक्षात् करते हैं, तथापि लौकमें उनका पराभव नहीं देखा जाता; क्योंकि कुटुम्बीजन दूसरोंके द्वारा किये हुए अपने जन्मजनके अपमानको नहीं सह सकते । विस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे तस हुआ जल अपने भीतरके तृणोंको नहीं जलाता, उसी प्रकार दूसरोंसे अपमानित कुटुम्बी जन अपने पार्श्वकी जन्मभूमियोंको नहीं सताते । इसलिये धनाधिप! आप बहुत शीघ्र विभीषणके पास जालिये । जो लोग अपने बाहुबलसे उपाधित धनका उपभोग करते हैं, उन्हें भाई-जन्मभूमियोंके साथ क्या विरोध हो सकता है’ ॥ ५४—५६ ॥

अपने मन्त्री कण्ठकुब्जके इस प्रकार कहनेपर कुबेर मन-ही-मन उपर विचार करते हुए शीघ्र ही विभीषणके पास गये । लक्ष्माधिप विभीषणने जब अपने ज्येष्ठ भ्राताका आगमन सुना, तब उन्होंने बहु विनयके साथ उनकी आगवानी की । राजन्! फिर विभीषणने अपने भाईको जब दीनदर्शनमें देखा, तब उन्होंने मन-ही-मन दुःखी होकर उनसे यह महत्वपूर्ण बात कही ॥ ५७—५९ ॥

विभीषण उक्त

कथं दीनोऽसि यक्षेश किं कष्टं तव चेतसि ।
निवेदयाधुनास्माके निश्चयान्पार्जयापि तत् ॥ ६०
तदेकान्तं समाप्ताद्य कथयामास वेदनाम् ।

उक्त उक्ताच

गृहीता किं स्वयं याता निहता केनचिद्द्विषा ॥ ६१
भ्रातः कान्तां न पश्यापि चित्रसेनां मनोरमाम् ।
एतद्वन्धो महत्कष्टं भयं नारीसमुद्घवम् ॥ ६२
प्राणान् च घातयिष्यामि अनासाद्य च वलभाम् ।

विभीषण उक्त

आनयिष्यापि ते कान्तां यत्र तत्र मिथतां विभो ॥ ६३
कः समर्थोऽधुनास्माके हतुं नाथं तुणस्य च ।
ततो विभीषणस्तत्र नार्दीजहूं निशाचरीम् ॥ ६४
भृशं संजल्पयामास नानामायागरीयसीम् ।
प्रदम्प्य च या कान्ता चित्रसेनापिधानतः ॥ ६५
सा च केन हुना लोके पानसे सरासि रित्यता ।
तां च जानीहि संखीक्ष्य देवराजादिवेशमसु ॥ ६६
ततो निशाचरी भूष कृत्या मायापयं वपुः ।
जगाप त्रिदिवं शीघ्रं देवराजादिवेशमसु ॥ ६७
यया दृष्ट्या क्षणं दृष्टो मोहं यास्यति चोपलः ।
यस्याः समं धुवं रूपं विद्यते न चराचरे ॥ ६८
एतस्मिन्नेव काले च देवराजोऽपि भूपते ।
सम्प्राप्तो मन्दराच्छीघ्रं ग्रेरितक्षित्रसेनया ॥ ६९
ग्रहीतुं दिव्यपुण्याणि नन्दनप्रभवाणि च ।
तत्र पश्यन् स तां तन्वीं निजस्थाने सपागताम् ॥ ७०
अतीवरुपसम्प्राप्तां गीतगानपरायणाम् ।
तां वीक्ष्य देवराजोऽपि स कामवशगोऽभवत् ॥ ७१
ततः सम्प्रेरयामास देववैद्यी सुराधिषः ।
तस्याः पाश्चें समानेतुं धुवं चान्तःपुरे तदा ॥ ७२
देववैद्यी तदाऽऽगत्य जल्पतक्षाप्रतः मिथती ।
आगच्छ भव तन्वाङ्गि देवराजसमीपगा ॥ ७३

विभीषण बोले—'यश्चराज ! आप दीन बद्यो हो रहे हैं ? आपके मनमें क्या कष्ट है ? इस समय आप उस कष्टको मुझे बताइये । मैं निश्चय ही उसका माजेन कहेंगा ' तब कुबेरने एकान्तमें जाकर विभीषणसे अपनी मनोरमेन बतलायी ॥ ६० ॥

कुबेर बोले—भई ! कुछ दिनोंसे मैं अपनी मनोरमा भार्या चित्रसेनाको नहीं देख रहा हूँ । न जाने उसे किसीने पकड़ लिया या वह स्वप्न किसीके साथ चलो गयी अथवा किसी लतुने उसे मार डाला । बच्चों ! मुझे अपनी लोके विद्योगका महान् कष्ट ही रहा है । यदि वह प्राण लेग दूँगा ॥ ६१-६२ ॥

विभीषण बोले—'प्रभो ! आपकी भार्या जहाँ-कहो भी होगी, मैं उसे सा दूँगा । नाथ ! इस समय संसारमें किसकी सामर्थ्य है जो हमारा तुण भी चुरा सके ।' यह कहकर विभीषणने नाना प्रकारकी मायाके जानमें चढ़ी-चढ़ी 'नार्दीजहूं' नामकी निशाचरीमें बहुत कुछ कहा और बताया—'कुबेरकी जो 'चित्रसेना' नामकी पत्नी है, वह एक दिन जब मानससरोवरके तटपर थी, तभी वहाँसे किसीने उसे हर लिया । तुम इन आदि स्तोकपालोंके भवनोंमें देखकर उसका पता लगाओ ॥' ६३-६६ ॥

पूँ । तब वह निशाचरी मायापय शरीर भारणकर इन्द्रादि देवताओंके भवनोंमें खोज करनेके लिये शीघ्र ही स्वर्गलोकमें गयी । उस निशाचरीने ऐसा सुन्दर रूप बनाया था, जिसकी एक ही दृष्टि पहनेसे परथर भी मोहित हो सकता था । अवश्य ही उस समय वैसा पोहन रूप चराचर जगत्मनें कहीं नहीं था । भूपते । इसी समय देवाज इन्द्र भी चित्रसेनाके भेजनेसे उतावलीके साथ नन्दनवनके दिल्य पुष्प लेनेके लिये मन्दराचलसे स्वर्गलोकमें आये थे । वहाँ अपने स्थानपर आयी हुई उस अन्दन रूपवती रमणीको ओं मधुर गान गा रही थीं, देख देवराज भी कामके लक्षीभूत हो गये । तब देवेन्द्रने उसे जैसे भी हो, अपने आना-पुरमें बुला लानेके लिये देववैद्य असिनीकुमारोंको उसके पास भेजा । दोनों असिनीकुमार उसके साथने जाकर खड़े हुए और कहने लगे—'कृताङ्गि ! आओ, देवराज इन्द्रके निकट चलो ।'

इत्युक्त्वा सा तदा ताभ्यां जगाद् मधुराक्षरम्।

नाडीजहृतेवाच

देवराजः स्वयं यन्मे पार्श्वं चात्रागमिष्यति ॥ ७४
तस्य वाच्यं च कर्तव्यं नान्यथा सर्वथा मया।

तौ तदा बासवं गत्वा ऊचतुर्वचनं शुभम् ॥ ७५
कासव उक्तं

समादेशय तन्यङ्गि किं कर्तव्यं मयाधुना।
सर्वदा दासभूतस्ते याचसे तद्दाप्यहम् ॥ ७६

तन्यङ्गुष्टाच

याचितं यदि मे नाथ दास्यसीति न संशयः ।
ततोऽहं वशगा देव भविष्यामि न संशयः ॥ ७७

अद्य त्वं दर्शयामाकं सर्वं कान्तापरिग्रहः ।
मम रूपसमा रामा कान्ता से चास्ति वा न वा ॥ ७८

तथा चोके च वचने स भूया वासवोऽवदत्।
दर्शयिष्यामि सर्वं ते देवि कान्तापरिग्रहम् ॥ ७९

स सर्वं दर्शयामास वासवोऽन्तःपुरं तदा।
ततो जगाद् भूयः सा किंचिदगृहं पप स्थितम् ॥ ८०

विमुच्यैकां च युवतीं सर्वं ते दर्शितं मया।

इत्य उक्तम्

सा रामा मन्दरे चास्ति अविज्ञाता सुरासूरीः ॥ ८१
तां च ते दर्शयिष्यामि नाख्येयं कस्यचित्त्वया।

तः स देवराजोऽपि तथा सार्थं च भूपते ॥ ८२
गच्छत्रेवाम्बरे भूय मन्दरं प्रति भूधरम्।

तस्य वै गच्छपानस्य विमानेनार्कवर्चंसा ॥ ८३
दर्शनं नारदस्यापि तस्य जातं तदाप्वरे।

तं वीक्ष्य नारदं वीरो लज्जामानोऽपि वासवः ॥ ८४
नमस्कृत्य जगादोच्यः ऋ यास्यसि महामुने।

तः कृताशीः स मुनिरबद्वित्रिदिवेशवरम् ॥ ८५
गच्छामि मानसे स्त्रातुं देवराज सुखी भव।

नाडीजहृतस्ति कुशलं राक्षसानां महात्मनाम् ॥ ८६

उन दोनोंके द्वाय यों कही जानेपर उस सुन्दरीने मधुर वालीमें उत्तर दिय ॥ ८७—८३ ॥

नाडीजहृतोली—यदि देवराज इन्द्र स्वयं हो भेरे पास आयेंगे तो मैं उनको बात मान सकती हूँ; अन्यथा शिलकुल नहीं ॥ ८४ ॥

तब अक्षिनीकुमारीने इन्द्रके पास जाकर उसका रुभ संदेश कहा ॥ ८५ ॥

तब इन्द्र स्वयं आकर बोले—कृशाङ्गि । आजा दो, मैं इस समय तुम्हारा फौन-सा कार्य करूँ? मैं सदाके लिये तुम्हारा दास हो गया हूँ; तुम जो कुछ माँगोगी, वह सब दूँगा ॥ ८६ ॥

कृशाङ्गीने कहा—नाय! यदि आप भेरी माँगी हुई बस्तु अवश्य दे देने, तो निःसंदेह मैं आपकी वशवतीनी हो जाऊँगी। जाज आप अपनी समस्त भार्याओंको मुझे दिखाइये; देखें, आपकी कोई भी स्त्री भेरे रूपके सदृश है या नहीं? ॥ ८७—८८ ॥

उसके यों कहनेपर इन्द्रने पुनः कहा—“देखि! चलो, मैं तुम्हें अपनी समस्त भार्याओंको दिखाऊँगा।” यह कहकर इन्द्रने उसी समय उसे अपना सारा अता:पुर दिखाया। तब उस सुन्दरीने पुनः कहा—‘अभी मुझसे कुछ हिलाया गया है। केवल एक सुखतीकी छोड़कर और सब कुछ आपने दिखा दिया’ ॥ ८९—८० ॥

इन्द्रने कहा—‘वह रमणी मन्दराचलपर है। देखता और अनुर—किसीको भी उसका चाता नहीं है। मैं उसे भी तुम्हें दिखा दूँगा, परंतु वह रहस्य किसीपर प्रकट न करना।’ भूखल! यह कहकर देवराज इन्द्र उसके साथ आकाशगर्वांसे मन्दराचलकी ओर चले। जिस समय वे तुम्हें समय उन्हें आकाशमें देवर्णि नारदका दर्शन हुआ। नारदजीको देखकर वीरवर इन्द्र यथापि लक्षित हुए, तथापि उन्हें नमस्कार करके पूछा—‘महामुने! आप कहाँ जाएंगे?’ ॥ ८१—८२ ॥

तब मुनिवर नारदजीने आशीर्वाद देते हुए स्वर्गाधिपति इन्द्रसे कहा—‘देवराज! आप सुखी हों, मैं इस समय मानससरोषपर ल्लान करने जा रहा हूँ।’ [फिर उन्होंने नाडीजहृतोलीको पहचानकर कहा—] ‘नाडीजहृतोली—कहो तो महात्मा राक्षसोंका कुशल तो है न?

विभीषणोऽपि ते भाता सुखी तिष्ठति सर्वदा ।
 एवपुक्ता च मुनिना सा कृष्णवदनाभवत् ॥ ८५
 विस्मितो देवराजोऽपि छलितो दुष्ट्यानया ।
 नारदोऽपि गतः स्त्रातुं कैलासे मानसं सरः ॥ ८६
 इन्नस्तां हनुकामोऽपि आगच्छन्मन्दरावलम् ।
 यत्राभ्रमोऽस्ति वै नूनं तृणविनोर्भात्यनः ॥ ८७
 क्षणं विश्रम्य तत्रैव धृत्वा केऽनेषु राक्षसीष् ।
 हनुमिच्छति देवेशो नाहीजङ्गां निशाचरीम् ॥ ८८
 तावत्प्र समायातस्तुणविन्दुर्निजाभ्रमात् ।
 धृता क्रन्दति सा राजत्रिन्देणात्पि निशाचरी ॥ ८९
 मा मां रक्षति पुण्यात्मा हन्यमानां च साम्भ्रतम् ।
 तदाऽऽगत्य मुनिश्चस्तुणविन्दुर्पूर्णात्पा ॥ ९०
 जगाद पुरतः स्थित्वा मुडेमां महिलां खने ।
 जल्पत्येवं मुनी तस्मिन् महेन्द्रेण निशाचरी ॥ ९१
 वद्रेण निहता भूयः कोपयुक्तेन खेतसा ।
 स चुकोप मुनिश्चेषुः प्रेष्टमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ९२
 यदेषा युक्ती दुष्ट निहता मे तपोवने ।
 ततस्वं मम शापेन निश्चयात् स्त्री भविष्यति ॥ ९३

इन्द्र उक्तात्

एषा नाश महादुष्टा राक्षसी निहता भया ।
 अहं स्वामी सुराणां च शार्ण मा देहि मेऽधुना ॥ ९४

मुर्जित्वाच

नूनं तपोवनेऽस्माकं दुष्टास्तिष्ठनि साप्तवः ।
 ममात्र तपसो भावान्न निष्ठन्ति परस्परम् ॥ ९५
 इत्युक्तो हि तदा चेन्द्रः प्राप्तः स्त्रीत्वं न संशयः ।
 जगाम त्रिदिवं भूय हतशक्तिपराक्रमः ॥ ९६
 नासीनो हि भवत्येव सर्वदा देवसंसदि ।
 देवा दुःखं समापत्रा दृष्टा स्त्रीत्वं गतं हरिम् ॥ ९७

तुम्हारे भाई विभीषण तो मुखपूर्वक हैं न ?' नारदजीकी यह बात सुनते ही उसका मुख भयसे काला पड़ गया । देवराज इन्द्र भी बहुत आश्वर्यमें पढ़े और मन-हो-मन कहने से—'इस दुष्टने मुझे छल लिया ।' नारदजी भी वहाँसे कैलास पर्वतके निकट मानससरोकरमें खान करनेके लिये चले गये । तब इन्द्र भी उस राक्षसीका वध करनेके लिये मन्दरावलपर, जहाँ महात्मा तृणविन्दुका आश्रम था, आये और वहाँ थोड़ी दौरक विश्राम करके थे उस नाड़ीद्वारा राक्षसीके केश पकड़कर उसे मारना ही चाहते थे कि इतनेमें महात्मा तृणविन्दु अपने आश्रमसे निकलकर चहाँ आ गये ॥ ८५—९० ॥

राजन् ! इधर इन्द्रके द्वारा पकड़ी जानेपर वह राक्षसी भी कहण विलाप करने लगी—'हा ! मैं मारी जा रही हूँ; इस समय कोई भी पुण्यात्मा पुण्य मुझ दीनाको वहाँ बक्सा रहा है ॥ ९१ ॥

उसी समय महात्मन्नी तृणविन्दु मुनि वहाँ आ पहुँचे और इन्द्रके सामने खड़े हो खोले—'हमारे तपोवनमें इस महिलाको न मारो, छोड़ दो ॥ ९२ ॥

भूय ! तृणविन्दु मुनि वै कह ही रहे थे कि महेन्द्रने कुछ होकर वज्रसे उस राक्षसीको मार ही तो ढाला । तब वे मुनिवर इन्द्रकी ओर चार-चार देखते हुए बहुत ही कुपित हुए और खोले—'रे दुष्ट ! तूने मेरे तपोवनमें इस पुण्यतीका वध किया है, इसलिये तू मेरे शापसे निष्ठय ही स्त्री हो जायगा ॥ ९३—९५ ॥

इन्द्र खोले—नाथ ! मैं देवताओंका स्वामी इन्द्र हूँ और वह स्त्री महादुष्टा राक्षसी थी; इसलिये मैंने इसका वध किया है । आप इस समय मुझे शाप न दें ॥ ९६ ॥

मुनि खोले—अवश्य ही मेरे तपोवनमें भी दुष्ट और सायु युण्य भी रहते हैं, परंतु वे मेरी तपस्याके प्रभावसे चरस्यर किसीका वध नहीं करते । (तूने मेरे तपोवनकी पर्याप्ता भड़ की है, अतः तू शापके ही चोग्य है ।) ॥ ९७ ॥

भूय ! मुनिके वै कहनेपर इन्द्र निःस्वेद स्त्रीयोनिके प्राप्त हो गये और पकड़म लक्षा लक्षि खोकर स्वर्गके लौट आये । उन्होंने सदा ही लक्षा और दुःखसे खिल रहनेके करण देवताओंको सभामें बैठना ही छोड़ दिया । इधर देवता भी इन्द्रके स्वीके स्वामें पर्तिवर्तित हुआ देखकर बहुत दुःखी हुए ।

ततो देवगणः सर्वे वासवेन समन्विताः।
जग्मुश्च ब्रह्मसदनं तथा दीना शब्दी तदा ॥ १००
ब्रह्मा भग्रसपाधिष्ठ तावत् तत्रैव संस्थिताः।
देवा ऊचुश्च ते सर्वे वासवेन समन्विताः ॥ १०१
तृणविन्दोर्मुने: शापाद्यातः स्त्रीत्वं सुराधिपः।
स मुनिः कोपवान् ब्रह्मार्थैव गच्छत्यनुभ्रहम् ॥ १०२

देवगण उक्तव

न मुनेरपराधः स्यात् तुणविन्दोर्महात्मनः।
स्वकर्मणोपयातोऽस्ती स्त्रीत्वं स्त्रीवधकारणात् ॥ १०३
चकार दुर्विदं देवा देवराजोऽपि दुर्भदः।
जहार चित्रसेनां च सुग्रामं धनदाकुनाम् ॥ १०४
तथा जघान युवतीं तुणविन्दोस्तापोद्यने।
तेन कर्मविपाकेन स्त्रीभावं वासवो गतः ॥ १०५

देव अनु:

यदसौ कुत्तव्याभ्योदुर्विदं नाथ दुर्भिः।
तत्सर्वं साधयिष्यापो वयं प्राच्या समन्विताः ॥ १०६
कान्ता धनाधिनाधाय गूढा तिष्ठति या विभो।
तां च तस्मी प्रदास्यामः सर्वे कुत्तव्या परां मतिम् ॥ १०७
प्रयोदशयां चतुर्दशयां देवराजः शब्दीयुतः।
नन्दने चार्चनं कर्ता सर्वदा यक्षरक्षसाम् ॥ १०८
ततः शब्दी तदा गूढं चित्रसेना विगृह्य च।
मुषोच यक्षभवनं प्रियकाष्टानुवर्त्तिनीम् ॥ १०९
एतस्मिन्ब्रन्ते दूतोऽकाले लक्ष्मीं समागतः।
धनेशं कथयामास चित्रसेनासपागम्यम् ॥ ११०
शब्द्या साकं समायाता तत्र कान्ता धनाधिष्य।
सखीं स्वामतुलां प्राप्य चरितार्था चभूद सा ॥ १११
धनेशोऽपि कुतार्थोऽभूजगाम निजवेशमनि।

देव अनु:

सर्वमेतत्कृतं ब्रह्मन् प्रसादाते न संशयः ॥ ११२

तत्पक्षात् सभी देवता और दीना शब्दी इन्द्रको साथ सेकर ब्रह्माजीके धानको गये। जबलक ब्रह्माजी समाधिसे विरत हुए, तबतक वे सभी वहीं ठहरे रहे और इन्द्रके साथ ही सब देवता ब्रह्माजीसे बोले ॥ ९८—१०१ ॥

'ब्रह्म! सुराज इन्द्र तुणविन्दु मुनिके जापसे स्त्रीयोनिको प्राप्त हो गये हैं; वे मुनि बड़े क्रोधी हैं, किसी प्रकार अनुग्रह नहीं करते' ॥ १०२ ॥

ब्रह्माजी बोले—इसमें उन महात्मा तुणविन्दु मुनिका कोई अपराध नहीं है। इन्द्र स्त्रीवधस्त्रवी अपने ही कर्मसे स्त्रीभावको प्राप्त हुए हैं। देवराज! देवराज इन्द्रने भी पटभत होकर ब्रह्मा ही अव्याय किया है, जो कुबेरकी पत्नी चित्रसेनाका गुहक्षेत्रसे अपहरण कर लिया। यही नहीं, इन्द्रोंने तुणविन्दुके तपीवनमें एक युवतीका यथ किया है, जहाँ अपने इस निष्ठा कर्मके परिणामस्त्रवृप्त ही गे इन्द्र स्त्रीभावको प्राप्त हुए हैं ॥ १०३—१०४ ॥

देवगण बोले—नाथ इन्होंने दुर्विदिसे प्रेरित होकर जो शंकराधिष्य कुबेरका अपमान किया है, उसके लिये हम सब लोग शब्दीके साथ कुबेरको प्रसन्न करनेका यत्त करेंगे। विभो! कुबेरकी पत्नी चित्रसेना बन्दराचलपर गुहक्षेत्रसे रहती है, हम सभी लोग सम्मति करके उसे कुबेरको अर्पित कर देंगे। देवराज इन्द्र भी प्रति चयोदशी और चतुर्दशीको बन्दनवनमें शब्दीको साथ होकर यह और राक्षसोंकी पूजा करेंगे ॥ १०५—१०६ ॥

तत्पक्षात् शब्दी अपने प्रियतमको कहमें डालनेवाली चित्रसेनाको गुहक्षेत्रसे ले जाकर यक्षराज कुबेरके भवनमें छोड़ आयी। इसी समय कुबेरका दूत असमयमें ही लक्ष्मीमें चहुंचा और कुबेरसे चित्रसेनाके हीट आनेका समाचार सुनक्या—‘हे भनाधिष्य! आपकी प्रिय पत्नी चित्रसेना शब्दीके साथ यह हीट आयी है। वह शब्दी-जैसी अनुपम सखीको पाकर कृतार्थ हो चुकी है।’ तब कुबेर भी कृतकृत्य होकर अपने आरको हीट आये। इसके बाद देवगण भूमः ब्रह्मतोकमें जाकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना करने लगे ॥ १०९—१११ ॥

देवगण बोले—ब्रह्म! आपको कृपासे यह सारा काम तो हो गया—इसमें संदेह नहीं।

पतिहीना यथा नारी नाथहीने यथा बलम्।
गोकुलं कृष्णहीने तु तथेन्द्रेणामरावती ॥ ११३
जपः क्रिया तपो दानं ज्ञानं तीर्थं च वै प्रभो ।
वासवस्य समाख्याहि यतः स्त्रीत्वाद्विपूच्यते ॥ ११४

ब्रह्मोक्तव्य

निहन्तु न मुने: शापं समर्थोऽहं न शङ्कृः ।
तीर्थं चान्यन्न पश्यामि मुक्तैर्वैकं विष्णुपूजनम् ॥ ११५
अष्टाव्याये प्रभावं पूजनं च तथा जपम् ।
करोतु विधिवच्छकः स्त्रीत्वाद्वेन च मुच्यते ॥ ११६
एकाग्रमनसा शक्रं स्वात्मा अद्वासमन्वितः ।
अ॒० नमो नारायणादेति जप त्वमात्मशुद्धये ॥ ११७
लक्ष्मद्वये कृते जाप्ये स्त्रीभावात्मच्यते हरे ।
इति श्रुत्वा तथाकार्यद्विद्वोक्तं वचनं हनिः ।
स्त्रीभावात्म विनिर्मुकस्तदा विष्णोः प्रसादतः ॥ ११८

मार्कण्डेय उक्तव्य

इति ते कथितं सर्वं विष्णुपाहात्म्यमुत्तमम् ।
प्रया भृगुनियुक्तेन कुरु सर्वपतन्त्रितः ॥ ११९
शृणुन्ति ये विष्णुकथामकल्पया
बीर्यं हि विष्णोऽखिलकारणस्य ।
ते मुक्तपापाः परदारगामिनो
विशनित विष्णोः परमं पदं भूत्वम् ॥ १२०

सूत उक्तव्य

इति सम्बोधितस्तेन मार्कण्डेयेन पार्थिवः ।
नरसिंहं समारात्म्य प्राप्तवान् वैष्णवं पदम् ॥ १२१
एतत्ते कथितं सर्वं भरद्वाजं मुने मध्या ।
सहस्रानीकचरितं किमन्यत् कथयामि ते ॥ १२२
कथापिमां यस्तु श्रृणोति मानवः
पुरातनीं सर्वविमुक्तिदां च ।
सम्प्राप्य स ज्ञानमतीव निर्विलं
तेनैव विष्णुं प्रतिपद्यते ज्ञनः ॥ १२३

इति ब्रोन्तमिहुताते सहस्रानीकचरितेऽन्तर्भुत्वकर्त्तव्यं ताम विशिष्टतमोऽप्यातः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार 'ब्रोन्तसिंहपूजक' के अन्तर्भुत्वकर्त्तव्य 'अष्टाव्याय-मन्त्रकी वर्द्धिशक्ति कथन' का एक
तिरस्तर्क अध्याय एहा हुआ ॥ ६३ ॥

परंतु अब जैसे चतुर्तिके दिमा नारी, सेनापतिके विना सेना और श्रीकृष्णके विना त्रजको शोभा नहीं होती, उसी प्रकार इन्द्रके विना अमरावती मुशोभित नहीं होती। प्रभो! अब इन्द्रके लिये कोई जप, क्रिया, तप, दान, ज्ञान और तीर्थ-सेवन आदि उपाय बताइये, जिससे स्त्रीभावसे इनका उद्धार हो सके ॥ ११२—११४ ॥

ब्रह्माजी बोले—उस मुनिके शापको अन्यथा करनेमें न तो मैं समर्थ हूँ और न भगवान् शङ्कृ ही। इसके लिये एकमात्र भगवान् विष्णुके पूजनको छोड़कर दूसरा कोई उपाय भी सफल नहीं दोषा पड़ता। बस, इन् अष्टाव्याय-मन्त्रके द्वारा भगवान् विष्णुका विधिपूर्वक पूजन करें और उस मन्त्रका जप करते रहें; इससे वे स्त्रीभावसे मुक्त हो सकते हैं। इन् ज्ञान करके, ब्रह्मायुक्त हो, आत्मशुद्धि-के लिये एकाग्रचित्तसे 'अ॒० नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका जप करो। देवेन्द्र! इस मन्त्रका दो लाख जप हो जानेपर तुम स्त्री-योनिसे मुक्त हो सकते हो। यह सुनकर इन्द्रने ब्रह्माजीकी अङ्गका यथावत् पालन किया, तब वे भगवान् विष्णुकी घृणासे स्त्रीभावसे छूटकरहा पाये ॥ ११५—११८ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—यज्ञन्। इस प्रकार मैंने भृगुजीकी आज्ञासे तुकारे समझ परम उत्तम भगवान् विष्णुके माहात्म्यको पूर्णरूपसे सुना दिया। अब तुम आहतम्य स्वयंकर भगवान् विष्णुकी आराधना करो। जो लोग अखिल जगत्के कारणभूत भगवान् विष्णुके प्रणालमसे सम्बन्ध रखनेवाली उनकी कथाको सुनते हैं, वे यदि परस्परीगमी रहे हों तो भी पापहीन एवं कल्पपदको प्राप्त करते हैं ॥ ११९—१२० ॥

सूतजी कहते हैं—मुनियर मार्कण्डेयजीके द्वारा इस तरह सम्बन्ध प्रकारसे उपादिष्ट होकर राजा सहस्रानीक भगवान् नृसिंहकी आराधना करके विष्णुके अविनाशी पदको प्राप्त हो गये। भरद्वाज मुने! इस प्रकार मैंने आपको यह सम्पूर्ण सहस्रानीक-चरित्र सुनाया; इसके बाद आपसे और क्या कहूँ? ॥ १२१—१२२ ॥

जो मानव सब प्रकारसे मोक्ष देनेवाली इस प्राचीन कथाका कथण करता है, वह अत्यन्त निर्मल ज्ञन प्राप्त करके उसीके द्वारा भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ १२३ ॥

चौंसठवाँ अध्याय

भगवद्गीताकी श्रेष्ठता और भक्त पुण्डरीकका उपाख्यान

कृष्ण उक्तव्य

- सत्य के चित्प्रशंसनि तपः शौचं तथापरे।
सांख्यं के चित्प्रशंसनि योगमन्दे प्रचक्षते॥ १
- ज्ञाने के चित्प्रशंसनि समलोष्टाशमकाञ्जनाः।
क्षमां के चित्प्रशंसनि तथैव च दयार्जवम्॥ २
- के चिह्नाने प्रशंसनि के चिदातुः परं शुभम्।
सम्यग्ज्ञाने परं के चित्केचिद्विराग्यमुत्तमम्॥ ३
- अग्रिहोपादिकर्माणि तथा के चित्परं विदुः।
आत्मध्याने परं के चित्सांख्यतत्त्वार्थवेदिनः॥ ४
- धर्मार्थकाप्मोक्षाणां चतुर्णामिह के वलम्।
उपायः पदभेदेन यहुर्धैवं प्रचक्षयते॥ ५
- एवं चावस्थिते लोके कृत्याकृत्यविद्यी नाराः।
व्यामोहमेव गच्छन्ति विमुक्ताः पापकर्मभिः॥ ६
- यदेतेषु परं कृत्यमनुष्टुये महात्मभिः।
वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ मम सर्वार्थसाधकम्॥ ७
- सुह उक्तव्य
- श्रूयतामिदमत्यन्ते गृहै संसारमोक्षनम्।
अत्रैवोदाहरन्तीमधितिहासं पुरातनम्॥ ८
- पुण्डरीकस्य संबादं देववैनारदस्य च।
ब्राह्मणः श्रुतसप्तत्रः पुण्डरीको महापतिः॥ ९
- आश्रमे प्रथमे तिष्ठुन् गुरुणां चशगः सदा।
जितेन्द्रियो जितकोथः संघोपासनधिष्ठितः॥ १०
- वेदवेदाङ्गनिपुणः शास्त्रेषु च विचक्षणः।
समिद्धिः साधुयत्रेन सायं प्रातहुताशनम्॥ ११

श्रीभगवद्गीताजी बोले—सूतजी! कुछ लोग 'सत्य' को ही पुरुषार्थका साधक बताकर उसकी प्रशंसा करते हैं, दूसरे लोग 'तपस्या' और 'पवित्रता' को उत्तम बताते हैं। कुछ लोग 'सांख्य' और कुछ लोग 'योग' की प्रशंसा करते हैं। हेले, पत्तर और सोनेको समान समझेनेवाले कुछ अन्य लोग 'ज्ञान' को ही पुरुषार्थ-साधनके लिये उत्तम मानते हैं। कुछ लोग 'क्षमा' की प्रशंसा करते हैं तो कुछ लोग 'दया' और 'सरलता' की। कुछ लोग ऐसे हैं, जो 'दान' को उत्तम बताते हैं, कुछ लोग और ही किसी उपायको मुप कहते हैं। दूसरे लोग 'सम्यग्ज्ञान' को उत्तम मानते हैं और अन्य जन 'वैराग्य' को ब्रेह बताते हैं। कुछ चालिक लोग 'अग्रिहोप' आदि यज्ञोंको ही सबसे बढ़कर मानते हैं। सांख्यतत्त्वका मम ज्ञानेवाले कुछ लोग 'आत्मके ध्यान' को ब्रेह मानते हैं। इस प्रकार यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप आहे पुरुषार्थोंका उपाय ही नाम-भेदसे नाना प्रकारका बताया जाता है। ऐसी स्थितिमें जगत्में पापकर्मसे विमुक्त पुरुष भी कर्त्तव्याकर्त्तव्यके विषयमें कुछ निष्ठा न हो सकनेके कारण मोहमें ही पड़े रहते हैं। सर्वतः! इन उपर्युक्त 'सत्य' आदि उपायोंमें जो सबसे उत्तम उपाय हो और महामाओद्वारा अवश्यकर्तव्य हो, सब यनोरथोंको पूर्ण करनेवाले उस उपायका आप हमसे बर्तन करें॥ १—११॥

सूतजी कहते हैं—संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाले इस अत्यन्त गृह उपायको लोग सुनें। इस विषयमें महात्माजन देवविद्या नारद और भक्तवर पुण्डरीकके संबंधरूप इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं॥ ११॥

महामति पुण्डरीकजी एक विद्वान् ब्राह्मण थे। वे सदा गुरुजनोंके वशमें रहते हुए, ज्ञानार्थ आश्रमके नियमोंका पालन करते थे। उन्होंने अपनी इन्द्रियों और ब्रोधकों जीत लिया था तथा वे नियमानुसार संघोपासन किया करते थे। वेद और वेदाङ्गोंमें वे निष्ठात थे तथा अन्य शास्त्रोंके भी परिष्ठुत थे। वे प्रतिदिन समिधा एकत्रकर सायं और प्रातःकाल अत्यन्त यज्ञपूर्वक अग्रिकी उपासना किया

यथात्वा यज्ञपति विच्छुं सम्यगाराधयन् विभुम्।
 तपःस्वाध्यायनिरतः साक्षाद्वासुतो यथा ॥ १२
 उदकेन्धनपूष्यार्थीरसकृत्यन् गुरुन्।
 मातापितृभ्यां शुश्रूषुर्भिक्षाहारी जनप्रियः ॥ १३
 द्वाहाविद्याप्रीयानः प्राणायामपरायणः।
 तस्य सर्वांश्चैतत्प्रस्तुत्य संसारेऽत्यनन्तिःस्मृहा ॥ १४
 बुद्धिरासीन्महाराज संसारार्णवितारणी।
 पितरं मातरं चैव भातुन्य पितामहान् ॥ १५
 पितृव्यान्मातुलांश्चैव सखीन् सम्यन्धिकान्धवान्।
 परित्यज्य महोदारस्तुणानीव यथासुखम् ॥ १६
 विच्चार महीमेतां शाकमूलफलाशनः।
 अनित्यं यीवने रूपमायुष्यं द्रव्यसंचयम् ॥ १७
 इति संचिन्नयानेन वैलोक्यं लोष्टवत् स्मृतम्।
 पुराणोदितमार्गेण सर्वतीर्थानि वै मुने ॥ १८
 गणित्यापि यथाकालमिति निश्चितमानसः।
 गङ्गां च यमुनां चैव गोपतीमय गणहक्कीम् ॥ १९
 शतहूं च योग्यां च सरयूं च सरस्वतीम्।
 प्रयागं नर्मदां चैव महानद्यो नदानपि ॥ २०
 गयां च विन्द्यतीर्थानि हिमयत् प्रभवाणि च।
 अन्यानि च महातेजासीर्थानि स महावतः ॥ २१
 संच्चार महाबाहुर्यथाकालं यथाविधि।
 कदाचित् प्राप्तवान् वीरः शालग्रामं तपोधनः ॥ २२
 पुण्डरीको महाभागः पुण्यकर्मवशानुगः।
 आसेव्यमानपूर्णिपिस्तत्त्वविद्विस्तपोधनैः ॥ २३
 मुनीनामाश्रमं रम्यं पुराणेषु च विश्रुतम्।
 भूषितं चक्रनद्या च चक्राद्वितशिलातलम् ॥ २४
 रम्यं विकिंतं विस्तीर्णं सदा चित्तप्रसादकम्।
 केचिच्चक्राद्वितास्तस्मिन् प्राणिनः पुण्यदर्शनाः ॥ २५
 विच्चरन्ति यथाकामं पुण्यतीर्थप्रसङ्गिनः।
 तस्मिन् क्षेत्रे महापुण्ये शालग्रामे महापतिः ॥ २६

करते थे। साक्षात् ऋषपुत्र चारदंजीके समान वे सर्वत्यापी यज्ञपति भगवान् विष्णुको विधिपूर्वक आराधना करते हुए उनका ध्यान किया करते थे और सदा तपस्या तथा स्वाध्यायमें ही लगे रहते थे। अतः ईश्वन और पूर्व आदि आवश्यक सामान लाकर वे सदा ही गुरुजनोंको संतुष्ट रखते और उनकी अपने माता-पिताके समान शुश्रूषा किया करते थे। भिक्षा मौकाकर भोजन करते थे और अपने सद्गुरुवाहारोंके कारण लोगोंके परम प्रिय हो गये थे। वे सदा द्वाहाविद्याका अध्ययन और प्राणायामका अध्यायस करते रहते थे। महाराज ! समस्त पश्चायोंके उनके बुद्धि अस्पतनि: स्मृह ही भवसागरमें पार उत्तरेवाली हो गयी थी ॥ ९—१४%, ॥

भद्राकाजी ! उनका वैराग्य यहीतक बढ़ गया कि वे महान् उदाह पुण्डरीकाजी पिता, माता, भाई, फिलामह, चाचा, मामा, भिर, सम्बन्धी तथा बालजनोंको तुक्के समान लक्षणकर, जाक और मूल-फलादिक आहार करते हुए इस पृथ्वीपर आनन्दपूर्वक विवरने लगे। उन्होंने यौवन, रूप, आयु और धन-संग्रहकी अनिष्टप्राप्तता विचार करके समस्त विभुतियोंके छेत्रोंके समान तुर्जु समझ लिया था और अपने मनमें यह निष्ठा करते कि ‘मैं पुण्डरोल्ल मार्गसे यथासमय सभी लीर्घोंकी यता करौंगा’, वे महाबाहु, महातेजासी और महावती पुण्डरीकाजी गङ्गा, यमुना, गोपती, गणहक्की, शतहूं, पश्चोत्तमी, सरयूं और सरस्वतीके तटपर, प्रयागमें, नर्मदा आदि नद्यनदियों तथा नदीोंके तटपर, गयामें तथा विन्द्याकाल और हिमालयके तीरोंमें एवं इनके अतिरिक्त अन्यान्य तीरोंमें भी यथासमय विधिपूर्वक भ्रमण करते रहे। इसी तरह पूर्ण हुए, पुण्यकर्मोंके अधीन हो वे तपस्यी वीर महाभाग पुण्डरीक शालग्रामक्षेत्रमें जा पहुँचे ॥ १५—२२%, ॥

वह तीर्थ तत्त्वज्ञानी तपस्यों विधिपूर्वक सेवित था। वहो मुनियोंके सुरम्य आश्रम थे, जो पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं। वह तीर्थ चक्रनदोंमें भूषित है और वहाँके शिलाखण्ड भगवान्के चक्रसे चिह्नित हैं। वह तीर्थ जितना ही सुरम्य था, उतना ही एकान्त। उसका विस्तार बड़ा था और वहाँ चित्त स्वतः प्रसन्न रहता था। वहाँपर कुछ चक्रसे चिह्नित प्राणी रहते थे, जिनका दर्शन बहुत ही पावन था। वहाँ पुण्यतीर्थके बाबी यदेह विचरते रहते थे। उस महापवित्र शालग्रामक्षेत्रमें महामति पुण्डरीकजी प्रसन्नित हो तीर्थ सेवन करने लगे।

पुण्डरीकः प्रसन्नात्मा तीर्थानि समसेवतः ।
स्नात्वा देवहृदे तीर्थे सरस्वत्या च सुब्रतः ॥ २७
जातिस्मर्यां चक्रकुण्डे चक्रनद्यामृतेष्वपि ।
तथान्यान्यपि तीर्थानि तस्मिन्नेव चचार सः ॥ २८
ततः क्षेत्रप्रभावेण तीर्थानां चैव तेजसा ।
मनः प्रसादमगमतस्य तस्मिन्नमहात्मनः ॥ २९
सोऽपि तीर्थे विशुद्धात्मा ध्यानयोगपारायणः ।
तत्रैव सिद्धिमाकाङ्क्षन् समागम्य जगत्पतिम् ॥ ३०
शास्त्रोत्तेन विधानेन भक्त्या परमया युतः ।
उत्तास चिरपेक्षाकी निर्दृष्टिः संघर्षेन्द्रियः ॥ ३१
शाकमूलफलाहारः संतुष्टः समदर्शनः ।
यमेष्व नियमेष्वीकृत तथा चासनबन्धनैः ॥ ३२
प्राणायामैः सुनीश्चैष्व प्रत्याहारैष्व संततैः ।
धारणाभिस्तथा ध्यानैः समाधिभिरतन्दितः ॥ ३३
योगाभ्यासं तदा सम्यक् चक्रे विगतकाल्यम् ।
आराध्य देवदेवेशं तदत्तेनान्तरात्मना ॥ ३४
पुण्डरीको महाभागः पुरुषार्थविशारदः ।
प्रसादे परमाकाङ्क्षन् विष्णोस्तदत्पत्तमानसः ॥ ३५
तस्य तस्मिन्निवसतः शालग्रामे महात्मनः ।
पुण्डरीकस्य राजेन्द्र कालोऽगच्छमहांसलतः ॥ ३६
मुने कदाचिन्तं देशं नारदः परमार्थवित् ।
जगाम सुमहातेजाः साक्षादादित्यसंनिभः ॥ ३७
तं ग्रहकामो देवर्थिः पुण्डरीकं तपोनिधिम् ।
विष्णुभक्तिपरीतात्मा वैष्णवानां हिते रतः ॥ ३८
स दद्वा नारदं प्राप्तं सर्वतेजःप्रभानिवतम् ।
महामतिं महाप्राज्ञं सर्वागमविशारदम् ॥ ३९
प्राञ्छलिः प्रणतो भूत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
अर्धं दत्त्वा यथायोगयं प्रणामयकरोत् ततः ॥ ४०
कोऽयमत्यनुताकारस्तेजस्वी हुद्यवेषधृक् ।
आतोद्यहस्तः सुपुखो जटापण्डलभूपणः ॥ ४१
विवस्वानथं वा वह्निन्द्रो वरुण एव वा ।
इति संविन्नयन् विष्णुः पप्रच्छ परमशून्तिः ॥ ४२

वे नियन्पूर्वक वहाँ देवहृद तीर्थमें, पूर्वजन्मकी स्मृति दिल्लीनेवात्मे सरस्वतीके जलमें, चक्र-कुण्डमें और चक्र-नदी (नारायणी) - के जलमें भी शान करके उसी क्षेत्रके अन्तर्गत अन्यान्य तीर्थोंमें भ्रमण करते रहते थे ॥ २३—२८ ॥

उदननारा उस क्षेत्रके प्रभावसे और वहाँके तीर्थोंके तेजसे उन महात्माका विल वहाँ बहुत ही शुद्ध एवं प्रसन्न हो गया । इस प्रकार शुद्धचित एवं ध्यानयोगमें तत्पर हो, वहाँ ही मिदिकी इच्छासे परमभक्तिमुक्त हो, वे शालोक विधिसे वगत्पति भगवान् विष्णुको आराधना करने लगे । अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके निर्दृढ़ रहते हुए उन्होंने अकेले ही बहुत दिनोंतक वहाँ निवास किया । वे शाक और मूल-फलादिका आहार करते और सदा संतुष्ट रहते थे । उनकी सर्वत्र समाज दृष्टि थी : वे यम, नियम, आशन-बन्ध, तीव्र प्राणव्याप्ति, निरन्तर प्रत्याहार, भूरण्ड, ध्यान तथा समाधिके द्वारा नियतस्य भावमें भलीभीति योगाभ्यास करते रहे । इस प्रकार सबस्त पुण्डरीको इताना निष्पाप महात्म्य पुण्डरीकजीने देखदेख भगवान् विष्णुमें चित लगाकर उनकी आराधना की और उन्होंमें मन लगाये हुए वे उनके परम अनुग्रहकी आकाङ्क्षामें भजन करने लगे ॥ ३९—३५ ॥

राजेन्द्र ! महात्मा पुण्डरीकजी उस शतालग्रामक्षेत्रमें निवास करते बहुत समय बीत गया । तब एक दिन शतालात् सूर्यके समान महात्मेजस्वी, वैष्णवहितकारी, परमार्थवेत्ता एवं विष्णुभक्तिप्रत्यय देवर्थिं नारदजीं संपर्निधि पुण्डरीक मुनिको देखनेकी इच्छासे उक्त क्षेत्रमें गये । समान ध्यानमेंकि ताता, महामुद्दिमान्, महाप्राज्ञ, पूर्णतेजस्वी एवं प्रभापुज्ञसे उपलक्षित नारदजीको वहाँ आगा देख पुण्डरीकजे मनमें यहाँ प्रसन्नता हुई । उन्होंने विनीतभावसे हाथ जोड़कर उन्हें अर्थ निवेदन किया, किंव यथोचितरूपसे उनके चरणोंमें मस्तक मुकाया । तत्पक्षात् परम कानिनामान् विप्रवाह पुण्डरीकजी मन-ही-मन यह सोचने लगे कि 'ये अद्वितीय शरीरवाले, मनोरमवेषधारी, तेजस्वी परापुरुष कौन है ? अहो ! इनका भुखमण्डल कितना प्रसन्न है ! इनके मस्तकपर जटा-जूट सुशोभित हो रहा है । इन्होंने हाथमें चौंचा ले रखा है । इस रूपमें वे साक्षात् सूर्य हो तो नहीं है ? अद्यक्षा अप्रिदेव, इन् और चरणमेंसे तो कोई नहो है ?' यों सोचते हुए किसी विश्वपर न पहुँचनेके कारण उन्होंने जूँड़ ॥ ३६—४२ ॥

पुण्डरीक उक्ताव

को भवनिह सम्प्राप्तः कुतो वा परमधुते।
त्वद्दर्शनं ह्यपुण्यानां प्रायेण भुवि दुर्लभम्॥ ४३

नारद उक्तम्

नारदोऽहमनुप्राप्तस्त्वदर्शनकुतुहलात् ।
पुण्डरीक हरेभैक्तस्त्वादुग्धः सततं द्विज॥ ४४

स्मृतः सम्भाषितो वापि पूजितो वा द्विजोनम् ।
पुनाति भगवद्गीताण्डालोऽपि चदृच्छया॥ ४५

दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
इत्युक्तो नारदेनासी भक्तिपर्याकुलात्मना॥ ४६

प्रोवाच मधुरं विप्रस्तदर्शनसुविस्मितः ।

पुण्डरीक उक्ताव

धन्योऽहं देहिनामषा सुपूज्योऽहं सुररथि॥ ४७

कृतार्थाः पितरो मे इष्ट सम्प्राप्तं जन्मनः फलम् ।
अनुग्रहीय देवर्थं त्वद्दक्षस्य विशेषतः॥ ४८

किं किं करोत्यहं विद्वन् भाष्यम्भाषणः स्वकर्मणः ।
कर्तव्यं परमं गुहामुपदेष्टुं त्वमहंसि॥ ४९

त्वं गतिः सर्वलोकानां वैष्णवानां विशेषतः ।

नारद उक्ताव

अनेकानीह शास्त्राणि कर्माणि च तथा द्विज॥ ५०

धर्मसार्गांश्च यहवस्तथैव प्राणिनः स्मृताः ।
वैलक्षण्यं च जगतस्तस्मादेव द्विजोनम्॥ ५१

पुण्डरीकजी बोले—परम कानितमान् दिव्य पुरुष! आप कौन हैं और कहाँसे पधारे हैं? इस पृथ्वीपर जिन्होंने कभी पुण्य नहीं किया है, ऐसे लोगोंके लिये आपका दर्शन प्राप्त दुर्लभ ही है॥ ४३॥

नारदजी बोले—पुण्डरीक! मैं नारद हूँ। तुम्हारे दर्शनकी उत्कृष्टासे ही यहीं आया हूँ। तुम-जैसा निरन्तर भगवद्गीतिपरायण पुरुष दुर्लभ है। हिंजोनम्! भगवद्गीता पुरुष यदि जातिका चण्डाल हो तो भी वह स्वरूपमात्रसे, वार्तालापसे अथवा सम्मानित होकर, अथवा स्वेच्छासे ही लोगोंको पवित्र कर देता है; फिर तुम्हारे-जैसे भक्त शाहाणके सातसङ्को पावनताके विषयमें तो कहना हो क्या है। द्विज! मैं शार्दू धनुष धारण करनेवाले देवदेव भगवान् वासुदेवका दास हूँ॥ ४४-४५ ॥

नारदजीके इस प्रकार अपना परिचय देनेपर उनके दर्शनसे अपना विस्मित हुए विप्रवर पुण्डरीकजी प्रेम-भक्तिसे विहृत्वित होकर भक्त वाणीमें बोले॥ ४६ ॥

पुण्डरीकजीने कहा—आज मैं समस्त देहपारिषोंमें धन्य हूँ, देवताओंद्वारा भी सम्माननीय हूँ। आज मेरे पितर कृतार्थ हो गये। मेरा जन्म सफल हो गया। देवर्थं! मैं आपका भक्त हूँ; आप मुझपर अब विशेषरूपसे अनुग्रह करें। विद्वन्! मैं अपने पूर्वजनकृत कर्मोंसे प्रेरित हो संसारमें भटक रहा हूँ। बताइये, इससे सूटकारा पानेके लिये मैं क्या-क्या कहूँ? मेरे लिये जो परम कर्तव्य हो, वह गोपनीय हो तो भी आप मुझे उसका उपदेश कीजिये। मुने! यों तो आप समस्त लोकोंको ही सहारा देनेवाले हैं, परंतु वैष्णवोंके लिये तो आप विशेषरूपसे शरणदाता हैं॥ ४६-४७ ॥

नारदजी बोले—द्विज! इस जगत्में अनेक शार्दू और अनेक प्रकारके कर्म हैं। इसी तरह यहीं अनेकों प्राणी हैं और उनके लिये धर्मके मार्ग भी बहुत हैं। द्विजोनम्! इसीसे इस जगत्में विद्यितता दिखायी देती है॥ ५०-५१ ॥

अव्यक्ताज्ञायते सर्वं सर्वात्मकमिदं यगत्।
इत्येवं प्राहुरपरे तत्रैव लयमेव च ॥ ५२
आत्मानो बहवः प्रोक्ता नित्याः सर्वगतास्तथा।
अन्यैर्भित्तिष्ठानं श्रेष्ठं तत्त्वात्मोक्तनतर्पयेः ॥ ५३

एवमाद्यनुसंचिन्त्य यथामति यथाभूतम्।
यदन्ति प्रथयः सर्वे नानामतविश्वारदाः ॥ ५४
भृण्यावहितो ब्रह्मन् कथयामि तत्त्वानप्तं।
परमार्थमिदं गुह्यं घोरसंसारमोचनम् ॥ ५५

अनागतपतीतं च विप्रकृष्टमतीतं यत्।
न गुह्यति नृणां दृष्टिर्वर्तमानार्थनिक्षिता ॥ ५६
भृण्यावहितं तात कथयामि तत्त्वानप्तं।
यत्प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो यम सुच्छत ॥ ५७

कदाचिद्द्वाहलोकस्य पद्मयोनि पितामहम्।
प्रणिपत्य यथान्यात्यं पृष्ठ्यानहमव्ययम् ॥ ५८

उक्तं उक्तम्

किं तज्ज्ञानं परं देव कक्ष्य योगः परस्तथा।
एतन्मे तत्त्वतः सर्वं त्वपाचक्ष्य पितामह ॥ ५९

ब्रह्मोक्तम्

यः परः प्रकृतेः प्रोक्तः पुरुषः पञ्चविंशतकः।
स एव सर्वभूतानां नर इत्यभिधीयते ॥ ६०

नराज्ञातानि तत्त्वानि नाराणीति ततो विदुः।
तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६१

नारायणाज्ञागत्सर्वं सर्वकाले प्रजायते।
तस्मिन्नेव पुनस्तत्त्वं प्रलये सम्प्रलीयते ॥ ६२

नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परम्।
नारायणः परं ज्योतिरात्मा नारायणः परः ॥ ६३

कुछ स्वेच्छाका भत है कि यह सम्पूर्ण जगत् सर्वधर्म अव्यक्तसे उत्पन्न होता है और समय आनेपर उसीमें लीन भी हो जाता है। युद्धमानोंमें श्रेष्ठ! कुछ अन्य तत्त्वदर्शी पुरुष आत्माको अनेक, नित्य एवं सर्वत्र व्यापक मानते हैं। अनप! ब्रह्मन्! इन सब वातोंपर विचार करके नाना घटोंका ज्ञान रखनेवाले समस्त ज्ञानिगण अपनी बुद्धि और विद्याके अनुसार जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं, उसे सावधान होकर सुनो; वह सब मैं तुमसे बतलाता है। यह बताया जानेवाला गोप्य परमार्थतत्त्व इस घोरतार संसारसे मुक्ति दिलानेवाला है। मनुष्योंकी दृष्टि प्रायः वर्तमान विषयोंको ही विकल्पकरणसे प्रहण करती है; वह मुदूरवतीं भूत और भवित्वको नहीं प्रहण कर सकती। उत्तम ज्ञानके पालक एवं याप्त्यून्य तत्त्व पुण्डरीक! इस विषयमें श्रीब्रह्माजीने पहले मेरे प्रश्न करनेपर मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं तुम्हें बता रहा हूँ; तुम ध्यान देकर सुनो। एक समयको बता है, ब्रह्मलोकमें विराजमान अविनाशी कर्मलयोनि ब्रह्माजीको प्रणाम करके मैंने उनसे यथोचित-रूपसे प्रभु किया ॥ ५२—५८ ॥

नारदजी बोले—देव! स्वेच्छापितामह! सबसे उत्तम ज्ञान और सबसे उत्कृष्ट योग कौन-सा है? इस विषयमें सारी बातें आप मुझे ठीक-ठीक बतायें ॥ ५९ ॥

ब्रह्माजी बोले—जो तेर्वें विकरीरोके कारणभूत चीजोंसमें तत्त्व प्रकृतिसे भिन्न पवित्रसर्वों तत्त्व है, वही सम्पूर्ण प्राणिशरीरोंमें 'नर' (पुरुष या आत्मा) कहलाता है। सम्पूर्ण तत्त्व नरसे उत्पन्न है, इसलिये 'नर' कहलाते हैं। ये नर जिनके अथन (आक्रम्य) हैं, अर्थात् जो इनमें व्यापक हैं, वे भगवान् 'नारायण' कहे जाते हैं। सृष्टिकालमें सम्पूर्ण जगत् भगवान् नारायणसे ही प्रकट होता है और प्रलयके समय फिर उन्होंमें लीन हो जाता है। नारायण ही परब्रह्म है, नारायण ही परम तत्त्व हैं, नारायण ही परमज्योति और नारायण ही परम आत्मा है।

परादपि परमासौ तस्माप्रातिपां मुने ।
यत्वं किञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ ६४
अनन्तर्भृहिंशु तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ।
एवं विदित्वा तं देवाः साकारं व्याहरन्मुहुः ॥ ६५
नमो नारायणायेति व्यात्वा चानन्यमानसाः ।
किं तस्य द्यनैः किं त्वंैः किं तपेषिः किमध्वैः ॥ ६६
यो नित्यं व्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ।
एतत्प्रानं यरं नातो योगश्चैव परस्तत्त्वा ॥ ६७
परम्परार्थिरुद्गायैः किमन्वैः शास्त्रविस्तृतैः ।
महबोऽपि यथा मार्गं विश्वनवेकं यहस्युरम् ॥ ६८
तथा ज्ञानानि मर्त्ताणि प्रविशानि तपीश्वरम् ।
स हि सर्ववतो देवः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥ ६९
जगदादिरनाशान्तः स्वयम्भूतभावनः ।
विष्णुर्विभूतचिन्त्यात्मा नित्यः सदसदात्मकः ॥ ७०
वासुदेवो जगद्वासः पुराणः कविरव्ययः ।
यस्मात्प्राप्तं स्थितिं कृत्वा त्रैलोक्यं सत्त्वराचरम् ॥ ७१
तस्मात् स भगवान्देवो विष्णुरित्यभिधीयते ।
यस्माद्वा सर्वभूतानां तस्यादानां युग्माशये ॥ ७२
तस्मिन्निवासः संसर्गं वासुदेवसततस्तु सः ।
तमाहुः पुरुषं केचित्केचिदीश्वरपव्ययम् ॥ ७३
विज्ञानमात्रं केचिच्च केचिद्गृह्ण परं तथा ।
केचित्कालमनाद्यन्तं केचित्तीवं सनातनम् ॥ ७४
केचिच्च परमात्मानं केचिच्छैवमनामयम् ।
केचित्क्षेत्रज्ञमित्याहुः केचित्यद्विष्टकं तथा ॥ ७५
अङ्गुष्ठमात्रं केचिच्च केचित्पञ्चरजोपमम् ।
एते चान्ये च मुनिभिः संज्ञाभेदाः पृथग्विद्याः ॥ ७६

मुने ! वे भगवान् नारायण परसे भी पर हैं । उनसे बदकर या उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है । इस जगत्में जो कुछ देखा या सुना जाता है, सबको आहर और भीतरसे व्याप्त करके भगवान् नारायण स्थित है । इस प्रकार उन्हें साक्षर वस्तुओंमें व्यापक जानकर ही देखताओंने बार-बार उनको 'साक्षर' कहा है तथा 'अ॒० नवो नारायणाय'—इस मन्त्रका व्याप (मानसिक जप) करते हुए अनन्यभावसे उनमें मन लगता है । जो अनन्यविचित हो सदा भगवान् नारायणका व्याप करता है, उसको दान, तीर्थसेवन, तपस्या और यज्ञोंमें क्या काम है ? भगवान् नारायणका व्याप ही सर्वोत्तम लगता है तथा इससे बदकर दूसरा कोई योग भी नहीं है । परम्पराविरुद्ध अर्थको अप्यक्त करनेकाले दूसरे-दूसरे शास्त्रोंके विश्लेषणसे क्या लाभ ? जिस प्रकार एक ही चर्दे नगरमें बहुत-से मार्गोंका प्रवेश होता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके सम्पूर्ण ज्ञान उन परमेश्वर नारायणमें प्रवेश करते हैं ॥ ६०—६८ ॥ ॥

वे भगवान् विष्णु अप्यक्तकृपसे सर्वत्र व्याप्त हैं, सूक्ष्म तत्त्व हैं, सदा रहनेकाले सनातन पुरुष हैं, सम्पूर्ण जगत्में अतिविद्या तत्त्व हैं; परं उनका न तो आदि है न अन्त ही । स्वयं वे किसी दूसरेसे तत्पत्र नहीं हैं, अतएव 'स्वयम्भू' है, किन्तु इस सम्पूर्ण भूतप्राणियोंको स्वयं ही प्रकट करते हैं । वे विभु, अविभूत, नित्य और कर्त्त्व-कारणस्वरूप हैं । सम्पूर्ण जगत्में उनमें ही निवास है, इसलिये वे 'वासुदेव' कहे गये हैं । वे पुराणनुरूप, त्रिकलादर्शी और अविकरी हैं । यह सम्पूर्ण चरित्रात्मय विभूतन उन्होंने भगवान्के द्वारा व्याप होनेसे स्थित है, इसलिये वे 'विष्णु' कहलाते हैं । अध्यया युगका क्षय होनेपर महत्तत्व आदि समस्त भूतोंका उन्होंने दृष्टिके अश्रव्यभूत परमात्ममें निवास होता है, इसलिये वे 'वासुदेव' कहे गये हैं । कुछ लोग उनके पुरुष (आत्मा) कहते हैं और कुछ लोग अविवक्ती ईश्वर बताते हैं । कुछ अन्य लोग उन्हें केवल 'विज्ञानस्वरूप' मानते हैं, किन्तु ही उन्हें परज्ञान कहते हैं । कुछ विचारक उन्हें आदि-अनन्तरहित 'काल' कहते हैं और कुछ मनुष्य उनको 'सनातन जीव' मानते हैं । कुछ लोग 'परमात्मा' कहते हैं, कुछ उन्हें एक 'निरामय तत्त्व' मानते हैं, कुछ विद्वान् उन्हें 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं और कुछ उन्हें तीर्थस विकासोंके कारण चीड़ीसर्वे तत्त्व प्रकृति और पचीसर्वे तत्त्वरूप पुरुषसे भिन्न 'छव्योमर्थी तत्त्व' (पुरुषोत्तम) मानते हैं । कुछ लोग आत्माको औंगठेके बाराबर बताते हैं और कुछ विद्वान् कमल-पुष्पकी धूलिके एक कणके

शास्त्रेषु कथिता विष्णोलोकव्यामोहकारकः ।
एकं यदि भवेच्छास्त्रं ज्ञानं निस्संशयं भवेत् ॥ ७७

बहुत्वादिह शास्त्राणां ज्ञानतत्त्वं सुदुर्लभम् ।
आलोऽस्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ॥ ७८

इदमेकं सुनिष्पत्रं ध्येयो नारायणः सदा ।
त्यक्त्वा व्याप्तेहकान् सर्वन् तस्माच्छास्त्रार्थवित्तरान् ॥ ७९

अनन्यचेता ध्यायस्व नारायणपतिनिःतः ।
एवं ज्ञात्वा तु सततं देवदेवं तमव्ययम् ॥ ८०

क्षिप्रं यास्यसि तत्रैव सायुज्यं नात्र संशयः ।
श्रुत्वेदं ब्रह्मणा प्रोक्तं ज्ञानयोगं सुदुर्लभम् ॥ ८१

ततोऽहमास्म विग्रेन्द्र नारायणपरायणः ।
नमो नारायणार्थेति ये विदुर्ब्रह्म शास्त्रतम् ॥ ८२

अन्तकाले जपनास्ते यान्ति विष्णोः परं पदम् ।
तस्माद्वारायणस्तात परमात्मा सनातनः ॥ ८३

अनन्यमनसा नित्यं ध्येयस्तत्त्वविचिन्तकः ।
नारायणो जगद्व्यापी परमात्मा सनातनः ॥ ८४

जगता सुष्टिसंहारपरिपालनतत्परः ।
श्रवणात्पठनाच्चैव निदिव्यासनतत्परैः ॥ ८५

आराध्यः सर्वथा ब्रह्मन् पुरुषेण हितैषिणा ।
निःस्पृहा नित्यसंतुष्टा ज्ञानिनः संयतेनिद्याः ॥ ८६

निर्ममा निरहंकारा रागद्वैषविवर्जिताः ।
अपक्षपतिताः शान्ताः सर्वसंकल्पवर्जिताः ॥ ८७

ध्यानयोगपरा ब्रह्मन् ते पश्यन्ति जगत्पतिम् ।
त्यक्तप्रत्या महात्मानो बासुदेवं हरिं गुरुम् ॥ ८८

कीर्तयन्ति जगन्नाथं ते पश्यन्ति जगत्पतिम् ।
तस्मास्त्वमपि विग्रेन्द्र नारायणपरो भव ॥ ८९

ब्रावर 'अणु' मानते हैं । उपर भगवान् विष्णुके जिन नामोंका उल्लेख किया गया है, ये तथा अन्य भी बहुत-से पित्र-पित्र नाम मुनियोंहारा शास्त्रोंमें कहे गये हैं, जो सापार्ज सोनोंमें भेद-भ्रमका डत्पादन कर उन्हें घोहमें डालनेवाले हैं । यदि एक ही शास्त्र होता तो सबको संदेहरहित निष्ठयात्मक ज्ञान होता । किंतु पहली तो बहुतेरे शास्त्र हैं और सबका अलग-अलग सिद्धान्त है; अतः ज्ञानका तत्त्व बड़ा ही दुर्लेख हो गया है । परंतु मैंने सम्पूर्ण शास्त्रोंका मध्यन करके विचार किया तो एक यही बात सब सिद्धान्तोंके सारांगसे ज्ञात हुई कि सदा 'भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये' । इसलिये घोहमें डालनेवाले सम्पूर्ण शास्त्र-विस्तारोंका त्याग करके एकचिन्त होकर उत्साहपूर्वक भगवान् नारायणका ध्यान करो । इस प्रकार सतत विनानके द्वारा उन अविनाशी देवदेव नारायणका तत्त्व जानकर तुम शीघ्र ही उनमें सापुष्य-मुक्ति प्राप्त कर सोरे, इसमें संदेह नहीं है ॥ ८९-८० ॥

विग्रेन्द्र । इस प्रकार ज्ञानजोके कहे हुए इस परम दुर्लभ ज्ञानयोगको सुनकर मैं तपीसे भगवान् नारायणकी परिचयोंमें लग गया । जो लोग 'अ॒ चक्षे नारायणाय'—इस सनातन ब्रह्मस्तत्त्वमन्त्रको जानते हैं, ये अन्तकालमें इसका जप करते हुए विष्णुके परमात्मामोंको प्राप्त कर लेते हैं । अतः तत्त्व ! तत्त्व-विचार करनेवाले पुरुषोंको सदा ही सनातन परमात्मा नारायणका अनन्यचित्तसे ध्यान करना चाहिये । भगवान् नारायण जगद्व्यापी सनातन परमेश्वर है । ये भित्र-पित्र लक्ष्यसे सम्पूर्ण लोकोंके सृष्टि, पालन तथा संहार-कर्त्त्वमें सभी रहते हैं । इनके नाम, गुण एवं लौकाभ्योंका प्रवण और कोर्त्तन करते हुए उनके ध्यानमें संलग्न हो उनकी आराधना करनी चाहिये । अहम् । अपना हित चाहनेवाले पुरुषके लिये सर्वक्षमा भगवान् नारायणकी आराधना ही कठिन्य है । विग्रवर ! जो लोग निःस्पृह, नित्य-संतुष्ट, ज्ञानी, किळेदिव्य और ममता-आहंता, यग-द्वेष आदि विकारोंसे रहत हैं तथा जो पक्षपातशून्य, शान्त एवं सब प्रकारके संकल्पोंसे वर्जित हैं, वे भगवान्के ध्यानयोगमें तत्पर हो उन जगदीकरक साक्षात्कार कर सकते हैं । जो महरमा त्रिपुरासे जन्मा त्रेत्यकाल जगद्गृह जगत्पत्र भगवान् वासुदेवका कीर्तन करते हैं, वे उन जगत्पतिका दर्शन पां जाते हैं । इसलिये विग्रवर ! तुम भी भगवान् नारायणकी समाराधनामें तत्पर हों जाओ ॥ ८१-८२ ॥

तदन्यः को महोदारः प्रार्थितं दातुमीक्षुरः ।
 हेलया कीर्तिंतो यो वै स्वं पदं दिशति द्विजः ॥ १०
 अपि कार्यस्त्वया चैव जपः स्वाध्याय एव च ।
 तपेवोहित्य देवेशं कुरु नित्यमतन्त्रितः ॥ ११
 किं तत्र ब्रह्मपितृंते: किं तत्र ब्रह्मपितृंते: ।
 नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ १२
 चीरधासा जटाधारी त्रिदण्डी मुण्ड एव च ।
 भूषितो वा द्विजश्चेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ १३
 ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचारता: सदा ।
 तेऽपि यानि परं स्थानं नरा नारायणाश्रयाः ॥ १४
 जन्मान्तरसहस्रेषु यस्य स्वात्मुद्दिरीदृशी ।
 दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ १५
 प्रथाति विष्णुसालोक्य पुरुषो नात्र संशयः ।
 किं पुनस्तादृतप्राणः पुरुषः संयतेन्द्रियः ॥ १६

सूत्र उक्ताच

इत्युक्तवा देवदेवर्षिस्त्रैवान्तरधीयत ।
 परोपकारनिरतस्त्रैलोक्यस्त्रीकभूषणः ॥ १७
 पुण्डरीकोऽपि धर्मात्मा नारायणपरायणः ।
 नमोऽस्तु केशवायेति पुनः पुनरहीरयन् ॥ १८
 प्रसीदस्य महायोगिश्चिदमुच्चार्यं सर्वदा ।
 हत्युपुण्डरीके गोविन्दं प्रतिष्ठाप्य जनार्दनम् ॥ १९
 तपःसिद्धिकरेऽरण्ये शालग्रामे तपोधनः ।
 उवास चिरमेकाकी पुरुषार्थविचक्षणः ॥ २००
 स्वप्नेऽपि केशवादन्यन्नं पश्यति महातपाः ।
 निद्रापि तस्य नैवासीत्युरुषार्थविरोधिनी ॥ २०१
 तपसा छह्यचर्येण शीचेन च विशेषतः ।
 जन्मजन्मान्तरारुद्धसंस्कारेण च स द्विजः ॥ २०२
 प्रसादादेवदेवस्य सर्वलोकैकसाक्षिणः ।
 अवाप परमां सिद्धिं वैष्णवीं द्वीतकल्पयः ॥ २०३

द्विज! जो अवहोलनापूर्वक नाम लेनेपर भी भक्तो अपना परमधाम दे देते हैं, उन भगवान् नारायणके सिवा दूसरा कौन ऐसा महान् उदाहर है, जो माँगी हुई वस्तुको देनेवे समर्थ हो? तुम्हें जप अथवा स्वाध्याय—जो कुछ भी करना हो, उसे उन देवेश्वर भगवान् नारायणके उद्देश्यसे ही मदा आश्रम्य त्यागकर करते रहो। बहुत-से मन्त्र और चतोंसे क्या काम? 'ॐ नमो नारायणाश्रय'—यह मन्त्र हो सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। द्विजश्चेषु। कोई और वस्त्र पहननेवाला, जटा धारण करनेवाला, त्रिदण्डी, सदा माझा मैंहाये रहनेवाला अथवा तरह-तरहके उपकरणोंसे किञ्चित ही क्षमों न हो, उसके ये शास्त्र चिह्न धर्मोंका कारण नहीं हो सकते; किंतु जो मनुष्य भगवान् नारायणकी शरणमें जा चुके हैं, वे पहले निर्दिष्टी, दुह और सदा पापता रहे हों तो भी भगवान्के परमधामको पथारते हैं। हजारों जन्मोंमें भी जिसकी ऐसी चुंडि हो जाय कि 'मैं देवदेव, शार्ङ्गभूषणधीर भगवान् वासुदेवक दास हूँ', वह मनुष्य निःसंदेह भगवान् विष्णुके सालोक्यको प्राप्त होता है; फिर जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर मदा भगवान्में ही अपने प्राणोंको लागाये रहता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है ॥ १०—१६ ॥

सूतजी कहते हैं—सदा दूसरोंके ही उपकरणमें लगे रहनेवाले त्रिभुवनभूषण देवर्षि नारदजी उपर्युक्त यातो अताकर वहींपर अनन्तर्जन हो गये। अब धर्मात्मा पुण्डरीक भी एकमात्र भगवान् नारायणके भजनमें तप्त हो आप-बाहर इस प्रकार उच्चारण करने लगे—'भगवान् केशवके नमस्कार है, हे महायोगिन्। आप पुण्डर प्रसन्न हों।' निरन्तर ये कहते हुए पुण्डर-साधनमें कुक्षित वे तपस्यी पुण्डरीकजी अपने हृदय-कमलके आसनपर जनार्दन भगवान् गोविन्दको स्थापितकर तपस्यामी सिद्धि करनेवाले उस 'जानश्राम' नामक तपोवनमें बहुत कलहक अवैष्टे ही रहे। महातपस्वी पुण्डरीक स्वप्नमें भी भगवान् केशवके सिवा दूसरा कुछ नहीं देखते थे। उनकी नौंद भी उन्हें पुरुषार्थ-साधनमें जाधा नहीं देती थी। उन पापाहित द्विजवर पुण्डरीकने तपस्या, ब्राह्मचर्यं तथा विशेषतः शीचाचारके पालनमें और जन्म-जन्मान्तरोंकी साधनामें मुद्रू हुए भगवद्गीतिसाधक संस्कारसे समृद्ध होकरे एकमात्र साक्षी देवदेव भगवान् विष्णुकी कृपाद्वारा परम उत्तम वैष्णवों सिद्धि प्राप्त कर ली।

सिंहव्याप्रसत्त्वानेऽपि मृगः प्राणिविहिसकाः ।
विरोधं सद्गच्छ हित्वा समेतासत्त्वं संनिधी ।
निवसनित द्विजभ्रेष्ट प्रशान्तेन्द्रियवृत्तयः ॥ १०३

ततः कदाचिद्भगवान् पुण्डरीकस्य धीमतः ।
प्रादुरासीजगग्राथः पुण्डरीकायतेक्षणः ॥ १०५

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासाः स्वगुञ्जवलः ।
श्रीवत्सवक्षः श्रीवासः कौस्तुभेन विभूषितः ॥ १०६

आरुष्य गरुडं श्रीमान्तुत्ताचलस्मनिभिः ।
मेरुभृष्टगिरिलङ्घः कालमेषस्तडिष्टुतिः ॥ १०७

राजतेनातपत्रेण मुक्ताद्यामविलम्बिता ।
विराजमानो देवेशश्वामरव्यजनादिभिः ॥ १०८

तं दृष्ट्वा देवदेवेशं पुण्डरीकः कृताङ्गस्तिः ।
पपात शिरसा भूमौ साध्वसाक्षतो द्विजः ॥ १०९

पिवश्चित्वं हृषीकेशं नयनाभ्यां समाकुलः ।
जगाम महतीं तुमि पुण्डरीकस्तदानयः ॥ ११०

तथेवालोकयन् वीरक्षिरप्रार्थितदशनां ।
ततस्तमाह भगवान् पर्यनाभस्त्रिविकमः ॥ १११

प्रीतोऽस्मि वत्स भद्रं ते पुण्डरीकं महामते ।
वरं वृणीच्च दास्यामि यतो मनसि वर्तते ॥ ११२

सूत उक्तव

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदेवेन भाषितम् ।
इदं विज्ञापयामास पुण्डरीको महामतिः ॥ ११३

उनके निकट सिंह, व्याघ्र तथा दूसरे-दूसरे हिंसक जीव आपसके स्वाभाविक वैर-विरोधको त्याग एक साध मिलकर रहते थे। द्विजवर भगवान्नजी । उनके समीप उन हिंसक जन्मुओंकी इन्द्रियवृत्तियाँ अत्यन्त ज्ञान रहती थीं ॥ १७—१०४ ॥

तत्प्रातः एक दिन बुद्धिमान् पुण्डरीकजीके समझ जगादीश्वर भगवान् नाशयण प्रकट हुए। उनके नेत्र कमल-दलके समान विश्वाल थे। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित थीं। उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा था। दिव्य पुण्डरोंको भाला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। उनके वक्ष-स्वल्पमें लोचल-चिह्न और लक्ष्मीका निवास था। वे कौस्तुभृष्टगिरिके समान रूपामरणे एवं पीताम्बरधारी भगवान् विज्ञु सुनहली कानिवासे गरुडपर आकृष्ट हो इस प्रकार सुशोभित होते थे, मानो वैरागिकिके शिखरपर विज्ञालीकी कानिसे युक्त रूपामरण शोभा पा रहा हो। भगवान्के ऊपर रजतमय भेत छत तना था, जिसमें मोतीयोंकी झालें लगी थीं। उस समय उस छतसे तथा चैवर-अवजन आदिसे उन देवेशरकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ १०५—१०८ ॥

उन देवदेवेश्वर भगवान् नाशयणका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर पुण्डरीकने दोनों हाथ जोड़ लिये। आदर्शभित्ति भवसे उनका भस्त्रक सूक्ष्म गया। उन्होंने भरतीपर माल्ल टेक दिया—साताङ्ग प्रणाम किया। वे विद्वाल होकर उन भगवान् हृषीकेशकी ओर और्ज्ञे फाह-फलकर इस प्रकार देखने लगे, मानो उन्हें पी जावेगे। जिसके दर्शनके लिये वे चिरकालसे प्रस्तुता कर रहे थे, उन भगवान्को आज सामने पाकर उन्होंकी ओर निर्विमेष नवनोंसे देखते हुए पापाहित धीरचित्त पुण्डरीकजीको आज यही ही रुपि हुई। तब तीन यात्रोंसे जिलोकीको नाप लेनेवाले भगवान् पर्यनाभने पुण्डरीकसे कहा— ॥ १०९—१११ ॥

'वत्स पुण्डरीक। तुम्हारा कल्याण हो। महामते! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसीको वत्स रूपमें मौन लो; उसे मैं अवश्य दूँगा' ॥ ११२ ॥

सूतजी कहते हैं—देवदेव नाशयणके कहे हुए इस वचनको सुनकर महामति पुण्डरीकने उनसे यों निवेदन किया ॥ ११३ ॥

पुण्डरीक उक्तम्

क्राहभत्यन्तदुर्बुद्धिः क्रचात्महितवीक्षणम्।
यद्दितं मम देवेश तदाङ्गापय मायथ ॥ ११४

एवमुकोऽथ भगवान् सुप्रीतः पुनरब्दवीत्।
पुण्डरीक महाभाग कृताङ्गलिमुपस्थितम् ॥ ११५

श्रीभगवानुकाश

आगच्छ कुशले तेऽस्तु मर्मेव सह सुखत ।
मदूपधारी नित्यात्मा मर्मेव पार्षदो भव ॥ ११६

सूत उक्तम्

एवमुक्तवति ग्रीत्या श्रीधरे भक्तवत्सले ।
देवदुन्दुभयो नेतुः पुच्छवृष्टिः पवात च ॥ ११७

देवाः सेन्द्रस्तथा सिद्धाः सापु सामिक्ष्यपाप्नुयन्।
जगुक्ष सिद्धगच्छर्वा: किंवराङ्ग विशेषतः ॥ ११८

अथैन समुपादाय वासुदेवो जगत्पतिः ।
जगत्तम गरुडारुदः सर्वदेवनमस्तुतः ॥ ११९

तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र विष्णुभक्तिसमन्वितः ।
तत्त्विभासद्विप्राणस्तद्वकानां हिते रतः ॥ १२०

अर्चपित्ता यथायोगं भजस्व पुरुषोत्तमम् ।
भ्रुणुष्व तत्कथा: पुण्या: सर्वपापद्वाणशिनीः ॥ १२१

येनोपायेन विप्रेन्द्र विष्णुः सर्वेषुरेषुरः ।
प्रीतो भवति विश्वात्मा तत्कुरुष्व सुविमत्तम् ॥ १२२

अस्मिन्देवसहस्रेण वाजपेयशतीरपि ।
नापुवन्ति गतिं पुण्यां नारायणपराह्मयाः ॥ १२३

अजरममरमेकं द्येयमाद्यन्तशून्यं
सगुणविगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम् ।

निरपममुपमेयं योगिनां ज्ञानगम्यं
त्रिभुवनगुणमीमां त्वां प्रपत्तोऽतिम विष्णोः ॥ १२४

पुण्डरीक बोले—देवेश! कहाँ मुझ-जैसा अत्यन्त दुर्बुद्धि पुल्प और कहाँ अपने वास्तविक हितको देखनेका कार्य? अतः मायथ! मेरे लिये जो हितकर हो, उसके सिये आप ही कृपापूर्वक आज्ञा करो ॥ ११४ ॥

उनके यों कहनेपर भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए और अपने समने हाथ जोड़े खड़े हुए महाभाग पुण्डरीकसे बोले ॥ ११५ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—सुखत! तुम्हारा कल्याण हो; तुम मेरे साथ ही आ जाओ और मेरे ही समान रूप भारणकर मेरे निष्प-पार्षद हो जाओ ॥ ११६ ॥

सूतजी कहते हैं—भक्तवत्सल भगवान् श्रीधरके प्रेमपूर्वक यों कहनेपर देवताओंकी दुन्दुभियों बज उठीं और वहीं आकाशसे पूलोंकी वर्षा होने लगी। उस समय इन उद्दिद मधीं देखता और सिद्धगण ‘यह बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ’—इस प्रकार कहकर सापुकाद देने लगे। सिद्ध, गच्छर्व और किंवद्गण विशेषरूपसे यात्रीगान करने लगे। इधर सर्वदेवविद्वत जगदीश्वर भगवान् वासुदेव पुण्डरीकको साथ ले, गहडपर आरूढ़ हो, वैकुण्ठग्रामको जाले गये। इसलिये विप्रवर भरद्वाज! आप भी विष्णुधर्मसे बुक्त हो, अपने मन और प्राणोंको भगवान्में ही लगाकर उनके भक्तोंकि हित-साधनमें लत्पर रहिये और यथाशक्ति भगवान्का पूजन करते हुए उन पुरुषोत्तमका भजन कीजिये। समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली भगवान्की कृधार्दि महा सुनते रहिये। विप्रवर! अधिक क्षम कहें, सर्वेषुरेष्वर विश्वात्मा भगवान् विष्णु विस उपायसे प्रसन्न हों, उसीकी आप विस्तारपूर्वक करें। भगवान् नामायणसे विमुक्त हुए पुरुष हजारों असुमेष और वैकुण्ठों वाजपेय करनेसे भी पावन गतिको नहीं प्राप्त कर सकते ॥ ११७—१२४ ॥

(भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये) ‘भगवन् विष्णो। आप अजर, अमर, अद्वितीय, सबके ध्यान करनेयोग्य, आदि-आनंदसे रहित, सगुण-निर्गुण, स्थूल-सूक्ष्म और अनुपम होकर भी उपमेय हैं। योगियोंको उनके द्वारा आपके स्वरूपका अनुभव होता है तथा आप इस त्रिभुवनके गुरु और परमेश्वर हैं; अतः ये आपकी जरणमें आया हैं’ ॥ १२४ ॥

इति श्रीवर्णसंहेतुर्वाचे पुण्डरीकनादसंवादे चतुः-सहित्यांश्च च ॥ १२४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुरुषवें ‘पुण्डरीक-सार-संकाट’ विवरक वैष्णवों अस्त्राव पूर्ण हुआ ॥ १२४ ॥

पैंसठवाँ अध्याय

भगवत्सम्बन्धी तीर्थ और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्‌के नाम

परद्वाद उकाच

त्वत्तो हि श्रोतुमिच्छामि गुह्यक्षेत्राणि वै हरेः।
नामानि च सुगुह्यानि वद पापहरणि च ॥ १ ॥

सूत उकाच

मन्दरस्थं हरिं देवं ग्रह्या पृच्छति केशवम्।
भगवन्तं देवदेवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ २ ॥

बहुलोकाच

केषु केषु च क्षेत्रेषु द्रष्टव्योऽसि मया हरे।
भक्तेरन्यैः सुरभ्रेषु मुकिकापैविशेषतः ॥ ३ ॥

यानि ते गुह्यनामानि क्षेत्राणि च जगत्पते।
नान्यहु श्रोतुमिच्छामि त्वतः पश्यतेक्षणा ॥ ४ ॥

किं जपन् सुगतिं याति नरो नित्यमतिन्द्रितः।
त्वद्वक्तानां हितार्थाय तन्मे वद सुरेषुर ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुकाच

पृष्ठुच्छावहितो ग्रहन् गुह्यनामानि मेऽथुना।
क्षेत्राणि चैव गुह्यानि तत्र वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ६ ॥

कोकामुखे तु वाराहं मन्दे यथुसूदनम्।
अनन्तं कपिलद्वीपे प्रभासे रविनन्दनम् ॥ ७ ॥

पाल्योदपाने वैकुण्ठं महेन्द्रे तु नृपात्मजम्।
ऋषभे तु महाविष्णुं द्वारकायां तु भूपतिम् ॥ ८ ॥

पाण्डुसहो तु देवेशं वसुरुद्दे जगत्पतिम्।
वल्लीवटे महायोगं चित्रकूटे नराधिपम् ॥ ९ ॥

भद्राकां चोले—सूतजी ! अब मैं आपसे भगवान् विष्णुके गुप्त तीर्थोंका और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्‌के गुप्त नामोंका वर्णन सुनना चाहता हूँ; कृपया आप उन पापनाशक नामोंका मेरे समक्ष वर्णन कोविद्ये ॥ १ ॥

सूतजी चोले—एक समय भन्दराचलपर विराजमान शंख-चक्र गदाधारी देवदेव भगवान् विष्णुसे श्रीब्रह्माजीने पूछा ॥ २ ॥

ब्रह्माजी चोले—सुनोह ! हो ! मुझे तथा मुँह चाहोवाले अन्यान्य भक्तोंको किन-किन शोषणमें जाकर आपका विशेषरूपसे दर्शन करना चाहिये । जगत्पते ! कमललोचन ! आपके जो-जो गुप्त तीर्थ और नाम हैं, उन्हें मैं आपके हो मुखमें सुनना चाहता हूँ । सुरेश ! मनुष्य आलस्य त्यागकर इतिहास किसका जप करनेसे सद्वितीयों प्राप्त हो सकता है ? अपने भक्तोंका हित-साधन करनेके लिये यह जात आप हमें चाहाइये ॥ ३—५ ॥

श्रीभगवान् चोले—व्रह्म ! तुम सावधान होकर सुनो ; मेरे जो गुप्त नाम और क्षेत्र हैं, उन्हें मैं ठोक-ठोक चला रहा हूँ ॥ ६ ॥

कोकामुख-क्षेत्रमें मेरे वाराहस्वरूपका, मन्दराचलपर मध्यसूदनका, कपिलद्वीपमें अनन्तका, प्रभासक्षेत्रमें मर्यानन्दनका, माल्योदपानतीर्थमें भगवान् वैकुण्ठका, महेन्द्रपर्वतपर राजकुमारका, ऋषभतीर्थमें महाविष्णुका, द्वारकामें भूपाल श्रीकृष्णका, पाण्डुसह देवेशका, वसुरुद्दीर्थमें जगत्पतिका, वल्लीवटमें महायोगका, चित्रकूटमें राजा रामका,

नियिषे पीतवासं च गवां निकमणे हरिम्।
 शालग्रामे तपोवासमचिन्त्यं गन्धमादने॥ १०
 कुब्जागारे हृषीकेशं गन्धद्वारे पयोधरम्।
 गरुडध्वजं तु सकले गोविन्दं नाम सायके॥ ११
 बृन्दावने तु गोपालं मधुरायां स्वयम्भुवम्।
 केदारे माधवं विन्दाद्वाराणस्यां तु केशवम्॥ १२
 पुष्करे पुष्कराक्षं तु धृष्टद्वामे जयध्वजम्।
 तुणविन्दुवने वीरमणोंकं सिन्धुसागरे॥ १३
 कस्तरटे महाबाहुममृतं तैजसे बने।
 विश्वासयूपे विशेशं नरसिंहं महावने॥ १४
 हलाह्ले रिषुहरे देवशालां त्रिविक्रमम्।
 पुरुषोत्तमं दशपुरे कुब्जके वामनं विदुः॥ १५
 विश्वाधरं वितस्तायां वासाहे धरणीधरम्।
 देवदारुवने गुह्ये कावेयां नागशायिनम्॥ १६
 प्रयागे योगमूर्ति च पयोधर्यां च सुदर्शनम्।
 कुमारतीर्थे कौमारं स्नोहिते हयशीर्थकम्॥ १७
 उजायिन्यां त्रिविक्रमं लिङ्गकृटे चतुर्भुजम्।
 हरिहरे तु भद्रायां दृष्टा यापात् प्रमुच्यते॥ १८
 विश्वस्तपं कुरक्षेत्रे मणिकुण्डे हलायुधम्।
 लोकनाथप्रयोग्यायां कुणिङ्गने कुणिङ्गनेशम्॥ १९
 भाण्डारे वासुदेवं तु चक्रतीर्थं सुदर्शनम्।
 आळ्ये विष्णुपदे विश्वाचृकरे शूकरं विदुः॥ २०
 शहोशं मानसे तीर्थे दण्डके श्यामले विदुः।
 त्रिकूटे नागभोक्षं च मेरुपुष्टे च भास्करम्॥ २१
 विरजे पुष्पभद्रायां बालं केरलके विदुः।
 यशस्करं विपाशायां माहिष्मत्यां हुताशनम्॥ २२
 क्षीराव्यौ पचानार्थं तु विमले तु सनातनम्।
 शिवनद्यां शिवकरं गयायां च गदाधरम्॥ २३

नैमित्तिरथमें पीताम्बरका, गौओंके विचरनेके स्थान ग्रजमें हरिका, शालग्रामतीर्थमें तपोवासका, गन्धमादन पर्वतपर अचिन्त्य पर्वतेश्वरका, कुब्जागारमें हृषीकेशका, गन्धद्वारमें पयोधरका, सकलतीर्थमें गहडाध्वजका, सायकमें गोविन्दका, बृन्दावनमें गोपालका, मधुरामें स्वयम्भू भगवान्‌का, केदारतीर्थमें माधवका, वाराणसी (काशी)-में केशवका, पुष्करतीर्थमें पुष्कराक्षका, धृष्टद्वाम-क्षेत्रमें जयध्वजका, तुणविन्दु बनमें खोरका, सिन्धुसागरमें अक्षोक्षका, कस्तरटमें महाबाहुका, तैजस वनमें भगवान् अमृतका, विश्वासयूप (या विश्वाद्वापूष)-क्षेत्रमें विशेशका, महावनमें नरसिंहका, हलाह्लमें रिषुहरका, देवशालामें भगवान् त्रिविक्रमका, दशपुरमें पुरुषोत्तमका, कुब्जकतीर्थमें वामनका, वितस्तामें विश्वाधरका, वाराह तीर्थमें भरणीधरका, देवदारुवनमें गुह्यका, कावेटीहटपर नागशायीका, प्रयागमें योगमूर्तिका, पयोधरात्तपर सुदर्शनका, कुमारतीर्थमें कौमारका, लोहितमें हयशीर्थका, उजायिनीमें त्रिविक्रमका, लिङ्गकृटपर चतुर्भुजका और भद्राके हटपर भगवान् हरिहरका दरान करके मनुष्य सब आपोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १—१८ ॥

इसी प्रकार कुरक्षेत्रमें विश्वस्तपका, मणिकुण्डमें हलायुधका, अयोध्यामें लोकनाथका, कुणिङ्गनपुरमें कुणिङ्गनेशका, भास्करामें वासुदेवका, चक्रतीर्थमें सुदर्शनका, आळ्यतीर्थमें विष्णुपदका, शूकरक्षेत्रमें भगवान् शूकरका, मानसतीर्थमें छहोशका, दण्डकतीर्थमें श्यामलका, त्रिकूटपर्वतपर नागभोक्षका, मेरुके वित्तपर भद्राका, पुष्पभद्राके हटपर विरजका, केरलतीर्थमें चालकृष्ण भगवान्‌का, विपाशाके हटपर भगवान् यशस्करका, माहिष्मतीपुरीमें हुताशनका, खोरसागरमें भगवान् पद्मनाभका, विमलतीर्थमें सनातनका, शिवनदीके हटपर भगवान् शिवका, गयामें गदाधरका

सर्वत्र परमात्मानं यः पश्यति स मुच्यते ।
अष्टवृष्टिश्च नामानि कथितानि मया तत् ॥ २४
क्षेत्राणि चैव गुह्यानि कथितानि विशेषतः ।
एतानि मम नामानि रहस्यानि प्रजापते ॥ २५
यः पठेत् प्रातरुत्थाय शृणुयाद्वापि नित्यशः ।
गवां शतसहस्रस्य दत्तस्य फलमाघ्न्यात् ॥ २६
दिने दिने शुचिभूत्वा नामान्येतानि यः पठेत् ।
दुःखानं न भवेत् तस्य मतप्रसादान्न संशयः ॥ २७
अष्टवृष्टिस्तु नामानि त्रिकालं यः पठेत्रः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मम लोके स मोदते ॥ २८
द्रष्टव्यानि यथाशक्त्या क्षेत्राण्येतानि मानवैः ।
वैच्छावैस्तु विशेषेण तेषां मुक्ति ददाप्यहम् ॥ २९

सूत उक्तव्य

हरि समभ्यच्छ्यं तदग्रसंस्थितो
हरि स्मरन् विष्णुदिने विशेषतः ।
इमं स्तवं यः पठते स मानवः
प्राज्ञोति विष्णोरपृतात्मकं पदम् ॥ ३०

इति ओनरसिंहपुराणे आदि पर्यावर्तीहातानिनि विष्णुकामधे पञ्चविंशतिर्योऽस्यायः ॥ ६५ ॥

उत्त प्रकार ओनरसिंहपुराणे 'आदि पर्यावर्तीहातानिनि विष्णुकामस्तदेव' विष्णवकं रौप्यरब्दं अस्याय पूर्ण हुव्यतः ॥ ६५ ॥

* * *

छातुर्वाँ अध्याय

अन्यान्य तीर्थो तथा सहायि और आमलक ग्रामके तीर्थोंका माहात्म्य

सूत उक्तव्य

उक्तः पुण्यः स्तवो श्वाहन् हरेरेभिश्च नामभिः ।
पुनरन्यानि नामानि यानि तानि निवोध मे ॥ १
गङ्गा तु प्रथमं पुण्या यमुना गोपती पुनः ।
सरयूः सरस्वती च चन्द्रभागा चर्मणवती ॥ २
कुरुक्षेत्रं गया चैव पुष्कराणि तथार्दुदम् ।
नर्मदा च महापुण्या तीर्थान्येतानि चोत्तरे ॥ ३

और सर्वत्र ही परमात्माना जो दर्शन करता है, वह मुक्त हो जाता है ॥ १९—२३ ॥

गृहानो! ये अड्सठ नाम हमने तुम्हें बताये तथा विशेषतः गुरु तीर्थोंका भी वर्णन किया। प्रजापते! जो पुरुष उत्तिदिन प्रातःकाल उठकर मेरे इन गुह्यानामोंका पाठ या ऋष्यं करेगा, वह नित्य एक लाख गोदानका फल पायेगा। नित्यप्रति चक्रित्र होकर जो इन नामोंका पाठ करता है, उसको मेरी कृपासे कभी दुःखपनका दर्शन नहीं होता, इसमें सदैह नहीं है। जो पुरुष इन अड्सठ नामोंका उत्तिदिन तीर्थों काल, अर्थात् प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकमें आनन्द भोगता है। सभी मनुष्यों और विशेषतः वैष्णवोंको चाहिये कि यथाशक्ति पूर्वोत्तम तीर्थोंका दर्शन करें। जो लोग ऐसा करते हैं, उन्हें मैं मुक्त देता हूँ ॥ २४—२९ ॥

सूतजी कहते हैं—जो पुरुष सदा और विशेषतः हरिलाल (एकादशी या द्वादशीको) भगवान् विष्णुकी पूजा करके उनके सामने खड़ा हो भगवत्स्वरणपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह विष्णुके अमृतपदको प्राप्त कर सकता है ॥ ३० ॥

सूतजी कहते हैं—भगवान् विष्णु पुनः बोले—
ग्रहण! उपर्युक्त अड्सठ नामोंसे भगवान् विष्णुकी पावन स्तुतिका वर्णन किया गया। अब जो दूसरे-दूसरे पावन तीर्थ और नाम हैं, उनका वर्णन मुझसे सुनिये ॥ १ ॥

सर्वप्रथम गङ्गा पवित्र है; फिर यमुना, गोपती, सरस्, सरस्वती, चन्द्रभागा और चर्मणवती—ये नदियाँ पावन हैं। इसों प्रकार कुरुक्षेत्र, गया, तीर्थों पुष्कर और अर्जुद-क्षेत्र तथा परम पावन नर्मदा नदी—ये उत्तरमें परम पावन तीर्थ हैं।

तापी पयोऽपी पुण्ये हृते तत्सङ्गानीर्थमुत्तमम्।
तथा ब्रह्मगिरेश्वापि मेखलाभिः सप्तनिताः ॥ ५
विरजं च तथा तीर्थं सर्वपापक्षयेकरम्।
गोदावरी महापुण्या सर्वत्र चतुरानन् ॥ ५

तुङ्गभद्रा महापुण्या यत्राहं कमलोद्धव।
हरेण सार्थं प्रीत्या तु वसामि मुनिपूजितः ॥ ६

दक्षिणगङ्गा कृष्णा तु कावेरी च विशेषतः।
सहो त्वामलकग्रामे स्थितोऽहं कमलोद्धव ॥ ७

देवदेवस्य नामा तु त्वया ब्रह्मन् सदार्थितः।
तत्र तीर्थान्यनेकानि सर्वपापहराणि वै।
येषु स्नात्या च पीत्या च पापान्मुच्यते मानवः ॥ ८

सूत उक्तव

इत्येवं कथयित्वा तु तीर्थानि मधुसूदनः।
ब्रह्मणे गतवान् ब्रह्मन् ब्रह्मापि स्वपुरं गतः ॥ ९

भद्रावत उक्तव

तस्मिन्नामलकग्रामे पुण्यतीर्थानि यानि वै।
तानि ये बद्र धर्मज्ञ विस्तरेण यथार्थतः ॥ १०

क्षेत्रोत्पत्तिं च माहात्म्यं यात्रापर्वं च यत्र तत्।
तत्रासी देवदेवेशः पूर्वते ब्रह्मणा स्वयम् ॥ ११

सूत उक्तव

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुण्यं पापप्रणाशनम्।
सहामलकतीर्थस्य उत्पन्न्यादि महामुने ॥ १२

पुरा सहावनोद्देशे तरुरामलको महान्।
आसीद्ब्रह्मन् महोग्रेयं नामाद्यं चोच्यते द्युमिः ॥ १३

फलानि तस्य वृक्षस्य महानि सुरसानि च।
दर्शनीयानि दिव्यानि दुर्लभानि महामुने ॥ १४

तापी, पयोऽपी—ये दो पावन नदियाँ हैं। इनके संगमसे एक बहुत उत्तम तीर्थ हो गया है तथा ब्रह्मगिरिकी मेखलाओंसे जिसे हुए भी बहुत-से उत्तम तीर्थ हैं। विरज-तीर्थ भी समस्त पापोंको क्षीण करनेवाला है तथा चतुरानन ! गोदावरी नदी सर्वत्र परमपावन है। कमलोद्धव ! तुङ्गभद्रा नदी भी अस्वन्त पवित्र करनेवाली है, जिसके तटपर मैं मुनियोद्वारा पूजित हो भगवान् शङ्कुरके साथ स्वयं निवास करता है। दक्षिण गङ्गा, कृष्णा और विशेषतः कावेरी—ये पुण्य नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त, कमलोद्धव ! ये सहापर्वतपर आमलक ग्राममें स्वयं निवास करता है। यहाँ 'देवदेव' नामसे प्रसिद्ध मेरे श्रीविष्णुका तुम स्वयं ही सदा पूजन करते हो। यहाँ समस्त पापोंको हर लेनेवाले अनेक तीर्थ हैं, जिनमें महान् और आश्रम करके मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है ॥ २—८ ॥

सूतजी कहते हैं—भद्रावत ! ब्रह्माजीसे इन तीर्थोंका वर्णन करके भगवान् मधुसूदन अपने धामको छले गये और ब्रह्म भी ब्रह्मलोक सिधारे ॥ ९ ॥

भद्रावतजी बोले—यद्यं ! उस आमलक ग्राममें जो-जो त्रुपतीर्थ हैं, उनका आप विस्तारके साथ यथार्थ-हातपर्वते वर्णन करें। यहाँ देवदेवेश भगवान् विष्णु स्वयं ब्रह्माजीके हारा पूजित होते हैं, उस क्षेत्रकी उत्पत्तिकथा, माहात्म्य और याप्रापर्वका विस्तृत विवरण प्रस्तुत कीजिये ॥ १०—११ ॥

सूतजी कहते हैं—विप्र ! महामुने ! सहापर्वतपर स्थित 'आमलक' तीर्थके आविर्भाव आदिकी पवित्र एवं पापनाशक कथा मैं आपसे कह रहा हूँ सुनें ॥ १२ ॥

ब्रह्मन् ! पूर्वकालमें सहापर्वतके बनमें एक यहूत बढ़ा औलंगेका वृक्ष था। उसे कुदिमान् लोगोंने 'महोग्र' नाम दे रखा था। महामुने ! उस वृक्षके फल बड़े रसीले, दर्शनीय, दिव्य एवं दुर्लभ होते थे।

परेषां ज्ञात्वाणानां तु परेण ज्ञात्वा पुरा।
स दृष्टस्तु महावृक्षो महाफलसमन्वितः ॥ १५
किमेतदिति विप्रेन्द्र ध्यानदृष्टिपरोऽभवत्।
ध्यानेन दृष्टवांस्तत्र पुनरामलकं तरुम् ॥ १६
तस्योपरि तु देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम्।
उत्थाय च पुनः पश्येत्प्रतिमामेव केवलाम् ॥ १७
तत्पादं भूतले देवः प्रविवेश महातरः।
ततस्त्वाराध्यामास देवदेवेशप्रब्लयम् ॥ १८
गन्धपुष्पादिपितृत्यं ज्ञाता लोकपितामहः।
द्वादशभिः समभिस्तु संख्याभिः पूजितो हरिः ॥ १९
तस्मिन् त्रोत्रे मुनिश्चेष्ट माहात्म्यं तस्य को चादेन्।
श्रीसहायमलकग्रामे देवदेवेशप्रब्लयम् ॥ २०
आराध्य तीर्थे सम्प्राप्ता द्वादशं प्रति चतुर्मुखम्।
तस्य पादतले तीर्थं निस्तृतं पश्चिमामुखम् ॥ २१
तच्छ्रुतीर्थमभवत्पुर्यं पापप्रणाशानम्।
चक्रतीर्थं चरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२
वहुवर्षसहस्राणि ज्ञात्वाके महीयते।
शङ्खतीर्थं चरः स्नात्वा वाजपेयफले लभेत् ॥ २३
पीढे मासे तु पुष्पाके तथात्रादिवसं मुने।
ज्ञात्वाः कुण्डिका पूर्वं गङ्गातोयप्रपूरिता ॥ २४
तस्यादौ पतिता ज्ञात्वांस्तत्र तीर्थेऽशुभं हरेत्।
नामा तत्कुण्डिकातीर्थं शिलागृहसमन्वितम् ॥ २५
ततीर्थं मनुजः स्नात्वा तदानीं सिद्धिमाप्नुयात्।
त्रिरात्रोपेषितो भूत्वा यस्तत्र स्नाति मानवः ॥ २६
सर्वपापविनिर्मुको ज्ञात्वाके महीयते।
कुण्डिकातीर्थादुत्तरे पिण्डस्थानाच्च दक्षिणे ॥ २७

समस्त उत्तम ज्ञात्वान्मैं उत्कृष्ट श्रीज्ञात्वाकौन्ते पूर्वकालमें
महान् फलोंसे युक्त उस महावृक्षको देखा था। विप्रेन्द्र !
उसे देखकर, यह क्या है—यह जाननेके लिये ज्ञात्वाजी
ध्यानमान हो गये। उन्होंने ध्यानमें उस स्थानपर महान्
ओंवलोंके वृक्षको देखा और उसके ऊपर रक्षा, चक्र
एवं गदा भारण करने वाले देवेश भगवान् विष्णुको
विराजमान देखा। किं उन्होंने जब ध्यानसे निष्पृत हो
खड़े होकर दृष्टिवात किया, तब वहाँ वृक्षके स्थानमें
केवल भगवान् विष्णुकी एक प्रतिमा दिखायी दी।
उसका आधारभूत वह दिव्य महावृक्ष भूतलमें भैस गया।
तब स्तोकपितामह भगवान् ज्ञात्वाजी गच्छ-पुष्प आदिसे
नित्य ही उन अविनाशी देवदेवेशरकी आराधना करने
लगे। उस समय उनके हारा चारह और सात चार
भगवानकी पूजा सम्प्ल दुई ॥ १३—१५ ॥

मुनिश्चेष्ट ! उस आमलकसंत्रमें विराजमान भगवान्के
महाभवका कौप वर्णन कर सकता है। श्रीसहायपर्वतस्थ
आमलक ग्राममें इस प्रकार अविनाशी देवेशर भगवान्की
आराधना करनेके पश्चात् ज्ञात्वाजीको वहाँ चारह तीर्थ
और प्राप्त हुए। भगवान्के चरणके नीचे पश्चिमाभिषुख
एक तीर्थ प्रकट हुआ। वह ‘चक्रतीर्थ’ के नामसे विख्यात
हुआ। वह पाथन तीर्थ पारोंको नह करनेवाला है। मनुष्य
चक्रतीर्थमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो जाता है
और हजारों वर्षोंतक ज्ञात्वाकौन्ते पूजित होता है। इसके
बाद ‘शङ्खतीर्थ’ है। उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको
वाजपेय चड्ढका फल मिलता है। मुने ! पौर भासमें जब
मूर्य पुष्प नक्षत्रपर स्थित हों, उसी समय वहाँकी
याक्राका पर्व है। पूर्वकालमें एक समय ज्ञात्वापर्वतपर
गङ्गाजलमें भरा हुआ ज्ञात्वाका कमण्डल गिर पड़ा था,
तबसे वह स्थान ‘कुण्डिका’ तीर्थके नामसे विख्यात हुआ।
वह तीर्थ सोरे अशुभोंको हर लेता है। वहाँ एक शिलामय
गृह भी है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य तत्काल सिद्धि
प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य उस तीर्थमें तीन रातक
उपवास करके स्नान करता है, वह सब पापोंसे सर्वथा
मुक्त हो ज्ञात्वाकौन्ते पूजित होता है। कुण्डिका-
तीर्थसे उत्तर और ‘पिण्डस्थान’ नामक तीर्थसे दक्षिण

ऋणमोचनतीर्थ हि तीर्थोनां गुणमुत्तमम्।
त्रिरात्रमुषितो यस्तु तत्र स्नानं समाचरेत्॥ २८

ऋणीस्त्रिभिरसौ ब्रह्मन् मुच्यते नात्र संशयः।
आद्दं कृत्वा पितृभ्यक्षु पिण्डस्थानेषु यो जरः॥ २९

पितृनुहित्य विधिवतिपण्डाप्तिवांपयिष्यति।
सुताः पितरो यान्ति पितॄलोकं न संशयः॥ ३०

पञ्चरात्रोषितस्नायी तीर्थे वै पापमोचने।
सर्वपापक्षयं प्राप्य विष्णुलोके स्तु मोदते॥ ३१

तत्रैव महतीं धारां शिरसा यस्तु धारयेत्।
सर्वक्रतुफलं प्राप्य नाकपृष्ठे महीयते॥ ३२

धनुःपाते महातीर्थे भक्त्या यः स्नानमाचरेत्।
आयुर्भूगफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते॥ ३३

शरविन्दी जरः स्नात्वा शतकतुपुरं करेत्।
वाराहतीर्थे विष्णेन् सहो यः स्नानमाचरेत्॥ ३४

अहोरात्रोषितो भूत्वा विष्णुलोके महीयते।
आकाशगङ्गानान्ना च सहाये तीर्थमुत्तमम्॥ ३५

शिलातसाततो ब्रह्मादिगता सेतपुणिका।
तस्या भक्त्या तु यः स्नाति जरो द्विजवरोत्तम॥ ३६

सर्वक्रतुफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते।
सहायत्रमलसह्यादेव्यद्यतोयविनिर्गमः॥ ३७

तत्र तीर्थं विजानीहि स्नात्वा पापात्ममुच्यते।
सह्याद्रिं गतवाप्रित्यं स्नात्वा पापात्ममुच्यते॥ ३८

एतेषु तीर्थेषु नरो द्विजेन्द्र
पुण्येषु सह्याद्रिसमुद्देश्ये।
दत्त्वा सुपुण्याणि हरि स भक्त्या
विहाय पापं प्रविशोत्स विष्णुम्॥ ३९

'शृणमोचन' नामक तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें उत्तम और गुण है। ब्रह्मन्! वहाँ तीन रात्रक निवास करके स्नान करता है, वह निसंदेह तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य पिण्डस्थानमें ब्राह्म करके वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे विधिपूर्वक पिण्डदान करेगा, उसके पितर पूर्ण रूप होकर अवश्य ही पितॄलोकको प्राप्त होंगे॥ ३०—३१॥

इसके बाद 'पाप-मोचन' तीर्थ है। उस तीर्थमें पाँच रात्रक निवास करते हुए जो नित्य स्नान करता है, वह अपने सम्पूर्ण शर्तोंको नष्ट करके विष्णुलोकमें आनन्दका भागी होता है। वहाँ एक बहुत बड़ी धारा बहती है। उसके जलको जो अपने सिरपा धारण करता है, वह समस्त यज्ञोंके फलको प्राप्त करके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३१—३२॥

इसके बाद 'धनुःपात' नामक एक महान् तीर्थ है। उसमें जो भक्तिपूर्वक स्नान करता है, वह पूर्ण आयुका भोग करके अनन्त स्वर्गलोकमें सम्पादित होता है। 'शरविन्दु' तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य मृत्युके बाद इन्द्रपुरीमें जाता है तथा जो सहायत्वपूर्तपर 'वाराहतीर्थ' में स्नान करता और वहाँ एक दिन-रात निवास करता है, वह विष्णुलोकमें सूजित होता है। इसके बाद सहायके शिखरपर 'आकाशगङ्गा' नामक एक उत्तम तीर्थ है। वहाँको शिलाओंके नीचेसे सफेद मिट्टी निकलती है। विश्ववर ! उसमें जो भक्तिपूर्वक स्नान करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्तकर विष्णुलोकमें पूजित होता है॥ ३३—३४॥,

ब्रह्मन्! उस नियंत्र सहायगिरिसे जहो-जहो जलके हाने गिरते हैं, वहाँ-वहाँ सब जगह तीर्थं समझना चाहिये। उसमें स्नान करके मनुष्य सब शर्तोंसे मुक्त हो जाता है। जो नित्य ही सहायत्वकी यात्रा करके वहाँ स्नान करता है, वह निष्पाप हो जाता है। द्विजेन्द्र ! जो मनुष्य सहायत्वके इन पाथन तीर्थोंमें स्नान करके भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको पुण्य सहाता है, वह शर्तोंसे रोकत हो भगवान् विष्णुमें ही लौन हो जाता है।

सकृतीर्थाद्रितोदेषु गङ्गायां तु पुनः पुनः।
सर्वतीर्थं पर्याप्ति गङ्गा सर्वदेवमयो हरिः॥ ४०

सर्वशास्वमयी गीता सर्वधर्मो दयापरः।
एवं ते कथितं विष्र क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम्॥ ४१

श्रीसह्याधलकग्रामे तीर्थे स्नात्वा फलानि च।
तीर्थानाम्पि यज्ञीर्थे तनीर्थे द्विजसत्तम।
देवदेवस्य पादस्य तलाद्वयि विनिस्तम्॥ ४२

आम्बोद्युगे तुरगमेधसहस्रतुल्य
तच्चक्तीर्थं पिति वेदविदो वदन्ति।
स्नानाच्य तत्र मनुजा न पुनर्भवन्ति
पादौ प्रणाम्य शिरसा मधुसूदनस्य॥ ४३

गङ्गाप्रथागगमैपिष्ठपुष्कराणि
पुण्यायुतानि कुरुजाङ्गलयामुनानि।
कालेन तीर्थसलिलानि पुनन्ति पापात्
पादोदकं भगवतस्तु पुनाति सदा॥ ४४

अन्य सभी तीर्थोंके पर्वतोंसे बहनेवाले जलमें यथासम्पव
एक चार स्नान कर लेता चाहिये, परंतु गङ्गामें बार-
बार स्नान करें; क्योंकि गङ्गामें सम्पूर्ण तीर्थ हैं, भगवान्
विष्णुमें सभी देवता वर्तमान हैं, गीता सर्वशास्त्रमयी है
और सभी धर्मोंमें जीवदया श्रेष्ठ है॥ ३७—४०%॥

विष्र! इस प्रकार मैंने आपसे इस क्षेत्रके उत्तम
माहात्म्यका वर्णन किया। साथ ही सदा और आमलक
ग्रामके तीर्थोंमें स्नान करनेके फल भी बताये। द्विजश्रेष्ठ!
वही उत्तम तीर्थ है, जो तीर्थोंका भी तीर्थ हो। यह
आमलकग्राम तीर्थ देवदेव भगवान् विष्णुके चरण-
तलसे प्रकट हुआ है, अतः यह सर्वांतम तीर्थ है।
यहाँपर जो जल है, उसमें स्नान करना हजार अश्वेष
यज्ञ करनेके बराबर है। उसीको वेदवेता पुरुष 'चक्रतीर्थ'
कहते हैं। वहाँ स्नान करके भगवान् मधुसूदनके
चरणोंमें मस्तक झुकानेसे मनुष्यका इस संसारमें
पुनर्जन्म नहीं होता। गङ्गा, प्रणाग, नैषिण्यारण्य, पुष्कर,
कुरुजाङ्गलप्रदेश और यमुना-तटवर्ती तीर्थ—ये सभी
पुण्यतीर्थ हैं। इन तीर्थोंके जलमें स्नान करनेपर वे
कुछ समयके बाद पवित्र करते हैं; किंतु भगवान्
विष्णुका चरणोदकरूप यह 'चक्रतीर्थ' तत्काल पवित्र
कर देता है॥ ४१—४४॥

इति श्रीनरसिंहपुण्डणे तीर्थस्नानाच्यं चक्रहितमेऽप्यादः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुण्डणे 'तीर्थस्नानाच्यं चक्रहितमेऽप्यादः' पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

● ● ●

सङ्गठवाँ अध्याय

मानसतीर्थ, द्रव तथा नरसिंहपुण्डणका माहात्म्य

सूत उचाच

तीर्थानि कथितान्येवं भीमानि द्विजसत्तम।

मानसानि हि तीर्थानि फलदानि विशेषतः॥ १

सूतजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार अवातक
मैंने भूतलके प्रसिद्ध तीर्थोंका वर्णन किया; किंतु इन
तीर्थोंकी अपेक्षा मानसतीर्थ विशेष फल देनेवाले हैं।

मनोनिर्मलता तीर्थं रागादिपिरनाकुला।
सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमित्रियनिग्रहः॥ २

गुरुशुश्रूषणं तीर्थं मातृशुश्रूषणं तथा।
स्वधर्मचरणं तीर्थं तीर्थमग्रेषु पासनम्॥ ३

एतानि पुण्यतीर्थानि ब्रतानि शुणु येऽधुना।
एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासं च वै मुने॥ ४

पूर्णमास्याभावावास्यामेकभुक्तं समाचरेत्।
तत्रैकभुक्तं कुर्वाणः पुण्यां गतिमवानुयात्॥ ५

चतुर्थ्या तु चतुर्दश्या साप्तम्या नक्तमाचरेत्।
अष्टम्या तु ब्रयोदश्या स प्राज्ञोत्त्वभिकाञ्छितम्॥ ६

उपवासो मुनिश्चेष्ट एकादश्यां विधीयते।
नरसिंहं समध्यचर्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७

हस्तयुक्तेऽर्कदिवसे सौरनक्तं समाचरेत्।
स्नात्याकं मध्ये विष्णुं च द्वात्या रोगात्प्रमुच्यते॥ ८

आत्मनो हिंगुणां छायां यदा संतिष्ठुते रविः।
सौरनक्तं विजानीयात्र नक्तं निशि भोजनम्॥ ९

गुरुवारे ब्रयोदश्यामपराह्ने जले ततः।
तर्पयित्वा पितृन्देवानुषीक्ष तिस्तन्दुलैः॥ १०

नरसिंहं समध्यचर्यं यः करोत्प्रवासकम्।
सर्वपापविनिर्मुको विष्णुलोके महीयते॥ ११

यदागस्त्योदये ग्रासे तदा समसु रात्रिषु।
अर्थं द्वात् समध्यचर्यं अगस्त्याय महामुने॥ १२

वास्तवमें राग-द्वेषादिसे रहित मनकी स्वच्छता ही उत्तम तीर्थ है। सत्य, दया, इन्द्रियनिग्रह, गुरुसेवा, माता-पिताओं सेवा, स्वधर्मपालन और अग्रिकी उपासना—ये परम उत्तम तीर्थ हैं। यह तो पावन तीर्थोंका वर्णन हुआ, अब उत्तोंका वर्णन सुनिये॥ १—३ ॥

मुने। दिन-रातमें एक बार भोजन करके रहना और विशेषतः रातमें भोजन न करना—यह उत्तम है। पूर्णिमा और अमावास्याको एक ही बार भोजन करके रहना चाहिये। इन तिथियोंमें एक बार भोजन करके रहनेवाला मनुष्य पापन गतिको प्राप्त करता है। जो चतुर्थी, चतुर्दशी, सप्तमी, अष्टमी और ब्रयोदशीको रातमें उपवास करता है, उसे मनोवाञ्छित बस्तुको प्राप्ति होती है॥ ४—६॥

मुनिक्रेत्रः। एकादशीको दिन-रात उपवास करनेका विषय है। उस दिन भगवान् विष्णुका पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। यदि हुस्त नक्तप्रसे मुक्त रविवार हो तो उस दिन रात्रिमें उपवास करके सौरनक्त-ब्रतका पालन करना चाहिये। उस दिन स्नानके पश्चात् सूर्यमण्डलमें भगवान् विष्णुका भावन करके मनुष्य रोगमुक्त हो जाता है। जब सूर्य अपनी दुगुनी छायामें स्थित हो, उस दिन सौर नक्तब्रतका समय है। उस समयसे लेकर राततक भोजन न करे॥ ७—९॥

जो मुहुर वृहस्पतिवारको ब्रयोदशी तिथि होनेपर अपराह्नकालमें जलमें स्नान करके तिल और तण्डुलोंहारा देवता, ज्ञायि एवं चितरोंका तर्पण करता है तथा भगवान् नरसिंहका पूजन करके उपवास करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १०—११॥

महामुने। जब अगस्त्य तारेका उदय हो, उस समयसे लगातार सात रात्रियोंतक अगस्त्य-मुनिकी पूजा करके उन्हें अर्थ देना चाहिये।

शङ्के तोयं विनिक्षिप्य सितपुष्पाक्षतेयुतम्।
मन्त्रेणानेन वै दण्डचित्तपुष्पादिनाचित्ते ॥ १३
काशपुष्पप्रतीकाश अग्रिमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥ १४
आतापी भक्षितो येन वातापी च महासुरः।
समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः ग्रीवतां भ्रम ॥ १५
एवं तु दण्डादो सर्वमगस्त्ये च दिशं प्रति।
सर्वपापविनिमुक्तस्तमस्तरति दुस्तरम् ॥ १६
एवं ते कथितं सर्वं भरद्वाजं महापुने।
पुराणं नारसिंहं च मुनीनां संनिधी मया ॥ १७
सर्वश्च प्रतिसर्वश्च वंशो मन्यन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव सर्वभेदं प्रकीर्तितम् ॥ १८
शहाणीव पुरा प्रोक्तं परीच्यादिषु वै मुने।
तेभ्यश्च भृगुणा प्रोक्तं मार्कण्डेयाय वै ततः ॥ १९
मार्कण्डेयेन वै प्रोक्तं राज्ञो नामकुलस्य ह।
प्रसादाप्तरसिंहस्य प्राप्तं व्यासेन धीमता ॥ २०
तत्प्रसादान्वया प्राप्तं सर्वपापप्रणाशनम्।
पुराणं नरसिंहस्य मया च कथितं ततः ॥ २१
मुनीनां संनिधी पुण्यं स्वस्ति तेऽस्तु दण्डाम्प्यहम्।
यः शृणोति शुचिभूत्वा पुराणं होतदुत्तमम् ॥ २२
माघे मासि प्रव्यागे तु स स्नानफलपाण्यात्।
यो भवत्या श्रावयेद्वक्तात्रित्यं नरहरेरिदम् ॥ २३
सर्वतीर्थफलं प्राप्य खिल्लोके महीयते।
श्रुत्वैव स्नातकैः सार्थं भरद्वाजो महामतिः ॥ २४
सूतपञ्चर्च्यं तत्रैव स्थितवान् मुनयो गताः।

शङ्कैर्भैं खेत पुष्प और अक्षतमहित जल रखकर भेत पुष्प आदिसे शूचित हुए अगस्त्यजीके प्रति निमाङ्कित मन्त्र-चाक्ष चढ़कर अर्घ्य निवेदन करे—'अग्नि और वायु देवतासे प्रकट हुए अगस्त्यजी! काश पुष्पके समान उज्ज्वल वर्णवाले कुम्भज मुने! मित्र और वरुणके पुत्र भगवान् कुम्भयोने! आपको नमस्कार है। जिन्होंने महान् असुर आतापी और वातापीको भक्षण कर लिया और समुद्रको भी सोख डाला, वे अगस्त्यजी मुहरपर प्रसन्न हों।' इस प्रकार कहकर जो पुरुष अगस्त्यकी दिशा (दक्षिण)-के प्रति अर्घ्य अपर्यं करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो, दुस्तर मोहान्धकारसे पार हो जाता है ॥ १२—१६ ॥

महापुने! भरद्वाजो! इस प्रकार मैंने मुनियोंके निकट यह पूजा 'नरसिंहपुण्ड्र' आपको सुनाया। इसमें मैंने सर्वं, प्रतिसर्वं, चंह, मन्यन्तर और वंशानुपरित—मध्योक्ता वर्णन किया है। मुने! इस पुराणको सर्वप्रथम भ्रह्मजीने भरीचि आदि मुनियोंके प्रति कहा था। उन मुनियोंमें पुरुजोंने भार्कण्डेयजीके प्रति इसे कहा और भार्कण्डेयजीने नामकुलोल्लभ राजा सहस्रानीको इसका क्रान्ति किया। फिर भगवान् नरसिंहजी कृपासे इस पुण्ड्रको युद्धमन् श्रोत्वसज्जीने प्राप्त किया। उनकी अनुकम्पासे मैंने इस सर्वपापनाशक पञ्चित्र पुराणका ज्ञान प्राप्त किया और इस समय मैंने यह नरसिंहपुराण इन मुनियोंके निकट आपसे कहा। अब आपका कल्याण हो, मैं जा रहा हूँ ॥ १७—२१ ॥

ओ मनुष्य पञ्चित्र होकर इस उत्तम पुराणका प्रवण करता है, यह मात्र मासमें प्रथागतीर्थमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। ओ मनुष्य इस नरसिंहपुराणको भगवान्-के भक्तोंके प्रति नित्य सुनाता है, यह सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ २२—२३ ॥

इस प्रकार ऋषिकोंके साथ इस पुराणको मूल महामति भरद्वाजजोंने मूलजोंका पूजन-सत्कार किया और स्वर्य वही रह गये। अन्य सब मुनि आपने-अपने स्थानको छले गये ॥ २४ ॥

सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं नृसिंहात्मकम् ॥ २५

पठतां शृणुतां नृणां नरसिंहः प्रसीदति ।

प्रसन्ने देवदेवेशो सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ २६

प्रक्षीणपापबन्धास्ते मुक्ते यान्ति नरा इति ॥ २७

यह नरसिंहपुराण समस्त पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यमय है। जो इसको पढ़ते और सुनते हैं, उन मनुष्योंपर भगवान् नरसिंह प्रसन्न होते हैं। देवदेवेश नरसिंहके प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है और जिनके पाप-बन्धन सर्वथा नह हो गये हैं, वे मानव भोक्तोंप्राप्त होते हैं ॥ २५—२७ ॥

इति नरसिंहपुराणे नामस्तीर्थकार्णं नाम सर्वशक्तिशीर्थम् ॥ ६७ ॥
इस प्रकार नरसिंहपुराणमें 'नामस्तीर्थ-कर्त' नामक सहस्ररूप भगवान् पृथुआ ॥ ६७ ॥

पठन ॥ अवलोकन

अड़सठवाँ अध्याय

नरसिंहपुराणके पठन और अवलोकन का फल

पृथु उक्तम्

इत्येतत् सर्वमाख्यातं पुराणं नारसिंहकम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिवारणम् ॥ १

समस्तपुण्यफलदं सर्वव्यञ्जकलप्रदम् ।
ये पठन्त्यपि श्रुण्वन्ति श्लोकं श्लोकार्थमेव च ॥ २

न तेषां पापबन्धस्तु कदाचिदपि जायते ।
विष्णवर्णितगिरं पुण्यं पुराणं सर्वकामदम् ॥ ३

भक्त्या च वदतामेतच्छृणुतां च फलं श्रुणु ।
शतजन्मार्जितैः पापैः सदा एव विमोचिताः ॥ ४

सहस्रकुलसंयुक्ताः प्रयान्ति परमं पदम् ।
किं तीर्थ्येऽप्रदानैर्वा तपोभिर्वा किमव्यर्थः ॥ ५

अहन्यहनि गोविन्दं तत्परत्वेन शृणुताम् ।
यः पठेत्यात्रतुत्याय यदस्य श्लोकविंशतिम् ॥ ६

सूतमी कहते हैं—इस प्रकार मैंने यह सम्पूर्ण नरसिंहपुराण कह सुनाया। यह सब पापोंको हरनेवाला और सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है। समस्त पुण्यों तथा सभी वर्जनोंका फल देनेवाला है। जो सोग इसके एक श्लोक या आधे श्लोकका भ्रष्टण अथवा पाठ करते हैं, उन्हें कभी भी पापोंसे बचन नहीं प्राप्त होता। भगवान् विष्णुकी अर्पण किया हुआ यह पापन पुराण समस्त कामनाओंको पूर्ति करनेवाला है। भट्टाजजी। जो सोग भक्तिपूर्वक इस पुराणका पाठ अथवा अवण करते हैं, उनको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन सुनिये। ये सौ जन्मोंके पापसे तत्काल ही मुक्त हो जाते हैं तथा अपनी सहस्र वर्णियोंके साथ ही परमपदको प्राप्त होते हैं। जो प्रतिदिन एकाप्राचित्यसे गोविन्दगुणगान सुनते रहते हैं, उनको अनेक बार तीर्थ-सेवन, गोदान, तपस्या और यज्ञानुषान करनेसे क्या लेना है। जो प्रतिदिन सबैं उठकर इस पुराणके बीस श्लोकोंका पाठ करता है,

ज्योतिष्टोमफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ।
एतत्पवित्रं पूज्यं च न याज्यमकृतात्मनाम् ॥ ५

द्विजानां विष्णुभक्तानां श्राव्यमेतत्र संशयः ।
एतत्पुराणश्रवणमिहामुत्र सुखप्रदम् ॥ ६

बदतां भृणवतां सदा: सर्वपापप्रणाशनम् ।
बहुनात्र किमुक्तेन भूयो भूयो मुनीच्छ्राः ॥ ७

अद्वयाअद्वया वापि श्रोतव्यमिदमुत्तमम् ।
भारद्वाजमुखाः सर्वे कृतकृत्या द्विजोत्तमाः ॥ ८

सूर्तं हृष्टाः प्रपूज्यात्य सर्वे स्वस्वात्मम् यथुः ॥ ९

वह ज्योतिष्टोम वज्रका फल प्राप्तकर विष्णुलोकमें
प्रतिष्ठित होता है ॥ ६—६७ ॥

यह पुराण परम पवित्र और आदरणीय है। इसे
अजितेन्द्रिय पुरुषोंको तो कभी नहीं सुनाना चाहिये,
परंतु विष्णुप्रक द्विजोंको निस्संदेह इसका व्रतण करना
चाहिये। इस पुराणका व्रतण इस लोक और परलोकमें
भी सुख देनेवाला है। यह वक्ताओं और श्रोताओंके
पापको उत्कर्ष नह कर देता है। सुनीच्छ्राण! इस
विषयमें बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता है। ब्रह्मासे
हो या अब्रह्मासे, इस ठतम पुराणका व्रतण करना ही
चाहिये। इस पुराणको सुनकर भारद्वाज आदि द्विजस्त्रियाण
कृतार्थ हो गये। उन्होंने हर्षपूर्वक सूतजीका समादर
किया। फिर सब सौंग अपने-अपने आवश्यको चले
गये ॥ ७—११ ॥

इति श्रीनारसिंहपुराणे सूर्यभद्राजादिसंस्करं सर्वदुःखोपहरं श्रीनारसिंहपुराणव्याख्यातम् ॥ ६८ ॥
उत्तम प्रकाश मूल-भारद्वाजादि-संस्करणे श्रीनारसिंहपुराणमें इसके 'सर्वदुःखोपहरं व्याख्यातका वर्तमान' शामक
अङ्गस्तर्चार्य अभ्याद पृष्ठा त्रुञ्जी ॥ ६८ ॥

‘कल्याण’ के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

| | | | |
|------|----------------------------|------|---|
| 1184 | कृष्णाङ्क | 1135 | भगवत्त्राय-महिमा और प्रार्थना-अङ्क |
| 749 | इश्वराङ्क | 572 | परलोक-पुनर्जन्माङ्क |
| 635 | शिवाङ्क | 517 | गर्ग-संहिता-[भगवान् श्रीराधाकृष्णाकी दिव्य सीलाओंका वर्णन] |
| 41 | शक्ति-अङ्क | | |
| 616 | योगाङ्क | | |
| 627 | संत-अङ्क | 1113 | नरसिंहपुराणम्-सानुवाद |
| 604 | साधनाङ्क | 1362 | सं० अग्निपुराण |
| 1104 | भागवताङ्क | 1432 | वामनपुराण |
| 1002 | सं० चाल्मीकीय रामायणाङ्क | 657 | श्रीगणेश-अङ्क |
| 44 | संक्षिप्त पवित्रपुराण | 42 | हनुमान-अङ्क— |
| 539 | संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण | 1361 | सं० श्रीवराहपुराण |
| 1111 | संक्षिप्त ऋषपुराण | 791 | सूर्याङ्क |
| 43 | नारी-अङ्क | 584 | सं० भविष्यपुराणाङ्क |
| 659 | उपनिषद्-अङ्क— | 586 | शिवोपासनाङ्क |
| 518 | हिन्दू-संस्कृति-अङ्क | 628 | रामधर्म-अङ्क |
| 279 | सं० स्कन्दपुराणाङ्क | 653 | गोसेवा-अङ्क |
| 40 | भक्त-चरिताङ्क | 1132 | धर्मशास्त्राङ्क |
| 573 | चालक-अङ्क | 1131 | कृष्णपुराणाङ्क |
| 1183 | सं० नारदपुराण | 448 | भगवान्किला-अङ्क |
| 667 | संतवाणी-अङ्क | 1044 | वेद-कथाङ्क |
| 587 | सत्कथा-अङ्क | 1189 | सं० गरुडपुराणाङ्क |
| 636 | तीर्थाङ्क | 1377 | आरोग्य-अङ्क |
| 660 | भक्ति-अङ्क | 1379 | नीतिसार-अङ्क (मासिक अङ्कोंके साथ) |
| 1133 | सं० देवीभागवत-मोटा टाइप | 1472 | नीतिसार-अङ्क (विना मासिक अङ्कोंके) |
| 574 | संक्षिप्त चोगचासिल अङ्क | | |
| 789 | सं० शिवपुराण-(बड़ा टाइप) | | |
| 631 | सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण | 1467 | भगवत्प्रेय-अङ्क (मासिक अङ्कोंके साथ) |

‘गीताप्रेस’ गोरखपुरकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

| | | | |
|------------|--------|--|--|
| गोरखपुर- | २७३००५ | गोताप्रेस—पो० गीताप्रेस | ① (०५५१) २३३४४७२१, फैक्स २३३६९९७ website : www.gitapress.org / e-mail: booksales@gitapress.org |
| दिल्ली- | ११०००६ | २६०९, नवीं सड़क | ① (०११) २३२६९६७८८, फैक्स २३२५९९४० |
| कोलकाता- | ३००००७ | गोविन्दभवन-कार्यालय; १५१, महात्मा गांधी रोड, | ① (०३३) २२६८६८९४४, फैक्स (०३३) २२६८०२५१ |
| मुम्बई- | ४००००२ | २८२, मामलदास गांधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट) मरीन लाइन्स स्टेशनके जास | ① (०२२) २२०७२६३६ |
| कानपुर- | २०८००१ | २५/५५, घिरहाना रोड | ① (०५१२) २३५२३५१, फैक्स २३५२३५१ |
| पटना- | ८००००४ | अरोहीकरणपथ, छड़े अस्पतालके सामने | ① (०६१२) २६६२८७९ |
| राँची- | ८३४००१ | जै० जै० रोड, अपर बाजार | ① (०६५१) २२१०६८५ |
| सूरत- | ३९६००१ | वैभव एपार्टमेंट, नूतन निवासके सामने, भटाच रोड | ① (०२६१) २२३७३६२, २२३८०६५ |
| | | e-mail: suratdukan@gitapress.org; | |
| इन्दौर- | ४५२००१ | जौ० ५, हावर्डन, ४ अर. एन. टी. नां | ① (०७३१) २५२६५१६, २५१११७७ |
| हेदराबाद- | ५०००९६ | ४१, ४-४-१, दिलशाद बाजार, मुल्कान बाजार | ① (०४०) २५७५८३११ |
| नागपुर- | ४४०००२ | श्रीजी कृष्ण कॉम्प्लेक्स, ८५१, न्यू इतवारी योह | ① (०७१२) २७३४३५४ |
| कटक- | ३५३००९ | भरतिया टावसं, बादाम चाडी | ① (०६७१) २३३५४८१ |
| रायपुर- | ४९२०६९ | मित्रल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलधानी चौक (उनीसगढ़) | ① (०७७१) ५०३४४३० |
| बाराणसी- | २२१००१ | ५९१, नीरांश्रम | ① (०५४२) २३५३५५११ |
| | | e-mail: varanasi@dukan@gitapress.org | |
| हरिद्वार- | २४९४०१ | सज्जीभागही, मौतीबाजार | ① (०१३३४) २२२६५७ |
| प्रायिकेश- | २४९३०४ | गोताप्रेस, गङ्गापार, पो० स्वर्णश्रीम | ① (०१३५) २४३०१२२ |
| | | e-mail: gitabhawan@gitapress.org | २४३२७१२ |

स्टेशन-स्टाल

दिल्ली जंक्शन (प्लेटफॉर्म नं० १२); नवी दिल्ली (नं० ८-१); हजरत निजामुदीन [दिल्ली] (नं० ४-५); कोटा [राजस्थान] (नं० १); खीकानेर (नं० १); गोरखपुर (नं० १); कानपुर (नं० १); लालगढ़ [एन० ५० रोडपे]; बाराणसी (नं० ४-५); मुगलसराय ज० (नं० ३-४); हरिद्वार (नं० १); पटना ज०० (मुख्य प्रवेशद्वार); धनबाद (नं० २-३); मुजफ्फरपुर (नं० १); समस्तीपुर (व० २); हावड़ास्टेशन (नं० ५, उथा १८ दोनोंपर); मियालदा घेन (नं० ८); आसनसोल (नं० ५); राऊकेला (पुस्तक-ट्राली); राजगांगपुर (पुस्तक-ट्राली); औरंगाबाद [महाराष्ट्र] (नं० १); सिक्किम-राजावाद [अ०० प्र०] (नं० १); गुबाहाटी ज०० (मुसाफिरखाना); खड़गपुर (नं० १-२) एवं अन्यान्याय बस-अड्डा, दिल्ली।

फ्रंटकर-पुस्तक-दूकानें

| | | | |
|------------|---------|--|------------------|
| चूरू- | ३३१००१ | श्रीषिकुल ब्रह्मनार्थप, पुरानी सड़क | ① (०१५६२) २५२६७४ |
| प्रायिकेश- | २४९१११२ | मुनिकी रेती, | |
| तिरुपति- | ५१७५०४ | शौप नं० ५६, टी० टी० डॉ० मिनी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, तिरुपत्ती इल्लै | |